स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्।।

MAGO-107

जलवायु विज्ञान

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333

॥ सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥

कुलपति

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

संदेश

प्रयागराज की पवित्र भूमि पर भारत रत्न राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन के नाम पर वर्ष 1999 में स्थापित उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ0प्र0 का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय उ0प्र0 जैसे विशाल जनसंख्या वाले राज्य में उच्च शिक्षा के प्रत्येक आकांक्षी तक गुणात्मक तथा रोजगारपरक उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने में निरन्तर अग्रसर एवं प्रयत्नशील है। तत्कालीन देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में एक वैकल्पिक व नवाचारी शिक्षा व्यवस्था के रूप में भारत में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का पदार्पण हुआ था, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों तथा तकनीकी का सार्थक प्रयोग करते हुये मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा आज की सर्वोत्तम पूरक शिक्षा व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुकी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सामने व्याप्त पाँच मुख्य चुनौतियों - (i) पहुँच (Access), (ii) समानता (Equity), (iii) गुणवत्ता (Quality), (iv) वहनीयता (Affordability) तथा (v) जवाबदेही (Accountability) को केन्द्र में रखकर घोषित देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP-2020) के प्रस्तावों को क्रियान्वित करने में उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय कृत संकल्पित है। उ0प्र0 की माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति की सद्इच्छाओं के अनुरूप उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, शैक्षिक दायित्वों के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में भी लगातार नवप्रयास कर रहा है। चाहे वह गाँवों को गोद लेकर उनके समग्र विकास का प्रयास हो या ग्रामीण महिलाओं, ट्रान्सजेन्डर व सजायाफ्ता कैदियों को शुल्क में छूट प्रदान कर उनमें आत्मविश्वास जागृति व उच्च शिक्षा के प्रति अलख जगाने का प्रयास हो।

राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा एक मूलभूत जरूरत है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्रों में हो रहे तीव्र परिवर्तनों व वैश्विक स्तर पर रोजगार की परिस्थितियों में आ रहे परिवर्तनों के कारण भारतीय युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। इसीलिए विभिन्न क्षेत्रों में सफलता हेतु शिक्षा को सर्वसुलभ, समावेशी तथा गुणवत्तापरक बनाना समसामयिक अपरिहार्य आवश्यकता है। वर्तमान परिस्थितियों ने परम्परागत शिक्षा को और भी सीमित कर दिया है जिसके कारण मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था ही एकमात्र पूरक एवं प्रभावी शिक्षा व्यवस्था के रूप में सार्थक सिद्ध हो चुकी है। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालय का दायित्व और भी बढ़ जाता है। इस दायित्व को एक चुनौती स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय ने प्राचीन तथा सनातन भारतीय ज्ञान, परम्परा तथा सांस्कृतिक दर्शन व मूल्यों की समृद्ध विरासत के आलोक में सभी के लिए समावेशी व समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने तथा जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा देने के लिए अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में जागरूकता में प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, परास्नातक डिप्लोमा, स्नातक, परास्नातक तथा शोध उपाधि के समसामयिक शैक्षिक कार्यक्रमों की संख्या तथा गुणात्मकता में वृद्धि की है।

शैक्षिक कार्यक्रमों में संख्यात्मक वृद्धि, गुणात्मक वृद्धि तथा रोजगारपरक बनाने के साथ-साथ प्रत्येक उच्च शिक्षा आकांक्षी तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए अध्ययन केन्द्रों व क्षेत्रीय केन्द्रों के विस्तार के साथ-साथ प्रवेश परीक्षा, प्रशासन तथा परामर्श (शिक्षण) में आनलाइन व्यवस्थाओं को सुनिश्चित किया गया है। विश्वविद्यालय कार्यप्रणाली में पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चियन की दृष्टि से तकनीकी के प्रयोग को बढ़ाया गया है। 'चुनौती मूल्यांकन' की व्यवस्था सुनिश्चित करने का कार्य किया गया है, तो शिक्षार्थी सहायता सेवाओं में भी वृद्धि की जा रही है। शिक्षार्थियों की समस्याओं के त्वरित निस्तारण हेतु शिकायत निवारण प्रकोष्ठ को सुदृढ़ करने के साथ-साथ पुरातन छात्र परिषद को गतिशील किया गया है।

"गुरुकुल से छात्रकुल" के सूक्त वाक्य को आत्मसात करते हुए विश्वविद्यालय ने शिक्षार्थियों को विश्वविद्यालय द्वारा तैयार किये गये गुणवत्तापूर्ण स्वअध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने के साथ-साथ विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर भी उपलब्ध कराया गया है। छात्रहित को ध्यान में रखते हुए शिक्षकों द्वारा तैयार व्याख्यान को भी ऑनलाईन उपलब्ध कराया गया है।

शोध और नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर होते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) नई दिल्ली तथा माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति, उ0प्र0 की अनुमति से विश्वविद्यालय में शोध कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ किया गया है तथा वर्ष पर्यन्त समसामयिक विषयों पर व्याख्यान, सेमिनार, वेबिनार तथा आनलाइन संगोष्ठियों आदि की श्रृंखला भी प्रारम्भ की गयी है। विभिन्न क्षेत्रों में रिसर्च प्रोजेक्ट सम्पादन पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है। पुस्तकालय को अत्याधुनिक तथा सुदृढ़ बनाने हेतु कदम उठाये गये हैं। शिक्षकों व कर्मचारियों के स्वास्थ्य तथा कल्याण की योजनायें क्रियान्वित की गयी हैं।

प्रो0 सत्यकाम
कुलपति

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAGO-107
जलवायु विज्ञान

इकाई—1	जलवायु विज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा, विषय क्षेत्र एवं विकास	**3**
इकाई—2	वायुमंडल का संधटन एवं संरचना।	**12**
इकाई 3	सूर्यातप, सूर्यातप का वितरण तथा वितरण को प्रभावित करने वाले कारक।	**22**
इकाई 4	तापमान, तापमान का वितरण, वितरण को प्रभावित करने वाले कारक,तापीय प्रतिलोमन	**34**
इकाई—5	वायुदाब अर्थ, वायुदाब पेटिया, वायुदाब प्रवण्ता, वायुदाब पेटियो का खिसकाव।	**52**
इकाई 6	पवन पेटिया, पवन पेटियों का अंक्षाशीय विस्थापन, त्रिकोशीय रेखांशिक परिसंचरण।	**63**
इकाई 7	मानसूनः परिभाषा, मानसून प्रस्फोट, विश्व के प्रमुख मानसूनी क्षेत्र।	**75**
ईकाई 8	भारतीय मानसून की उत्पत्ति, जेट वायुधारा स्थानीय पवन, स्थल व सागरीय समीर, पर्वत व घाटी समीर	**93**
इकाई 9	आर्द्रताः अर्थ, प्रकार तथा महत्व, संधनन, कुहरा एवं प्रकार, वर्षण के सिद्वान्त, वर्षण के रूप, वर्षा के प्रकार, विश्व का वितरण।	**120**
इकाई10	वायुराशियॉ, अर्थ एवं संकल्पना, विशेषतायें, तथा वर्गीकरण, विश्व की प्रमुख वायुराशियां	**143**
इकाई 11	वाताग्र एवं उसके प्रकार, चक्रवात, अर्थ एवं परिभाषा, शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात प्रकार एवं उत्पत्ति।	**158**
इकाई 12	उष्ण कटिबंधीय चक्रवात—प्रकार एवं उत्पति, संरचना, प्रतिचक्रवात, अर्थ एवं विशेषताएं, प्रकार।	**170**
इकाई 13	विष्व जलवायु का प्रादेषीकरण, कोपेन एवम थार्नथ्वेट की जलवायु के प्रादेषीकरण योजना	**184**
इकाई 14	जलवायु के प्रकार एवं उनका वितरण, उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन जलवायु, उष्ण कटिबन्धीय मानसूनी जलवायु, भूमध्य सागरीय जलवायु, पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु	**196**
इकाई 15	जलवायु परिवर्तन, अर्थ, संकल्पना, कारक एवम प्रभाव	**212**
इकाई 16	व्यावहारिक जलवायु विज्ञान कृषि, मानव व्यवहार, जीवमण्डल	**231**

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो. सत्यकाम	कुलपति उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
विनय कुमार	कुलसचिव उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति : (अध्ययन बोर्ड)

प्रो. संतोषा कुमार	आचार्य, इतिहास, निदेशक, समाज विज्ञान, विद्याशाखा उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल, समाज विज्ञान, विद्याशाखा उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डा. अभिषेक सिंह	सहायक आचार्य, समाज विज्ञान, विद्याशाखा उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. एन.के. राना	आचार्य, भूगोल विभाग बी.एच.यू. वाराणसी
प्रो. ए.आर. सिद्दीकी	आचार्य, भूगोल विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. अरूण कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल विभाग बी.एच.यू. वाराणसी

लेखक

प्रो. संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल, समाज विज्ञान, विद्याशाखा उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. अभिषेक सिंह	सहायक आचार्य, भूगोल उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादन

प्रो. वी.सी. जाट	प्राचार्य राज.पी.जी. कालेज रायजादा जयपुर
डॉ. प्रवीन राय	सह–आचार्य ख्वाजा मु.भा.वि. लखनऊ

समन्वयक

डॉ. संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल, समाज विज्ञान विद्याशाखा उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सह–समन्वयक

डॉ. शशि भूषण राम त्रिपाठी	सहायक आचार्य, भूगोल उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक

2024 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2024

ISBN- 978-93-48270-75-7

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : कुलसचिव, डॉ. अरूण कुमार गुप्ता उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज – 2024

मुद्रक : चंद्रकला यूनिवर्सल प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज– 211006

इकाई–1

जलवायु विज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा, विषय क्षेत्र एवं विकास

पाठय संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 परिभाषा एवं विषय क्षेत्र

1.4 जलवायु का महत्व

1.5 जलवायु विज्ञान का वर्गीकरण

1.6 जलवायु का विकास

1.7 जलवायु एवं मौसम में अन्तर

1.8 मौसम के तत्व

1.9 जलवायु के कारक

1.10 सारांश

1.11 शब्द सूची

1.12 परीक्षापयोगी प्रश्न

1.13 उपयोगी पुस्तकें

1.14 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम जलवायु विज्ञान के अर्थ, परिभाषा, विषयक्षेत्र एवम जलवायु विज्ञान का अध्ययन करेंगे। जिससे शिक्षार्थी को जलवायु विज्ञान का बोध हो सके । जलवायु भौतिक पर्यावरण में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। पृथ्वी पर निवास करने वाले मानव के जीवन पर भौतिक पर्यावरण का अधिक प्रभाव रहता है। उसमें भी जलवायु का अपना विशेष महत्व है जैसा हम देखते है कि भूगोल के अन्तर्गत पृथ्वी का अध्ययन मानव निवास के रूप में किया जाता है। पृथ्वी पर पाई जाने वाली स्थानिक एवं प्रादेशिक विभिन्नताओं का विश्लेषण ही भूगोल का प्रमुख लक्ष्य है। मानव सामान्यतया अपने चारों ओर पाये जाने वाले भौतिक पर्यावरण का दास होता है। यदि मानव और उसके चारों ओर भौतिक पर्यावरण के मध्य अर्न्तसम्बन्धों की बात की जाय तो हम पाते हैं कि मानव जीवन का स्वरूप तथा उसकी संस्कृति जलवायु दशा का मूल अंग है। वास्तव में इसीलिए भूगोल का विद्यार्थी जलवायु विज्ञान के अध्ययन में अधिक रूचि लेता है। मानव जीवन के अनेक पक्ष होते है जिस पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में जलवायु का अत्यधिक प्रभाव देखने को मिलता है, क्योंकि जलवायु मानव के भौतिक पर्यावरण का सबसे महत्वपूर्ण कारक है।

1.2 जलवायु विज्ञान का उद्देश्य :–

इस इकाई का उद्देश्य यह है कि शिक्षार्थी जलवायु विज्ञान की मूल बातों को जान सकें।

1. जलवायु में परिवर्तन होने के लिए जिम्मेदार कारकों का विश्लेषण कर सकें
2. कौन से ऐसे कारण होते है? जिससे विशेष क्षेत्र में विशेष प्रकार की जलवायु पायी जाती है,की व्याख्या कर सकें।
3. जलवायु विज्ञान के सन्दर्भ में विद्वानों के विचारों को शिक्षार्थी व्याख्या कर सकें।

4. शिक्षार्थी जलवायु विज्ञान के इतिहास की व्याख्या कर सकें।

5. जलवायु विज्ञान के माध्यम से जलवायु एवं मौसम के अन्य पक्षों का विश्लेषण करता है।

1.3 परिभाषा एवं विषय क्षेत्र

जलवायु विज्ञान अर्थात् क्लाइमेटॉलाजी जो ग्रीक भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है, क्लाइमा (Klima) जिसका अर्थ पृथ्वी का अक्ष तथा लॉगोस (Logas) का अर्थ वर्णन या अध्ययन करना है। इस प्रकार इसका शब्दिक अर्थ पृथ्वी के अक्षांशों का वर्णन करना। यहाँ पृथ्वी के अक्ष से अभिप्राय विभिन्न अक्षांशों से है। भू–तल पर पायी जाने वाली जलवायु का अध्ययन हम जलवायु विज्ञान के अर्न्तगत करते हैं। इसे अनेक जलवायु विद्वानों ने परिभाषित किया है। जो निम्नलिखित हैः–

जी0टी0 ट्रिवार्था के अनुसार– 'जलवायु किसी निश्चित क्षेत्र के दीर्घ काल में वायुमण्डलीय तत्वों एवं दिन–प्रतिदिन की मौसम सम्बन्धी दशाओं का संयुक्त रूप से प्रदर्शित करती है।

क्रिच महोदय का मानना है कि– 'दीर्घ काल में पृथ्वी एवं वायुमण्डल के मध्य ऊर्जा तथा द्रव्यमान (mass) के आदान–प्रदान की प्रक्रियाओं से उत्पन्न दशाओं को जलवायु कहते हैं। जलवायु सांख्यिकीय औसत से बढ़कर है, यह मौसम सम्बन्धी दशाओं यथा–ऊश्मा, आर्द्रता तथा वायु संचार का समन्वित रूप है। किसी भी जलवायु वितरण में औसत, प्रवृत्ति तथा सम्भावित (means, trends एवं probabilities) के अलावा चरम (दशाओं) पर भी ध्यान देना होगा तथा मौसम जलवायु का विभेदीकरण (differentiation) है। इस तरह मौसम तथा जलवायु में मात्र समय का अन्तर होता है।

कोपेन तथा डी लांग के अनुसार – 'जलवायु दीर्घकालिक मौसमी दशाओं का संयुक्त रूप तथा संक्षिप्त विवरण होता है, इसके अन्तर्गत मौसम के तत्वों की विभिन्नताओं के विषय, विवरण, चरम घटनाओं, आवृत्तियों (frequencies) तथा अनुक्रमों (sequences) को सम्मिलित किया जाता है। इस तरह जलवायु मौसम की समष्टि (aggregate) होती है।'

जी0यफ0 टेलर के अनुसार – 'जलवायु मौसम का समाकलित (Integrated) रूप होती है तथा मौसम जलवायु का विभेदीकरण होता है। इस तरह मौसम एवं जलवायु में अन्तर केवल समय का होता है।'

- ज्ञातव्य है कि किसी भी विषय का विषय क्षेत्र उसके लक्ष्यों एवं उद्देश्यों पर निहित होता है। जलवायु विज्ञान अपने विषय क्षेत्र के साथ–साथ अपने शाखाओं के विषय क्षेत्र का अध्ययन करता है। जैसा की हम पाते है कि जलवायु विज्ञान की शाखाओं में प्रादेशिक जलवायु विज्ञान, व्यवहारिक जलवायु विज्ञान, भौतिक तथा गतिक जलवायु विज्ञान आदि प्रमुख है।

मेलिवर एवं हिडोरे (2003) के अनुसार– 'भौतिक जलवायु विज्ञान मुख्य रूप से वायुमण्डल में ऊर्जा के विनिमय तथा भौतिक प्रक्रियाओं के अध्ययन से सम्बन्धित है, जबकि जलवायु विज्ञान वायुमण्डलीय गतियों (motions) तथा उनसे उत्पन्न घटनाओं का अध्ययन करता है। अतः भौतिक एवं गतिक जलवायु विज्ञान के अन्तर्गत निम्न के अध्ययन को सम्मिलित किया जाता हैः–

- वायुमण्डल में तापमान का वितरण प्रतिरूप, लम्बवत एवं क्षैतिज वितरण, तथा तापमान को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों का अध्ययन।
- वायुमण्डल में वाष्पीकरण, निरपेक्ष, विशिष्ट तथा सापेक्षिक आर्द्रता, संघनन और वर्षण का वर्णन।
- भूमण्डलीय वायुमण्डल में पवन परिसंचरण।
- वायुराशियों का स्थानिक प्रतिरूप, वाताग्र का बनना, चक्रवात तथा प्रतिचक्रवात का जनन एवं अभिसरणीय, अपसरणीय संचार का अध्ययन।
- भूमण्डलीय विकिरण तथा ऊर्जा सन्तुलन का अध्ययन।

- प्रादेशिक जलवायु विज्ञान का प्रमुख उद्देश्य होता है कि वह विश्व भर की विभिन्न प्रकार के जलवायु का अध्ययन करना तथा जलवायु को वृहद स्तर पर स्थानिक मापक के आधार पर विश्व के विभिन्न भागों में

विभाजित करना और उस जलवायु की अवस्थिति तथा उसकी विशेषताओं का प्रमुख रूप से अध्ययन करना है। विश्व के प्रत्येक जलवायु प्रदेशों में तापमान, पवन, वायुदाब, वर्षण तथा स्थानीय वनस्पति पर पड़ने वाले प्रभावों का क्रमबद्ध अध्ययन करना है।

विश्व जलवायु वर्गीकरण को क्रमशः तीन उपागमों में बाँटा गया है।

1. जननिक उपागम (Genetic Approach)
2. मात्रात्मक उपागम (Numerical Approach)
3. आनुभविक उपागम (Empirical Approach)

कोपन, ट्रीवार्था तथा थार्नथ्वेट द्वारा प्रस्तुत जलवायु वर्गीकरण को आनुभविक वर्गीकरण के आधार पर वर्णन किया है। जननिक वर्गीकरण के लिए भौतिक आधार हो या तो वायुराशियों के आधार को प्रमुख माना जाता है। ओलिवर तथा हिडोरे (2003) ने जो जलवायु वर्गीकरण प्रस्तुत किया है जननिक आधार का उदाहरण है। वृहद प्रदेशों की जलवायु के अन्तर्गत पुराजलवायु की संरचना, जलवायु में होने वाले परिवर्तन, तथा उसके प्रमुख कारणों एवं जलवायु से सम्बन्धित पूर्वकथनों का अध्ययन किया जाता है।

- व्यवहारिक जलवायु विज्ञान के अन्तर्गत मानव क्रियाकलापों का अध्ययन प्रमुख है, जो मानव शरीर एवं समाज पर पड़ने वाले प्रभावों तथा मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं का विशेष रूप से अध्ययन करता है। जलवायु और समाज एवं मानव क्रियाओं के मध्य प्रमुख अर्न्तसम्बन्ध पाया जाता है जैसे–जलवायु एवं गृह निर्माण कला, जलवायु एवं सभ्यता तथा संस्कृति, जलवायु एवं मानव स्वास्थ, जलवायु एवं कृषि, जलवायु एवं नगर नियोजन, जलवायु एवं नगर पर्यावरण, जलवायु एवं यातायात संचार, जलवायु एवं पर्यटन, जलवायु एवं उद्योग तथा जलवायु एवं वाणिज्य आदि। दूसरा पक्ष मानव की आर्थिक क्रियाकलापों द्वारा वायुमण्डल की रासायनिक संरचना में बदलाव हो रहे है तथा इसके द्वारा जनित जलवायु परिवर्तन भी व्यवहारिक जलवायु विज्ञान के विषय क्षेत्र के अर्न्तगत अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत प्रमुख घटक आते है जैसे– मानव द्वार जीवाष्म ईंधन के प्रयोग से निकलने वाली कार्बन डाई ऑक्साइड गैस वायुमण्डल में हरित गृह प्रभाव में वृद्धि, समताप मण्डल में पाये जाने वाले ओजोन परत में क्षरण, तापमान में वृद्धि, भूमण्डलीय विकिरण एवं तापमान में असन्तुलन एवं होने वाले जलवायु परिवर्तन आदि का अध्ययन अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है।

1.4 जलवायु के महत्व :–

भूगोलवेत्ता जलवायु के अध्ययन में इसलिए अधिक रूचि लेता है क्योंकि भू–तल पर प्राकृतिक जलवायु प्रदेश पाये जाते है। इन जलवायु प्रदेशों की प्राकृतिक जलवायु सीमायें अधिक स्पष्ट होती है। जिसमें आमतौर पर एकरूपता देखी जाती है। इन जलवायु प्रदेशों में मृदा समूहों, पादप समूहों तथा विभिन्न प्रकार की भू–आकृतियों के द्वारा इन प्रदेशों की पहचान की जा सकती है तथा इन प्रदेशों को संख्यात्मक आंकड़ो द्वारा परिभाषित किया जा सकता है। जलवायु को वास्तव में 'प्रादेशिक विभिन्नताओं की कुंजी' कहा गया है और इसीलिए भूगोलविद जलवायु विज्ञान के पठ्न–पाठ्न में विशेष रूचि लेता है। कार्लसावर (carl saur) ने निम्न शब्दों द्वारा इस कथन की पुष्टि की है जो निम्नलिखित है– "प्राकृतिक भू–दश्यावलियों में विद्यमान समानता अथवा विषमता मुख्य रूप से जलवायु के कारण पायी जाती है। किसी विशेष प्रकार की जलवायु में एक विशेष प्रकार की भू–दृश्यावली का विकास होता है।

1.5 जलवायु विज्ञान का वर्गीकरण :–

क्रिच फील्ड महोदय ने जलवायु विज्ञान को प्रमुख तीन भागों में बाँटा है, जो निम्नलिखित है :–

1. भौतिक जलवायु विज्ञान (Physical Climatology)
2. प्रादेशिक अथवा वर्णनात्मक जलवायु विज्ञान (Regional or Descriptive Climatology)
3. व्यवहारिक जलवायु विज्ञान (Applied Climatalogy)

1. भौतिक जलवायु विज्ञान :–

जलवायु विज्ञान की यह शाखा भौतिक कारणों का अध्ययन करती है जो विकिरण, पवन संचार एवं आर्द्रता

भौतिक के अन्तर्गत पाये गये कालिक एवं स्थानिक परिवर्तनों के लिए जिम्मेदार है। इन कार्यों के संचालन में जलवायु के प्रमुख तत्व जैसे सौर्यतप, प्रकाश की अवधि, तापमान, आर्द्रता, वायुदाब, मेघ, वर्षण आदि के योगदान से सहायता मिलती है। धरातल तथा वायुमण्डल के बीच अथवा स्वयं वायुमण्डल में भी ऊष्मा, संवेग एवं आर्द्रता संचालन की अनेक जटिल प्रक्रियाओं के अन्तर्गत मौसम के तत्वों में अनेक प्रकार के सम्मिश्रण पाये जाते है। किसी स्थान का अक्षांश, उच्चावच, सागर तल से ऊँचाई, स्थानिक पवन प्रवाह तथा भौतिक अवरोध आदि अनेक प्रमुख कारक है, जो मौसम सम्बन्धी घटनाओं को प्रभावित करते है। भौतिक जलवायु विज्ञान जलवायु भिन्न–भिन्न तत्वों अध्ययन करता है तथा इसके उपर्युक्त कारकों एवं जलवायु सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन सम्मिलित रूप से किया जाता है, जो जलवायु की प्रादेशिक विभिन्नताओं की जननी है।

2. प्रादेशिक अथवा वर्णनात्मक जलवायु विज्ञान :–

यह जलवायु विज्ञान की एक प्रमुख शाखा है, जो जलवायु के प्रादेशिक विभिन्नताओं के अन्तर्गत विश्व के जलवायु प्रदेशों का वर्गीकरण किया है। इस वर्गीकरण का प्रमुख आधार जलवायु सम्बन्धी आंकड़ों का सांख्यिकीय वर्णन करना है। जलवायु तथा मौसम के द्वारा किसी प्रदेश के नागरिकों के स्वास्थ्य, शारीरिक बनावट तथा अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन इस शाखा में किया जाता है। जलवायु के प्रादेशिक वितरण का वर्णन करते समय यह ज्ञात होता हैं कि क्षेत्रीय जलवायु विज्ञान में मापक संकल्पना का भी समावेश है। आकार एवं विस्तार की दृष्टि से विश्व के जलवायु प्रदेशों को वृहद जलवायु प्रदेश (Macro Climatic Regions), मध्य जलवायु प्रदेश (Meso-Climatic Regions) तथा सूक्ष्म जलवायु प्रदेश (Micro Climatic Regions) में बाँट कर उनकी जलवायु का अलग–अलग अध्ययन किया जाता है।

जब हम प्रादेशिक जलवायु अथवा क्षेत्रीय जलवायु का अध्ययन करते हैं। तब जलवायु के उपर्युक्त कारकों जैसे– महाद्वीप एवं महासागर का विस्तार, उच्चावच, पृथ्वी से परावर्तन तथा वायुमण्डल की बाहरी सीमा पर सूर्याताप की तीव्रता आदि प्रमुख तत्वों पर विचार करते है, परन्तु मध्य जलवायु अथवा सूक्ष्म जलवायु प्रदेश स्थानीय कारकों द्वारा नियंत्रित होते है। क्रीच फील्ड ने प्रादेशिक जलवायु विज्ञान को सूक्ष्य जलवायु विज्ञान से बिल्कुल अलग मानते थे। उनके अनुसार सूक्ष्म जलवायु विज्ञान व्यवहारिक जलवायु विज्ञान की एक उपशाखा है। जिसके अध्ययन के लिए उन्होंने विशेष दृष्टिकोण अपनाने की बात कहीं।

3. व्यवहारिक जलवायु विज्ञान :–

इसका प्रमुख उद्देश्य जलवायु विज्ञान तथा उपर्युक्त अन्य विज्ञानों के साथ सम्बन्धों का अध्ययन करना है। इसकी विवेचना कर इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि मानव जीवन को और सुखमय बनाने के लिए जलवायु का किस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत होने वाले जलवायु परिवर्तनों तथा दिन–प्रतिदिन जलवायु की घटनाओं एवं विभिन्न घटकों में संशोधन तथा परिमार्जन करके मनुष्य के क्रियाकलापों के लिए अनुकूल बनाने की जटिल समस्याओं की भी विवेचना करता है। इस क्षेत्र में जलवायु शास्त्रियों के अथक प्रयास के उपरान्त जलवायु विज्ञान तथा विज्ञान की उपर्युक्त शाखाओं में पारस्परिक सम्बन्ध रखा है। जिसके फलस्वरूप जलवायु विज्ञान के अनेक प्रशाखाओं का आधुनिक विकास हो रहा है। नगरीय जलवायु विज्ञान, जीव जलवायु विज्ञान, कृषि जलवायु विज्ञान, चिकित्सा जलवायु विज्ञान तथा वास्तु जलवायु विज्ञान आदि प्रमुख उपविभाग है। जिसके द्वारा जलवायु के घटनाओं के अध्ययन में सहयोग प्राप्त करती है।

1.6 जलवायु विज्ञान का विकास :–

विज्ञान की अन्य शाखाओं की तरह ही जलवायु विज्ञान का उद्भव भी रोम, यूनान तथा मिस्र के प्राचीन दार्शनिकों एवं विचारकों के द्वारा हुआ है। जलवायु विज्ञान को वास्तविक स्वरूप के लिए विभिन्न युगों के समय–समय पर अनेक वैज्ञानिकों, दार्शनिकों तथा विचारकों ने अपना मत दिया तथा इसके सुधार के लिए तथा क्रमिक विकास के लिए हर सम्भव प्रयास किये। जलवायु (climatic) शब्द का उदय ग्रीक भाषा से हुआ है। जो ग्रीक भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है। Kalima शाब्दिक अर्थ पृथ्वी के अक्ष का झुकाव Logos जिसका अर्थ वर्णन है। जलवायु विज्ञान की परिकल्पनाओं, सिद्धान्तों तथा विषय क्षेत्र के विकास के लिए इसका अध्ययन किया जाता है।

प्राचीनकाल (Ancient Period) :–

ईसा पूर्व काल में मौसमी दशाओं के लिए जो भी विचार या संकल्पनाओं का प्रतिपादन किया गया, उसमें ग्रीक एवं रोमन प्रमुख थे, प्राचीन यूनानी विद्वानों ने सर्वप्रथम वायुमण्डल की प्रकृति एवं मानव पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन प्रारम्भ किया। वायुमण्डल के अन्तर्गत प्रथम लिखित प्रमाण 400 ई0 पूर्व में आया। जबकि हिपोक्रेटीज ने 'Air, Water and Places' नामक लेख प्रस्तुत किया। इसमें उन्होंने मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले जलवायु प्रभावों का विश्लेषण किया। अरस्तु ने मौसम विज्ञान पर 'Metearology' नामक प्रथम पुस्तक प्रस्तुत किया। जिसके द्वारा उन्होंने मौसम विज्ञान के विभिन्न पक्षों का वर्णन किया है। थियोफ्रेटस ने 300 ई0पू0 में 'De Ventis' नामक पुस्तक के वर्णन किया। जिसमें उन्होंने कई प्रकार की पवनों का वर्णन किया तथा मौसम विज्ञान सम्बन्धित विचारक अरस्तु की अलोचनात्मक व्याख्या की। ग्रीक विद्वानों ने भूमण्डल को अक्षांशों के आधार पर तीन ताप कटिबन्धों में बाँटा था।

1. उष्ण कटिबन्धीय ताप मण्डल (23.5° उ0द0गोलार्द्ध)
2. शीतोष्ण ताप मण्डल (23.5° – 66.5° उ0द0 अक्षांश गोलार्द्ध के मध्य)
3. शीत ताप मण्डल (66.5° – 90° उ0द0 अक्षांश के मध्य दोनों गोलार्द्ध में)

अन्धयुग (Dark Age) :–

ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में लगभग 1400 वर्षों तक कोई विकास नही हुआ। ई0पू0 के समय में जो विचार संकल्पनाएं प्रस्तुत किये गये थे। उसके बाद से 14वीं सदी तक विज्ञान के क्षेत्र में कोई प्रगति नहीं देखी गयी। वास्तव में अगर देखा जाए तो इस दीर्घकाल की अवधि में विज्ञान के किसी भी क्षेत्र में कोई प्रमुख योगदान नहीं दिया जा सका, तो 9वीं, 10वीं सदी में अरब में भौगोलिक तथा जलवायु सम्बन्धित विचार अवश्य प्रतिपादित किए गए।

पुनर्जागरण काल (Period of Renaissance) :–

1400 वर्षो के पश्चात् यूरोप में शिक्षा का मौन काल खत्म हुआ। धर्म गुरूओं का प्रभाव कम हुआ। अकर्मण्यता काल का समापन हुआ । नयी चेतना का अविष्कार हुआ एवं वृहद स्तर पर लोगों में जागरण हुआ तथा यूरोप के लोग उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए लम्बी–लम्बी समुद्री यात्राएं प्रारम्भ कर दिया। नये–नये खोज के दौर शुरू हो गये, भौगोलिक इतिहास में 15 वीं तथा 16 वीं शताब्दी को खोज एवं अन्वेशण का महाकाल (Great Age of Discovery and Exlaration) के नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि इस काल के दौरान नये–नये स्थानों की खोज उसकी विशेषताओं की पहचान वायुमण्डलीय एवं मौसमी घटनाओं से सम्बन्धित विवरणों की जानकारी प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास किये गए। ज्ञातव्य है कि अन्वेशणकर्ताओं द्वारा भ्रमण किये गए क्षेत्रों को अपने अनुभव एवं समझ के अनुसार वायुमण्डल एवं मौसम सम्बन्धित ज्ञान को प्रस्तुत किया। यूरोप से बाहर के देशों में मौसम सम्बन्धित वर्णन काल्पनिक एवं विभिन्न प्रकार के लगते थे। ऐसे विचारों एवं संकल्पनाओं ने संसार के अन्य भागों के लिए मौसम सम्बन्धित गलत अवधारणाओं का वर्णन किया, जो अधिक समय तक जनसाधारण के विचार में व्याप्त रही। इस गलत धारणाओं का निष्कासन आमजन लोगों में से वैज्ञानिक युग के दौरान सम्भव हो पाया। यद्यपि आज भी मौसम सम्बन्धी अन्धविश्वास एवं रूढ़िवादिता अनेक देशों के जनमानस में देखने को मिलती है।

वैज्ञानिक विश्लेषण काल :–

प्रारम्भ में जलवायु एवं मौसम सम्बन्धित ज्ञान व्यक्तिनिष्ठ अवधारणााओं पर आधारित था, जिसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता था। वायुमण्डलीय विज्ञान कहे या जलवायु विज्ञान अपनी पहचान एक विज्ञान के रूप में 17वीं सदी में करा पाये। तभी जाकर मौसम सम्बन्धी कुछ तत्वों का मापन करने के लिए उपकरणों का अविष्कार एवं निर्माण किया गया। तापमान मापन के लिए गैलिलियो ने 1593 में एवं सैण्टोरे ने 1612 मे थर्मामीटर यंत्र का अविष्कार किया। वायुमण्डलीय दाब के अंकन करने के लिए टोरीसेली ने 1643 में वैरोमीटर यंत्र का अविष्कार किया। इस तरह वायुमण्डल के तापमान एवं वायुदाब के आंकड़े सुलभता से प्राप्त होने लगे। कतिपय वायुमण्डलीय दशाओं से सम्बन्धित नियमों का प्रतिपादन कर दिया गया।

वायुमण्डलीय दशाओं के मापन के लिए पर्याप्त उपकरणों की सुलभता के पश्चात् फ्रांस ने अपनी राजधानी पेरिस में 1668 में मौसम स्टेशन का निर्माण करवाया। जहाँ पर मौसम सम्बन्धी मापन एवं अंकन का अभिलेखन आरम्भ हो गया। इसी उपरान्त एडमण्ड हैली ने 1668 में ग्रहीय पवनों के बारे में जाना तथा व्यापारिक पवनों का

मानचित्र प्रस्तुत किया तथा 1735 में हैडिली ने कर्क एवं मकर अक्षांश रेखाओं के मध्य उष्ण कटिबन्धी पवन संचार द्वारा सम्बन्धित कोशिका मॉडल प्रस्तुत किया। जिसे आज हेडिले सेल के नाम से जाना जाता है। 1641 में डूक्रेस्ट ने तापमान मापन के लिए सेण्टीग्रेट का प्रतिपादन किया था।

प्रादेशिक वर्णन काल) :–

18 वीं – 19 वीं सदी तक मौसम तत्वों का आकंलन प्रादेशिक एवं भूमण्डलीय स्तर पर किया जा रहा था तथा प्रमाणिक एवं उच्च्य स्तरीय उपकरणों के द्वारा मौसम एवं जलवायु के मापन से प्राप्त आंकड़ों के माध्यम से महाद्वीपों, देशों एवं समस्त भू–तल पर सूर्यातप, तापमान वितरण, वायुदाब, पवन संचार, वायुमण्डलीय विक्षोभ की घटनाऐं, वर्षण आदि को प्रस्तुत करने के लिए मानचित्र निर्माण कार्य आरम्भ किया गया। ल्यूक होबार्ड ने सर्वप्रथम 1803 में बादलों का वर्गीकरण को प्रतिपादित किया। इन्होंने बादलों को दो प्रमुख भागों में बाँटा था।

1. मुख्य बादल प्रकार तथा **2.** गौण बादल प्रकार। होबार्ड ने बादलों के नामकरण के लिए लैटिन शब्द का प्रयोग किया था। (जैसे–स्ट्रैटस, क्युमलस आदि। बादलों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होने के साथ बादलों के वर्गीकरण की आवश्यकता पड़ने लगी। परिणाम स्वरूप इण्टरनेशनल मिट्रिओलाजिकल संगठन (IMO) ने 1895 में होबार्ड के द्वारा किये गए वर्गीकरण में संशोधन प्रस्तुत किया। तथा विश्व भर में एकरूपता के लिए बादलों का पुनः नामकरण किया गया और आगे चलकर विश्व जलवायु संगठन (WHO) वर्तमान में भी समय–समय पर संशोधित रूप प्रतिपादित करता रहता है।

1817 में हम्बोल्ट ने तापमान अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जब उन्होनें विश्व स्तर पर समताप रेखाओं के माध्यम से औसत तापमान का वितरण मानचित्र प्रदर्शित किया। इसी समय वायुमण्डल की आर्द्रता मापने के लिए खोज जारी थी। अन्ततः अगस्त इस क्षेत्र में सफल हो गये तो उन्होंने 1825 में हाइग्रोमीटर नामक आर्द्रतामापी यंत्र की खोज की।

1841 में एस्पी ने वायुमण्डलीय तुफानों के बारे में विस्तृत वर्णन किया। तब तक मौसम वैज्ञानिकों ने स्थानीय आंकड़ों के अनुसार मानचित्र बनाने में सफल हो गये थे। 1837 में मौसम वैज्ञानिकों ने सूर्यातप मापन के लिए Pyhrheliometer उपकरण का अविष्कार किया। 1944 में गैसपर्ड डी कोरियालिस ने पृथ्वी के घूर्णन के द्वारा उत्पन्न विक्षेप बल का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। जिसे बाद में कोरियालिस प्रभाव के नाम से जाना गया तथा बाद में पृथ्वी पर चलने वाली हवाओं की दिशा एवं कोरियालिस बल के द्वारा उन हवाओं पर पड़ने वाले प्रभाव पर दो नियम प्रतिपादित किये गये।

1. फेरल का नियम, जो वायु की दिशा में विक्षेप को प्रदर्शित करता है।
2. वायुदाब एवं वायुदिशा से जुड़ा हुआ, बाइस बैलट का नियम।

इसके बाद मौसम सम्बन्धित आंकड़े विश्व भर में सुगमता से प्राप्त करके वरहास (Berhaus) ने 1945 में पहली बार विश्व वर्षा मानचित्र बनाने में सफल रहे। 1862 में रिनाऊ ने पश्चिमी यूरोप का औसत वायुदाब मानचित्र का प्रतिपादन किया। सूपन ने यूनान के भूगोल शास्त्रीयों के द्वारा भूमण्डल को उष्ण, शीतोष्ण तथा शीत कटिबन्ध में विभाजन के लिए कटु आलोचना की तथा उन्होंने पूरे पृथ्वी को तीन तापमण्डलों में विभाजित किया। जिसके लिए समताप रेखा को आधार बनाया। उष्ण कटिबन्धीय वाह्य सीमा के लिए 20° से वार्षिक समताप रेखा का निर्धारण किया तथा उत्तरी दक्षिणी गोलार्द्ध में शीतोष्ण एवं शीत कटिबन्ध के निर्धारण के लिए उत्तरी गोलार्द्ध में जुलाई का 10° से0 के आधार पर विभाजन किया गया है। 19 वीं सदी के अन्तिम खण्ड में वैज्ञानिकों द्वारा वायुमण्डल के ऊपरी हिस्से के विषय में खोजे प्रारम्भ की गयी। तथा इस समय तक वायुमण्डल के निचले भाग एवं धरातल की मौसम एवं जलवायु सम्बन्धित आंकड़े एवं विचार पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होने लगे थे। इसका परिणाम यह हुआ कि विश्व जलवायु का वर्गीकरण आरम्भ हो गया। जर्मन जलवायुवेत्ता कोपेन का इस क्षेत्र में प्रथम योगदान था। 1900 में कोपेन ने जलवायु वर्गीकरण का विचार प्रस्तुत किया। इसके पश्चात् मौसम एवं जलवायु विज्ञान के क्षेत्र में पुस्तक लेखन कार्य की भी शुरूआत हो गयी।

आधुनिक जलवायु विज्ञान काल :–

20 वीं सदी में मौसम एवं जलवायु के तत्वों के बारे में वायुमण्डल की जानकारी प्राप्त करने के लिए अन्य आधुनिक तकनीकों का विकास किया गया। जिसके द्वारा वायुमण्डल की दशाओं, घटनाओं तथा हलचलों से

सम्बन्धित सुचनाएं अत्यधिक प्राप्त होने लगी। जिससे जलवायु विज्ञान के अध्ययन में वैज्ञानिकों को अधिक सहायता प्राप्त होने लगी। जिसके पश्चात् वैज्ञानिकों ने मौसम एवं जलवायु सम्बन्धित विचारों एवं आंकड़ों तथा सूचनाओं के नियमित प्राप्त होने से आवश्यकता अनुसार निरन्तर तकनीकी सुधार चलता रहा। विश्व के जलवायु वर्गीकरण के लिए अथक प्रयास किये गए। जलवायु घटनाओं से निपटने के लिए निरन्तर प्रयास जारी है। मौसम के पूर्वानुमान के लिए नये–नये उपकरणों का अविष्कार किया गया। व्यवहारिक जलवायु विज्ञान के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए अधिक प्रयास किये गए। भूमण्डलीय जलवायु परिवर्तन, आकस्मिक जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण परिवर्तनों के रोकथाम के लिए निरन्तर अन्तर्राष्ट्रीय संगठन कार्य कर रहे है तथा मानव द्वारा पर्यावरण अवनयन, स्थानीय, प्रादेशिक एवं सम्पूर्ण भूमण्डल पर होने वाले प्रदूषण एवं जलवायु परिवर्तन के द्वारा अनेक वायुमण्डलीय घटनाएं सम्भवतः बढ़ रही है। जैसे– ग्लोबल वार्मिंग, ओजोन क्षरण, हरित गृह प्रभाव, हरित गृह गैसों में वृद्धि, चक्रवात, प्रतिक्रवात वृद्धि तथा वायुमण्डल में बढ़ती सांद्रता पर अधिक चिन्ता उत्पन्न हुइ। इससे निपटने के लिए वैज्ञानिकों द्वारा निरन्तर ठोस कदम उठाये जा रहे है।

1.7 जलवायु एवं मौसम में अन्तर :–

जलवायु विज्ञान में जलवायु (climate) तथा मौसम (weather) दोनों शब्दों का उपयोग किया गया है, परन्तु दोनों का प्रयोग अलग–अलग अर्थों में किया जाता है। अतः जलवायु विज्ञान का अध्ययन करने वाले व्यक्ति को इसका वास्तविक अर्थ अवश्य ही समझ लेना चाहिए कि मौसम वायुमण्डल की अल्पकलिक या लघु दशा को कहा जाता है। हम अक्सर सुनने को पाते है कि अमुक दिन मौसम अच्छा नहीं था, अमुक समय पर मौसम खराब होने के कारण कार्य नहीं हो पाया, परन्तु वहीं पर कोई व्यक्ति यह नहीं कहता कि अमुक समय पर जलवायु खराब या अच्छी थी। जब किसी विशेष दिन, समय, सप्ताह तथा माह के वायुमण्डलीय दशाओं का किसी स्थान विशेष या क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित वर्णन किया जाय तो उसका अभिप्राय "मौसम" होता है, परन्तु इसके ठीक विपरीत "जलवायु" शब्द का अर्थ है। जिसका अभिप्राय विशेष दिन, स्थान अथवा क्षेत्र से न होकर यह मौसम के दीर्घकालिन औसत का बोध कराता है। अगर वास्तविक अर्थ ये समझा जाय तो "मौसम" वायुमण्डल की अल्पकालिक दशा का सूचक है तो वहीं "जलवायु" मौसम के दीर्घावधि का बोध करता है।

कोपेन तथा द लॉग (Koeppe and de Long) के अनुसार किसी विशेष स्थान और काल में वायुमण्डल की अवस्था को मौसम कहा जाता है।

ट्रेवार्था ने मौसम को परिभाषित करने के लिए कुछ शब्दावलियों का प्रयोग किया– "किसी स्थान का मौसम वहीं की वायुमण्डलीय दशाओं (तापमान, वायुदाब, पवन, आर्द्रता तथा वृष्टि) का अल्पावधिक योग होता है। मौसम वायुमण्डल के क्षणिक अवस्था होती है।"

क्रिच फील्ड के शब्दों में, "मौसम वायुमण्डल की दिन–प्रतिदिन की दशा को कहते है और इसका सम्बन्ध तापमान, आर्द्रता तथा वायु की गतियों में होने वाले अल्प कालिक परिवर्तनों से होता है।" इससे यह पता चलता है कि मौसम की प्रायः उन परिस्थितियों में होता है। जिसमें तापमान, वायुदाब, पवन, आर्द्रता तथा वर्षा की विषमताओं का प्रतिफल है।

मौसम का सम्पूर्ण प्रतिफल अनेक तत्वों का संयोजित रूप होता है। मौसम के तत्वों को प्रमुख रूप से प्रभावित करने का योगदान सौर विकिरण की विषमता का होता है। अगर देखा जाय तो विभिन्न तत्वों के योग से ही किसी क्षेत्र या स्थान का मौसम तथा वहाँ की जलवायु का निर्धारण होता है।

1.8 मौसम के तत्व :–

किसी निश्चित समय या काल पर किसी निश्चित स्थान या प्रदेश के वायुमण्डलीय घटनाओं का सुव्यवस्थित उल्लेख करना तथा मौसम में होने वाले दिन–प्रतिदिन घटनाओं अथवा परिवर्तनों को ठीक–ठीक समझना अति आवश्यक है। वायुमण्डलीय दशाओं को समझने के लिए उसके भौतिक गुणों को समझना अति आवश्यक है तथा उसका प्रेक्षण और मापन किया जाना चाहिए। जिन तत्वों के संयोजन से मौसम का उद्भव होता है। वे निम्न प्रकार हैः

1. वायु का तापमान (Air Temperature)
2. सौर्य विकिरण (Solar Radiation)

3. पवन (Winds)
4. वायु दाब (Air Pressure)
5. आर्द्रता एवं वर्षण (Humidity and Precipitation)
6. बादलों की मात्रा (Amount of Cloudiness)

मौसम एवं जलवायु के बीच इतना अन्तर देखने को मिलता है, तब पर भी इनके तत्वों में समानता होती है तथा इन्हीं तत्वों से मौसम और जलवायु का निर्माण होता है। भूमण्डल पर तत्वों की मात्रा, उनका वेग तथा तत्वों के वितरण में पायी जाने वाली असमानता के कारण ही स्थान–स्थान के जलवायु में विभिन्नता पायी जाती है। इसके उपरान्त देखा जाय तो मौसम प्रतिक्षण तथा प्रतिदिन परिवर्तनशील होता है।

1.9 जलवायु के कारक :–

जिन कारणों द्वारा जलवायु एवं मौसम के तत्वों में क्षेत्रीय तथा सामयिक परिवर्तन होते हैं, उन्हें दोनों के कारक या नियंत्रण कहा जाता है। किसी क्षेत्र एवं प्रदेश को प्रभावित करने वाले जलवायु कारक प्रमुख है :–

1. समुद्र तल से ऊँचाई
2. जल एवं स्थल का विस्तार
3. अक्षांश की स्थिति
4. वायुदाब पेटियाँ
5. वायु राशियों का प्रभाव
6. पर्वतीय अवरोध
7. वायुमण्डलीय विक्षोभ
8. सागरीय धाराएं

इन प्रमुख कारकों के अलावा कई गौण कारक है। जिनका वर्णन निम्न है:–

जलवायु में वर्णित अनेक तत्वों एवं कारकों में अन्तर करना कठिन है। कभी–कभी मौसम का एक तत्व जलवायु के निर्धारण का कारण बनता है। अगर उदाहरण के द्वारा इसे देखा जाय तो, मौसम के लिए पवन की दिशा एक तत्व है तथा जलवायु के निर्माण का कारक भी है। इसी प्रकार पवन की तीव्रता मौसम का प्रमुख तत्व भी है और जलवायु को नियन्त्रण करने वाला कारक है, क्योंकि समुद्र से आर्द्रताग्राही पवन जितनी तीव्र गति से चलेगी वर्षा की गहनता पर निर्भर करती है। जिस प्रकार सूर्यातप जीव–जन्तुओं एवं वनस्पतियों को प्रभावित करने के कारण मौसम के तत्व माने जाते है। उसी प्रकार वायु को तापमान का नियन्त्रणकारी, जलवायु का कारक कहा जाता है। इसके द्वारा यह स्पष्ट हो रहा है कि जलवायु के उपर्युक्त कारकों एवं तत्वों के अत्यधिक जटिल क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं का परिणाम के कारण मौसम एवं जलवायु की उत्पत्ति होती है।

1.10 साराँश :–

इस इकाई का अध्ययन करने से आपको यह समझना आसान हो जायेगा कि मौसम क्या है? और इसके कौन–कौन से तत्व होते है? इससे वायुमण्डल एवं भूमण्डल पर क्या प्रभाव पड़ता है? इसी प्रकार जलवायु के दशाओं के बारे में कारकों के बारे में तथा इसका मानव जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है। जलवायु विज्ञान के अन्तर्गत मानव के निवास स्थान पृथ्वी का अध्ययन किया गया है। धरातल पर पायी जाने वाली स्थानिक एवं प्रादेशिक विभिन्नताओं का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। जलवायु के द्वारा ही मानव समुदाय का स्वरूप तथा उसके संस्कृति पर भौगोलिक प्रभाव सर्वाधिक है। वास्तव में जलवायु प्रादेशिक विभिन्नताओं की कुंजी है। भूगोल विषय का विद्यार्थी जलवायु विज्ञान के अध्ययन में इसीलिए अधिक रूचि लेता है कि जलवायु उसके भौतिक पर्यावरण का एक अतिमहत्वपूर्ण भाग है। जिसके माध्यम से यह पता चलता है कि किस प्रकार की जलवायु में किस प्रकार से जीवन यापन किया जा सकता है।

1.11 शब्द सूची :–

आर्द्रता, स्थिरता, वायुराशि, तापान्तर, प्रतिचक्रवात आल्टो क्युमुलस, अलविडो, वायुमण्डलीय परिसंचरण, वायुमण्डलीय दाब।

1.12 परीक्षोपयोगी प्रश्न :–

1. प्रथम विश्व जलवायु सम्मेलन कब हुआ?

(क) 1972 **(ख)** 1979 **(ग)** 1980 **(घ)** 1992

2. माण्ड्रियल प्रोटोकाल कब हुआ?

(क) 1985 **(ख)** 1987 **(ग)** 1992 **(घ)** 1997

3. 'Meterological' किसकी रचना है

(क) प्लेटो **(ख)** हिपोक्रेटस **(ग)** अरस्तु **(घ)** थेल्स

4. विश्व जलवायु संगठन का मुख्यालय कहां हैं

(क) इटली **(ख)** पेरिस **(ग)** जिनेवा **(घ)** रोम

5. 'INSAT' क्या है

(क) भारतीय मौसम उपग्रह **(ख)** अमेरिकी मौसम उपग्रह

(ग) रूसी मौसम उपग्रह **(घ)** यूरोपीय मौसम उपग्रह

6. 'WMO' की स्थापना कब हुयी

(क) 1948 **(ख)** 1950 **(ग)** 1965 **(घ)** 1970

1.13 अभ्यास प्रश्न :–

(1) जलवायु विज्ञान के विकास पर प्रकाश डालिए।

(2) जलवायु विज्ञान को परिभाषित करते हुए विषय क्षेत्र का वर्णन करें।

(3) मानव जीवन पर जलवायु विज्ञान का क्या प्रभाव पड़ता है?

(4) जलवायु विज्ञान का वर्गीकरण प्रस्तुत करते हुए महत्व पर टिप्पणी लिखें।

(5) जलवायु को प्रभावित करने वाले कारको का विश्लेषण करें।

7. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. जलवायु विज्ञान की परिभाषा देते हुए, इसके विभिन्न आयामों की व्याख्या करें।

2. जलवायु विज्ञान के उद्देश्य एवं विषय क्षेत्र को स्पष्ट करें।

3. जलवायु विज्ञान के विकास पर टिप्पणी लिखिए।

5.11 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

1. डी. एस. लाल – जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज

2. प्रो. सविद्र सिंह – जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पुस्तक भवन प्रयागराज

3. डॉ. वाई. आई. सिंह – जलवायु विज्ञान, एशियन ह्यूमेनटिस प्रेस (AHP)

4. डॉ. चतुर्भुज मामोरिया – डॉ. एम. एस. सिसोदिया – जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, साहित्य भवन कानपुर

इकाई–2
वायुमंडल का संधटन एवं संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 वायुमण्डल का संगठन एवं स्तरीकरण

2.4 वायुमण्डल की उत्पत्ति

2.5 वायुमण्डल का संघटन

2.6 वायुमण्डल का स्तरीकरण

2.7 अभिनव विचारधारा

(1) सममण्डल

(2) विषम मण्डल

2.8 बोध प्रश्न

2.9 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

2.1 परिचय

वायुमंडल पृथ्वी के चारों ओर गैसों का एक मिश्रण है जो जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह कई परतों में विभाजित होता है, जिनमें प्रत्येक परत की संरचना और गुण अलग–अलग होते हैं। वायुमंडल न केवल पृथ्वी के मौसम और जलवायु को प्रभावित करता है, बल्कि यह जीवन को संरक्षण देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अध्ययन से हमें न केवल पृथ्वी के वातावरण को समझने में मदद मिलती है, बल्कि यह भी जानने में सहायता मिलती है कि कैसे विभिन्न गैसें और वायुमंडलीय प्रक्रियाएँ जीवन को बनाए रखने और पर्यावरण को संतुलित रखने में योगदान करती हैं। इस अध्याय से विद्यार्थी वायुमंडल की संरचना, इसके विभिन्न तत्वों, उनकी भूमिकाओं, और वायुमंडलीय प्रक्रियाओं के बारे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करेंगें इस अध्याय के माध्यम से विद्यार्थी वायुमंडल की संरचना और रचना के बारे में गहराई से समझ पाएंगे। वे यह जानेंगे कि वायुमंडल मुख्यतः कौन–कौन सी गैसों से बना है और इन गैसों का आपस में अनुपात क्या है। इसके अलावा, विद्यार्थी वायुमंडल की विभिन्न परतों – जैसे क्षोभमण्डल, समताप मण्डल, मध्य मण्डल, ताप मण्डल, आयनण्डल, आयतन मण्डल के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। वे यह समझेंगे कि प्रत्येक परत की अपनी विशेषताएँ और भूमिकाएँ होती हैं, और यह कि कैसे ये परतें पृथ्वी के पर्यावरण और जलवायु को प्रभावित करती हैं।विद्यार्थी यह भी जानेंगे कि वायुमंडल में उपस्थित विभिन्न गैसें, जैसे ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड, और अन्य गैसें, जीवन के लिए कितनी महत्वपूर्ण हैं। वे यह समझेंगे कि कैसे ऑक्सीजन श्वसन के लिए आवश्यक है, नाइट्रोजन पौधों की वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है, और कार्बन डाइऑक्साइड प्रकाश संशलेशण के लिए जरूरी है। इसके अलावा, वे यह भी जानेंगे कि कैसे गैसें वायुमंडल की संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और हमें सूर्य की हानिकारक अल्ट्रावायलेट किरणों से बचाती हैं।

2.2 उद्देश्य

वायुमंडल का संधटन एवं संरचना अध्याय का उद्देश्य वायुमंडल की मूलभूत जानकारी और उसकी संरचनात्मक विशेषताओं को समझाना है। इस अध्याय में वायुमंडल की परतों, जैसे ट्रोपोस्फीयर, स्ट्रेटोस्फीयर, मेसोस्फीयर, थर्मोस्फीयर, और एक्सोस्फीयर का विवरण दिया जाएगा। इसके साथ ही, वायुमंडल के विभिन्न गैसों का प्रतिशत और उनकी भूमिका पर चर्चा की जाएगी। यह अध्याय इस बात पर भी प्रकाश डालेगा कि कैसे वायुमंडल पृथ्वी के जीवन और जलवायु को प्रभावित करता है, और विभिन्न प्राकृतिक एवं मानवीय गतिविधियों का वायुमंडल पर क्या प्रभाव पड़ता है। अंततः, इस अध्याय का उद्देश्य छात्रों को वायुमंडल के महत्व और उसकी संरचनात्मक जटिलताओं के प्रति जागरूक करना है।

2.3 वायुमण्डल का संगठन एवं स्तरीकरण –

पृथ्वी की सतह के ऊपर उसके चतुर्दिक कई कि०मी० की मोटाई तक फैले गैसों के विशाल आवरण को वायुमण्डल कहते हैं। फ्रिन्च एवं ट्रिवार्था नामक विद्वानों के अनुसार "पृथ्वी के चारों तरफ जो उसी ग्रह (पृथ्वी) का एक अवयीव भाग है, यह गैस का आवरण वायुमण्डल कहलाता है "सहस्त्रों कि०मी० की ऊँचाई तक फैला है।" पृथ्वी की सतह के चतुर्दिक विश्व में कोई भी स्थान या बिन्दु नहीं है जहाँ वायुमण्डल विद्यमान नहीं है। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण ही यह वायुमण्डल के साथ ही टिका हुआ है। भूमण्डल में स्थल मण्डल व जलमण्डल के साथ–साथ वायुमण्डल भी इसका महत्वपूर्ण भाग है। पृथ्वी की सतह पर विभिन्न प्रकार के जीवों व वनस्पतियों का अस्तित्व इसी वायुमण्डल के कारण ही सम्भव हो पाता है। वायुमण्डल रंगहीन, गंधहीन एवं स्वादहीन गैसीय आवरण गतिमान, लचीला, दवने योग्य, फैलने योग्य एवं पारदर्शी है। कोपेन तथा डिलांगर के अनुसार "वायुमण्डल विभिन्न गैसों का सम्मिश्रण है। यह जल तथा स्थल को चारों तरफ से घेरे हुए है तथा पृथ्वी की छोटी से छोटी दरार एवं जलमण्डल में काफी दूर तक घुलकर विद्यमान रहता है।" वायुमण्डल का प्रभाव समस्त जीवधारियों पर होने के साथ–साथ इसकी गतिशीलता के कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अन्य तत्वों व कारकों पर भी है। इसमें होने वाले परिवर्तन न मात्र एक मौसम से दूसरे मौसम तक सीमित है, वरन एक छोटी अवधि अर्थात कुछ ही घण्टों में हो जाते हैं। सम्पूर्ण वायुमण्डल का 99 प्रतिशत भाग भू पृष्ठ से लगभग 32 कि०मी० की उँचाई तक सीमित है। वायुमण्डल को ऊर्जा सूर्य तथा पृथ्वी द्वारा प्राप्त होती है।

2.4.वायुमण्डल की उत्पत्ति –

हमारा वायुमण्डल लगभग 05 अरब वर्ष पहले उडे कणों प्रमुख रूप से लोहे एवं मैग्नीशियम सिलिकेट, लोहे एवं ग्रेफाइट की अभिवृद्धि द्वारा–प्रारम्भ हुए अत्यन्त धीरे परिवर्तनों का परिणाम है। उस समय पृथ्वी इतनी छोटी थी कि यह हल्की गैसों के आद्य वायुमण्डल को अपने साथ संलग्न करके नहीं रख सकी। गुरुत्वाकर्षण विखंडन तथा रेडियोधर्मी क्षति से पृथ्वी गर्म हुई परिणामतः पृथ्वी के पदार्थों में भिन्नता आई, जिससे पृथ्वी के केन्द्र में ठोस निकेल–लौह धातु निर्मित क्रोड़, द्रव लौह सिलिकेट खोल, मैंटल एवं स्थलमण्डल की रचना हुई। इस प्रक्रिया से निसृत गैस के कारण नवीन वायुमण्डल एवं जलमण्डल की रचना हुई। उक्त प्रक्रिया से निर्मित हुआ वायुमण्डल, मुक्त आक्सीजन से वंचित था, परन्तु इसमें मीथेन, अमोनिया (10–68 प्रतिशत), कार्बन डाइआक्साइड (10–15 प्रतिशत), तथा जल वाष्प (60–70 प्रतिशत) विद्यमान था। उस वायुमण्डल में कार्बन, नाइट्रोजन, आक्सीजन तथा हाइड्रोजन के यौगिकी की उत्पत्ति वस्तुतः ऊर्जा स्रोतों जैसे बिजली का चमकना, सौर विकिरण या रेडियोधर्मी विसर्जन से हुई जिसके पश्चात तीव्र वर्षा प्रारम्भ हुई परन्तु पृथ्वी के अत्यधिक गर्म रहने के कारण वह वर्षा की जल बूँदे वाष्प के रूप में परिवर्पित हो गयी। इसी वाष्पन एवं वर्षण की प्रक्रिया के कारण पृथ्वी ठंढ़ी होने लगी और जब भूपर्पटी पर्याप्त ठंढ़ी स्थिति मे पहुँच गयी तथा लम्बी अवधि तक तीव्र वर्षा होती रही तो महासागरीय द्रोणियाँ भर गयी। कार्वन डाइऑक्साइड एवं भूपर्पटी के सिलिकेट के मध्य सम्पन्न प्रतिक्रिया के कारण कार्बोनेट का निर्माण होने से वायुमण्डल से कार्बन डाइऑक्साइड धीरे–धीरे लुप्त हो गयी।

इस प्रकार की प्रक्रिया के फलस्वरूप लगभग 03 अरब वर्ष पूर्व अपने परिवेश में अणुओं पर निर्भर रहने वाले अवायवीय जैव–रासायनिक जीव के रूप में जीवन प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। लगभग 02 अरब वर्ष पूर्व कतिपय जीव जैव–रासायनिक संश्लेषण व श्वसन की अधिक प्रभावी प्रक्रियाओं में वदलने में सफल हुए परिणामतः आक्सीजन का विमोचन व मृदा में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण हुआ। मुक्त आक्सीजन को न सहन कर पाने वाले जीवों के स्थान पर धीरे–धीरे श्वसन में अधिक सक्षम जीवों का विकास होता गया तथा वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा कम होती गयी। ओजोन ने पृथ्वी पर आने वाले पैराबैगनी विकिरण के विपरीत अवरोध का कार्य किया तथा जैविक निक्षेप कोयले व तेल भण्डारों के रूप में संचित होते गये। उक्त प्रक्रियाओं से पृथ्वी का भू–रसायन परिवर्तित हुआ और अधिकांश रासायनिक तत्वों के चक्रों का अभिविन्यास हुआ और पृथ्वी के वायुमण्डल ने वर्तमान स्वरूप प्राप्त किया। ज्ञातव्य हो कि वायुमण्डल का गैसीय स्वरूप व तत्व, स्थल, जल, वायु, वनस्पति व जीवों की पारस्परिक प्रतिक्रियाओं के कारण आज भी परिवर्तनशील है।

2.5.वायुमण्डल का संघटन (COMPOSITION OF THE ATMOSPFIERE)–

हमारा वायुमण्डल अनेक प्रकार की गैसों के सम्मिश्रण से निर्मित है। इस वायुमण्डल में गैसों के अतिरिक्त

प्रमुख घटक के रूप में भारी मात्रा में जलवाष्प एवं धूल कण भी विद्यमान है जिनकी अपनी–अपनी अलग विशेषताएं है। इनका विवरण निम्नवत है–

(अ) गैसे– सामान्यतः वायु अनेक प्रकार की गैसों का यान्त्रिक सम्मिश्रण है। समुद्रतल (GASES) पर शुद्ध एव शुष्क वायु में विशेषतः 09 प्रकार की गैसे (नाइट्रोजन, आक्सीजन, आर्गन, कार्बन डाइऑक्साइड, हाइड्रोजन, हीलियम, नियान, क्रिप्टान, जेनान आदि) मिलती है। उक्त गैसों में नाइट्रोजन (78 प्रतिशत) तथा आक्सीजन (लगभग 27 प्रतिशत) की मात्रा लगभग 99 प्रतिशत रहती है। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि लगभग 50 कि०मी० की उँचाई तक वायुमण्डल में विद्यमान गैसों का मात्रा लगभग स्थिर अनुपात में मिली हुई है। वायुमण्डल के निम्न भाग में भारी गैसे (कार्बन डाइऑक्साइड 20 कि०मी०, आक्सीजन 100 कि०मी०, नाइट्रोजन तथा हाइड्रोजन 120 कि०मी०) एवं अधिक उँचाई पर हल्की गैसों (हीलियम, नेयान, क्रिप्टान, जेनान आदि) विद्यमान रहती हैं।

धरातल से 25 कि०मी० की उँचाई तक शुष्क वायु का संघटन –

गैस का नाम	गैस का प्रतीक	आयतन का प्रतिशत
नाइट्रोजन	N_2	78.08
आक्सीजन	O_2	20.94
आर्गन	Ar	0.93
कार्बन–डाइऑक्साइड	CO_2	0.03
नियान	Ne	0.0018
हीलियम	He	0.0005
ओजोन	O_3	0.00006
हाइड्रोजन	H	0.00005
क्रित्तान	Kr	अल्प मात्रा
जेनान	Ye	अल्प मात्रा
मिथेन	Ch_4	अल्प मात्रा

वायुमण्डल में विद्यमान नाइट्रोजन का मुख्य कार्य आक्सीजन को सनुकृत करना है ताकि ज्वलन प्रक्रिया एवं आक्सीकरण होता रहे। यद्यपि नाइट्रोजन गैस का कुछ अंश जैविक (ORGANIC) मिश्रणों में पाया जाता है परन्तु यह अन्य रासायनिक तत्वों में सरलतापूर्णक नहीं मिल पाती है। जीवधारियों के लिए सर्वाधिक उपयोगी गैस आक्सीजन वायुमण्डल मे विद्यमान दूसरी महत्वपूर्ण गैस है जो अन्य रासायनिक तत्वों के साथ बड़ी आसानी से मिश्रित होकर यौगिकों का निर्माण करती है। ज्वलन प्रक्रिया के लिए भी आक्सीजन की उपस्थिति आवश्यक है। कार्बन–डाइऑक्सइड वायुमण्डल की अन्य महत्वपूर्ण गैस जो विभिनन जीवों द्वारा श्वसन प्रक्रिया के माध्यम से बाहर छोड़ी जाती है जिसका उपयोग वनस्पतियाँ प्रकाश–संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा अपने भोजन निर्माण हेतु करती हैं। कार्बन–डाइऑक्साइड ग्रीन हाउस प्रभाव के रूप में पृथ्वी को गर्म बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। वायुमण्डल में पर्याप्त उँचाई पर अल्प मात्रा में विद्यमान ओजोन गैस आक्सीकरण प्रक्रिया के लिए महत्वपूर्ण कारक है। ओजोन गैसे, सूर्य से धरती पर आने वाली पैरा बैगनी किरणों को अवशोषित कर लेती हैं जिससे सौर विकिरण की आवश्यक एवं उपयोगी मात्रा ही धरातल तक पहुँच पाती है। वायुमण्डल में विभिन्न उँचाई पर विद्यमान अन्य गैसे वायुमण्डलीय संघटन की दृष्टिकोण से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि यह पृथ्वी, उसके संघटकों एवं वायुमण्डल के मध्य सन्तुलन बनाये रखती हैं।

(व) जलवाष्प (WATER VAPOUR) –

वायुमण्डल के पृथ्वी के निकट सर्वत्र न्यूनाधिक मात्रा में जल वाष्प की मात्रा विद्यमान रहती है। आर्द्रता, तापमान और उँचाई के अनुसार इसकी मात्रा में परिवर्तन होता रहता है। उदाहणार्थ ध्रुवीय क्षेत्रों के शुष्क वायुमण्डल

में जल वाष्प की मात्रा बहुत कम होती है जबकि अपनवर्ती प्रदेशों के उष्णार्द्र वायुमण्डल में जलवाष्प की मात्रा बहुत अधिक होती है। उँचाई बढ़ने के साथ–साथ जलवाष्प की मात्रा कम होती जाती है। वायुमण्डल में जल वाष्प की कुल मात्रा का 90 प्रतिशत भाग भूतल से 8 कि०मी० की उँचाई तक पाया जाता है। शेष जलवाष्प 8 कि०मी० उँचाई के ऊपर व वायुमण्डल के अन्य भागों में मिलती है। सौर्यिक विकिरण तथा पार्थिव विकिरण को जलवाष्प अवशोषित करके धरातलीय तापमान को सन्तुलित करती है। संधनन के विविध रूपों जैसे–बादल, वर्षा, कुहरा, ओस, तुबार, पाला, हिम आदि के लिए जलवाष्प उत्तरदायी होता है। जलवाष्प का तापमान के घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। वायु की वाष्प ग्रहण करने की क्षमता तापमान में वृद्धि के साथ–साथ बढ़ती जाती है। विभिन्न तापमान पर संतृप्त वायु में जलवाष्प की मात्रा का विवरण निम्नवत हैं –

संतृप्त वायु में जलवाष्प की मात्रा

वायु का तापमान (OF)	**जलवाष्प** (ग्रेन प्रति धन फीट)
– 30	0.10
– 20	0.17
– 10	0.29
0	0.48
10	0.78
20	1.24
30	1.94
40	2.86
50	4.11
60	5.80
70	8.07
80	11.06
90	14.95
100	19.97
110	26.34

(स) धूल कण (DUST PARTICLE) –

वायुमण्डल में गैस तथा जलवाष्प के अतिरिक्त निचली परतों में तैरते हुए धूल कण दिखाई देते हैं। वस्तुतः सूक्ष्म ठोस कणीय पदार्थों को धूल कण कहा जाता है। यह धूल कण शैल विखण्डन, ज्वालामुखी उद्गार, सागरीय फुहार, नमक के कण, धुँआ सल्फर–डाइऑक्साइड, पेट्रोलियम पदार्थों के धुएँ, अपवाहित रेत आदि से प्राप्त होते हैं जिन्हें पवनें परिवहन करती रहती हैं। इनकी मात्रा उँचाई के साथ कम होती जाती है। सामान्य या 5 कि०मी० से अधिक उँचाई पर ये नहीं पाये जाते हैं। कतिपय धूल कण उल्काओं के विखण्डन से भी प्राप्त है जिसे कासमिक रज (COSMIC DUST) कहते हैं। वायुमण्डल में अधिक उँचाई पर ही यह प्राप्त होते हैं। सामान्यतः स्वच्छ दिखाई देने वाली वायु में कतिपय ऐसे धूल कण रहते हैं जो सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से भी नहीं दिखते इन्हें खिड़की या रोशनदान से आने वाली सूर्य की किरणों के साथ देखा जा सकता है। इन्हीं धूल कणों के कारण वर्षा, बादल, धुन्ध, कोहरा, ओस तथा अन्य प्रकार के धनीकरण आरूपों का निर्माण होता है। सूर्यास्त, सूर्योदय की लालिमा, आकाश का नीला रंग, गोधूलि की तीव्रता आदि सूक्ष्म धूल कणों के प्रकीर्णन विधि का ही परिणाम है। यह आर्द्रता ग्राही केन्द्र के साथ ताप

संरक्षक के प्रमुख घटक भी हैं। सूर्यातप की प्राप्ति तथा पार्थिव विकिरण की क्षति दोनों में धूल कण अवरोधक की भूमिका का निर्वहन करते हैं।

2.6 वायुमण्डल का स्तरीकरण (LAYERING OF THE ATOSPHERE) –

वायुमण्डल की संरचना एवं स्तरीकरण की स्थिति को जानने का प्रयास काफी पहले से किया जा रहा है परन्तु 20वीं शताब्दी में वायुयान तथा रेडियों युग आरम्भ होने से वायुमण्डल के विभिन्न स्तरों की जानकारी प्राप्त होने लगी। 1951–62 के मध्य वायुमण्डल के सन्दर्भ में विश्व मौसम संगठन द्वारा जो महत्वपूर्ण अध्ययन किये गये उससे अनेक नवीन तथ्यों के वारे में जानकारी प्राप्त हुई। इसी के साथ अनेक वैज्ञानिको (टीजरेन्स डिर्वोट, सर नेपियरशा, पिकार्ड़ो, केनेली, हैवीसाइट, फेरल आदि) के अन्तरिक्ष सम्बन्धी अध्ययनों ने वायुमण्डल की अनेक जानकारियाँ प्रदान की। वर्तमान समय तक वायुमण्डल से सम्बन्धित हुए अध्ययनों से प्राप्त जानकारी के आधार पर वायुमण्डल के स्तरीकरण के लिए प्रचलित विचारधाराओं को सामान्यतः दो वर्गों में रखा जा सकता है– (अ) सामान्य विचारधारा, तथा (व) अभिनव विचारधारा।

(अ) सामान्य विचारधारा –

इस विचारधारा के आधार पर वायुदाव, ताप व घनत्व के अनुसार वायुमण्डल को निम्न स्तरों में विभाजित किया गया है –

1. क्षोभमण्डल (TROPOSPHERE)
2. समताप मण्डल (STRATOSPHERE)
3. ओजोन मण्डल (OZONOSPHERE)
4. मध्यमण्डल (MESOSPHERE)
5. तापमण्डल THERMOSPHERE

   A. आयनमण्डल (IONOSPHERE)

   B.आयतन मण्डल (EXOSPHERE)

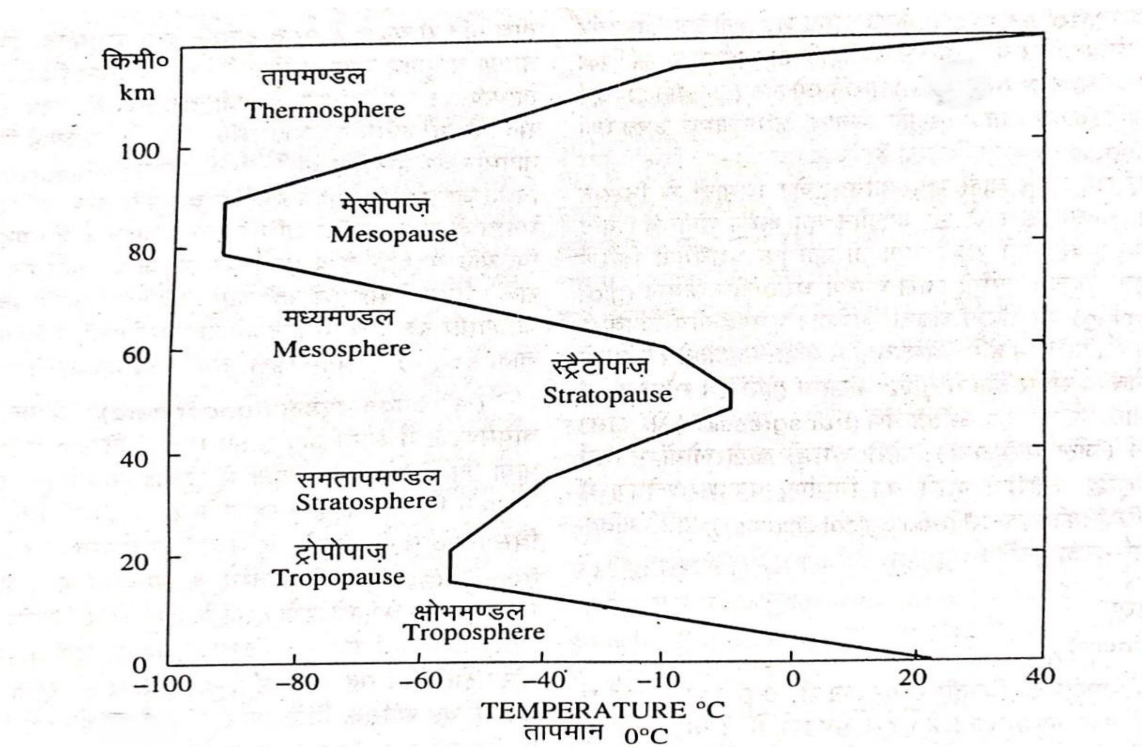

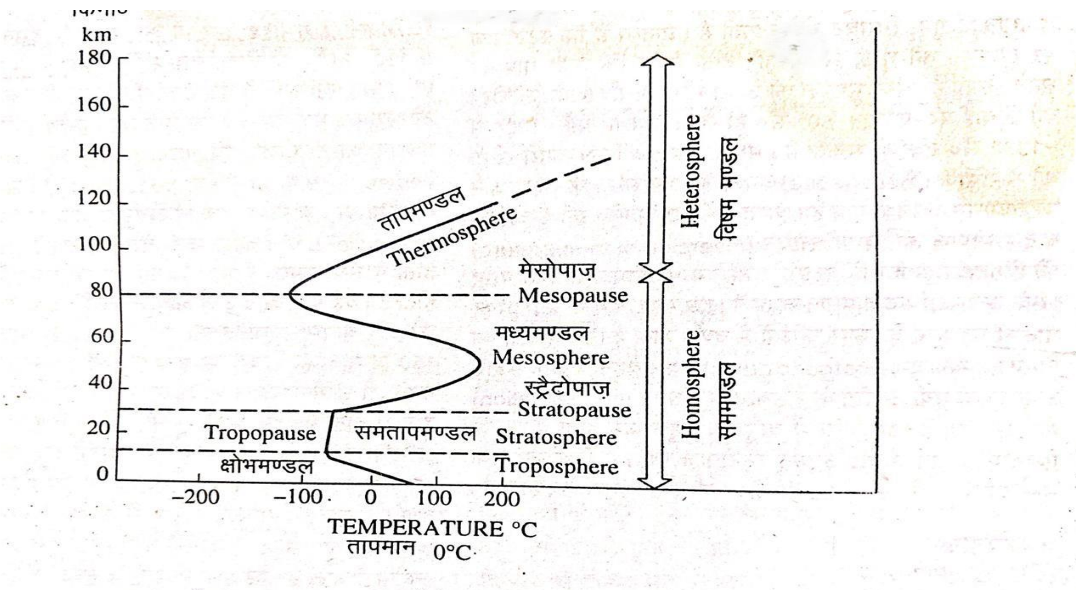

वायुमण्डल का स्तरीकरण । A : आर० जी० बेरी एवं आर० जे० शोर्ले के अनुसार; B : ए० एन० स्ट्रालर के अनुसार। निचले चित्र B में आधार रेखा पर O की बांयी ओर के अंक माइनस (−) में हैं।

उपर्युक्त विभिन्न मण्डलों के मध्य कतिपय संक्रमण पेटियां पायी जाती हैं जिन्हें सीमा स्तर (PAUSE) कहा जाता है। क्षोभ मण्डल तथा समतापमण्डल के मध्य क्षोभ सीमा स्तर, ओजोन मण्डल तथा मध्यमण्डल के मध्य स्ट्रैटोपाज सीमा स्तर तथा मध्यमण्डल और तापमण्डल के मध्य मेसोपाज सीमा स्तर की अवस्थिति प्राप्त होती है।

(1) क्षोभ मण्डल (TROPOSPHERE) –

यह वायुमण्डल की सबसे निचली एवं सधन परत है जिसका सम्बन्ध पृथ्वी की सतह से है। इस परत में वायुमण्डल के सम्पूर्ण घनत्व का 75 प्रतिशत पाया जाता है। इस परत का ट्रोपोस्फीयर नामकरण टीजरेन्स डिवोर्ट नामक वैज्ञानिक द्वारा 1902 ई० में किया गया। ट्रोपोस्फीयर वस्तुतः ग्रीक भाषा का शब्द है जिसमें ट्रोपोज (TROPSE) का अर्थ मिश्रण या विक्षोभ एवं स्फीयर (SPHERE) का अर्थ प्रदेश या मण्डल होता है। इसी आधार पर इसे क्षोभमण्डल कहते हैं। इस परत की सामान्य उँचाई 12 कि०मी० है जो भूमध्य रेखा पर 16 से 18 कि०मी० एवं ध्रुवों पर 6 से 8 कि०मी० होती है। क्षोभमण्डल की यह उँचाई ग्रीष्मकाल में बढ़ जाती है और शीतकाल में घट जाती है। इस मण्डल की प्रमुख विशेषता यह है कि उँचाई के साथ तापमान क्रमशः कम हो जाता है जिससे इसे परिवर्तन मण्डल भी कहा जाता है। इस मण्डल में बढ़ती उँचाई के साथ तापमान में ह्रास प्रति 300 मीटर पर 1.5 से०ग्रे० मिलता है। इस प्रकार तापमान की सामान्य पतन दर (NORMAL LAPSE RATE) 6.5^0 से०ग्रे० प्रति कि०मी० रहती है। इसी मण्डल में विकिरण, संचालन एवं संवहन की प्रक्रियाएं प्रभावी रहती हैं जिनके कारण वायुमण्डल का यह भाग गरम रहता है।

वायुमण्डल की इस सर्वाधिक महत्वपूर्ण परत में मानव की अधिसंख्य गतिविधियां तथा मौसम सम्बन्धी घटनाएं (बादल, वर्षा, कुहरा, ओला, तुषार, हिमपात, आँधी, तूफान में गर्जन, विद्युत चमक आदि) घटित होती है। इसे संवहनीय मण्डल भी कहते हैं क्योंकि संवहन की धाराएं इसके वाह्य सीमा तक प्रभावी रहती हैं। यहाँ उँचाई में वृद्धि के साथ वायु वेग में भी बृद्धि हो जाती है।

क्षोभसीमा (TROPOPAUSE) –

ट्रोपोस्फीयर के ऊपर लगभग 1.5 कि०मी० की मोटाई में मिलने वाले विराम मण्डल को क्षोभसीमा या ट्रोपोपाज कहते हैं। यहाँ क्षोभमण्डल की सभी विशेषताओं का लोप हो जाता है। इस संक्रमण स्तर का ट्रोपोपाज नामकरण नैपियर शॉ द्वारा किया गया है। इसे "मौसमी परिवर्तन की छत" भी कहा जाता है। यह बादलों, धूल कणों व आर्द्रता की अन्तिम सीमा है। इस सीमा के ऊपर वायुमण्डलीय स्थिरता रहती है। ऊँचाई भूमध्य रेखा पर 18 कि०मी० व ध्रुवो पर 7 से 10 कि०मी० रहती है। इसकी उँचाई में मौसमी परिवर्तन भी होता है। निचली परत का तापमान जितना अधिक होगा क्षोभसीमा भी उतनी उँचाई पर होगी। इसकी उँचाई पर वायुमण्डलीय गतियों तथा चक्रवातीय प्रक्रियाओं का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। निम्नभार क्रमों के ऊपर यह सीमा नीचे आ जाती है और

प्रति–चक्रवातों पर उच्च भार क्रमों के ऊपर इसकी उँचाई अधिक रहती है। भूमध्य रेखा के ऊपर क्षोभ सीमा पर वायुदाव 100 मिलीवार जबकि ध्रुवों पर 250 मिलीवार रहता है। क्षोभसीमा की ताप–प्रवणता समान्तर रहती है परन्तु जेट स्ट्रीम, उष्ण कटिबन्धीय चक्रबातों व समशीतोष्ण कटिबन्धों की अधिक ताप प्रवणता के कारण क्रमबद्धता भंग हो जाती हैं। जिससे क्षोभसीमा से क्षोभमण्डल व समताप मण्डल में ताप, आर्द्रता व हवाओं का आवागमन होने लगता है।

(2) समताप मण्डल (STRATOSPHERE) –

वायुमण्डल का दूसरा उर्ध्वाकार मण्डल क्षोभसीमा के ऊपर प्रारम्भ होता है जिसे समतापमण्डल कहा जाता है। इस मण्डल की खोज 1902 ई० में टीजरेन्स डि वोर्ट द्वारा की गयी है। ग्रीक भाषा के स्ट्रैटोस्फीयर का शाब्दिक अर्थ 'स्तरण मण्डल' (REGION OF STRATIFICATION) होता है। समताप मण्डल की औसत उँचाई 30 कि०मी० है।समताप मण्डल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उँचाई के साथ भी तापमान समान रहता है परन्तु यह स्थिति निचले स्तर में ही रहती है। 120 कि०मी० के ऊपर उँचाई के साथ क्रमिक रूप में तापमान में मन्द वृद्धि होती है जिसे ऊपरी समताप मण्डल कहते हैं। निचले समताप मण्डल के कभी–कभी पक्षाम मेध का निर्माण होता है। ट्रोपोपाज के ऊपर कभी–कभी ही वायुमण्डलीय परिघटनाएं घटित होती हैं। ग्रीष्म काल में समताप मण्डल में तापमान में वृद्धि अक्षांशों के साथ ध्रुवों तक मिलती है, परन्तु शीत काल में 50^0 से 60^0 अक्षाँशों के मध्य यह मण्डल अत्याधिक गरम रहता है। 60^0 अक्षाँश से ध्रुवों तक तापमान घटता जाता है।यहॉ इस मण्डल की मोटाई पर सर्वाधिक होती है। कभी–कभी विषुवत रेखा के ऊपर इस मण्डल का लोप हो जाता है। इस मण्डल की ऊँचाई वस्तुतः ऋतुओं और अक्षाँशों के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं।

समताप सीमा (STRATOPAUSE) –

धरातल से 30कि०मी० की उँचाई पर समताप मण्डल की ऊपरी सीमा होती है। इसी के समीप ऊपर की ओर एक संक्रमण पेटी पायी जाती है जिसे स्ट्रैटोपास कहते हैं। वस्तुतः इसके ऊपर वाला स्तर इसी संक्रमण पेटी से अलग होता है। इसके ऊपर उँचाई के साथ तापमान में तीव्र गति से बृद्धि होती है।

ओजोन मण्डल (OZONOSPHERE) –

धरातल से ऊपर 30 से 60 कि०मी० के मध्य ओजोन गैस की अधिकता वाले तथा गरम स्तर को ओजोन मण्डल कहते हैं। यह गर्मी ओजोन द्वारा सूर्य की पराबैगनी किरणों तथा पैराबैगनी विकिरण के अवशोषण के कारण है। यद्यपि ओजोन के उत्पादन व विखण्डन की गति 30 कि०मी० के ऊपर तीव्र रहती है परन्तु इसका सर्वाधिक सान्द्रण 22 कि०मी० की उँचाई पर रहता है। इस मण्डल की खोज सर्वप्रथम अध्ययन का श्रेय निण्डेमान तथा डावसन द्वारा 1923 ई० में किया गया। कतिपय विद्वानों द्वारा इस मण्डल को समताप मण्डल की ऊपरी तह तथा रसायन मण्डल कहा जाता है। इस मण्डल में 50 कि०मी० तक 5^0 से०ग्रे० प्रति कि०मी० की दर से तापमान में वृद्धि होती है। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह प्रमाणित हो चुका है कि इस मण्डल का तापमान पृथ्वी के धरातल से कई गुना अधिक है। ओजोन की मात्रा विशेषतः अक्षाँश, मौसम तथा मौसम सम्बन्धी दशाओं के अनुरूप परिवर्तित होती रहती है। वायुमण्डलीय ओजोन की मात्रा निरन्तर बदलती रहती है जिसका प्रमुख कारण वायुमण्डल की अलग–अलग परतों में अवशोषण, विखण्डन तथा आक्सीजन–ओजोन गैस परिवर्तन की अलग–अलग प्रक्रिया का होना है। अनेक कारणों से वर्तमान समय में इन ओजोन परत का छय हो रहा है जो पर्यावरण के लिए घातक है।

(3) मध्य मण्डल (MESOSPHERE) –

ओजोन मण्डल के ऊपर निरन्तर तापमान में हास होता जाता है तथा 80 कि०मी० की उँचाई के आस–पास यह–80^0 से०ग्रे० हो जाता है परन्तु इसके ऊपर पुनः तापमान में वृद्धि होने लगती है। इस संक्रमण स्तर को, जो 50 से 80 कि०मी० तक प्रसरित है उसे मध्य मण्डल कहा जाता है। यद्यपि इस मण्डल को लेकर विद्वानों में मतभेद है परन्तु ताप सम्बन्धी विशेषताओं के कारण इसे विशिष्ट परत माना जा सकता है। इस मण्डल की ऊपरी सीमा पर जहाँ तापमान पुनः उँचाई के साथ बढ़ने लगता है उसे मेसोपास (MESOPAUSE) कहते हैं। इस सीमा में गर्मियों के समय प्रायः नाक्टीलुसेन्ट बादलों का दर्शन ध्रुवों के ऊपर होता है। इन बादलों का निर्माण उनका रज एवं संवहनीय प्रक्रिया द्वारा ऊपर लायी आर्द्रता के सहयोग से संघनन के कारण होता है। इस परत में वायुदाब बहुत कम होता है। स्ट्रैटोपाज पर 1 मिलीबार तथा मेजोपाज पर यह मात्र 0.01 मिलीबार ही रहता है।

(4) तापमण्डल (THERMOSPHERE) –

A. आयमण्डल IONOSPHERE

इस मण्डल का वायुमण्डल में सागरतल से 80 से 500 कि०मी० के मध्य विस्तार पाया जाता है। इस मण्डल में उँचाई के साथ कई परतों का निर्धारण किया गया है : D, E, F एवं G जिनकी अपनी–अपनी विशेषताएं हैं। (1) D परत 80 से 99 कि०मी० के मध्य विस्तृत है जो अल्प आवृत्ति वाली रेडियों तंरगों का परावर्तन करती है परन्तु मध्यम व उच्च आवृत्ति वाली रेडियों तरंगों के संकेतक को सोख लेती है। सौर्यिक विकिरण से सम्बन्धित होने के कारण सूर्यास्त के साथ ही इस परत का लोप हो जाता है। (2) E परत को केनली–हेवीसाइट के नाम से भी जाना जाता है। इसका विस्तार 99 से 130 कि०मी० की उँचाई तक है। यह परत मध्यम व उच्च आवृत्ति वाली रेडियों तरंगों को परावर्तित करने के उपरान्त पृथ्वी की ओर वापस भेज देती है। इसे E_1 व E_2 परतों में विभाजित किया गया है। इस परत का भी सूर्यास्त के साथ लोप हो जाता है। (3) F इस परत का निर्माण दो परतों (F_1 एवं F_2) से हुआ है जिन्हें संयुक्त रूप से अप्लीटन परत कहा जाता है। 130 कि०मी० से 300 कि०मी० के मध्य उँचाई में विस्तृत यह परत मध्यम एवं उच्च आवृत्ति वाली रेडियों तरंगों को पृथ्वी की ओर वापस परावर्तित कर देती है। (4) G परत की उँचाई लगभग 400 कि०मी० मानी गयी है। इस परत से परावर्तित होने वाली सभी तरंगे F_2 परत से भी परावर्तित होती है। सम्भवतः इसकी स्थिति दिन–रात दोनो समय रहती है परन्तु इसका पता लगाना अभी भी सम्भव नहीं हो पाया है।

तापमण्डल की निचली परत मुख्य रूप से नाइट्रोजन (N_2), आणविक आक्सीजन (O_2) तथा आक्सीजन परमाणुओं (O) से निर्मित है। पैराबैगनी विकिरण का इस मण्डल में अवशोषण होने के कारण उँचाई के साथ तापमान निरन्तर बढ़ता जाता है परन्तु अत्यन्त अल्पवायु मण्डलीय घनत्व के कारण वायुदाव न्यूनतम होता है। अनुमानतः इसकी ऊपरी परत का तापमान 427^0 से०ग्रे० रहता है। यहाँ कम दाब के कारण पराबैगनी फोटान्स तथा उच्च वेग कणों द्वारा वायुमण्डल पर सतत प्रहार के फलस्वरूप आयनीकरण होने लगता है फलतः विद्युत आवेश उत्पन्न होता है व स्वतन्त्र इलेक्ट्रान का सांद्रण होता है। इसी मण्डल में रंग–विरंगा प्रकाश जिसे सुमेर ज्योति या उत्तरी ध्रुवीय प्रकाश तथा कुमेर ज्योति या दक्षिणी ध्रुवीय प्रकाश कहते हैं। यह मुख्यरुप से 80 से 300 कि०मी० के मध्य उच्च अक्षाँशों में दिखाई देते हैं। ध्रुवीय क्षेत्रों में यह प्रकाश इतना चमकदार होता है कि लोग रात्रि में भी शिकार कर लेते हैं।

(B) आयतन मण्डल (EXOSPHERE) –

यह मण्डल वायुमण्डल के सबसे ऊपरी भाग को प्रदर्शित करता है। इस परत का विशेष अध्ययन लेमैन स्पिट्जर ने किया है। इसका निचला हल लगभग 500 कि०मी० की उँचाई पर स्थित हैं। इस मण्डल में आक्सीजन के न्यूट्रान, आयनीकृत आक्सीजन तथा हाइड्रोजन के अणु भारी मात्रा में प्राप्त हैं। यहाँ वायुमण्डल अत्यन्त विरल होने के कारण निहारिका जैसा दिखाई देता है। यहाँ पृथ्वी की गुरुत्वशक्ति इतनी कमजोर रहती है कि हीलियम व हाइड्रोजन के सूक्ष्मकण सरलता से शून्य में विसरित हो सकते हैं। आणविक संवेग कम होने के कारण सभी अणु किसी भी दिशा में गतिमान हो सकता है। इसकी वाह्य सीमा पर तापमान 5568^0 से०ग्रे० रहता है परन्तु यह तापमान धरातलीय वायु के तापमान से सर्वथा भिन्न होता है क्योंकि इसे महसूस नहीं किया जा सकता।

इस मण्डल में वान अलेन रेडिएशन वेल्ट की स्थिति होती है जिसमें पृथ्वी की चुम्वकीय फील्ड द्वारा पकड़े गये आवेशित कण पाये जाते हैं। इस मण्डल में न्यूट्रान कणों की बहुलता 2000 कि०मी० उँचाई तक रहती है। इसके ऊपर ऋणात्मक एवं धनात्मक विद्युत आवेश से परिपूर्ण इलेक्ट्रान तथा प्रोटान पाये जाते हैं। इस तल को चुम्वकीय मण्डल कहा जाता है। लगभग 8000 कि०मी० पर हमारा वायुमण्डल मात्र विरलित हाइड्रोजन कणों का है और सूर्य के वायुमण्डल में समाहित हो जाता है।

2.7 अभिनव विचारधारा –

वायुमण्डल के स्तरीकरण की यह विचारधारा 1950 ई० के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष गोष्ठियों के निष्कर्षों पर आधारित है। इनके आधार पर वायुमण्डल को 2 वृहद स्तरों में विभाजित किया जाता है–(1) सममण्डल तथा (2) विषम मण्डल।

(1) सममण्डल (HOMOSPHERE) –

यह वायुमण्डल का सबसे निचला भाग है। इसकी वाह्य सीमा लगभग 88 कि०मी० मानी जाती है। इस मण्डल के संघटक गैसों में नाइट्रोजन (78 प्रतिशत) आक्सीजन (20.9 प्रतिशत) कार्बनडाइऑक्साइड, आर्गन, नियान, क्रिप्टान, जेनान, हीलियम, हाइड्रोजन आदि है। इसे सममण्डल इसलिए कहा जाता है। कि इसमें सभी गैसों का रासायनिक संगठन विभिन्न उँचाइयों पर समान अनुपात में पाया जाता है। तापमान के आधार पर इसे क्षोभमण्डल, समताप मण्डल एवं मध्य मण्डल में विभाजित किया जाता है जिसका विश्लेषण पूर्व में किया गया है।

(2) विषम मण्डल (HETEROSPHERE) –

इस मण्डल का विस्तार वायुमण्डल के ऊपरी भाग में पाया जाता है जहाँ गैसों का रासायनिक संघटन समान अनुपात में नहीं मिलता है। इस मण्डल की उँचाई 88 से 100000 कि०मी० पायी जाती है। विभिन्न गैसों के आधार पर इस मण्डल की चार परतें पायी जाती हैं।

(अ) नाइटोजन परत – इसमें प्रमुख रूप से नाइट्रोजन के अणु पाये जाते हैं। इसकी उँचाई 88 से 200 कि०मी० होती है।

(व) आक्सीजन परत – इस परत में आक्सीजन के अणु पाये जाते हैं। इसकी उँचाई 200 से 1100 कि०मी० है।

(स) हीलियम परत – इस परत में हीलियम के अणु पाये जाते हैं। इसकी उँचाई 1100 से 3500 कि०मी० है।

(द) हाइड्रोजन परत – इस परत में हाइड्रोजन के अणु पाये जाते हैं। इसकी उँचाई (ऊपरी सीमा) 10000 कि०मी० पायी जाती है।

2.8 निष्कर्ष

वायुमंडल की रचना और संरचना को समझना पृथ्वी के पर्यावरणीय प्रणालियों और जीवन के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है। यह हमें जलवायु परिवर्तन, मौसम पूर्वानुमान, और पर्यावरणीय संरक्षण के लिए आवश्यक ज्ञान प्रदान करता है। वायुमंडल की विभिन्न परतों और उनमें मौजूद गैसों की भूमिकाओं को समझकर, हम पृथ्वी पर जीवन को बेहतर ढंग से संरक्षित और सुरक्षित कर सकते हैं। वायुमंडल न केवल हमें ऑक्सीजन प्रदान करता है, बल्कि हमें सूर्य की हानिकारक किरणों से भी बचाता है, और इसी कारण इसका अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है।

2.9 बहुविकल्पीय प्रश्न :–

(1) वायुमण्डल में कार्बनडाई आक्साइड की मात्रा कितने प्रतिशत है?

(क) 78% **(ख)** 21% **(ग)** 0.03% **(घ)** 0.93%

(2) वायुमण्डल में सर्वाधिक मात्रा में कौन सी गैस पायी जाती है?

(क) नाइट्रोजन **(ख)** आक्सीजन **(ग)** आर्गन **(घ)** आक्साइड

(3) वायुमण्डल के किस मण्डल सभी मौसमी घटनाएं घटित होती है?

(क) समताप मण्डल **(ख)** क्षोभमण्डल **(ग)** मध्यमण्डल **(घ)** आयन मण्डल

(4) वायुमण्डल के किस परत में ओजोन सर्वाधिक पायी जाती है।

(क) क्षोभमण्डल **(ख)** समतापमण्डल **(ग)** मध्यमण्डल **(घ)** आयन मण्डल

(5) वायुमण्डल के किस परत में उल्कापिण्ड की घटनाएं देखी जाती है।

(क) क्षोभमण्डल **(ख)** मध्यमण्डल **(ग)** समतापमण्डल **(घ)** आयनमण्डल

(6) वायुमण्डल के किस परत में पर्ल क्लाक्ड पाए जाते है।

(क) क्षोभमण्डल **(ख)** मध्यमण्डल **(ग)** समताप मण्डल **(घ)** आयन मण्डल

(7) क्षोभमण्डल की ऊचाई सबसे कम कहां पायी है।

(क) भूमध्य रेखा पर **(ख)** मकर रेखा पर **(ग)** ध्रुवों पर **(घ)** कक्र रेखा पर

(8) वायुमण्डल के किस गैस से वायुदाब महसूस होता है?

(क) नाइट्रोजन **(ख)** आक्सीजन **(ग)** जलवाष्प **(घ)** आर्गन

(9) वायुमण्डल की कौन सी गैस ज्वलनशील है?

(क) नाइट्रोजन **(ख)** आक्सीजन **(ग)** आर्गन **(घ)** कार्बनडाई आक्साइड

(10) वायुमण्डल की किस परत में ध्रुवीय प्रकाश देखा जाता है?

(क) क्षोभमण्डल **(ख)** समतापमण्डल **(ग)** आयन मण्डल **(घ)** बर्हिमण्डल

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. वायुमण्डल में ओजोन गैस की स्थिति, मात्रा व मह्तव के विषय में व्याख्या करें।
2. वायुमण्डल में आक्सीजन, नाइट्रोजन व जलवाष्प के स्थिति, मात्रा व महत्व बताइऐ।
3. वायुमण्डल की संरचना व प्रत्येक परत की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें।
4. वायुमण्डल के संघटन का वर्णन कीजिए तथा इसमें उपस्थित सभी गैसों के लक्षणों पर प्रकाश डालिए।

2.10 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

1.डी. एस. लाल – जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज

2. प्रो . सविद्र सिंह – जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स प्रयागराज

3 डॉ. वाई. आई. सिंह – जलवायु विज्ञान, एशियन ह्यूमेनटिस प्रेस (AHP)

4.डॉ. चतुर्भुज मामोरिया – डॉ. एम. एस. सिसोदिया – जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, साहित्य भवन कानपुर

इकाई 3

सूर्यातप, सूर्यातप का वितरण तथा वितरण को प्रभावित करने वाले कारक।

पाठय संरचना

3.1 परिचय
3.2 उद्देश्य
3.3 सूर्यातप एवं तापमान
3.4 सौयिक विकिरण
3.5 सूर्यातप को प्रभावित करने वाले कारक
3.6 धरातल पर सूर्यातप का वितरण
3.7 पृथ्वी एवं वायुमण्डलीय ऊष्मा वजट
3.8 अक्षाँशीय ऊष्मा सन्तुलन
3.9 सारांश
3.10 बहुविकल्पीय प्रश्न
3.11 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
3.12 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

3.1 परिचय

सौर विकिरण, जिसे सूर्यातप भी कहा जाता है, पृथ्वी पर ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। यह सौर विकिरण सूर्य से आने वाली ऊर्जा को संदर्भित करता है, जो पृथ्वी के वायुमंडल, जलवायु और मौसम प्रणालियों को प्रभावित करता है। सौर विकिरण का अध्ययन महत्वपूर्ण है क्योंकि यह हमें यह समझने में मदद करता है कि कैसे सूर्य की ऊर्जा पृथ्वी पर विभिन्न प्रक्रियाओं को संचालित करती है। इस अध्याय में, हम सौर विकिरण के विभिन्न पहलुओं, जैसे कि इसकी मापन विधियाँ, इसके वितरण के प्रणाली और इसके प्रभावों का अध्ययन करेंगे। इसके अलावा, हम यह भी जानेंगे कि सौर विकिरण कैसे पृथ्वी के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों को प्रभावित करता है और कैसे यह जलवायु परिवर्तन के अध्ययन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

3.2 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य सूर्यातप की अवधारणा, उसके वितरण और वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों की गहन जानकारी प्रदान करना है। सूर्यातप, या सौर ऊर्जा, पृथ्वी की जलवायु और मौसम के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है। इस अध्याय में सूर्यातप के विभिन्न पहलुओं को समझाया जाएगा, जैसे कि इसकी गणना, वितरण की प्रणाली और विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में इसकी विविधता।सूर्यातप के वितरण को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों की चर्चा की जाएगी, जिसमें अक्षांश, ऊँचाई, और मौसम संबंधी विशेषताएँ शामिल हैं। अक्षांश की वजह से सूर्य की किरणें विभिन्न कोणों पर पृथ्वी की सतह पर पड़ती हैं, जो विभिन्न मौसम और जलवायु परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं। ऊँचाई और मौसम की स्थिति जैसे बादल, वायुमंडलीय परिस्थितियाँ और जलवायु परिवर्तन भी सूर्यातप के वितरण को प्रभावित करते हैं।इस अध्याय का उद्देश्य शिक्षार्थी को सूर्यातप की महत्वपूर्ण भूमिका और इसके वितरण में मौजूद विविधताओं की व्याख्या कर सकेंगे तथा वे सौर ऊर्जा के प्रभावी उपयोग और जलवायु की गहरी समझ प्राप्त कर सकें।

3.3 सूर्यातप एवं तापमान (INSOLATION AND TEMPERATURE) –

वायुमण्डल सहित पृथ्वी पर समस्त ऊर्जा का प्रधान स्रोत सूर्य है। सूर्य से विकीर्ण होने वाली ऊर्जा इसके क्रोड़ में होने वाली आणविक प्रतिक्रियाओं से प्राप्त होती है जहाँ तापमान $15{,}000{,}000^0$ से०ग्रे० रहता है। समान्यतः सूर्य से विकीर्ण ऊर्जा जो पृथ्वी पर पहुँचती है, को सूर्यातप कहते हैं। (The Radiant Energy From the sure, Which Reaches the earth, is called insolation) अंग्रेजी भाषा में INSOLATION का अर्थ INCOMING SOLAR RADIATION का संक्षिप्त रूप है। जी०टी० ट्रिवार्था के अनुसार "लघु तरंगों के रूप में संचालित (ल०

1/250 से 1/6700 मिलीमीटर) तथा 186000 मील प्रति सेकेन्ड की गति से भ्रमण करती हुई प्राप्त सौर्यिक उर्जा को सूर्यातप कहते हैं।" वायर्स के अनुसार "पृथ्वी की सतह पर सौर्यिक ऊर्जा के प्रत्यक्ष प्राप्ति और विकिरण की दर सूर्यर्तातप कहते हैं।" केन्ड्रयू के अनुसार "सूर्य द्वारा अंतरिक्ष में निरन्तर विकरित की जाने वाली संश्लिष्त ऊर्जा को सूर्यातप कहते हैं।" टार एवं मार्टिन के अनुसार "ऊर्जा जो पृथ्वी पर पहँचती है उसे सूर्यातप कहते हैं। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि पृथ्वी की स्थिति सौर विकिरण क्षेत्र में है जो समस्त वायुमण्डलीय ताप का स्रोत होता है तथा सर्यातप वह विकरित ऊर्जा होती है जो सूर्य से प्राप्त होती है।

सूर्य धधकते हुए विशाल गैस के गोले के समान है। इसका व्यास पृथ्वी का सौ गुना एवं आयतन लगभग 10 लाख गुना अधिक है। सूर्य के धरातल का तापमान 5700^0 से०ग्रे० एवं केन्द्रीय भाग का तापमान लगभग 1. 5करोड़ अंश से०ग्रे० है। इसी तप्त ताप के पिण्ड के धरातल के प्रत्येक वर्ग इंच भाग से लगभग एक लाख अश्व शक्ति के समतुल्य ऊर्जा का विकिरण होता है। सूर्य की वाह्य सतह से उत्सर्जित होने वाली ऊर्जा की मात्रा सामान्यतया स्थिर रहती है, पृथ्वी की सतह पर, प्रति इकाई क्षेत्रफल पर सूर्य से प्राप्त ऊर्जा भी प्रायः स्थिर होती है जिसे सौर स्थिरांक (SOLAR CONSTANT) कहा जाता है। सौर स्थिरांक सूर्य की विकिरण दर को प्रदर्शित करता है जो प्रति वर्ग सेण्टीमीटर प्रति मिनट दो ग्राम कैलोरी के वरावर होती है। सूर्य से निकलने वाली ऊर्जा विद्युत चुम्बकीय तरंग के रूप में प्राप्त होती है जिसे विद्युत चुम्बकीय विकिरण कहा जाता है। विद्युत चुम्वकीय विकिरण तरंगों 3 लाख कि०मी० प्रति सेकेन्ड की गति से गतिमान होकर 8 मिनट 20 सेकेण्ड में धरातल की सतह तक पहुँचती हैं। सामान्यतया सूर्य से लगभग 14.9 करोड कि०मी० की दूरी पर स्थित पृथ्वी सौर्यिक ऊर्जा का मात्र 1/2 अरबवां भाग ही प्राप्त करती है जो 230 रवरब अश्व शक्ति के समतुल्य है। वास्तव में भूपृष्ठ को प्राप्त होने वाली यही ऊर्जा समस्त भौतिक एवं जैविक घटनाओं को संचालित करती है। यदि यही सूर्यातप परिवर्तित अथवा समाप्त हो जाय तो धरातल सहित सम्पूर्ण जैव मण्डल, वायुमण्डल का न मात्र परिवर्तन हो जायेगा वरन् सम्पूर्ण सृष्टि ही समाप्त हो जायेगी।

3.4 सौयिक विकिरण (SOLAR RADIATION) –

सौर्यिक विकिरण सामान्यतया सूक्ष्म तरंगों के रूप में होता है। सूर्य स्प्रेक्ट्रम की सर्वाधिक लम्बाई मध्य भाग में पायी जाती है। वीन्स के नियम (WIEN'S LAW) के अनुसार "तरंग दैर्ध्य" विकरित करने वाली वस्तु के तापमान से प्रतिलोम क्रम में परिवर्तित होती है।"

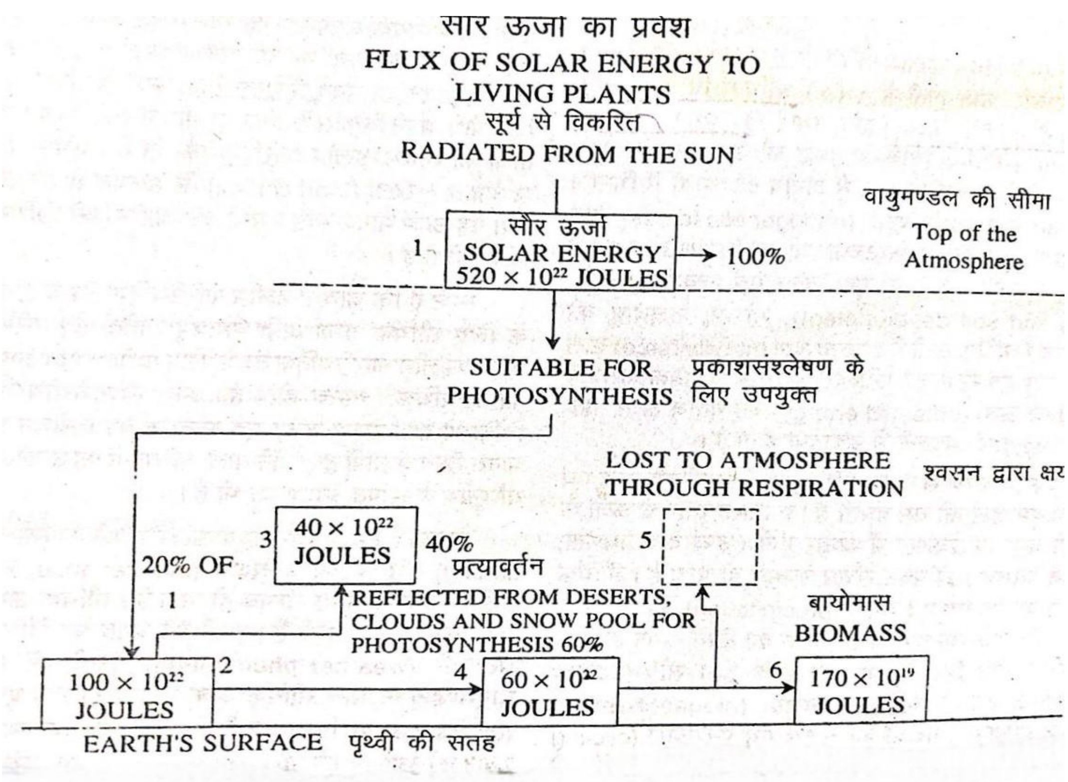

फलतः सौर विकिरण की तरंग दैर्ध्य सबसे कम होती है तथा पार्थिव विकिरण दीर्घ होता है। सौर्यिक विकिरण के इस अतिरूप का निम्न विश्लेषण किया जा सकता है –

- वस्तुतः लघु तरंगों का विकिरण पराबैगनी किरणों के रूप में होता है। इनकी लम्बाई 0.44 माइक्रोन (1 माइक्रोन=0.0001 से०मी०) से कम होती है। ये किरणें सौर्यिक शक्ति के मात्र 6 प्रतिशत भाग का निर्माण करती हैं तथा वायुमण्डल की ऊपरी परत में ओजोन एवं आक्सीजन गैसों के द्वारा अवशोषित कर ली जाती है।
- मध्यम तरंगों का विकिरण सामान्यतः सात रंगो (लाल, हरा, नीला, नारंगी, वैगनी, असमानी) में दिखायी देता है। इन तरंगों की लम्बाई 0.44 माइक्रोन तक होती है। ये कुल सौर्यिक शक्ति का 52 प्रतिशत होती है। इन तरंगों के द्वारा वायुमण्डल गर्म नहीं होता है।
- दीर्घ तरंग विकिरण अवरक्त किरणों के रूप में होता है। इन किरणों की लम्बाई 0.84 माइक्रोन से अधिक होती है। इन किरणों के द्वारा ताप उत्पन्न होता है तथा यह कुल सौर्यिक शक्ति का 42 प्रतिशत होती हैं। इन तरंगों का पृथ्वी द्वारा अवशोषण कर लिया जाता है, शेष पार्थिव विकिरण के रूप में वायुमण्डल द्वारा अवशोषित कर ली जाती है।

3.5 सूर्यातप को प्रभावित करने वाले कारक –

सूर्यातप की मात्रा प्रत्येक स्थान पर सदैव एक जैसी नहीं रहती है। सूर्यातप की मात्रा मौसमी तथा वायुमण्डलीय दशाओं के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। सौर्यिक विकिरण की मात्रा को (वृद्धि तथा ह्रास) प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं –

(अ) सूर्य की किरणों का तिरछापन –

पृथ्वी की आकृतिक विशेषता (गोलाभ) के कारण सूर्य की किरणें प्रत्येक स्थान पर सीधी नहीं पड़ती हैं। भूमध्य रेखा व उसके समीप सूर्य की किरणें लम्बवत होती हैं फलतः वहाँ प्रति इकाई क्षेत्र पर सूर्यातप की मात्रा अधिक प्राप्त होती है। किरणों के तिरछा होने के साथ–साथ सूर्यातप की मात्रा कम प्राप्त होती है। इसके दो कारण होते है। प्रथम, तिरछी किरणों को लम्बवत किरणों की तुलना में वायुमण्डल के विस्तृत क्षेत्र को पार करना पड़ता है।

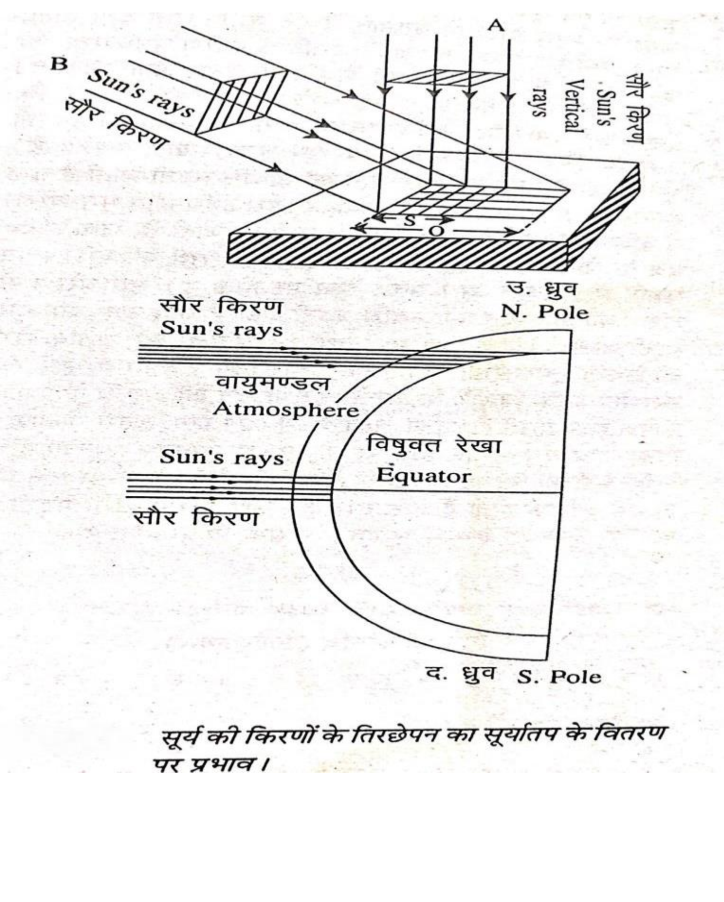

सूर्य की किरणों के तिरछेपन का सूर्यातप के वितरण पर प्रभाव।

चूँकि वायुमण्डल के विभिन्न परतों में परावर्तन, प्रकीर्णन, विसरण आदि की स्थितियाँ सौर्यिक विकिरण को क्षय करती हैं। अतः वायुमण्डल का जितना ही विस्तृत भाग होगा सूर्यातप की मात्रा का उतना ही अधिक क्षय होगा। अर्थात तिरछी किरणों द्वारा वायुमण्डल की विस्तृत परतों को पार करने के कारण सूर्यातप की मात्रा कम प्राप्त होती है। द्वितीय धरातल पर लम्ववत किरणों की तुलना में तिरछी किरणों का प्रसरण विस्तृत क्षेत्र पर होता है जिसके कारण सूर्यातप की मात्रा प्रति इकाई क्षेत्र पर कम हो जाती है।

ब. दिन की अवधि सम्बन्धी प्रभाव –

वस्तुतः सौर प्रकाश की अवधि द्वारा दिन की लम्बाई निर्धारित होती है जो किसी क्षेत्र में प्राप्त होने वाली सूर्यातप की मात्रा को प्रभावित करती है। किसी भी क्षेत्र में सौर ताप की जितनी लम्बी अवधि होगी सूर्यातप की मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी। पृथ्वी का अक्षीय झुकाव, उसकी समानान्तरता, घूर्णन एवं परिभ्रमण के संयुक्त प्रभाव के कारण मौसम परिर्वतन, विभिन्न भागों में सूर्य की ऊँचाई में अन्तर एवं विषुवत रेखा से ध्रुवों की ओर विभिन्न अक्षाँशों पर दिन–रात की अवधि में अन्तर पाया जाता है। भूमध्य रेखा पर सदैव दिन–रात बरावर होता है। जब सूर्य की किरणें लम्ववत होती हैं और सौर्यिक विकिरण भी सबसे अधिक प्राप्त होता है तब शरद विषुव व वसन्त विषुव अर्थात क्रमशः 23 सितम्बर व 21 मार्च को दिन–रात वरावर होते हैं। इसके पश्चात ग्रीष्म अयनान्त (21 जून) तक उत्तरी गोलार्द्ध में दिन बड़ा होता है और उत्तरी ध्रुव पर 6 महीने का दिन होता है। इसके ठीक विपरीत दशाएं शीत अयनान्त (22 दिसम्बर) को होती हैं उस समय 6 माह का दिन दक्षिणी ध्रुव पर होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सौर प्रकाश की अवधि जितनी लम्बी होगी रात उतनी ही छोटी। अन्य दशाएं समान रहने पर सूर्यातप की मात्रा अधिक प्राप्त होगी।

विभिन्न अक्षाँशों पर दिन की अवधि का विवरण

अक्षाँश	0^0	17^0	31^0	41^0	49^0	63^0	$66½^0$	$67½^0$	$69.8½^0$	78.8^0	90^0
दिनों की अवधि घण्टों में	12	13	14	15	16	20	24	1 माह	2 माह	4 माह	6 माह

(स) पृथ्वी से सूर्य की दूरी (DISTANCE OF EATH FROM SUN) –

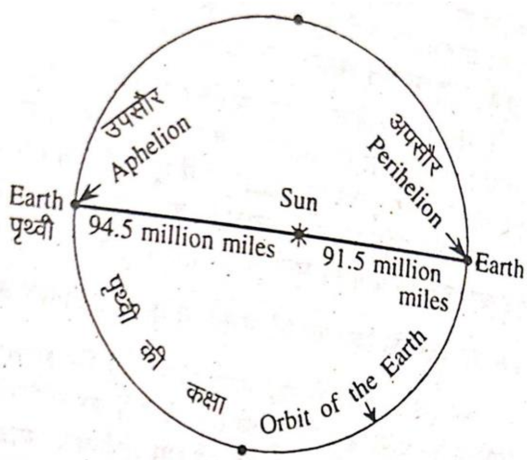

पृथ्वी अपने अण्डाकार अक्ष पर सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करती है। यह परिक्रमा पृथ्वी 360 दिन में पूर्ण करती है। इस परिक्रमा के समय पृथ्वी और सूर्य की औसत दूरी में परिवर्तन होता रहता है। पृथ्वी से सूर्य की औसत दूरी 14.9 कि०मी० (9.30 करोड़ मील) है। सूर्य से पृथ्वी की निकटतम दूरी–14.7 करोड़ कि०मी० (9.15 करोड़ मील) 03 जनवरी को होती है जिसे उपसौर (PERIHELIAN) कहा जाता है। जब पृथ्वी की सूर्य से अधिकतम दूरी–15.2 करोड़ कि०मी० (9.45 करोड़ मील) 04 जुलाई को होती है तो उस स्थिति को अपसौर (APHELIAN) कहा जाता है।

सामान्यतः सूर्य से निकटतम दूरी पर अधिक सूर्यातप एवं अधिकतम दूरी पर कम सूर्यातप प्राप्त होना चाहिए परन्तु ऐसा नहीं होता है। वास्तव में जव पृथ्वी उपसौर की स्थिति में होती है तव उत्तरी गोलार्द्ध में शीतकाल रहता है और जब जुलाई में पृथ्वी अपसौर की स्थिति में रहती है तव ग्रीष्मकाल रहता है परन्तु दिन की लघु अवधि और सूर्य की किरणों के तिरक्षेपन के कारण उक्त स्थिति बहुत प्रभावी नहीं रहती है। उक्त स्थिति (उपसौर व अपसौर) का इतना प्रभाव अवश्य रहता है कि उत्तरी गोलार्द्ध में जितनी गर्मी व ठढ़ी होनी चाहिए उसमें 7 प्रतिशत की कमी व द० गोलार्द्ध में 7 प्रतिशत की अधिकता हो जाती है।

(द) सौर कलंकों का प्रभाव (EFFECT OF SUN SPOTS) –

अनेक अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि चन्द्रमा के समान ही सूर्य के सतह पर भी धव्वे पाये जाते हैं जो समयानुसार कम या अधिक होते रहते हैं तथा यह अस्थायी भी रहते हैं। इन्हीं धब्बों (अप्रकाशित क्षेत्र) को सौर कलंक कहा जाता है। प्रत्येक सौर कलंक में विद्यमान काले केन्द्र को अम्ब्रा (UMBRA) तथा उसके चारो के हल्के लाल रंग वाले प्रदेश को प्रेनुम्ब्रा (PRENUMBRA) कहा जाता है। अनुमानतः इनका विकास चक्रीय रूप में सम्पन्न होता है तथा 11 वर्ष में पूर्ण होता है। इनकी संख्या में वृद्धि होने से सूर्यातप में भी वृद्धि होती है। कभी–कभी वैश्विक स्तर पर मौसम तथा जलवायु में पायी जाने वाली अनियमिता के लिए सौर कलंको के कारण उत्पन्न सूर्यातप की अधिक मात्रा को उत्तरदायी माना जाता है परन्तु यह तथ्य अभी भी अप्रमाणित ही है।

(य) वायुमण्डल का प्रभाव –

धरातल पर सूर्यातप के वितरण को प्रभावित करने में वायुमण्डलीय पारदर्शकता व मोटाई की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। वायुमण्डल सूर्यातप के वितरण को निम्न रूपों में प्रभावित व नियन्त्रित करता है।

(1) प्रकीर्णन (SCATTERING) –

जव सूर्य का प्रकाश वायुमण्डल से होकर गुजरता है तव सूक्ष्म धूल कणों तथा गैस के अणुओं से टकराकर सभी दिशाओं में प्रकीर्ण हो जाती है, इस दशा को प्रकीर्णन कहा जाता है। जव अवरोधक कणों का आकार सौर्यिक विकिरण की तरंग दैर्ध्य से छोटा होता है तो आदर्श प्रकीर्णन की स्थिति होती है। सौर्यिक विकिरण की अधिकांश मात्रा लघु तरंगों के रूप में होता है। जिनकी तरंग दैर्ध्य 4 माइक्रोन से कम रहती है। सौर्यिक विकिरण का दृश्यमान भाग नीले रंग की तरंग दैर्ध्य (0.4 माइक्रोन) से लाल रंग की तरंग दैर्ध्य (0.7 माइक्रोन) के मध्य रहता है। वायुमण्डलीय सूक्ष्म धूल कणों व गैस अणुओं के द्वारा प्रकाश की नीली तरंगें सर्वाधिक प्रकीर्ण होती हैं। फलतः हमें आकाश नीला दिखाई देता है। सूर्योदय व सूर्यास्त के समय जब सूर्य की किरणें वायुमण्डल से तिरछा गुजरती हैं तो बादलों व धूल कणों की उपस्थिति के प्रभाव–वस दीर्घ तरंगों का परिवर्तन लाल व नारंगी प्रकाश के रूप में प्रकीर्णित होता है आकाश का रंग लाल, गुलावी व नारंगी रूप में दिखाई देता है।

(2) विसरण (DIFFUSION) –

जव प्रवेशी सौर्यिक विकिरण की तरंग दैर्ध्य से वायुमण्डल के अवरोधक कणों का आकार बड़ा होता है तो सभी तरंगे इधर–उधर परावर्तित हो जाती हैं। इसी प्रक्रिया को प्रकाश विसरण कहा जाता है। इस प्रक्रिया में प्रवेशी सौर्यिक विकरण की ऊर्जा का कुछ भाग आकाश में वापस चला जाता है तथा कुछ भाग निचले वायुमण्डल में मौजूद रहती है। निचले वायुमण्डल में विसरित इसी ऊर्जा के कारण चन्द्रमा का अँधेरा भाग दिखाई देता है। चूँकि विसरण की प्रक्रिया के कारण विभिन्न अवयव रंग अलग नहीं हो पाते हैं इसीलिए पतले बादल व कुहरे की स्थिति में छिपे सूर्य का रंग हमें सफेद दिखायी देता है। सौर्यिक विकिरण की कुछ ऊर्जा पृथ्वी की सतह पर पहुँचकर उसे ताप तथा प्रकाश प्रदान करती है जिसे विसरित दिवा प्रकाश कहते हैं। विसरित दिवा प्रकाश के कारण ही पूर्ण बदली दिन अथवा जहाँ सूर्य की किरणें नहीं पहुँचती, वे भाग भी दृश्य हो जाते हैं।

(3) अवशोषण (ABSORPTION) –

जव किसी पदार्थ द्वारा आपतित विकिरण को अवरूद्ध कर दिया जाता है और उसका रूपान्तरण ऊर्जा के अन्य रूप में हो जाता है तो उसे अवशोषण कहते हैं। यह प्रक्रिया जलवाष्प, गैसों (आक्सीजन, नाइट्रोजन एवं ओजोन) तथा विद्यमान कतिपय धूल कणों से प्रभावित होती है। सौर्यिक विकिरण के अवशोषण में जलवाष्प के द्वारा 0.9 माइक्रोन से 2.1 माइक्रोन तरंग दैर्ध्य के सौर्यिक विकिरण का अवशोषण होता है। वायुमण्डल में विद्यमान नाइट्रोजन व आक्सीजन, लघु तरंग दैर्ध्य की पैराबैगनी किरणों (0.29 माइक्रोन से कम) का अवशोषण कर लेती हैं। इसी प्रकार ओजोन, लघु तरंगदैर्ध्य वाली किरणों (0.2 माइक्रोन से कम) का अवशोषण कर लेती है। इस कारण से सौर्यिक विकिरण के लगभग 14 प्रतिशत भाग का अवशोषण हो जाता है। धरातल पर मात्र 51 प्रतिशत सौर्यिक विकिरण प्राप्त होता है जो वायुमण्डल में पुनः दीर्ध तरंगों के रूप में विकरित कर दिया जाता है। यह तरंग दैर्ध्य 3 माइक्रोन से अधिक होती है जिनका वायुमण्डलीय गैसों, जलवाष्प, जलकणो व धूल कणों द्वारा अवशोषण कर लिया जाता है।

(4) परावर्तन (REFLECTION) –

धरातल को सौर्यिक विकिरण द्वारा प्राप्त होने वाले ताप का कुछ भाग धरातल पर पहुँचने से पूर्व ही परावर्तित हो जाता है जिसे प्रकाश का परावर्तन कहा जाता है। इस प्रकार ऊर्जा के निश्चित भाग का क्षय हो जाता है जिसका वायुमण्डल के तापन में किसी प्रकार का योगदान नहीं रहता है। पदार्थो द्वारा प्रकाश के परावर्तन को प्रतिशत में व्यक्त किया जाता है, जो आपतित विकिरण और शून्य में परावर्तित विकिरण का अनुपात होता है जिसे वस्तुतः अलवेड़ो (ALBEDO) अथवा परावर्तित गुणांक कहा जाता है। अलविड़ो की स्थिति किसी भी प्रदेश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्न–भिन्न हो सकती है। यह मेधाच्छन्नता की मात्रा, वायुमण्डलीय उपद्रव्यों, सूर्य की किरणों के तिरक्षेपन व धरातलीय प्रकृति निर्भर करती है। समस्त पृथ्वी का अलवेड़ो या ग्रहीय अलवेड़ो 35 प्रतिशत होता है। हारविट्ज व मिलर के अनुसार यह 42 प्रतिशत रहता है।

विभिन्न प्रकार के धरातलों का अलबिडो

धरातल का प्रकार	अलबिडो प्रतिशत	धरातल का प्रकार	अलबिडो प्रतिशत
हिम	80–85	वन	5–10
पुरानी हिम	50–60	क्षितिज सूर्य	50–80
रेत	20–30	पतले मेघ	70–80
घास	20–25	मोटे मेघ	25–50
शुष्क भूमि	15–25	पृथ्वी तथा वायुमण्डल	35.00
आर्द्र भूमि	10.00		

(र) स्थल एवं जल की स्थिति का प्रभाव –

धरातल पर जल व स्थल के वितरण की स्थिति का प्रभाव सूर्यातप की मात्रा पर पड़ता है। स्थल का परावर्तन गुणांक 8 से 40 प्रतिशत एवं जल का परावर्तन गुणांक 60^0 से अधिक सूर्य की उँचाई पर 3 प्रतिशत से कम तथा 15^0 से कम उँचाई पर 50 प्रतिशत व उससे अधिक हो जाता है। सौर्यिक विकिरण की किरणें धरातल में लगभग 1 मीटर व जल में लगभग 17 मीटर की गहराई तक प्रेवशित हो जाती है। फलतः स्थलीय भाग, जलीय भाग से शीघ्र गर्म एवं ठढ़ा हो जाता है। स्थल भाग पर सौर्यिक विकिरण की किरणें ताप प्रदान करती है जबकि जल पर वाष्प निर्माण की प्रक्रिया में लुप्त प्राय हो जाती है। जल भाग की विशिष्ट उष्मा स्थल की तुलना में अधिक

होती है तथा एक निश्चित इकाई के तापमान को प्राप्त करने हेतु जल को स्थल की अपेक्षा लगभग 5 गुना अधिक ताप की आवश्यकता होती है। सामान्यतया स्थल तथा जल भाग के ताप अवशोषण की क्षमता पृथक रहने के कारण स्थल की जलवायु में महाद्वीपीयता का विशेषता रहती है तथा दैनिक एवं वार्षिक तापान्तर अधिक होता है जबकि जल भाग पर समताप की स्थिति बनी रहती है।

(ल) धरातलीय रंग एवं स्वरूप –

सूर्यातप के वितरण पर धरातीय रंग व स्वरूप का प्रभाव पड़ता है। काली व गहरे रंग वाली मिट्टी के क्षेत्र में ताप अवशोषण अधिक होता है परन्तु धरातल का रंग जहाँ हल्का होता है वहाँ सौर ताप का अवशोषण न्यून एवं परावर्तन की स्थिति अधिक रहती है। धरातल स्वरूप की भिन्न में अलग–अलग उच्चावचीय स्थल रूपों पर भी सूर्यातप की मात्रा का वितरण भिन्न–भिन्न प्राप्त होता है।

3.6 धरातल पर सूर्यातप का वितरण (DISTRIBUTION OF INSOLATION ON THE EARTA SURFACE) –

सामान्यतया भूमध्य रेखा व उसके समीप सूर्यातप की मात्रा अधिक प्राप्त होती है जो ध्रुवों की ओर कम होती जाती है। भूमध्य रेखा का मात्र 40 प्रतिशत सूर्यातप ही ध्रवों पर प्राप्त होता है। भूमध्य रेखा पर वर्ष पर्यन्त सूर्य की किरणें लगभग लम्बवत पड़ती हैं तथा सभी दशाओं के समान रहने पर भूमध्य रेखा के समीप सूर्यातप की मात्रा अधिक रहती है। यहाँ दिन एवं रात की अवधि बराबर होती है। विषुव (EQUINOX) स्थिति में (21 मार्च व 23 सितम्बर) सूर्य की किरणों के भूमध्य रेखा पर लम्ववत पड़ने के कारण सबसे अधिक एवं ध्रुवों पर सबसे कम सूर्यातप की मात्रा प्राप्त होती है। सूर्य के उत्तरायण व दक्षिणायन की स्थिति में भूमध्य रेखा के दोनों तरफ अधिक सूर्यातप का मण्डल इधर–उधर खिसकता रहता है। भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर मौसम के अनुरूप सूर्यातप की मात्रा कम होती जाती है। प्रत्येक अक्षाँशो पर विभिन्न ऋतुओं में सूर्यातप के वितरण में कालिक परिवर्तन भी देखने को मिलता है। धरातल पर प्राप्त सूर्यातप की मात्रा का वितरण प्रतिरूप का अवलोकन निम्न तालिका में किया जा सकता है –

विभिन्न अक्षाँशों पर धरातल को प्राप्त सूर्यातप की मात्रा

अक्षाँश	10^0	17^0	20^0	00^0	40^0	50^0	60^0	70^0	80^0	90^0
सूर्यातप प्रतिशत में	100	99	95	88	79	68	57	47	43	42

उक्त के आधार पर सूर्यातप के वितरण को निम्नलिखित तीन मण्डलों में विभक्त किया जा सकता है –

(अ) निम्न अक्षाँशीय या अयनवर्ती मण्डल (LOWLATITUDE OR TROPICAL ZONE) –

यह मण्डल कर्क तथा मकर रेखाओं के मध्य 23.5^0 उ0 से 23.5^0 द० अक्षाँशों के मध्य विस्तृत है। इस मण्डल के प्रत्येक स्थान पर सूर्य की किरणों वर्ष में दो बार लम्ववत पड़ती है जिसका प्रमुख कारण सूर्य की उत्तरायण व दक्षिणायन की स्थिति का होना है। इन स्थितियों के प्रभाववश वर्ष में दो बार धरातल को अधिकतम व न्यूतनत सूर्यातप प्राप्त होता है। वस्तुतः इस मण्डल में मात्र वर्ष भर अधिक सूर्यातप प्राप्त होता है वरन् मौसम का परिवर्तन भी बहुत कम होता है। यहाँ निरन्तर आच्छादित आकाश, सघन वन क्षेत्र व संवहनीय वर्षा के कारण मध्य अक्षाँशीय मण्डल की तरह सूर्यातप की मात्रा नहीं प्राप्त होती है।

(व) मध्य अक्षाँशीय मण्डल (MIDDLE LATITUDINAL ZONE) –

यह मण्डल दोनों गोलार्द्धो में 23.5^0 से 66.5^0 अक्षाँशों के मध्य विस्तृत है। कर्क एवं मकर संक्रान्ति के अनुसार प्रत्येक वर्ष में एक बार इस मण्डल में अधिकतम एवं न्यूनतम तापमान की स्थिति रहती है। इस मण्डल में यद्यपि सूर्यातप की मात्रा कभी भी शून्य नहीं रहती है परन्तु सर्वाधिक मौसमी परिवर्तन इसी मण्डल में दिखाई देते हैं। निम्न मध्य अक्षाँशो वाले भागों में सूर्यातप की सर्वाधिक मात्रा प्राप्त होती है क्योंकि इस मण्डल में वायुमण्डलीय परतों को पार करके प्राप्त होने वाला सौर्यिक विकिरण अधिक प्रभावशाली रहता है। यह दशा, गर्मियों में स्वच्छ

आकाश, सूर्य की लम्बवत किरणें सौर्यिक प्रकाश की अधिक अवधि तथा मोटाई वाले वायुमण्डलीय परतों आदि के कारण रहती है।

(स) ध्रुवीय मण्डल (POLAR ZONE) –

यह मण्डल दोनों गोलार्द्धों में 66.5^0 से 90^0 अक्षाँशों के मध्य विस्तृत है। यहाँ वर्ष में एक बार अधिकतम तथा न्यूनतम सूर्यातप प्राप्त होता है परन्तु सूर्य की प्रत्यक्ष किरणों के अभाव में कुछ समय के लिए सूर्यातप की मात्रा शून्य रहती है। इस मण्डल में सूर्य की किरणों के अत्यधिक तिरछी पड़ने के कारण सबसे कम सूर्यातप प्राप्त होता है। अधिकतर भाग हिमाच्छदित रहने के कारण सूर्य के प्रकाश का प्रतिविम्बन, वायुमण्डलीय परतों का मोटा होना, वायुमण्डल में जल व हिमकणों का अधिक होना आदि कारणों से सौर्यिक विकिरण का इस मण्डल में अधिक अवशोषण होता है। इन सभी स्थितियों के संयुक्त प्रभाववश ध्रुवीय मण्डल में सूर्यातप की मात्रा (भूमध्य रेखा का मात्र 40 प्रतिशत भाग) कम प्राप्त होती है।

3.7 पृथ्वी एवं वायुमण्डलीय ऊष्मा वजट –

पृथ्वी तथा वायुमण्डल की ऊर्जा का स्रोत सौर्यिक विकिरण है। यह ऊर्जा लघु तरंगों के रूप में प्राप्त होती है, जिसे पृथ्वी अवशोषित करके ऊष्मा ऊर्जा के रूप में बदल देती है फलतः पृथ्वी की सतह गर्म हो जाती है। पृथ्वी की सतह गर्म होने के उपरान्त ऊर्जा का स्वतः दीर्घ तरंगों के रूप में विकिरण होने लगता है। सूर्य से पृथ्वी और उसके वायुमण्डल की ओर होने वाले विकिरण को प्रवेशी सार्यिक विकिरण (INCOMING SOLAR RADIATION) अथवा लघु तरंगीय विकिरण (SHORT WAVES RADIATION) कहा जाता है। पृथ्वी से शून्य एवं वायुमण्डल की ओर होने वाले विकिरण को वर्हिगामी पार्थिव विकिरण (OUTGOING TERRESTRIAL RADIATION) अथवा दीर्घ तरंगीय विकिरण (LONG WAVES RADIATION) कहा जाता है। वस्तुतः बजट ऊर्जा के आदान–प्रदान की क्रिया है। जिसके अन्तर्गत प्राप्त एवं व्यय की गयी ऊर्जा की मात्रा सदैव समान रहती है जिसे ऊष्मा सन्तुलन कहा जाता है।

ऊष्मा बजट से सम्बन्धित अब तक किये गये वैज्ञानिक अध्ययनों एवं संगणनाओं में प्रर्याप्त भिन्नता देखने को मिलती है। ऊष्मा बजट की प्रस्तुत विवेचना जी०टी० ट्रिवार्था द्वारा प्रस्तुत मण्डल पर आधारित है जिसमें पृथ्वी के वायुमण्डल की वाह्य सीमा पर प्राप्त सकल ऊर्जा को 100 प्रतिशत माना गया है। इसमें से 35 प्रतिशत भाग प्रकीर्णन व परावर्तन प्रक्रिया द्वारा शून्य में वापस चली जाता है। प्रवेशी सौर्यिक विकिरण के शेष 65 प्रतिशत में से 14 प्रतिशत का वायुमण्डल में उपस्थित जलवाष्प, धूलिकणों व स्थायी गैसों द्वारा अवशोषण कर लिया जाता है। इस प्रकार नष्ट होने वाली ऊर्जा की कुल मात्रा प्राप्त सौर्यिक विकिरण का 49 प्रतिशत होती है तथा धरातल पर पहुँचने वाली वास्तविक मात्रा 51 प्रतिशत है जिसमें 34 प्रतिशत भाग सौर्य प्रकाश से व 17 प्रतिशत भाग विकरित दिवा प्रकाश से प्राप्त होता है। वस्तुतः यही धरातल पर पहुँचने वाली वास्तविक मात्रा (51 प्रतिशत) पृथ्वी का ऊष्मा वजट है। वायुमण्डल के ऊष्मा बजट में प्राप्त होने वाला भाग सौर्यिक ऊर्जा का 48 प्रतिशत होता है जिसमें 14 प्रतिशत वायुमण्डल द्वारा प्रत्यक्ष अषशोषण से प्राप्त होता है। 34 प्रतिशत भाग पार्थिव विकिरण से प्राप्त होता है जिसमें 6 प्रतिशत प्रभावी विकिरण, 9 प्रतिशत विक्षोभ, व संवहन तथा 19 प्रतिशत संवहन की गुप्त ऊष्मा होती है।

सूर्य द्वारा प्राप्त ऊष्मा ऊर्जा का पृथ्वी दीर्घ तरंगों के मध्यम से वायुमण्डल में विकिरण करती है। इसी पर्थिव विकिरण या प्रभावी विकिरण से वायुमण्डल का निचला भाग गर्म रहता है। पृथ्वी द्वारा किसी न किसी रूप में 5 प्रतिशत ऊर्जा शून्य में वापस कर दी जाती है इसी प्रकार वायुमण्डल कुल 48 प्रतिशत ऊर्जा प्राप्त करता है जो विभिन्न रूपों में विकिरण के माध्यम से शून्य में वापस चलती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि 100 प्रतिशत ऊष्मा। 35 प्रतिशत प्रकीर्णन एवं परावर्तन, 17 प्रतिशत पार्थिव विकिरण व 48 प्रतिशत वायुमण्डलीय विकिरण शून्य में वापस चले जाने के कारण ऊष्मा सन्तुलन बना रहता है जिससे ऊष्मा चक्र गतिशील रहता है।

वास्तव में जी०टी० ट्रिवार्था द्वारा प्रस्तुत ऊष्मा बजट व सन्तुलन का उपर लिखित मॉडल एक सरलीकृत विश्लेषण है। परन्तु पृथ्वी एवं वायुमण्डल के ऊष्मा बजट व सन्तुलन के सन्दर्भ में पार्थिव विकिरण के पुर्न विकिरण या प्रतिलोभ विकिरण की प्रक्रिया का विवेचन करना अपरिहार्य है।

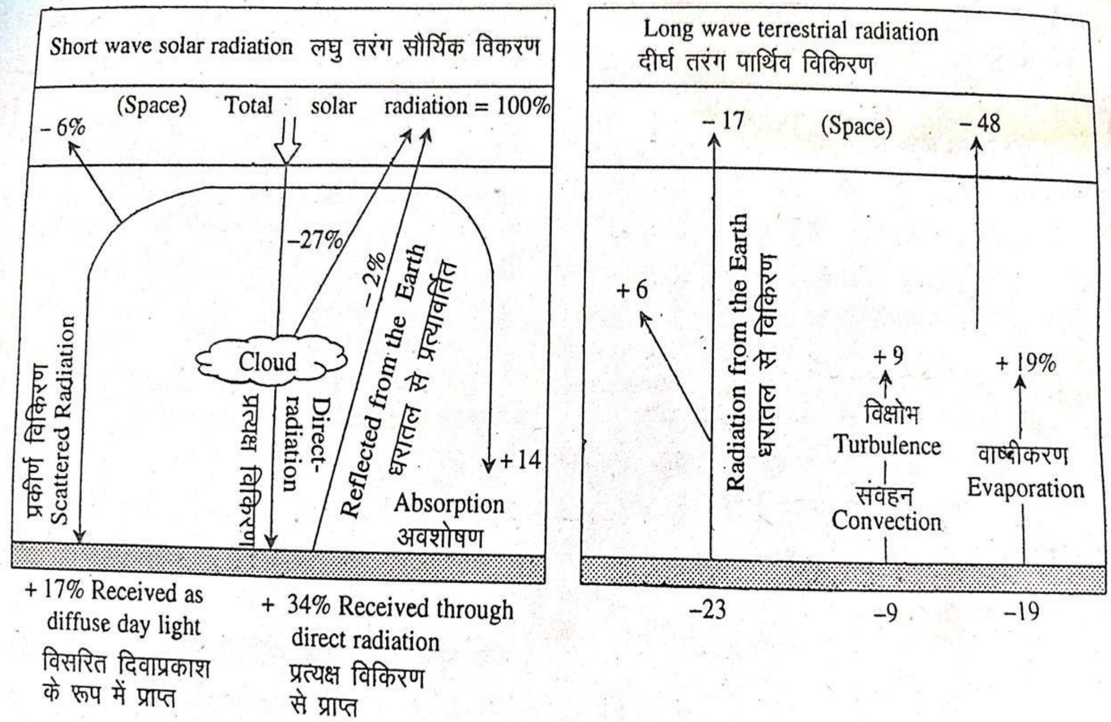

पृथ्वी एवं वायुमण्डल के विकिरण या ऊष्मा का सन्तुलन।

पृथ्वी एवं वायुमण्डल की ऊष्मा बजट तथा भूमण्डलीय विकिरण सन्तुलन (जी० टी० ट्रीवार्था के अनुसार)

1. प्रवेशी लघुतरंग सौर्यिक विकिरण (प्रतिशत में)

वायुमण्डल की ऊपरी सीमा पर पहुंचने वाली सकल ऊर्जा		100
(अ) वायुमण्डल में सौर्यिक विकिरण के क्षरण (depletion) की सकल मात्रा (a + b + c)		35
(a) बादलों से प्रत्यावर्तन	27	
(b) धरातल से प्रत्यावर्तन	2	
(c) धूलिकणों एवं जल कणों द्वारा प्रकीर्णन	6	
सौर्यिक विकिरण की शेष सुलभ मात्रा		
(ब) पृथ्वी द्वारा प्राप्त सौर्यिक ऊर्जा		65
(a + b, 34 + 17 = 51)		51
(a) प्रत्यक्ष विकिरण से प्राप्त	34	
(b) विसरित दिवा प्रकाश द्वारा प्राप्त	17	
(स) वायुमण्डल द्वारा प्राप्त सौर्यिक ऊर्जा (प्रवेशी सौर्यिक विकिरण एवं बहिर्गामी पार्थिव विकिरण से प्राप्त)		48

(a + b = 14 + 34 = 48)

(a) ओजोन, आक्सीजन, जलकण आदि द्वारा प्रवेशी सौर्यिक विकिरण के अवशोषण द्वारा 14

(b) बहिर्गामी पार्थिव विकिरण से प्राप्त 34

2. बहिर्गामी दीर्घतरंग पार्थिव विकिरण तथा पृथ्वी एवं वायुमण्डल का ऊष्मा सन्तुलन

(अ) पृथ्वी द्वारा प्राप्त सकल ऊर्जा	51	(ब) पृथ्वी द्वारा क्षय की गयी ऊर्जा (a + b + c, 23 + 9 + 19 = 51)	51
		(a) प्रत्यक्ष विकिरण क्षय द्वारा	23
		(b) संवहन एवं विक्षोभ (turbulence) द्वारा क्षय	9
		(c) वाष्पीकरण में खर्च	19

3. वायुमण्डल का ऊष्मा सन्तुलन

(अ) वायुमण्डल द्वारा कुल प्राप्त ऊर्जा	48	(ब) वायुमण्डल से कुल क्षय ऊर्जा	48
(a) प्रवेशी सौर्यिक विकिरण से प्राप्त ऊर्जा	14		
(b) पृथ्वी की सतह से प्रभावी विकिरण से प्राप्त ऊर्जा	6		
(c) संवहन एवं विक्षोभ से प्राप्त ऊर्जा	9		
(d) संघनन की गुप्त ऊष्मा से प्राप्त ऊर्जा	19		
वायुमण्डल द्वारा प्राप्त सकल ऊर्जा	48	वायुमण्डल से क्षय हुई कुल ऊर्जा	48

वायुमण्डलीय ऊष्मा/ऊर्जा सन्तुलन = प्राप्ति (48) - क्षय (48) = 0

स्रोत : जी० टी० ट्रीवार्था

3.8 अक्षाँशीय ऊष्मा सन्तुलन (LATITUDINAL HEAT BALANCE) –

सामान्यतया प्रवेशी सौर्यिक विकिरण की मात्रा व बर्हिगमी पार्थिव विकिरण की मात्रा यद्यपि लगभग समान होती है परन्तु प्रत्येक अक्षाँश पर ऊष्मा सन्तुलन की स्थिति नहीं रहती है। ऊष्णकटिबन्धों की तुलना में मध्य तथा ध्रुवीय प्रदेशों को सौर्यिक ऊर्जा की मात्रा कम प्राप्त होती है। जबकि पार्थिव विकिरण के माध्यम से ऊर्जा के वर्हिगमन प्रक्रिया पर अक्षाँशों का प्रभाव अत्यन्त रहता है। भूमध्यरेखा से 30^0–40^0 अक्षाँश के मध्य स्थित प्रदेशों में पार्थिव विकिरण से निःसृत ऊर्जा की मात्रा अधिक रहती है जबकि 40^0 अक्षाँश से ध्रुवों की ओर इस मात्रा में क्रमशः ह्रास देखने को मिलता है। इसके कारण धरातल पर तापीय असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न होती है। फिर भी उष्मा एवं ध्रुवीय क्षेत्रों तथा प्रत्येक अक्षाँश पर तापमान में न तो उत्तरोत्तर वृद्धि होती है और न ही कमी। यह अक्षाँशीय ऊष्मा का असन्तुलन अकृतिजन्य प्रयासों से दूर होता रहता है। वायुमण्डलीय परिसंचरण तथा महासागरीय जलधाराओं द्वारा असमान तापमान वाले कटिबन्धों के मध्य ऊष्मा का आदान प्रदान होता रहता है।

अक्षाँशीय औसत ताप विकिरण (कैलोरी/प्रतिवर्ग से०मी०/प्रति मिनट) बार एवं फिलित्स पर आधारित

अक्षाँश	आने वाली सौर्यिक ऊर्जा	बाहर जाने वाली ऊर्जा
0^0–10^0	0-354	0.296
10^0–20^0	0.346	0.299

28^0—30^0	0.336	0.298
30^0—40^0	0.297	0.291
40^0—50^0	0.236	0.269
50^0—60^0	0.185	0.253
60^0—70^0	0.147	0.240

चित्र — ट्रिवार्था के मतानुसार पवनों के द्वारा 75 प्रतिशत तथा महासागरीय जलधाराओं द्वारा 25 प्रतिशत ऊष्मा का स्थानान्तरण होता है। ऊष्मा के इस क्षैतिज स्थानान्तरण प्रक्रिया को ऊष्मा या ताप अभिवहन (HEAT ADVECTION) कहा जाता है।

3.9सारांश

इस अध्याय में हमने सौर विकिरण के महत्व और इसके विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया। हमने यह जाना कि सौर विकिरण पृथ्वी पर ऊर्जा का मुख्य स्रोत है और यह कैसे वायुमंडल, जलवायु और मौसम प्रणालियों को प्रभावित करता है। सूर्यातप की मापन विधियों और इसके वितरण के प्रतिरूप को समझकर, हमने यह देखा कि पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों में सौर विकिरण का प्रभाव कैसे भिन्न होता है। हमने यह भी जाना कि सौर विकिरण जलवायु परिवर्तन के अध्ययन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि यह जलवायु की विभिन्न प्रक्रियाओं को संचालित करता है। सौर विकिरण के अध्ययन से हमें यह समझने में मदद मिलती है कि कैसे सूर्य की ऊर्जा पृथ्वी पर विभिन्न मौसमी और जलवायु संबंधी घटनाओं को प्रभावित करती है। अंत में, सौर विकिरण के अध्ययन से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सूर्य की ऊर्जा का प्रबंधन और उसका प्रभाव पृथ्वी पर जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस ज्ञान के माध्यम से हम जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को बेहतर तरीके से समझ सकते हैं और उन्हें नियंत्रित करने के उपाय कर सकते हैं।

3.10 बहुविकल्पीय प्रश्न :—

(1) अधिकतम सूर्यातप कहां प्राप्त होता है?

(क) भूमध्यरेखा **ख)** उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र **(ग)** उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र **(घ)** ध्रुव

(2) वायुमण्डल मुख्यतः किस कारण से गर्म होता है?

(क) लघु सौर्य तरंग **(ख)** परावर्तित सौर्य तरंग

(ग) दीर्घ तरंग पार्थिव विकिरण **(घ)** प्रकीर्णित सौर्य विकिरण

(3) 21 जून को सूर्य कहां पर लम्बवत होता है?

(क) विषुवत रेखा पर **(ख)** मकर रेखा **(ग)** कक्र रेखा **(घ)** आक्रटिक वृत्त

(4) पृथ्वी पर सूर्यातप का परावर्तन अधिकतम किस से होता है?

(क) वन क्षेत्र **(ख)** बादल **(ग)** ताजी बर्फ **(घ)** जुता खेत

(5) सम्पूर्ण सूर्यातप की ईकाई में वायुमण्डल को कितना प्रतिशत प्राप्त होता है?

(क) 51% **(ख)** 17% **(ग)** 48% **(घ)** 14%

(6) सूर्यातप का परावर्तन ताजी बर्फ द्वारा कितना होता है?

(क) 60—70% **(ख)** 65—75% **(ग)** 80—90% **(घ)** कोई नहीं

(7) सूर्यातप निम्न में से किसमें सबसे कम परावर्तन पाया जाता है?

(क) वन क्षेत्र **(ख)** सागरीय क्षेत्र **(ग)** फसलों द्वारा **(घ)** जूता खेत

(8) पृथ्वी द्वारा परावर्तित विकिरण को क्या कहा जाता है?

(क) एल्विडो **(ख)** प्रकीर्णन **(ग)** विकिरण **(घ)** लघु तरंग

(9) किसके कारण सूर्यातप सर्वाधिक प्रभावित होता है।

(क) समुद्र से दूरी **(ख)** ऊचाई **(ग)** पवन की गति **(घ)** अक्षांश

(10) पृथ्वी पर सर्वाधिक तापान्तर कहां पाया जाता है।

(क) बर्खोयान्स्क **(ख)** जैसलमेर **(ग)** चेन्नई **(घ)** ढाका

3.11 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. सूर्यातप क्या है? इसे प्रभावित करने वाले कारको का वर्णन कीजिए।

2. वायुमण्डल किस प्रकार गर्म होता है? इस प्रक्रिया में पार्थिव विकिरण का क्या महत्व है?

3. पृथ्वी के ऊष्मा बजट की व्याख्या करें।

4. पृथ्वी की ऊष्मा के अक्षांशीय सन्तुलन की व्याख्या करें।

5. तापमान के क्षेत्रीय वितरण को कौन सा कारक प्रभावित करता है। जनवरी व जुलाई के सन्दर्भ में विश्व में तापमान वितरण का वर्णन कीजिए।

3.12 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

1. डी. एस. लाल – जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज
2. प्रो. सविद्र सिंह – जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पुस्तक भवन, प्रयागराज
3. डॉ. वाई. आई. सिंह – जलवायु विज्ञान, एशियन ह्यूमेनटिस प्रेस (AHP)
4. डॉ. चतुर्भुज मामोरिया – डॉ. एम. एस. सिसोदिया – जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, साहित्य भवन कानपुर

इकाई 4

तापमान, तापमान का वितरण, वितरण को प्रभावित करने वाले कारक,तापीय प्रतिलोमन

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 तापमान

4.4 वायुमण्डल का गर्म एवं ठंढा होना

4.5 तापमान का वितरण

4.6 तापमान के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक

4.7 तापमान का क्षैतिज वितरण

4.8 तापमान का कालिक वितरण

4.9 तापमान का प्रादेशिक वितरण

4.10 तापमान का सामान्य प्रादेशिक वितरण

4.11 तापमान का उर्ध्वाधर वितरण

4.12 तापीय प्रतिलोमन

4.13 तापीय प्रतिलोमन के प्रकार

4.14 तापीय प्रतिलोमन का महत्व

4.16 सारांश

4.17 बहुविकल्पीय प्रश्न

4.18 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

4.19 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

4.1 प्रस्तावना

तापमान वह माप है जो किसी वस्तु या वातावरण की गर्मी या ठंडक को प्रकट करता है। यह माप वैज्ञानिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह विभिन्न भौतिक और रासायनिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करता है। तापमान के वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों में सूर्य की विकिरण, स्थलाकृतिक विशेषताएँ, समुद्र का प्रभाव, वायुमंडलीय परिसंचरण और मानव गतिविधियाँ शामिल हैं। इस अध्याय में, हम तापमान के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करेंगे और यह समझेंगे कि ये कारक किस प्रकार तापमान के वितरण को प्रभावित करते हैं। इसके साथ ही, तापीय प्रतिलोमन (Thermal Inversion) की अवधारणा को भी विस्तार से जानेंगे। हम सीखेंगे कि तापीय प्रतिलोमन कैसे उत्पन्न होती है, इसके विभिन्न प्रकार क्या हैं और यह पर्यावरण तथा जलवायु पर किस प्रकार प्रभाव डालती है।

4.2 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य तापमान की अवधारणा, उसके वितरण, और वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों की गहन जानकारी प्रदान करना है। तापमान, मौसम विज्ञान का एक महत्वपूर्ण घटक है, जो पृथ्वी की जलवायु और पर्यावरणीय परिस्थितियों को निर्धारित करता है। इस अध्याय में तापमान के भौगोलिक वितरण का विश्लेषण किया जाएगा, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों और उनके मौसम की परिस्थितियाँ शामिल होंगी।तापमान वितरण को प्रभावित

करने वाले प्रमुख कारकों की चर्चा की जाएगी, जैसे अक्षांश, ऊँचाई, और समुद्री प्रभाव। अक्षांश तापमान की विविधता को समझने में मदद करता है, क्योंकि सूर्य की किरणें विभिन्न कोणों पर पृथ्वी की सतह पर पड़ती हैं। ऊँचाई के साथ तापमान में परिवर्तन और समुद्री धाराओं का प्रभाव भी तापमान वितरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।इसके अतिरिक्त, तापीय प्रतिलोमान की अवधारणा पर भी ध्यान दिया जाएगा, जो तापमान के उतार–चढ़ाव और उनके कारणों को समझने में सहायक है। इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को तापमान के वितरण, इसके प्रभावी कारकों, और तापीय प्रतिलोमन की व्याख्या की क्षमता प्रदान करना है।

4.3 तापमान

प्रायः ऊष्मा तथा तापमान, दोनों शब्दों का प्रयोग समानार्थी किया जाता है। परन्तु इन दोनों का अर्थ अलग–अलग है। ऊष्मा एक प्रकार की ऊर्जा है जबकि तापमान किसी पदार्थ में ऊष्मा की मात्रा है। अर्थात ऊष्मा किसी पदार्थ में निहित ऊर्जा की द्योतक है और तापमान उस पदार्थ की ऊष्मीय स्थिति को प्रदर्शित करता है। वर्तमान समय में तापमान मापने के लिए सेल्सियस (CELCIUS) या सेन्टीग्रेड (CENTIGRADE) मापक प्रचलित है। इनके अतिरिक्त फारेनहाइट (FAHRENHEIT T,) र्‌यूमर (REUMER) व केल्विन (DELVIN) मापक का प्रयोग भी किया जाता है। तापमान के अध्ययन व विश्लेषण हेतु कर्तिपय पारिभाषिक शब्दावलियों का विश्लेषण आवश्यक है जो निम्नांकित हैं –

(1) औसत तापमान (MEAN TEMPERATURE) –

किसी स्थान विशेष के उच्चतम व न्यूनतम तापमान के औसत मूल्य को "औसत तापमान" कहा जाता है। औसत तापमान का आगणन वार्षिक, मासिक एवं दैनिक आधार पर किया जाता है जो निम्नांकित है –

(अ) औसत वार्षिक तापमान (MEAN ANNUAL TEMPERATURE) –

जब किसी स्थान विशेष के सन्दर्भ में वर्ष के सभी महीनों के औसत तापमानों के औसत मूल्य का आगणन किया जाता है तो उसे औसत वार्षिक तापमान कहा जाता है। इसका आगणन निम्न प्रकार करते हैं –

औसत वार्षिक तापमान = प्रत्येक माह का औसत मासिक तापमान / 12

(व) औसत मासिक तापमान (MEAN MONTHLY TEMPERATURE) –

जब किसी स्थान विशेष के सन्दर्भ में प्रत्येक महीनों के सभी दिनों के औसत तापमानों के औसत मूल्य का आगणन किया जाता है तो उसे औसत मासिक तापमान कहा जाता है। इसका आगणन निम्न प्रकार करते हैं –

$$\text{औसत मासिक तापमान} = \frac{\text{प्रत्येक माह के प्रत्येक दिन का औसत दैनिक तापमान}}{\text{प्रत्येक (सम्बन्धित) महीनों के दिनों की संख्या}}$$

(स) औसत दैनिक तापमान (MEAN DAILY TEMPERATURE) –

जब किसी स्थान विशेष के किसी दिन के अर्थात प्रत्येक घण्टें के कुल 24 घण्टे के उच्चतम व न्यूनतम तापमान के औसत मूल्य को ज्ञात किया जाता है तो उसे औसत मूल्य को ज्ञात किया जाता है तो उसे औसत दैनिक तापमान कहा जाता है। इसका आगणन निम्न प्रकार करते हैं–

औसत दैनिक तापमान = दिन का उच्चतम + न्यूनतम तापमान / 2

(2) ताप परिसर अथवा तापान्तर (RANGE OF TEMPERATURE) –

किसी स्थान विशेष के सन्दर्भ में जव उच्चतम एवं न्यूनतम तापमान के अन्तर को ज्ञात किया जाता है तो उसे तापान्तर कहते हैं। यह तापान्तर वार्षिक, मासिक एवं दैनिक आधार पर आगणित किया जाता है।

(अ) वार्षिक तापान्तर (RANGE OF TEMPERATURE) –

जब किसी स्थान विशेष के सन्दर्भ में सर्वाधिक गर्म एवं ठंढ़े महीने के प्राप्त औसत तापमान के अन्तर को आगणित किया जाता है तो उसे वार्षिक तापान्तर कहा जाता है। इसका आगणन निम्न प्रकार करते हैं –

वार्षिक तापान्तर = सर्वाधिक गर्म माह का औसत तापमान–सर्वाधिक ठढ़े माह का औसत तापमान

(व) मासिक तापान्तर (MONTHLY RANGE OF TEMPERATURE) –

जब किसी स्थान विशेष के सन्दर्भ में किसी भी माह के उच्चतम एवं न्यूनतम तापमान का अन्तर आगणित किया जाता है तो उसे मासिक तापान्तर कहा जाता है। इसका आगणन निम्न प्रकार करते हैं।

मासिक तापान्तर = माह का उच्चतम तापमान – माह का न्यूनतम तापमान

(स) दैनिक तापान्तर (DAILY RANGE OF TEMPERATURE) –

जब किसी स्थान विशेष के सन्दर्भ में दिन के उच्चतम एवं न्यूनतम तापमान के अन्तर का आगणन किया जाता है तो उसे दैनिक तापान्तर कहते हैं। इसका आगणन निम्न अकार करते हैं –

दैनिक तापान्तर = दिन का उच्चतम तापमान–न्यूनतम तापमान

दैनिक तापमान (DIURNAL TEMPERATURES) –

सामान्यत औसत दैनिक तापमान औसत तापमान के विवेचन का आधार है। औसत दैनिक तापमान सामान्य तापमान की संरचना से सम्बन्धित है। इसका परिवर्तन सूर्यातप की प्राप्ति तथा पार्थिव विकिरण की क्षति के मध्य सन्तुलन की स्थिति का द्योतक है। जब सूर्यातप की प्राप्ति (सूर्योदय से लेकर 3 बजे सांयकाल तक) पार्थिव विकिरण की क्षति से अधिक होती है तब तापक्रम में वृद्धि होती रहती है परन्तु 3 बजे के पश्चात अगले सूर्योदय तक तापमान में ह्रास होता रहता है। यद्यपि अधिकतम सूर्यातप की प्राप्ति दिन के 12 बजे होती है परन्तु उच्चतम तापमान 03 से 04 बजे रहता है। उच्चतम सूर्यातप एवं तापमान में असामन्जस्य की इस स्थिति को तापमान की शिथिलता (LAG OF TEMPERATURE) कहते हैं इसका प्रमुख कारण सौर्यिक ऊर्जा का ऊष्मा के रूप में परिवर्तित होने में समय का लगना है।

मौसम तथा जलवायु के अध्ययन में दैनिक तापान्तर का विश्लेषण आवश्यक होता है। गेडेज के अनुसार ''दैनिक तापान्तर पर धरातल का स्वरूप, में मेधाच्छादन, समुद्रतल से ऊँचाई, भूमध्य रेखा से स्थानों की दूरी आदि का व्यापक प्रभाव पड़ता है। अक्षाँशों के साथ दिन–रात की अवधि, सूर्यातप एवं तापमानों की मात्रा में परिवर्तन होता रहता है। भूमध्य रेखा पर अधिक बादल,सूर्य की सीधी किरणें पड़ने के कारण तापान्तर की स्थिति न्यून रहती है। ध्रुवीय क्षेत्रों में सूर्य की किरणों के सदैव तिरछा पड़ने के कारण दैनिक तापान्तर में विशेष परिवर्तन नहीं होता। ग्रीष्म व शीत अयनान्तों में दैनिक तापान्तर में सर्वाधिक तथा शरद व विषुव की स्थिति में सबसे कम रहता है। महाद्वीपों के आन्तरिक भागों सागरतटीय क्षेत्रों की अपेक्षा दैनिक तापान्तर अधिक रहता है। सागर तल से ऊँचाई के कारण ऊँठे पठारी एवं पर्वतीय क्षेत्रों में मैदानों की अपेक्षा दैनिक तापान्तर अधिक रहता है। ताप विकिरण की अधिकता के कारण शुष्क मरूस्थलों, हिमाच्छदित क्षेत्रों में भी दैनिक तापान्तर अधिक रहता है। गर्म तथा ठंढ़ी हवाओं की स्थिति भी दैनिक तापान्तर को प्रभावित करती है।

वार्षिक तापान्तर (ANNUAL RANGE OF TEMPERATURE) –

पृथ्वी अपने कक्ष तल पर 66.50 के कोंण पर सूर्य की परिक्रमा करती है परिणामतः पृथ्वी के विभिन्न भागों में दिन तथा रात्रि की अवधि में अन्तर व ऋतु के परिवर्तन की स्थिति बनती है। ऋत्विक परिवर्तन की स्थिति के कारण ही धरातल पर वार्षिक तापान्तर पाया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें अपेक्षतया सीधी पड़ने व दिन की अवधि लम्बी होने के कारण सूर्यातप अधिक रहता है। इसी प्रकार शीतऋतु में सूर्य की किरणें अपेक्षतया तिरछी पड़ने व रात्रि की लम्बाई अधिक होने के कारण सूर्यातप कम रहता है। परन्तु ग्रीष्म अयनान्त (21 जून) के समय उत्तरी गोलार्द्ध में उच्चतम सूर्यातप की स्थिति के पश्चात भी उच्चतम तापमान नहीं होता है। इसका प्रमुख कारण दैनिक ताप पश्चता की भाँति वार्षिक ताप पश्चता का होना है जिसकी अवधि लगभग 30 से 40 दिन की होती है। यह ताप पश्चता मध्य अक्षाँशीय सागरों में जहाँ उत्तरी गोलार्द्ध में अगस्त सर्वाधिक गर्म एवं फरवरी सबसे ठंढ़ा महीना होता है, वहाँ रहती है। जबकि मध्य अक्षाँशों के महाद्वीपीय भागों में उत्तरी गोर्लाद्ध में ही जनवरी सर्वाधिक ठंढ़ा व जुलाई सबसे गर्म माह होता है।

वार्षिक तापान्तर के प्रभावित करने वाले कारकों में अक्षाँशीय स्थिति, स्थलीय विस्तार, समुद्र तल से उँचाई, धरातलीय स्वरूप, जल धाराएं, मेघाच्छादन की स्थिति, वायुराशिया की स्थिति तथा प्रवाहित पवनों की भूमिका

महत्वपूर्ण है। मौसमी परिवर्तन कम होने के कारण भूमध्य रेखा के समीप वार्षिक तापान्तर कम रहता है। शीत एवं शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में वार्षिक तापान्तर अधिक रहता है जिसका प्रमुख कारण मौसम परिवर्तन तथा दिन–रात की अवधि में अन्तर का होना है। सागरों व उसके तटवर्ती क्षेत्रों में कम जबकि महाद्वीपों के आन्तरिक भागों में वार्षिक तापान्तर अधिक होता है। उत्तरी गोलार्द्ध के क्षेत्रों में स्थलीय विस्तार अधिक होने के कारण वार्षिक तापान्तर अधिक और द0 गोलार्द्ध के क्षेत्रों में जल का विस्तार अधिक होने के कारण वार्षिक तापान्तर कम रहता है।

4.4 वायुमण्डल का गर्म एवं ठंढा होना (HEATING AND COLING OF ATMOSPHERE) –

हमारा वायुमण्डल सूर्य तथा पृथ्वी दोनो से अलग–अलग रूपों में ताप ग्रहण करता है और उसका विसर्जन करता है। वायुमण्डल का गर्म तथा ठंढ़ा होना निम्न प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है –

(अ) सौर्यिक विकिरण का प्रत्यक्ष अवशोषण (DIRECT ABSORPTION OF SOLAR RADITION) –

सूर्य द्वारा ऊर्जा का विकिरण लघु तरंगों के रूप में होता है। सौर्यिक ऊर्जा का 14 प्रतिशत भाग वायुमण्डल में अवस्थित ओजोन, कार्बन डाइआक्साइड, जलवाष्प तथा धूलिकणों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। अवशोषित की गयी सौर्यिक ऊर्जा की मात्रा (14 प्रतिशत) का लगभग आधा (7 प्रतिशत) वायुमण्डल के निचले भाग में 2 कि०मी० की ऊँचाई तक प्रसरित हो जाता है। इस अल्प मात्रा में प्रसरित सौर्यिक उर्जा का वायुमण्डलीय ताप की स्थिति पर विशेष प्रभाव नहीं होता है।

(व) परिचालन या संचालन (CONDUCTION) –

किसी भी वस्तु में तापीय ऊर्जा असमान ताप के दो पिण्ड़ों में एक अणु से दूसरे अणु की ओर स्थानान्तरित होती रहती है। इसी ऊर्जा स्थानान्तरण की भौतिक प्रक्रिया को परिचालन कहा जाता है। अधिक तापमान वाले पदार्थों से कम तापमान वाले पदार्थों की ओर संचालन की यह भौतिक प्रक्रिया तबतक सम्पन्न होती रहती है, जब तक दोनों पदार्थों का तापमान एक समान न हो जाये। वस्तुतः दिन के समय जब पृथ्वी का ठोस धरातल गर्म होने लगता है तो धरातलीय सम्पर्क की वायुमण्डलीय निचली परते संचालन प्रक्रिया से गर्म होने लगती है। चूँकि वायु ऊष्मा की सुचालक नहीं है, अतः लगभग एक मीटर की ऊँचाई तक ही वायुमण्डल गर्म होता है। वायुमण्डल के गर्म होने की यह प्रक्रिया ग्रीष्मकाल में तथा दिन की अवधि में ही प्रभावी रहती है। शीतकाल एवं रात्रि में विकिरण के कारण धरातलीय तापमान अधिक गिर जाने से धरातलीय सतह अधिक ठंढ़ी हो जाती है फलतः उसके सम्पर्क की वायु ऊष्मा का स्थानान्तरण होने लगता है और वायुमण्डल ठंढ़ा होने लगता है। यह स्थिति धरातल से लगभग 2 मीटर तक ही प्रभावी रहती है।

(स) पार्थिव विकिरण (TERRESTRIAL RADIATION) –

बिना किसी पदार्थीय माध्यम के एक वस्तु से दूसरी वस्तु में ऊष्मा स्थानान्तरण की प्रक्रिया को विकिरण कहा जाता है। पृथ्वी की सतह से वायुमण्डल की ओर होने वाले विकिरण को धरातलीय या पार्थिव विकिरण कहा जाता है। विकिरण लघु एवं दीर्घ तरंगों के रूप में होता है जो विकिरण करने वाली वस्तु एवं उसके तापमान पर निर्भर करता है। जो वस्तु अपनी ओर आने वाले समस्त विकिरण का अवशोषण करती है एवं निश्चित तापमान पर अधिकतम ऊर्जा का विकिरण करती है उसे कृष्णिका (BLACK BODY) तथा उससे होने वाले विकिरण को कृष्णिका विकिरण (BLACK BODY RADIATION) कहा जाता है। ज्ञातव्य हो कि इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि रंग काला होता है। वस्तुतः हमारा धरातल एक कृष्णिका की भाँति समस्त प्रकार की ऊष्मा तरंगों को विकिरण करता है तथा वायुमण्डल द्वारा एक निश्चित तापमान पर कतिपय तरंग दैर्ध्य का उत्सर्जन होता है। इसे वरणात्मक विकिरण (SELECTIVE RADIATION) कहा जाता है। वायुमण्डल द्वारा अवशोषण, परावर्तन व प्रकीर्णन भी वरणात्मक होता है। धरातल में वस्तुत : वरण क्षमता नहीं होती वरन् वह सूर्यातप को ग्रहण करके उतप्त कृष्णिका (HEATED BLACY BODY) का रूपधारण कर लेता है। कृष्णिका विकिरण, स्तीफेन वोल्ज मैन के नियमानुसार कार्य करता है। इसके अनुसार कृष्णिका से विकिरण का अभिवहन उसके निरपेक्ष तापमान की चतुर्थ शक्ति के प्रत्यक्ष समानुपातिक रहता है। (The Flex of radiation from aplacp body is direcffy frobotonal to the focerth power of its absolute temperature)

सौर्यिक विकिरण द्वारा प्रसरित ऊर्जा का 51 प्रतिशत भाग पृथ्वी को प्राप्त होता है। पृथ्वी को प्राप्त यह ऊर्जा ऊष्मा में परिवर्तित हो जाती है फलतः पृथ्वी की सतह गर्म होकर विकिरण आरम्भ कर देती है जो दीर्घ तरंग

के रूप में होता है यह दीर्घ तरंग विकिरण दिन रात होता है जिसे अवरक्त विकिरण कहते हैं। दिन के समय सूर्यातप की प्राप्ति के कारण अवरक्त विकिरण द्वारा ऊष्मा का क्षय अल्प मात्रा में होता है जबकि रात्रि के समय धरातल से ऊष्मा का अधिक ह्रास होता है। ज्ञातव्य है कि सौर्यिक विकिरण के लिए वायुमण्डल पारदर्शी होता है परन्तु पार्थिव विकिरण हेतु यह अवरोध स्वरूप कम्बल का कार्य करता है। दीर्घ तरंग के रूप में होने वाले पार्थिव विकिरण का लगभग 85 प्रतिशत भाग वायुमण्डल में स्थित जलवाष्प, धूलकण, कार्बन डाइआक्साइड व ओजोन गैसों के द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है जिसके कारण वायुमण्डल को अधिकाँश ऊर्जा प्राप्त होती है। वायुमण्डल में जलवाष्प की मात्रा जितनी अधिक होगी वर्हिगामी पार्थिव विकिरण का उतना ही अधिक अवशोषण होता है। शुष्क मरूस्थलीय भागों में इसी कारण वायुमण्डल में जलवाष्प की कमी रहती है फलतः रात्रि में तापमान इतना नीचे चल जाता है कि पार्थिव विकिरण द्वारा ऊष्मा शून्य में चली जाती है और रातें अधिक ठंढ़ी हो जाती हैं। जबकि शीत काल के समय लम्बी अवधि की रातों में भी जब आकाश में मेधाच्छादित रहता है तब जलवाष्प द्वारा पार्थिव विकिरण का अवशोषण होने के कारण तापमान अपेक्षतया ऊँचा वना रहता है इसे हरित गृह प्रभाव कहते हैं। वायुमण्डल में उपस्थित जलवाष्प प्रवेशी एवं वर्हिगामी, दोनों प्रकार की सौर्यिक एवं पार्थिव विकिरण का अधिक अवशोषण करती है तथा वायुमण्डल के निचले भागों में पायी जाती है, अतः ऊँचाई के साथ–साथ प्रवेशी तथा वर्हिगामी दोनों विकिरण की मात्रा में वृद्धि होती जाती है। इसीलिए ऊँचे पर्वत क्षेत्रों को विकिरण की खिड़की (RADIATION WINDOW) कहा जाता है।

(द) संवहन (CONVECTION) –

संवहन वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत पदार्थों द्रव्यमान के संचलन द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान में ऊष्मा का स्थानान्तरण होता है। वस्तुतः सौर्यिक विकिरण से ऊष्मा प्राप्त करने के पश्चात् धरातल गर्म होने लगता है फलतः उसके सम्पर्क में आने वाली वायु गर्म होकर ऊपर होने के पश्चात फैलकर हल्की हो जाती है। जबकि इसके विपरीत ऊपर स्थित वायु अपेक्षाकृत ठंढ़ी व भारी होने के कारण नीचे उतरती है। नीचे उतरने के कारण सिकुड़ कर भारी होने से धरातलीय सम्पर्क में आकर गर्म होती है और हल्की होकर ऊपर उठती है। इस स्थिति के कारण संवहन तरंगे उद्भूत होती हैं और ऊष्मा का स्थानान्तरण होते रहने से वायुमण्डल ऊँचाई तक गर्म हो जाता है। इसी प्रकार धरातल पर क्षैतिज संवहन तरंगें भी उद्भूत होती हैं। वायुमण्डल कतिपय गौण विधियों से भी गर्म होता है तथा संघनन की गुप्तऊष्मा भी वायुमण्डल को गर्म करने में अपनी भूमिका का निर्वहन करती है।

(य) एडियाबटिक विधि से वायुमण्डल का गर्म व ठंढ़ा होना –

एडियावेटिक क्रिया विधि में वायु के ऊपर उठनें तथा नीचे बैठने से वायुमण्डल गर्म एवं ठंढ़ा होता है। सामान्यतया तापमान के लम्ववत वितरण की यह यह सामान्य दशा होती है कि प्रति 1000 मीटर की ऊँचाई पर 6.5^0 से०ग्रे० की कमी हो जाती है। तापक्रम के इस सामान्य गिरावट की दर को सामान्य तापपतन दर कहा जाता है। किसी निश्चित आयतन एवं तापमान वाली वायु के ऊपर उठने के कारण वायुदाब में कमी आती है और हवा का प्रसरण होने लगता है जिससे वह ठंढ़ी होने लगती है। जबकि नीचे उतरने वाली निश्चित आयतन व तापमान वाली हवा सिकुड़ती है परन्तु इसका आयतन कम होता है और तापमान बढ़ता है। ज्ञातव्य हो कि वायु के तापमान में उसके ऊपर उठने व नीचे बैठने के कारण तथा बिना किसी अतिरिक्त ऊष्मा के आने या जाने से परिवर्तन होता है। वस्तुतः वायु तापमान में उसके फैलने या संकुचन से होने वाले परिवर्तन को ही तापमान का एडियावेटिक परिवर्तन कहते हैं।

एडियावेटिक परिवर्तन दो प्रकार से होता है–प्रथम शुष्क एडियावेटिक परिवर्तन है। ऊपर उठने वाली असम्पृक्त हवा का तापमान प्रति 1000 मीटर पर 10^0 से०ग्रे० की दर से कम होता है। इसी प्रकार जब असम्पृक्त हवा नीचे बैठती है तो उसका तापमान 10^0 से०ग्रे० प्रति 100 मीटर की दर से बढ़ता है। इसी तापमान के परिवर्तन की स्थिति को शुष्क एडियावेटिक परिवर्तन कहते हैं। द्वितीय आर्द्र॒ एडियावेटिक परिवर्तन है। वस्तुतः संघनन के पश्चात् हवा जब ऊपर उठती है तो प्रति 1000 मीटर पर 6^0 से०ग्रे० तापमान कम हो जाता है। इसका प्रमुख कारण संघनन की गुप्तऊष्मा का वायु के साथ मिलना है। परिवर्तन की इस दशा को आर्द्र एडियावेटिक परिवर्तन अथवा प्रतिवान्धित एडियावेटिक दर (RETARTED ADIABATIC RATE) कहा जाता है।

4.5 तापमान का वितरण (DISTRIBUTION OF TEMPERATURE) –

वायुमण्डल के निचले भाग एवं धरातलीय सतह पर तापमान का वितरण महत्वपूर्ण होता है। तापमान का

वितरण मौसमी दशाओं, जलवायु के प्रकारों, जलवायु प्रदेशों, वनस्पति प्रदेशों, जीव–जन्तुओं तथा मानव जीवन के अस्तित्व को प्रभावित करता है। तापमान का यह वितरण कालिक, स्थानिक क्षैतिज एवं लम्बवत वितरण आदि के रूपों में पाया जाता है। यह सभी प्रकार के ताप वितरण किसी स्थान विशेष या क्षेत्र के तापमान पर आधारित है। यह तापमान वितरण कई प्रकार के कारको द्वारा प्रभावित व नियन्त्रित होता है जिसका मूल्यांकन निम्न रूपों में किया जा सकता है –

4.6 तापमान के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक (FACTORS AFFECTING DISTRIBUTION OF TEMPERATURE) –

धरातल एवं वायुमण्डल के निचले भाग के तापमान वितरण को निम्नलिखित कारक नियन्त्रित करते हैं।

(अ) अक्षाँश (LATITUDE) –

सूर्यातप की तीव्रता एवं मात्रा वस्तुतः अक्षाँशीय विस्तार पर निर्भर करती है। सामान्यतया भूमध्य रेखा पर सूर्य की किरणें वर्ष भर लम्बवत पड़ती हैं फलतः वहाँ वायु का तापमान उच्च पाया जाता है जबकि ध्रुवों की ओर सूर्य की किरणें तिरछी होती जाती हैं जिससे वायु के तापमान में कमी होती जाती है। ज्ञात हो कि ग्रीष्मकाल में स्वच्छ आकाश व मेघाछन्नता के अभाव में कर्क तथा मकर रेखा के समीप धरातलीय सतह का अधिकतम तापन होता है अर्थात अयन रेखाओं के समीप अधिकतम तापमान अंकित किया जाता है। ग्रीष्म काल में अधिकतम तापमान 20^0 से 30 अक्षाँश पर अंकित किया जाता है जिसे तापीय भूमध्य रेखा कहते हैं। ध्रुवों व ध्रुव वृत्तों पर सूर्य की किरणों के तिरछी पड़ने के कारण तापमान कम रहता है।

(व) सागर तल से ऊँचाई (ALTITUDE) –

धरातल की सतह से ऊँचाई बढ़ने के साथ प्रति 1000 मीटर पर 6.5^0 से०ग्रे० तापमान कमी हो जाती है। इसका कारण निम्नवत है : (1) वायुमण्डलीय ऊष्मा का प्रमुख स्रोत धरातलीय सतह है फलतः वायुमण्डल का निचला भाग जो धरातलीय सतह के सीधे सम्पर्क में रहता है, अधिक ऊष्मा प्राप्त करता है। जबकि ऊपरी परत कम ऊष्मा प्राप्त करती है। वस्तुतः उँचाई के साथ धरातलीय सतह से वायुमण्डलीय परतों में ऊष्मा का गमन कम होने से ऊँचाई के साथ तापमान में भी कमी होती जाती है (2) धरातलीय सतह की वायु की परत का घनत्व अधिक होता है जो ऊँचाई के साथ कम होता है फलतः बढ़ती ऊँचाई के साथ तापमान भी कम होता जाता है। वायुमण्डल में जल वाष्प तथा धूलिकणों की मात्रा निचली परत में अधिक होती है परन्तु ऊँचाई बढ़ने के साथ कम होती जाती है फलतः (इसीलिए) धरातलीय दीर्घ तरंग द्वारा विकीर्ण ऊष्मा का अवशोषण ऊँचाई के साथ कम होता जाता है और तापमान भी कम बना रहता है।

(स) सागर से दूर (DISTANCE FROM THESEA) –

सागर के समीपवर्ती क्षेत्रों में जल की प्रकृति एवं गुणों का प्रभाव तापमान के ऊपर दिखाई देता है। सागर के समीपस्थ क्षेत्रों में समप्रभावी ताप व जलवायु दूरस्थ क्षेत्रों में तापमान की विशमकारीं देखने को मिलती है। यही वह कारण है कि सागर के समीपवर्ती क्षेत्रों में दैनिक मासिक व वार्षिक तापान्तर कम रहता है जबकि जैसे–जैसे हम सागर से दूर होते जाते हैं यह तापान्तर बढ़ता जाता है। सागर तटवर्ती क्षेत्रों में सागरीय एवं उससे दूर महाद्वीपीय जलवायु पायी जाती है।

(द) जल एवं स्थल का भिन्न स्वभाव (DIFERENT NATURE OF WATER ANO LANO) –

स्थल एवं जल के विपरीत स्वभाव के कारण तापमान के वितरण में पर्याप्त भिन्नता बनी रहती है। सूर्यातप की समान मात्रा प्राप्त होने के पश्चात भी स्थल भाग, जल भाग की तुलना में अधिक तापमान से प्रभावी रहते हैं। जल भाग की अपेक्षा स्थल भाग के शीघ्र गर्म एवं ठंढ़ा होने के कारण प्रमुख रूप से निम्नवत हैं –

- स्थल भाग में सूर्य की किरणें मात्र 1 मीटर तक ही प्रवेश कर पाती है फलतः धरातलीय पतली परत शीघ्रता से गर्म व ठंढ़ी हो जाती है या ऊष्मा का उत्सर्जन भी शीघ्र होता है। जबकि जल भाग में सूर्य की किरणें लगभग 17 मीटर तक प्रवेश कर जाती हैं और वह अधिक समय में गर्म व ठंढ़ा होता है तथा ऊष्मा का उत्सर्जन भी शीघ्र नहीं होता है।

- स्थलीय भाग स्थायी रहने के कारण ऊष्मा का एक स्थान पर संकेन्द्रण हो जाता है। अतः परिचालन के

माध्यम से ऊष्मा का स्थानान्तरण व पुर्नवितरण शनैः शनैः होता है। जबकि सागरीय जल गतिशील रहता है फलतः संवहन क्रिया द्वारा सागरीय जल से ऊष्मा का स्थानान्तरण तीव्र गति से होता है। ज्वार भाँटा, धाराओं व लहरों की गतियाँ भी ऊष्मा का स्थानान्तरण करती है जिसके कारण जल की सतह देर से गर्म होती है।

- सागरीय भागों में वाष्पीकरण की प्रक्रिया अधिक होने के कारण सूर्यातप की अधिक मात्रा का ह्रास होता है जबकि स्थल भागों में कम वाष्पीकरण होता है और सूर्यातप की मात्रा का भी ह्रास कम होता है। फलतः स्थल भाग में जल भाग की तुलना में अधिक तापमान रहता है।
- सागरीय सतह से स्थलीय भाग की तुलना में सौर्यिक विकिरण का अधिक परावर्तन होता है जिससे स्थलीय भाग को अधिक सूर्याताप प्राप्त होता है।
- सागरीय भागों में मेघाच्छादन की स्थिति अधिक रहने के कारण सौर्यिक विकिरण में बाधा उत्पन्न होती है जिससे जल के गर्म होने में अधिक समय लगता है। जबकि स्थलीय भागों पर मेघाच्छादन कम रहने के कारण न केवल अधिक सूर्यातप प्राप्त होता है वरन् तीव्र पार्थिव विकिरण होने से स्थलीय भाग कम समय में गर्म व ठंढ़ा हो जाता है।
- स्थल भाग का जल भाग की तुलना में सापेक्षिक घनत्व अधिक रहता है जिससे कम ऊष्मा के व्यय में भी स्थल भाग गर्म हो जाता है।

(य) महासागरीय धाराएं (OCEANIC CURRENTS) –

ऊष्मा का स्थानान्तरण सागरीय धाराओं के माध्यम से होता रहता है। गर्म धाराओं के पहुँचने पर वहाँ का तापमान ऊँचा हो जाता है जबकि ठंढी धाराओं के प्रभाव से सम्बन्धित क्षेत्र का तापमान कम हो जाता है। उदाहरणार्थ दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी तट पर पीरू की शीतल धारा और पूर्वी तट पर ब्राजील की गर्म धारा के प्रवाहित होने के कारण दोनों तटों के तापमान में 5.6^0 से०ग्रे० की भिन्नता देखने को मिलती है।

(य) धरातीय विशेषताएं (SURFACE CHARACTERISTICS) –

विभिन्न प्रकार एवं प्रकृति के धरातलों से अलग–अलग मात्रा में सौर्यिक विकिरण का परावर्तन एवं अवशोषण होता है। उदाहरणार्थ हिमाच्छादित धरातल से 70 से 90 प्रतिशत घास युक्त धरातल से, 14 से 37 प्रतिशत,काली मिट्टी से 8 से 14 प्रतिशत एवं कोणधारी बनों से 10 प्रतिशत तक सौर्यिक विकिरण का परावर्तन होता है। वनाच्छदित क्षेत्रों में वृक्षों द्वारा प्राप्त जल के वाष्पीकरण में अधिक ऊष्मा खर्च होती है जिससे सतह का तापमान ऊँचा नहीं हो पाता है। जबकि रेतयुक्त मिट्टी में सौर्यिक विकिरण का अधिक अवशोषण होने के कारण दिन की अवधि का तापमान अधिक हो जाता है।

(र) धरातलीय ढाल (SLOPE OF SURFACE) –

उ० गोर्लाद्ध में उत्तरोन्मुखी तल पर सूर्यातप की मात्रा कम और दक्षिणोमुखी तल पर अधिक प्राप्त होती है परिणामतः दक्षिणी ढाल का तापमान अधिक पाया जाता है अर्थात सूर्य के समक्ष वाले भाग को तापमान अधिक मिलता है। ऊँचे पर्वतीय क्षेत्र भी पवन प्रवाह में अवरोध उत्पन्न कर तापमान को नियन्त्रित व निर्धारित करते हैं।

(ल) प्रचालित पवनें (PREVALLING WINDS) –

सामान्यतया प्रचालित पवनों का स्वभाव उनके उद्गम प्रदेशों से निर्धारित होता है जहाँ से प्रवाहित होकर यह पर्याप्त परिवर्तन लाती है। वस्तुतः निम्न अक्षाँशों की ओर प्रवाहित पवने तापमान को अधिक कर देती हैं। जबकि उच्च अक्षाँशों से निम्न अक्षाँशों की ओर प्रवाहित पवनें तापमान को कम कर देती है। इसी प्रकार यह भी उल्लेखनीय है कि स्थलीय, सागरीय, पर्वतीय व घाटी समीर के स्वभाव का भी तापमान के वितरण पर स्पष्ट प्रभाव देखा जाता है। स्थायी रूप से प्रवाहित होने वाली ग्रहीय हवायें भी अपने प्रवाहित क्षेत्र में तापमान को प्रचालित करती हैं। स्थानीय स्तर पर प्रवाहित होने वाली पवनें भी तापमान को नियन्त्रित कर देती हैं। राकी पर्वत के पूर्वी ढाल पर गर्म चिनूक पवन, आल्पस के उत्तरी ढ़ाल पर उतरती फान पवन स्थानीय स्तर पर तापमान को उच्च कर देती है। इसी प्रकार गर्म मरूस्थलीय पवने (सिरोक्को, खमसिन, हरमट्टन आदि) भी जहाँ प्रवाहित होती हैं वहाँ के तापमान को ऊँचा कर देती है। मिस्ट्रल, व्लिजर्ड व वुरान आदि ठंढ़ी हवाएं अपने प्रवाहित स्थानीय क्षेत्रों में तापमान को गिरा

देती हैं।

(व) वायुमण्डल की स्वच्छता (CLEANINESS OF ATMOSPHERE) –

जिन क्षेत्रों में वायुमण्डल स्वच्छ व मेघरहित होता है वहाँ वहाँ सौर्यिक विकिरण का वायुमण्डलीय अवक्षय कम होने से तापमान अधिक रहता है। भूमध्य रेखीय प्रदेशों की तुलना में मध्य अक्षाँशीय मरू प्रदेशों में ग्रीष्म ऋतु में तापमान अधिक बना रहता हैं। इसका प्रमुख कारण भूमध्य रेखीय क्षेत्रों में मेघाच्छादन की अधिकता व मरू प्रदेशों में वायुमण्डल की स्वच्छता (मेघ रहित आकाश) है। इसी प्रकार आर्द्र क्षेत्रों में जल वाष्प की अधिकता के कारण धरातल की सतह से ऊष्माक्षय की प्रक्रिया बाधित होती है फलतः रातें अपेक्षाकृत गर्म रहती हैं। जबकि शुष्क प्रदेशों के वायुमण्डल में जलवाष्प की न्यूनता होने से ऊष्मा क्षय की प्रक्रिया निर्वाह रहती है फलतः रातें अपेक्षतया ठंढ़ी रहती हैं।

(श) पर्वतीय अवरोध (MOUNTANEOUS RESISTANCE) –

तापमान के वितरण पर पर्वतों की स्थिति का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से पड़ता है। सामान्यत यह देखा गया है कि पर्वत श्रेणियाँ वायु राशियों के प्रवेश का अवरोध वनकर तापमान को नियन्त्रित करती हैं। हिमालय पर्वत श्रेणियाँ शीतकालीन शरद हवाओं को रोक कर भारतीय उप महाद्वीप के तापमान को नीचे गिरने से बचाती है। इसी प्रकार यूरोप में आल्पस पर्वत मालाएं ध्रुवीय शीतल वायुराशियों के मार्ग में अवरोध उत्पन्न कर इटली व अन्य राज्यों के तापमान को कम कर देती है। वस्तुतः पर्वत श्रेणियाँ विभिन्न जलवायु प्रदेशों के मध्य जल विभाजन का कार्य करती हैं एवं तापमान को नियन्त्रित करती हैं।

4.7 तापमान का क्षैतिज वितरण (HORIZONTAL DISTRIBUTION OF TEMPLRA TURE) –

सामान्यतया भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर तापमान कम होता जाता है परन्तु अधिकतम तापमान भूमध्य रेखा व उसके आस–पास न होकर कर्क एवं मकर रेखाओं के समीप होता है। इसका प्रमुख कारण कर्क तथा मकर रेखाओं के समीप खुले आकाश के कारण सौर्यिक ऊष्मा का निर्विध्न रूप में धरातल तक पहुँचना है जबकि भूमध्य रेखा व उसके समीपस्थ भागों में बादलों से आकाश के आच्दादित रहने के कारण सम्पूर्ण सूर्यातय धरातल को प्राप्त नहीं हो पाता तथा ऊष्मा का अधिकाँश भाग वाष्पीकरण में खर्च हो जाता है। तापमान के क्षैतिज वितरण व प्रदर्शन का अध्ययन समताप रेखाओं के द्वारा किया जाता है।

समताप रेखाएं (ISOTHERMS) –

वस्तुतः समताप रेखाएं वह कल्पित रेखाएं होती है जो समान तापमान वाले (सागर तल पर) स्थानों को मिलाते हुए खींची जाती है। इन रेखाओं को खींचने हेतु प्रथमतः सभी स्थानों का वास्तविक तापमान ज्ञात किया जाता है, तद्उपरान्त उन्हीं स्थानों का सागर तल पर समानीत तापमान ज्ञात किया जाता है। वस्तुतः समस्त स्थानों को सागर तल के रूप में मानकर (ऊँचाई सम्बन्धी अन्तर को घटाकर) संशोधित तापमान ज्ञात किया जाता है तथा समान तापमान वाले स्थानों को मिलाकर समताप रेखाएं खीच दी जाती हैं।

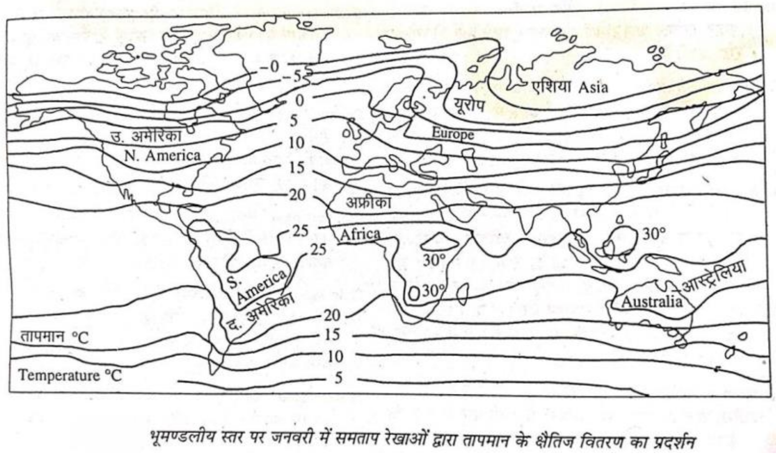

भूमण्डलीय स्तर पर जनवरी में समताप रेखाओं द्वारा तापमान के क्षैतिज वितरण का प्रदर्शन

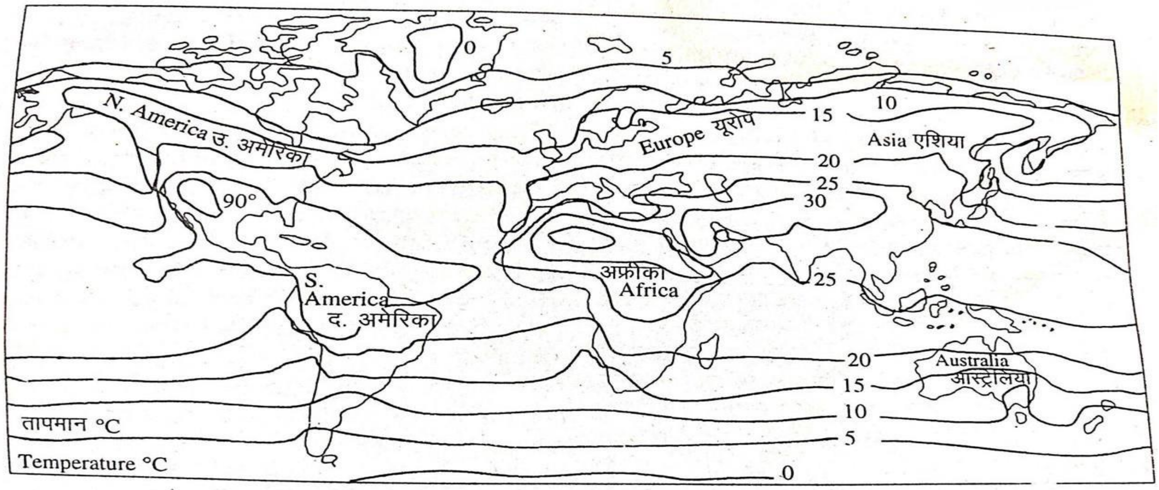

भूमण्डलीय स्तर पर जुलाई में समताप रेखाओं द्वारा तापमान के क्षैतिज वितरण का प्रदर्शन

इस सन्दर्भ में ज्ञातव्य है कि यदि सागर तल से 4000 मीटर की ऊँचाई पर स्थित किसी स्थान का तापमान (वास्तविक रूप में) 15^0 से०ग्रे० हैं तो तापमान ह्रास की दर से (प्रति 1000 मीटर पर 6.5^0 से०ग्रे०) उस स्थान के वास्तविक तापमान में 26^0 से०ग्रे० जोड़ दिया जायेगा (इन्हीं सशोधित तापमानों के आधार पर समताप रेखाएं खींची जाती है। इस प्रकार समताप रेखाएं वस्तुतः वास्तविक तापमान के स्थान पर सागरतल के तापमान को प्रस्तुत करती हैं। समताप रेखाओं के निम्नांकित लक्षण विशेष रूप से उल्लेखनीय है –

- समताप रेखाएं प्रायः अक्षाँश रेखाओं के समानान्तर होती हैं तथा पूर्व–पश्चिम दिशा में खींची जाती है। इससे स्पष्ट है कि अक्षाँशों का तापमान के क्षैतिज वितरण पर सर्वाधिक प्रभाव रहता है।
- समताप रेखायें यद्यपि प्रायः सीधी रहती हैं परन्तु महाद्वीपों व महासागरों के सन्धि स्थल पर झुकाव आ जाता है और उनके मार्ग पूर्व–पश्चिम से विचलित हो जाते हैं। इसका प्रमुख कारण स्थल तथा जल की गर्मी शीतलता में अन्तर का पाया जाना है।
- गर्म तथा ठढ़ी जलधाराओं व प्रचलित पवनों का प्रभाव भी समताय रेखाओं पर पड़ता है।
- जल की अधिकता के कारण द० गोलार्द्ध का तल अधिक समांगी है फलतः वहाँ समताप रेखाएं आपस में दूर एवं प्रायः सीधी होती हैं।
- वस्तुतः जव समताप रेखाएं आपस में नजदीक होती हैं तो तापक्रम में तीव्रता से परिवर्तन होता है। (तीव्र ताप प्रवणता) जबकि दूर रहने पर क्षीण ताप प्रवणता का लक्षण देखने को मिलता है।
- स्थल से सागर की ओर जाने वाली समताप रेखाएं गर्मी में भमध्य रेखा की ओर तथा शीत काल में ध्रुवों की ओर झुकी होती हैं।
- सागर से स्थत की ओर जाने वाली समताप रेखाऐं ग्रीष्म काल में ध्रुवों की ओर जबकि शीतकाल में भूमध्य रेखा की तरफ मुड़ी होती हैं।

4.8 तापमान का कालिक वितरण (TEMPORAL DISTRIBUTION OF TEMPERATURE) –

धरातल पर तापमान का कालिक वितरण सम्बन्धी अध्ययन ही तापमान का मौसमी वितरण सम्बन्धी अध्ययन कहा जाता है। इस अध्ययन हेतु जनवरी को शरद व जुलाई को ग्रीष्मकाल के मानक स्वरूप स्वीकार किया जाता है। पृथ्वी पर जुलाई व जनवरी के महीने तापमान की दृष्टि से उच्चतम स्थिति को प्रदर्शित करते हैं। यदि पृथ्वी पर इन महीनों के तापमान वितरण का अवलोकन किया जाय तो निम्नांकित स्थितियाँ दृष्टिगोचर होती हैं–

(अ) उ० गोलार्द्ध में जुलाई माह अत्यधिक गर्म व जनवरी माह अत्यधिक ठंडा रहता है जवकि द० गोलार्द्ध में स्थिति इसके ठीक विपरीत होती है।

(ब) दोनों गोलार्द्धों पर सूर्य के ऋतुवत स्थानान्तरण के फलस्वरूप समताप रेखाओं का अंक्षाशीय खिसकाव होता है जो महाद्वीपों पर अधिक देखा गया है।

(स) जुलाई व जनवरी महीनों में अधिकतम तापमान स्थलीय भागों में होता है। जनवरी महीनों में न्यूनतम तापमान एशिया व उ० अमेरिका में मिलता है।

(द) जनवरी माह में उ० गोलार्द्ध में महासागरों पर (गर्म) एकाएक ध्रुवों की ओर तथा अपेक्षाकृत ठंढ़े महाद्वीपों पर भूमध्यरेखा की ओर झुक जाती है। जुलाई की स्थिति इसके ठीक विपरीत रहती है। जबकि द० गोलार्द्ध में जल की अधिकता के कारण समताप रेखाओं में एकाएक झुकाव नहीं देखा जाता है।

(य) शीतऋतु में ताप प्रवणता अधिक तथा ग्रीष्म ऋतु में कम रहती है।

(र) उ० गोलार्द्ध में समताप रेखाऐं तीव्र ताप प्रवणता को इंगित करती है जबकि द० गोलार्द्ध में मन्द ताप प्रवणता को दर्शाती है। उ० गोलार्द्ध में पूर्वी तटीय भागों में तीव्र ताप प्रवणता रहती है जबकि प० तटीय भागों में मन्द ताप प्रवणता रहती है।

4.9 तापमान का प्रादेशिक वितरण (REGIONAL DISTRIBUTION OF TEMPERATURE)
प्राचीन ग्रीक विद्वानों के अनुसार –

तापमान का प्रादेशिक वितरण वस्तुतः तापमान का क्षैतिज वितरण है जिसे सर्वप्रथम प्राचीन यूनानी विद्वानों ने प्रस्तुत किया है। इन विद्वानों ने अक्षाँशों के आधार पर सम्पूर्ण पृथ्वी को निम्नलिखित 03 प्रमुख कटिबन्धों में विभक्त किया है –

(1) उष्ण कटिबन्ध (TORRID ZONE) –

कर्क तथा मकर रेखाओं के मध्य (भूमध्य रेखा के दोनों ओर) 23.5^0 तक का क्षेत्र उष्ण कटिबन्धों के अन्तर्गत माना जाता है। भूमध्यरेखा पर सूर्य की किरणें जहाँ लम्बवत होती हैं वहीं शेष भागों में सूर्य वर्ष में कम से कम एक बार लम्बवत अवश्य होता है है। इस क्षेत्र में वर्ष भर तापमान उच्च रहने के कारण यद्यपि शीतऋतु नहीं होती परन्तु कर्क व मकर रेखाओं के समीप ग्रीष्म व शीत दोनों ऋतुओं का आभास होता है।

(2) शीतोष्ण कटिबन्ध (TEMPERATE ZONE)– इस कटिबन्ध का विस्तार दोनों गोलार्द्धों में 23.5^0 से 66.5^0 अक्षाँश रेखाओं के मध्य पाया जाता है। इस भाग में दिन तथा रात्रि की अवधि अधिक होती है, परन्तु यह 24 घण्टे से कम रहती है। सूर्य के उत्तरायण व दक्षिणायन होने की स्थितियों के कारण ऋतुओं में पर्याप्त अन्तर देखने को मिलता है। यहाँ ग्रीष्म तथा शीत ऋतुओं के तापमान में अधिक अन्तर भी देखने को मिलता है।

(3) शीत कटिबन्ध (FRIGIO ZONE) –

दोनों गोलार्द्धो में ध्रुवीय केन्द्रो से 66.5^0 अक्षाँश के बीच की मेखला को शीत कटिबन्ध कहा जाता है। यहाँ सूर्य की किरणों के अत्यधिक तिरछा पड़ने के कारण तापमान निम्न रहता है। दिन एवं रात्रि 24 घण्टे से अधिक के होते हैं। यहाँ सूर्य कभी भी लम्बवत नहीं रहता। ध्रुवों के समीप दिन व रात्रि की अवधि क्रमशः छः–छः माह की होती है।

सूपन के आधार पर : सूपन के अनुसार ग्रीक विद्वानों ने तापीय कटिबन्धों को सुनिश्चि करने में अक्षाँशों को अधिक महत्ता प्रदान की है। सूपन महोदय ने स्थल तथा जल के विपरीत स्वभाव, प्रवाहित पवनों व सागरीय धाराओं आदि को आधार मानकर तापमान के कटिबन्धों का निर्धारण समताप रेखाओं के आधार पर किया है। उष्णकटिबन्ध का सीमांकन 20^0 से०ग्रे० की वार्षिक समताप रेखा द्वारा किया जाना चाहिए। उ० गोलार्द्ध में शीतोष्ण व शीत कटिबन्धों का निर्धारण जुलाई माह की 10^0 से०ग्रे० और द० गोलार्द्ध में जनवरी माह की 10^0 से०ग्रे० तापमान (समताप रेखाओं) रेखाओं के आधार पर किया जाना चाहिए।

सूपन की विधि में संशोधन :– सूपन की विधि में संशोधन करते हुए आगे के विद्वानों ने सम्पूर्ण ग्लोब को निम्नलिखित 07 तापमान के कटिबन्धों में विभक्त किया है : (1) उष्ण कटिबन्ध (2) उ० उपोष्ण कटिबन्ध (3) द० उपोष्ण कटिबन्ध (4) उ० शीतोष्ण कटिबन्ध (5) द० शीतोष्ण कटिबन्ध (6) उ० शीत कटिबन्ध एवं (7) द० शीत कटिबन्ध।

4.10 तापमान का सामान्य प्रादेशिक वितरण (DISTRIBUTION OF REGIONAL TEMPERATURE) –

समतापमान रेखाओं की प्रवृत्ति तथा विभिन्न कारकों के पड़ने वाले प्रभावों के आधार पर सम्पूर्ण ग्लोब को निम्नलिखित सामान्य ताप प्रदेशों में विभक्त किया जा सकता है –

(1) भूमध्यरेखीय प्रदेश (EQUATORIAL REGION) –

यह प्रदेश भूमध्य रेखा के दोनों और 5^0 अक्षाँश तक प्रसारित है। भूमध्य रेखा को सदैव प्रकाश वृत्त (Circle of lillumination) दो भागों में विभक्त करती है। परिणामतः यहाँ दिन व रात्रि बराबर (12 घण्टे) अवधि के होते हैं। यहाँ पर सूर्य की लम्बवत किरणें रहने के कारण वर्ष भर उच्च तापमान की स्थिति रहती है। इस ताप परिसर में स्थलीय भागों में वार्षिक तापान्तर 4^0 फारेनहाइट तथा सागरीय क्षेत्रों में 1^0 फारेनहाइट रहता है। दैनिक तापान्तर 10^0 से 15^0 फारेनहाइट रहता है। यहाँ अधिकतम तापमान मई में (92^0 F) व न्यूनतम तापमान कभी भी 88^0 F से कम नहीं रहता। सूर्य के उत्तरायण व दक्षिणायन स्थिति के कारण वर्ष में 2 बार उच्चतम व न्यूनतम ताप मान होता है परन्तु विशेष अन्तर नहीं रहता है। तीव्र वाष्पीकरण व अधिक वायुमण्डलीय आर्द्रता के कारण यह परिसर मानव स्वास्थ्य हेतु उपयुक्त नहीं है।

(2) अन्तराउष्ण कटिबन्धीय प्रदेश (INTER TROPICAL REGION) –

यह प्रदेश दोनों गोलार्द्धों में 5^0 से 12^0 अक्षाँश रेखाओं के मध्य प्रसरित है। इस परिसर में वर्ष भर उच्च तापमान रहने के पश्चात् भी ग्रीष्म व शीत ऋतुओं में स्पष्ट अन्तर देखा जा सकता है। यहाँ सागरीय क्षेत्रों यह ऋत्विक परिवर्तन अधिक प्रभावी नहीं रहता। यहाँ सबसे गर्म का तापमान 82^0 का (28^0 से०ग्रे०) व सबसे ठंढ़े महीने का तापमान 70^0 फा० (21^0 से०ग्रे०) रहता है। यहाँ का वार्षिक तापान्तर 12^0 से 15^0 फा० तथा दैनिक तापान्तर 20^0 फा० तक रहता है।

(3) उष्ण कटिबन्धीय प्रदेश (TROPICAL REGION) –

यह प्रदेश दोनों गोलार्द्धों में 12^0 से 25^0 अक्षाँश रेखाओं के मध्य प्रसरित है। यहाँ निम्न अक्षाँशों से उच्च अक्षाँशों की ओर तापमान कम होता जाता है। गर्मी के समय दिन 14 घण्टे व जाड़े में रात्रि 14 घण्टे अवधि की होती है। जुलाई माह में उ० तथा जनवरी माह में द० गोलार्द्ध के अन्तर्गत सूर्य की किरणें लम्बवत पड़ने से ग्रीष्म ऋतु होती है फलतः प्रत्येक भाग में एक उच्चतम तथा न्यूनतम तापमान प्राप्त होने की स्थिति रहती है। इस परिसर में उच्चतम तापमान 90^0 फा० (मरूस्थलीय भागों में) जो कभी–कभी 120^0 फा० तक हो जाता है। जैसे 1922 ई० में लीविया के अलअजीज में सितम्बर माह का तापमान 136^0 फा० (58^0 से०ग्रे०) आकलित किया जा चुका है। यहाँ का न्यूनतम तापमान 65^0 फा० रहता है। मरूस्थलों में रात्रि के समय कभी–कभी तापमान गिरकर 40^0 फा० जाता है। ग्लोब का अधिकतम तापमान यही अभिलिखित किया गया है। इस भाग में दैनिक तापान्तर भी अधिक रहता है।

(4) उपोष्ण कटिबन्धीय प्रदेश (SUB-TROPICAL REGION) –

यह प्रदेश भूमध्य रेखा के दोनों और 25^0 से 45^0 अक्षाँशों के मध्य दोनों गोलार्द्ध में प्रसरित है। इस प्रदेश में शीतऋतुओं में तापमान अत्यधिक गिर जाता है जिसका प्रमुख कारण सूर्य की किरणों का अत्यधिक तिरछापन है। ध्रुवीय शीत लहर के कारण कभी–कभी तापमान हिमाक बिन्दु से नीचे चला जाता है। जैसे स० राज्य अमेरिका का द० भाग/इस प्रदेश में सबसे गर्म व ठंढ़े महीने का औसत तापमान 75^0 फा० 48^0 फा० होता है। बगदाद का सबसे गर्म व ठंढ़े माह का तापमान क्रमशः 94^0 फा० 46^0 फा० होता है। जुलाई माह में कभी–कभी यहाँ का तापमान 109^0 से 113^0 फा० तथा जनवरी में 31^0 फा० रहता है। महाद्वीपों के प० तटीय भागों में औसत वार्षिक तापान्तर 30^0 फा० तथा आन्तरिक भागों में 30^0 से 70^0 फा० होता है। चूँकि द० गोलार्द्ध में जल का विस्तार अधिक होता है फलतः वार्षिक तापान्तर 20^0 से 30^0 फा० रहता है।

(5) शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेश (TEMPERATE REGION) –

यह प्रदेश भूमध्य रेखा के दोनों ओर दोनों गोलार्द्धों में 45^0 से 66.5^0 अक्षाँशो के मध्य प्रसरित है। यद्यपि दिन की अवधि लम्बी होती है परन्तु सूर्य के अत्यधिक तिरछेपन के कारण तापमान बहुत कम हो जाता है। शीत तथा ग्रीष्मऋतुओं के बीच का अन्तर अत्यधिक कम हो जाता है। शीतऋतु में तापमान हिमाँक बिन्दु के नीचे गिर जाता है

फलतः कनाडा व साइवेरिया आदि का अधिकाँश भाग हिमाच्छादित हो जाता है। उ०प० यूरोप, द०प० आयरलैण्ड स्थित वैलेनटिया का तापमान कभी भी 40^0 फा० से कम नहीं हो पाता क्योंकि ये क्षेत्र सागरीय गर्म धाराओं से प्रभावित रहते हैं। यहाँ वार्षिक तापान्तर भी अधिक रहता है। व्लाडीवोस्टक का सबसे गर्म व ठंढ़े महीने का तापमान क्रमशः 69^0 व 6^0 फा० होता है। यहाँ का वार्षिक तापान्तर 63^0 फा० होता है। शीतऋतु में कभी–कभी यह तापमान–22^0 फा० भी आकलित किया गया है। ऐसी स्थिति में वार्षिक तापान्तर और अधिक हो जाता है।

(6) टुन्ड्रा प्रदेश (TUNDRA REGION) –

शीतोष्ण कतिबन्धीय व ध्रुवीय प्रदेशों के मध्य प्रसरित इस ताप परिसर में सूर्य की किरणें इतनी तिरछी पड़ती हैं कि अधिकाँश भागों में धरातल के समवेत (सामानान्तर) हो जाती हैं। इसी कारण इन क्षेत्रों में तापमान कम हो जाता है। इस ताप परिसर में नवम्बर से अप्रैल तक उ० गोलार्ध में तापमान हिमांक बिन्दु से नीचे चला जाता है। अनेक भागों में वर्फ वर्षभर नहीं पिछलती। न्यूनतम तापमान सामान्यतया 40^0 फा० रहता है। बर्खोयान्स्क ग्लोव का सबसे ठंड़ा स्थान है जहाँ न्यूनतम तापमान–93^0 फा० होता है।

(7) ध्रुवीय प्रदेश (POLARREGION) –

यह प्रदेश दोनों ध्रुवों के चतुर्दिक प्रसरित है। उ० भाग प्रायः वर्षभर हिमाच्छदित रहता है। अधिकतर क्षेत्रों में सूर्य की किरणें धरातल तक नहीं पहुँच पाती, गर्मियों में स्थान–स्थान पर गर्मधाराओं के कारण बर्फ पिघल जाती है। उ० ध्रुव पर जनवरी का तापमान 40^0 फा० हो जाता है। द० ध्रुवीय क्षेत्र में अण्टाकर्टिका महाद्वीपीय भाग में जाड़े का तापमान–80 फा० हो जाता है। वार्षिक तापान्तर 60^0 से 70^0 फा० रहता है। दैनिकतापान्तर वार्षिक तापान्तर से कम रहता है। यहाँ सूर्य कभी भी क्षितिज पर प्रकट नहीं हो पाता है। दैनिक तापान्तर नगण्य रहता है।

4.11 तापमान का उर्ध्वाधर वितरण (VERTICAL DESTRIBUTION OF TEMPERATIRE) –

वायुमण्डल में भूतल से उसके ऊपर जाने पर तापमान के वितरण को ऊर्ध्वाधर वितरण कहते हैं। वायुमण्डल में ऊपर जाने पर तापतान में गिरावट देखने को मिलती है जिसमें मौसम, दिन की अवधि व स्थिति के आधार पर अन्तर आता रहता है। औसत रूप से प्रति एक हजार फीट की ऊँचाई पर 3.6^0 फा० (प्रति हजार मीटर पर 6.5^0 से०ग्रे०) की दर से`तापमान कम हो जाता है। तापमान के इस पतन दर को सामान्य पतन दर कहते हैं। यह पतन दर तापमान के अक्षाँशीय क्षैतिज पतन दर से 1000 गुना अधिक है परन्तु वास्तविक पतन दर जिसे पर्यावरणीय पतनदर भी कहा जाता है, उसमें स्थानिक व कालिक परिवर्तन होता रहता है। वस्तुतः 1.5 से 2 कि०मी० उँचाई तक नीचे के क्षोभमण्डल में इस पतन दर में बार–बार परिवर्तन होता है परन्तु ऊपरी क्षोभमण्डल में अर्थात 2 कि०मी० की उँचाई से ट्रोपोपाज तक ताप पतन दर में कम परिवर्तन होता है ग्रीष्म समय व दिन की अवधि में यह पतन दर ऊँचा रहता है। क्षोभमण्डल के अन्तर्गत धरातलीय सतह से उँचाई के साथ तापमान में गिरावट के निम्न आधारभूत कारण है –

- वायुमण्डलीय निचला भाग पृथ्वी के अधिक सम्पर्क में होने के फलस्वरूप शीघ्र ऊष्मा प्राप्त कर लेता है तथा स्वय गर्म हो जाने के पश्चात संवहन तरंगों के द्वारा ऊष्मा को स्थानान्तरित करता है। यह स्थानान्तरण ऊपर की ओर होता है। इस प्रकार वायुमण्डलीय प्रत्येक ऊपर की परत अपनी निचली परत की अपेक्षा देर में गरम होती है तथा कम मात्रा में ऊष्मा प्राप्त करती है।

- वायुमण्डल के निचले भाग में वायु परतों का भार अधिक होने के कारण ऊपर जाने पर हवा का घनत्व कम हो जाता है और प्रसरित होकर हवा विरल हो जाती है। वस्तुतः विरल हो चुकी हवा में ऊष्मा को धारण किये रहने की क्षमता बहुत कम होती है।

- पार्थिव विकिरण को अवशोशित करने वाले धूलिकण, जलवाष्प तथा गैस का सान्द्रण नीचे के भाग में अधिक व ऊँचाई के साथ कम हो जाता है जिससे निचले भाग में पार्थिव ऊर्जा का अवशोषण अधिक होने से तापमान अधिक हो जाता है। वस्तुतः उँचाई के साथ पार्थिव ऊर्जा के घटते अवशोषण के फलस्वरूप तापमान कम होने लगता है।

वायुमण्डल में उँचाई के साथ तापमान के ह्रास की यह प्रवृत्ति क्षोभमण्डल ही सीमित रहती है। क्षोभमण्डल की ऊपरी सीमा ट्रोपोपाज की भूमध्यरेखा तथा ध्रुवों पर औसत ऊँचाई क्रमशः 16 कि०मी० व 6 कि०मी० है। अर्थात

ट्रोपोपाज की उँचाई ध्रुवों की ओर घटती जाती है इसी कारण भूमध्यरेखा से ध्रुवों की तरफ तापमान बढ़ता जाता है।

ट्रोपोपाज की ऊँचाई में (सागर तल से) मौसम के साथ अन्तर होता है। भूमध्यरेखा पर जुलाई तथा जनवरी में ट्रोपोपाज की उँचाई 17 कि०मी० रहती है तथा इनकी ऊपरी सीमा के वायुमण्डल का तापमान–70^0 से०ग्रे० रहता है। 45^0 उ० अक्षाँश पर जुलाई में इसकी ऊपरी सीमा कि०मी० तथा तापमान–60^0 से०ग्रे० एवं जनवरी में इसकी ऊपरी सीमा 12 कि०मी० और तापमान–58^0 से०ग्रे० रहता है। इसी प्रकार उ० ध्रुव पर जुलाई माह में ट्रोपोपाज की ऊपरी सीमा 10 कि०मी० व तापमान–45^0 से०ग्रे० रहता है। जनवरी माह में यह उँचाई ध्रुवों पर 9 कि०मी० होती है और तापमान–58^0 से०ग्रे० रहता है। ज्ञातव्य हो कि भूमध्यरेखा पर ट्रोपोपाज की उँचाई 17 कि०मी० व ध्रुवों पर 9–10 कि०मी० होती है। अतः भूमध्यरेखा की अपेक्षा ध्रुवों पर ट्रोपोपाज की ऊपरी सीमा का तापमान अधिक होना स्वाभाविक है।

ट्रोपोपाज की ऊपरी सीमा के पश्चात समतापमण्डल में उँचाई के साथ तापमान में वृद्धि होने लगती है और सागर तल से 50 कि०मी० की उँचाई पर तापमान बढ़कर 0^0 से०ग्रे० हो जाता है। यह समताप मण्डल की ऊपरी सीमा होती है जिसे समतापसीमा कहते हैं। इसके ऊपर मध्य मण्डल में तापमान में उँचाई के साथ पुनः पतन होने लगता है। इस मण्डल की ऊपरी सीमा अर्थात मेंसोपाज–सागरतल से 80 कि०मी० की उँचाई पर तापमान–80^0 से०ग्रे० होता है। मेसोपाज के ऊपर अवस्थित तापमण्डल में जाने पर उँचाई के साथ पुनः तापमान बढ़ने लगता है। इसकी ऊपरी सीमा पर 1700^0 से०ग्रे० तापमान अनुमानित किया गया है। यहाँ अतिन्यून घनत्व होने के कारण गैसें हल्की हो जाती हैं और इस उच्च तापमान का मापन करना सामान्य थर्मामीटर से सम्भव नहीं है।

क्षोभ मण्डल में कभी–कभी विशिष्ट दशाओं के कारण उँचाई के साथ तापमान में पतन के साथ वृद्धि होने लगती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि ठंढ़ी वायु परत के ऊपर गरम वायु परत की स्थिति बन जाती है। वस्तुतः इस दशा को तापीय प्रतिलोमन (INVERSION OF TEMPERATURE) कहा जाता है। वस्तुतः तापीय प्रतिलोमन तापमान के लम्बवत वितरण की स्थिति का ही परिचायक व द्योतक है।

4.12 तापीय प्रतिलोमन (INVERSION OF TEMPERATURE) –

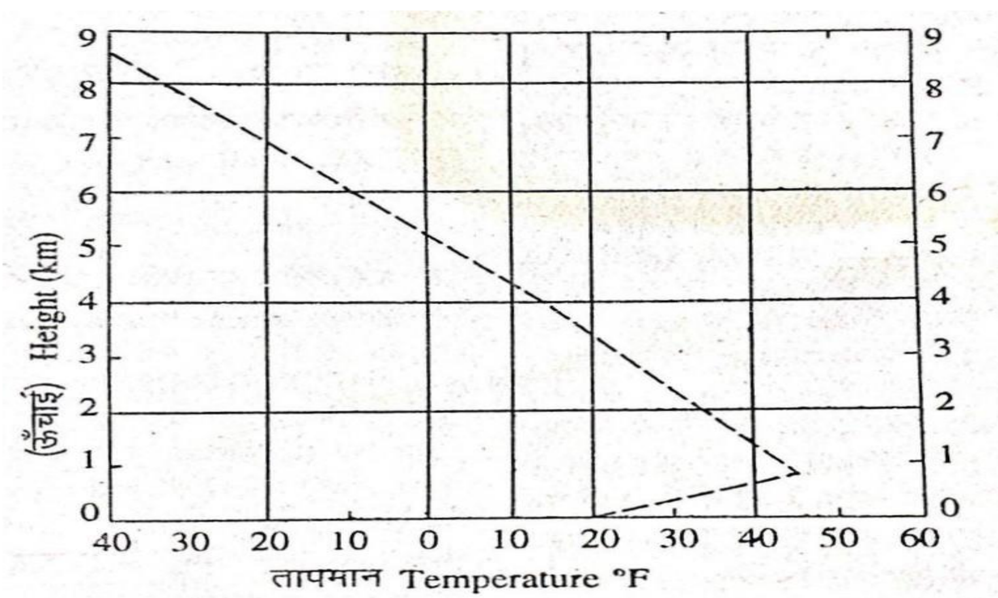

सामान्यतः क्षोभ या अधोमण्डल में उँचाई के साथ प्रति 1000 मीटर परत तापमान में 6.5^0 से०ग्रे० की दर से ह्रास होता जाता है। कभी–कभी इस सामान्य ताप ह्रास के विपरीत कालिक तथा स्थानीय रूप से उँचाई के साथ तापमान में वृद्धि होती जाती है। इस तापमान वृद्धि को ऋणात्मक ताप पतन दर कहते हैं। इस प्रक्रिया के कारण नीचे अपेक्षाकृत ठंढ़ी वायु की परत व उसके ऊपर गर्म वायु के परत की स्थिति बन जाती है। इसी स्थिति या दशा को तापीय प्रतिलोमन कहते हैं। यह दशा धरातल के निकट भी कम उँचाई पर हो सकती है। अधिक उँचाई पर होने वाला **प्रतिलोमन** अधिक स्थायी होता है। इसका प्रमुख कारण पार्थिव विकिरण द्वारा ऊपरी गर्म परत को ठंढ़ा होने में अधिक समय लगता है। धरातल के निकट होने वाले अल्पकालिक प्रतिलोमन का कारण विकिरण प्रक्रिया

द्वारा ठंढ़ी परत का शीघ्र लोप हो जाना है।

यद्यपि तापीय प्रतिलोमन से वायुमण्डल में स्थिरता आ जाती है परन्तु यह सौर्यिक तथा पार्थिव विकिरण द्वारा विलीन हो जाती है। तापीय प्रतिलोमन ध्रुवीय प्रदेशों मध्य अक्षाँशों, हिमभागों, घाटियों आदि में अधिक होता है। गर्म व ठंढ़ी जलधाराओं के संगम स्थल पर भी तापीय प्रतिलोपन की दशा उपस्थित हो जाती है।

4.13 तापीय प्रतिलोमन के प्रकार (TYPES OF THE INVERSION OF TEMPERTUR) –

तापमान का प्रतिलोमन विभिन्न दशाओं में अनेक कारकों का परिणाम होता है। इसे उद्भूत करने में विभिन्न प्रक्रियाओं व धरातल से सापेक्षिक उँचाई का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इनके आधार पर तापमान प्रतिलोमन को निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है –

(1) अप्रवाही प्रतिलोमन (NON-ADVECTIONAL INVERSION) –

(1) धरातलीय प्रतिलोमन

(2) उच्च वायुमण्डलीय प्रतिलोमन

(2) प्रवाही प्रतिलोमन (ADVECTIONAL INVERSION) –

(1) चक्रवातीय प्रतिलोमन

(2) घाटी प्रतिलोमन

(3) क्षैतिज प्रवाही प्रतिलोमन

(3) यान्त्रिक प्रतिलोमन (MECHANICAL INVERSION) –

(1) अवतलन प्रतिलोमन

(2) विक्षोभ एवं संवहनीय प्रतिलोमन

(1) अप्रवाही प्रतिलोमन (NON ADVECTIONAL INVERSION) –

विकिरण क्रिया से उत्पन्न होने वाला यह प्रतिलोमन वायुमण्डल में शान्त एवं स्वच्छ वातावरण की प्रेरक दशाओं के कारण उद्भूत होता है। इसे दो रूपों में विभक्त किया गया है।

(1) धरातलीय प्रतिलोमन (GROUND INVERSION) –

वायुमण्डल के निचले भाग में धरातल के अति निकट घटित होने के कारण ही इसे धरातलीय प्रतिलोमन कहा जाता है। यह प्रतिलोमन मुख्य रूप से शीतऋतु की लम्बी रात्रि के समय मध्य तथा उच्च अक्षाँशों के हिमाच्छादित भागों में होता है। वस्तुतः पृथ्वी को सौर्यिक ऊष्मा की प्राप्ति रात्रि के समय नहीं होती और पार्थिव विकिरण के तीव्र गति से सम्पादित होने के कारण ऊष्मा का अत्यधिक ह्रास होता है फलतः धरातल के साथ–साथ उसके सम्पर्क की वायु भी ठंढ़ी हो जाती है। इसके ठीक ऊपर ऊष्मा का कम ह्रास है गर्म वायु की परत बनी रहती है जिससे नीचे कम व ऊपर अधिक तापमान होने से तापीय प्रतिलोमन की अवस्था वन जाती है। इस प्रकार का प्रतिलोमन धरातलीय सतह से विकिरण द्वारा सम्पन्न होता है। अतः इसे विकिरण प्रतिलोमन भी कहा जाता है। धरातलीय या विकिरण प्रतिलोमन निम्न अनुकूल दशाओं में सम्पन्न होता है।

- ❖ इस प्रकार के प्रतिलोमन हेतु शीतऋतु की लम्बी रातों का होना आवश्यक है ताकि वर्हिगामी पार्थिव विकिरण, प्रवेशी सौर्यिक विकिरण से अधिक सक्रिय हो सके, प्राप्त ऊष्मा से ह्रास होने वाली ऊष्मा अधिक हो तथा धरातल का तापमान ऊपर से कम हो जाय।
- ❖ वायुमण्डल में अत्यधिक उच्च बादल हों या सम्पूर्ण आकाश स्वच्छ तथा बादल रहित होना चाहिए ताकि पार्थिव विकिरण के द्वारा ऊष्मा का तीव्र व निर्वाध गति से ह्रास हो सके। वस्तुत बादलों के छाये रहने पर पार्थिव विकिरण शिथिल पड़ जाता है। जलवाष्प से सम्पन्न आर्द्र पवन पार्थिव विकिरण का अधिक अवशोषण कर लेती है। अतः धरातल के निकट शुष्क वायु होनी चाहिए ताकि वह पार्थिव विकिरण का अधिक अवशोषण न कर सके।

- ❖ वायुमण्डल स्थिर शान्त हो तथा हवाओं का प्रवाह धीमा होना चाहिए जिससे तापमान का स्थानान्तरण न हो सके।
- ❖ हिम से आच्छादित धरातल होना चाहिए ताकि सौर्यिक विकिरण का अधिकतम परावर्तन हो सके। हिम वास्तव में ताप की कुचालक होती है फलतः वह ऊष्मा के ऊपरी प्रवाह को अवरूद्ध कर देती है।

चित्र

वस्तुतः धरातलीय प्रतिलोमन वायुमण्डल की स्थिर दशाओं में सम्पादित होता है इसीलिए इसे स्थिर प्रतिलोमन भी कहा जाता है। यह प्रतिलोमन पाला तथा तुषार से भी सम्बन्धित होते हैं। रात्रि में पार्थिव विकिरण की प्रक्रिया के कारण धरातल के समीप कुहरे व धूम्र कुहरे की स्थिति बन जाती है। औद्योगिक व नगरीय क्षेत्रों में प्रायः इस स्थिति को देखा जा सकता है।

(2) उच्च वायुमण्डलीय प्रतिलोमन (UPPER AIR TEMPERATURE INVERSION) –

धरातल से वायुमण्डल की ओर 15 से 80 कि०मी० के मध्य ओजोन गैस मिलती है। यह गैस सामान्यतया सौर्यिक विकिरण की पराबैगनी किरणों का अवशोषण करती है फलतः उसका तापमान बढ़ जाता है। इसीलिए उसके ऊपर व नीचे दोनों तरफ कम तापमान हो जाने से ताप प्रतिलोमन की स्थिति बन जाती है। इस प्रतिलोमन के लिए यह आवश्यक है कि वायुमण्डलीय परत में लम्बवत तथा क्षैतिज गति अधिक नहीं होनी चाहिए अन्यथा तापमान में स्थानान्तरण व मिलावट प्रारम्भ हो जाता है। इस तरह का प्रतिलोमन सदैव 15 कि०मी० से अधिक उँचाई पर होता है।

(2) प्रवाही या अभिवहनीय प्रतिलोमन (ADVECTIONAL INVERSION) –

इस प्रकार के तापीय प्रतिलोमन को गतिक व सम्पर्कीय प्रतिलोमन कहा जाता है। वायु के क्षैतिज रूप में गतिशील होने से उद्भूत प्रतिलोमन अधिक स्थायी व व्यापक होता है जिसका जलवायुविक दृष्टिकोण से अधिक महत्व होता है। इस प्रकार का प्रतिलोमन निम्न तीन दशाओं में होता है –

- ❖ जब गर्म वायु क्षैतिज स्तर पर ठंढ़ी वायु के ऊपर आ जाय या ठंढ़ी वायु गर्म वायु को बलात ऊपर पहुँचा दे।ऐसी स्थिति शीतोष्ण चक्रवातों में देखी जाती है।
- ❖ जब गर्म वायु का क्षैतिज स्तर पर अपेक्षतया ठंढ़ी वायु के क्षेत्र में या ठंढ़ी वायु का अपेक्षतया गर्म वायु के क्षेत्र में प्रवाह हो। यह दशा सामान्यतया सागर तटीय भागों में देखी जाती है।
- ❖ जब गर्म तथा ठंढ़ी वायु की लम्बवत गति हो। यह दशा पर्वतीय घटियों में देखने को मिलती है।

उक्त आधारों पर प्रवाही प्रतिलोमन को निम्न तीन प्रकारों में विभक्त किया जा सकता हैं –

(1) चक्रवातीय प्रतिलोमन (CYCLONIC INVERSION) –

शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों के शीत वाताग्र में जब ठंढ़ी तथा भारी हवा का गर्म हवा के प्रदेश में प्रवेश होता है तो ठंढ़ी व भारी हवा गर्म व हल्की हवा को बलात् ऊपर कर देती है परिणामत; ऊपर गर्म व नीचे ठंढ़ी हवा होने से तापीय प्रतिलोमन होने लगता है। इसे चक्रवातीय तापीय प्रतिलोमन कहा जाता है।

(2) क्षैतिज प्रवाही प्रतिलोमन (HORIZONTAL FLOATING INVERSION) –

जब किसी भी स्थान या क्षेत्र में गर्म हवा ठंढ़ी हवा के क्षेत्र में तथा ठंढ़ी हवा गर्म हवा के क्षेत्र में प्रवेश करती है तो ठंढ़ी हवा चूँकि भारी होती है इसलिए वह सदैव नीचे बैठने का उपक्रम करती है। इस कारण गर्म हल्की हवा ऊपर उठती है फलतः तापमान का प्रतिलोमन प्रारम्भ हो जाता है। जब गर्म हवा गतिशील होती है जब शीतकाल में महाद्वीपों एवं ग्रीष्मकाल में महासागरों पर प्रतिलोमन होता है। इसी प्रकार जब ठंढ़ी वायु सक्रिय होकर गर्म वायु क्षेत्र में जाती है तब शीतकाल में महासागरो व ग्रीष्म काल में महाद्वीपों पर प्रतिलोमन होता है। यह प्रतिलोमन निम्न अक्षाँशीय भागों में होता रहता है। गर्म व ठंढ़ी जलधाराओं के मिलने से भी प्रतिलोमन होता है।

(3) घाटी प्रतिलोमन (VALLEY INVERSION) –

पर्वतीय क्षेत्रों की घाटियों में विकिरण तथा अभिवाहन प्रक्रिया की सहायता से जो प्रतिलोमन की स्थिति उत्पन्न होती है उसे घाटी या लम्बवत प्रवाही प्रतिलोमन कहा जाता हैं। शीतकालीन रात्रि की अवधि में घाटियों व उनके ढ़लानों के ऊपरी भाग से पार्थिव विकिरण होने से ऊष्मा क्षय प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रक्रिया से तापमान में कमी हो जाती है

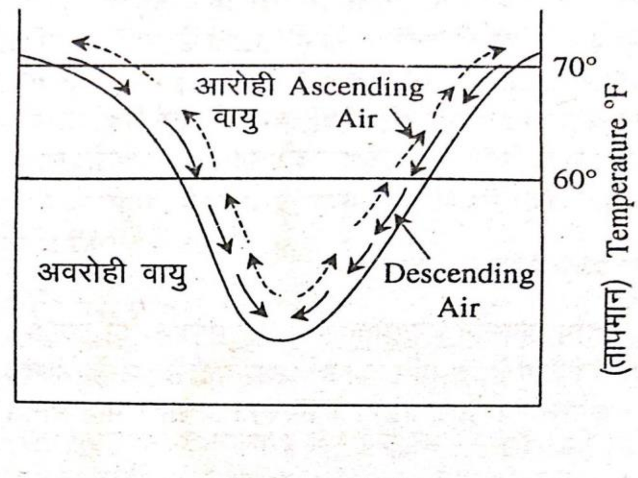

घाटी तापीय प्रतिलोमन का प्रदर्शन

जिसके कारण उसके सम्पर्क में आने वाली वायु ठंढ़ी व भारी होने लगती है। जबकि इन घाटियों की तली में विकिरण द्वारा अपेक्षतया कम ऊष्मा ह्रास के कारण तापमान उच्च रहता है जिससे हवा गर्म व हल्की रहती है। ऊपर की ठंढ़ी हवा भारी होने के कारण नीचे बैठने लगती है और हवा का अधोमुखी संचरण (DOWNWARD CIRCULATION) होने लगता है। यह ठंड़ी हवा घाटी की तली में पहुँचकर गर्म व हल्की वायु को ऊपर उठाने लगती है जिससे उपरिमुखी संचरण (UPWARD CIRCULATION) आरम्भ हो जाता है। निष्कर्षतः घाटी के निचले भाग में ठंड़ी तथा ऊपरी भाग में गर्म वायु होने के कारण तापीय प्रतिलोमन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(3) यान्त्रिक प्रतिलोमन (MECHANICAL INVERSION) –

यह प्रतिलोमन धरातल से ऊपर वायुमण्डल में ऊँचाई पर सम्पन्न होता है। इस प्रकार के प्रतिलोमन में पार्थिव या सौर्यिक विकिरण, गैसों के अवशोषण तथा हवाओं के सम्पर्क का हाथ नहीं रहता है। वायुमण्डल में वायु के ऊपर अथवा नीचे गतिशील होने के कारण यान्त्रिक प्रतिलोमन की स्थिति उत्पन्न होती है। यह प्रतिलोमन दो तरह का होता है।

(1) जब अचानक गर्म हवा तीव्र गति से ऊपर चली जाती है जहाँ ठंढ़ी वायु रहती है। ठंढ़ी हवा भारी होने के कारण नीचे चली आती है और प्रतिलोमन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसे अवतलन प्रतिलोमन भी कहा जाता है।

(2) जब हवा नीचे उतरती है तब सम्पीड़न के कारण गर्म होने लगती है। लम्बी अवधि तक इस प्रक्रिया के कारण तापमान इतना अधिक हो जाता है कि वृद्धि क्षेत्र में उतरते समय मार्ग में ही गर्म स्थिर वायु की परत बन जाती है। वस्तुतः इस परत के नीचे कम तापमान होने से प्रतिलोमन होने लगता है। इसे विक्षोभ या संवहनीय प्रतिलोमन कहा जा सकता है। यह यान्त्रिक प्रतिलोमन प्रति चक्रवातीय दशाओं के साथ अधिक सम्पन्न होता है।

4.14 तापीय प्रतिलोमन का महत्व (IMPORTANCE OF TEMPERATURE INVERION) –

तापीय प्रतिलोमन वायुमण्डल की अस्थायी क्रिया है जो स्थानीय स्तर पर सम्पन्न होती है। इसका प्रभाव मौसम, जलवायु व मानव की सामाजिक तथा आर्थिक जीवन पर प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है। इस तापीय प्रतिलोमन के प्रभाव का मूल्यांकन निम्न रूपों में किया जा सकता है।

❖ जिन क्षेत्रों में निम्न स्तरीय तापीय प्रतिलोमन की स्थिति रहती है वहाँ शीतकालीन रातों में प्रायः कुहरा छाया

रहता है। चिमनियों से निसृत धुँए इस प्रतिलोमन परत में पहुँचकर इसे अधिक आसान बना देते हैं। औद्योगिक तथा नगरीय धुँआ जब इस कोहरे से सम्बद्ध होता है तो जहरीले कुहरे का निर्माण होता है जिसे नगरीय धूमकोहरे कहा जाता है। दो विपरीत जल धाराओं के कारण भी कुहरे का निर्माण होता है। कुहरे के अच्छे व बुरे दोनों प्रभाव होते हैं। दृश्यता कम हो जाने के कारण सभी प्रकार की परिवहन दुर्घटनाओं में वृद्धि होती है। कहीं–कहीं यह कृषि के लिए हानिकर तथा कहीं–कहीं लाभप्रद भी होता है।

❖ यदि तापीय प्रतिलोमन के समय यदि ऊपर स्थिति गर्म वायु में आर्द्रता विद्यमान रहती है और नीचे स्थित वायु का तापमान हिमांक बिन्दु से नीचे चला जाता है तो पाला पड़ने लगता है जो कृषि के लिए सर्वथा हानिकार है। कैलीफोर्निया घाटी, ब्राजील में कहवा के बागान, फ्रान्स व स्विटजरलैण्ड में फलों व सब्जियों की खेती, भारत के मैदानी भागों में दलहन व तिलहन की कृषि पाला के कारण दुष्प्रभावित होती है।

❖ तापीय प्रतिलोमन के फलस्वरूप वायुमण्डल में स्थिरता आ जाने से वायु का अपरिमुखी व अधोमुखी संचलन स्थागित हो जाता है जिससे वर्षा की संभावनाएं क्षीण हो जाती है। जहाँ पर पवन के नीचे उतरने के कारण प्रतिलोमन की स्थिति होती है वहाँ शुष्कता अधिक हो जाती है। इसी कारण भूमध्य रेखा के दोनों ओर 20^0 से 30^0 अक्षाँशों के मध्य महाद्वीपों के प० भागों में (प्रमुख प्रति चक्रवातीय क्षेत्रों) मरूस्थलीय क्षेत्रों का विस्तार मिलता है।

4.15 सम विसंगत तापमान (ISANOMALOUS TEMPERATURE) –

किसी स्थान विशेष के औसत तापमान तथा उसी स्थान के अक्षाँश के औसत तापमान अन्तर को तापीय विसंगति (THERMAL ANOMALY) कहा जाता है। उदाहरणार्थ यदि 30^0 अक्षाँश का वार्षिक औसत तापमान 25^0 से०ग्रे० है और उसी अक्षाँश पर स्थित 'क' स्थान का तापमान (औसत वार्षिक) 30^0 से०ग्रे० है तो यह तापीय विसंगति 05^0 से०ग्रे० होगी। इसी प्रकार समान तापीय विसंगति को सम विसंगत तापमान, और ऐसे स्थानों को मिलाने वाली रेखा को समविसंगत रेखा (ISANOMALS) तथा उसे प्रदर्शित करने वाले मानचित्र को समविसंगत मानचित्र (ISANOMALOUS MAP) कहा जाता है। द० गोलार्द्ध में उ० गोलार्द्ध की अपेक्षा तापीय विसंगति कम होती है। इसका प्रमुख कारण द० गोलार्द्ध में जल भाग की अधिकता है। किसी स्थान विशेष का तापमान जब उसके अक्षाँश की अपेक्षा अधिक होता है तो धनात्मक एवं कम होने पर ऋणात्मक विसंगति होती है। जनवरी महीने के मानचित्र पर महाद्वीपों पर ऋणात्मक व महासागरों पर धनात्मक विसंगति का प्रदर्शन रहता है। सबसे अधिक यह विसंगति मध्य अक्षाँशीय महासागरों के पू० भागों व सम्बन्धित महाद्वीपों के प० तटीय भागों में रहती है। सबसे अधिक ऋणात्मक विसंगति साइबेरिया के उ०पू० भाग में रहती है जहाँ अक्षाँश के औसत तामपान से 8^0 से०ग्रे० कम तापमान होता है। ग्रीष्मकाल में महाद्वीपीयों पर धनात्मक व महासागरों पर ऋणात्मक विसंगति रहती है। महाद्वीपीय भागों में वर्ष पर्यन्त विषुवत रेखा से 40^0 अक्षाँश तक धनात्मक जबकि 40^0 से 90^0 अक्षाँश तक ऋणात्मक विसंगति रहती है। वस्तुतः तापीय विसंगति, स्थल एवं जल भाग के वितरण प्रतिरूप तथा वर्षभर के विभिन्न ऋतुओं द्वारा निर्धारित एवं नियन्त्रित होती है।

4.16 सारांश

इस अध्याय में तापमान और उसके वितरण को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों का विस्तृत अध्ययन किया गया है। सूर्य की विकिरण, स्थलाकृति, समुद्र का प्रभाव, वायुमंडलीय परिसंचरण और मानव गतिविधियों को तापमान के वितरण में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाने वाले तत्वों के रूप में पहचाना गया है।तापीय प्रतिलोमन का भी गहराई से अध्ययन किया गया है, जिसमें इसकी उत्पत्ति, प्रकार और प्रभावों को समझाया गया है। इसके अलावा, तापीय प्रतिलोमन के कारण उत्पन्न होने वाले प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों पर भी चर्चा की गई है। कुल मिलाकर, इस अध्याय में तापमान, इसके वितरण और तापीय प्रतिलोमन के व्यापक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया गया है।

4.17 बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1. पृथ्वी की ऊर्जा का प्राथमिक स्त्रोत क्या है?

   (क) भू तापीय ऊर्जा **(ख)** सौर विकिरण **(ग)** महासागरीय तरंग **(घ)** वायुमण्डलीय दाब

2. ताप वितरण में कौन सा कारक सबसे महत्वपूर्ण है।

(क) तुंगता **(ख)** महासागरीय लवणता **(ग)** वायु वेग **(घ)** आर्द्रता

3. दिन के किस समय में अधिकतम तापमान होता है।

(क) सुबह **(ख)** शाम **(ग)** दोपहर **(घ)** दोपहर के बाद

4. बादल सतह तापमान को किस प्रकार प्रभावित करता है।

(क) तापमान बढ़ जाता है **(ख)** तापमान पर कोई प्रभाव नहीं

(ग) तापमान कम हो जाता है **(घ)** तापीय प्रतिलोमन

5. स्थानीय तापमान को कौन सबसे अधिक प्रभावित करता है।

(क) अक्षांश **(ख)** ऊंचाई **(ग)** देशान्तर **(घ)** वायुमण्डलीय दाब

6. तापीय प्रतिलोमन के लिए क्या आवश्यक नहीं है।

(क) स्वच्छ आकाश **(ख)** शान्त पवन **(ग)** लम्बी रात **(घ)** चक्रवात

7. दिन के समय कुहरा किस स्थान पर होता है?

(क) स्थीलय भाग में **(ख)** समुद्री भाग में **(ग)** रेगिस्तान में **(घ)** मैदानी भागों में

8. सामान्य ताप पतन दर प्रति **1000** मीटर पर कितना होता है?

(क) 6.5°C **(ख)** 5.5°C **(ग)** 4.5°C **(घ)** 7.5°C

4.18 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. तापीय प्रतिलोमन व इसके प्रकारों को स्पष्ट करें।
2. तापमान के वितरण को प्रभावित करने वाले कारको का उल्लेख करें।
3. तापान्तर क्या है? दैनिक, मौसमी व वार्षिक तापान्तर को स्पष्ट करें।
4. वायुमण्डल में ऊष्मा स्थान्तरण की विधियों का उल्लेख करें।
5. एडियोबेटिक विधि द्वारा वायुमण्डल के गर्म व ठण्डा होने की विधि को बताए।

4.19 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

1.डी. एस. लाल – जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज

2.डा. सविंद्र सिंह – जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पुस्तक भवन, प्रयागराज

3.डा. वाई. आई. सिंह – जलवायु विज्ञान, एशियन ह्यूमेनटिस प्रेस (AHP)

4.डा. चतुर्भुज मामोरिया – डा. एम. एस. सिसोदिया – जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, साहित्य भवन कानपुर

इकाई–5

वायुदाबः अर्थ, वायुदाब पेटिया, वायुदाब प्रवणता, वायुदाब पेटियो का खिसकाव।

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 वायुदाब अर्थ एवं परिभाषा

5.4 वायुदाब को प्रभावित करने वाले कारक

5.5 दाब प्रवणता

5.6 वायुदाब के प्रकार

5.7 वायुदाब का क्षैतिज वितरण

5.8 वायुदाब का समदाबी क्षैतिज वितरण वायुदाव के प्रकार

5.9 सारांश

5.10 बोध प्रश्न

5.11 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

5.1 प्रस्तावनाः–

पृथ्वी के भौतिक तत्वों का मानव जीवन पर विशेष प्रभाव होता है कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि मानव जीवन का अस्तित्व ही भौतिक तत्वों द्वारा स्थापित है। प्रकृति के भौतिक तत्वों (घटकों) को तीन प्रमुख भागों स्थल, जल तथा वायु मण्डलों में विभाजित किया जाता है। वायु एवं इससे सम्बन्धित सभी तत्वों का अध्ययन जलवायु विज्ञान में किया जाता है। वायु इस प्रकृति का ऐसा घटक है जो जीवों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है।

वायु एक भौतिक तत्व है जो विभिन्न गैसों के यान्त्रिक मिश्रण से बनती है। इस वायु का पृथ्वी के सापेक्ष जब अध्ययन किया जाता है तो पता चलता है कि वायुमण्डल में पृथ्वी पर वायु का कुछ निश्चित भार होता है जो कि पृथ्वी से वायुमण्डल की ऊपरी परत तक के वायु के स्तम्भ (प्रति की इंच अथवा सेमी0) के रूप में आंका जाता है। इस स्तम्भ के भार को वायुभार अथवा वायुदाब कहते है। यह वायुदाब हवाओं के चलने के लिए उत्तरदायी होता है। कहा जाता है कि–

'हवाएँ वायुदाब की विभिन्नता का परिणाम होती है। वायु दाब में अन्तर हवाओं के चलने का प्रमुख कारण होता है।'

पृथ्वी पर वायु दाब विभिन्न पेटियों में पाया जाता है जो विभिन्न गुणों वाली होती है (प्रमुख रूप से उच्च एवं निम्न वायुदाब) वायु दाब का हमारे जीवन में प्रत्यक्ष प्रभाव होता है। कभी–कभी चक्रवातीय दशाएँ (भारत में अरब सागर एवं बंगाल की खाड़ी में) उत्पन्न होती है कि इन चक्रवातों के आने का कारण विभिन्न जलीय भागों में निम्न अथवा उच्च वायुदाब की स्थिति को बन जाना है।

प्रस्तुत इकाई में हम वायुदाब के अर्थ परिभाषा एवं प्रकार तथा उसके विश्व वितरण का अध्ययन करेंगे।

5.2 उद्देश्यः– (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1– शिक्षार्थियों को वायुदाब से अवगत कराना।

2— वायुदाब के प्रकारों एवं पेटियों के मानव जीवन पर प्रभाव से शिक्षार्थियों को अवगत कराना।

3— वायुदाब के कारण चलने वाली पवनों एवं उनके प्रभावों का मूल्यांकन करना।

4— वायुदाब के परिवर्तन से उत्पन्न पर्यावरणीय (मौसमी) घटनाओं के प्रति सचेत करना।

5— विभिन्न प्रकार की पवनों के चलने के कारणों को स्पष्ट करना।

5.3 वायुदाब अर्थ एवं परिभाषाः—

वायुदाब, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट होता है कि किसी इकाई क्षेत्र पर पड़ने वाला वायु का दाब है जो विभिन्न गैसों के मिश्रण से बनती है। वायु पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल के कारण पृथ्वी पर दबाव डालती है। किसी स्थान का वायुमण्डलीय भार वहाँ पर धरातल से लेकर वायुमण्डल की उच्चतम सीमा तक फैले हुए वायु स्तम्भ का भार होता है। कहा जा सकता है कि—

''धरातल या सागर तल पर क्षेत्रफल की प्रति इकाई के ऊपर स्थित वायुमण्डल की समस्त परतों के पड़ने वाले भार को वायुदाब कहा जाता है।''

स्मरणीय :— वायुदाब की खोज सर्वप्रथम ग्यूरिक्स (Guericks) ने सन् 1651 में की थी।

1 मिलीबार = 1 ग्राम भार*

सागर तल से ऊँचाई बढ़ने के साथ—साथ वायुदाब में कमी होती जाती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सागर तल (1013.25 mb) पर वायुदाब सर्वाधिक होता है। वायुदाब का मापन इंच, सेमी0, मिलीबार (mb) में किया जाता है। तथा वायुदाब की गणना करने वाले यन्त्र को बैरोमीटर कहा जाता है। जो कि दो प्रकार का होता है—

I - फोर्टिन, बैरोमीटर

II - एनरायड बैरोमीटर

बैरोमीटर में वायुमण्डलीय दाब अर्थात् नली में पारे (Mercury) की ऊँचाई मापते हैं। बैरोमीटर में 0.1 इंच ऊँचा पारा 3.4 मिलीबार (mb) को दर्शाता है। फिंच एवं ट्रिवार्था ने अपनी पुस्तक Elements of Geography (एलीमेन्टस आफ ज्योग्राफी) में इंच तथा मिलीबार में सम्बन्ध को निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया हैं—

इंच	**मिलीबार (mb)**
27	914.3
28	948.2
28.50	965.1
29	982.1
29.50	999.00
29.75	1007.5
29.92	1013.2
30.00	1015.9

30.25	1024.4

वैसे तो भौगोलिक दृष्टिकोण से जलवायु के प्रमुख घटक के रूप में तापमान, वर्षा और आर्द्रता को महत्वपूर्ण माना जाता है परन्तु वायुदाब का महत्व कम नहीं है। इसका विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग महत्व होता है। वायु के चलने का प्रमुख कारण वायुदाब में अन्तर ही है। ऊँचाई के साथ वायुदाब में अन्तर (कमी) होने के कारण उच्च पर्वतीय प्रदेशों में मनुष्य न तो ठीक से सांस ले सकता है बल्कि उसका रक्त–चाप भी असंतुलित हो जाता है। निरन्तर ऊँचाई के साथ वायुदाब में कमी के कारण पर्वतीय चोटियों पर पर्वतारोहियों को बेहोशी, बमन अथवा दिल की धड़कनों, स्वास सम्बन्धी बीमारी हो जाती है। अधिक ऊँचाई पर जाने नाक एवं कान तथा आँखों से खून आने लगता है तथा घुटन बढ़ने लगती है। इस प्रकार वायुदाब का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

वायुदाब एक गतिमान घटक है। यह कभी कम तो कभी अधिक हो जाती है। सागर तल पर औसत वायुदाब 1013.25 mb होता है जो स्थाई नहीं होता बल्कि कम व अधिक होता रहता है। सामान्य तह सागरीय सतह का वायुदाब 982 mb से 1033 mb के बीच में घटता बढ़ता है परन्तु कभी–कभी चरम स्थिति उत्पन्न हो जाती है। 31 दिसम्बर 1968 में साइबेरिया के आगाता नामक स्थान पर अधिकतम वायुदाब (1083.8 mb) अकिंत किया गया है।जबकि 12 अक्टूबर 1979 ई0 में प्रशान्त महासागर के 'गुआम' के पास न्यूनतम वायुदाब (870 mb) दर्ज किया गया।

वायुदाब एवं तापमान में विपरीत सम्बन्ध होता है अर्थात् जब तापमान अधिक होता है तो वायुदाब निम्न होता है तथा जब तापमान निम्न होता है तो वायुदाब उच्च होता है। तथा हवायें उच्च वायुदाब से भिन्न वायुदाब की ओर चलती हैं। पवनों के चलने का प्रमुख कारण वायुदाब में अन्तर का होना है। ग्लोब पर चलने वाली विभिन्न पवनें पुरवा, पछुवा, स्थानीय आदि वायुदाब में अन्तर उत्पन्न होने के कारण चलती है। विभिन्न प्रकार के चक्रवातों (उष्ण कटिबन्धीय एवं शीतोष्ण कटिबन्धीय) के आने में भी वायुदाब की मुख्य भूमिका होती है।

मौसम व जलवायु विज्ञान के अन्तर्गत वायु को एक भौतिक तत्व माना जाता है, जो विभिन्न गैसों का यान्त्रिक मिश्रण है। वायु का अपना भार होता है फलतः वह अपने भार द्वारा धरातल पर दबाव डालती है। 'धरातल की सतह या सागर तल पर प्रति इकाई क्षेत्र पर स्थित वायुमण्डल की समस्त परतों के पड़ने वाले समस्त भार को वायुदाव कहते हैं।' वस्तुतः सागर तल पर प्रति इकाई क्षेत्र पर वायुदाब, बल अथवा सम्पूर्ण वायु स्तम्भ के द्रव्यमान के भार को प्रदर्शित करता है। सबसे अधिक वायुदाब सागर तल पर (प्रति वर्ग इंच पर 14.7 पौण्ड या प्रति वर्ग से०मी० पर 1034 ग्राम, लगभग 1 कि०ग्रा०) होता है। मानव द्वारा इस भार का आभास इसलिए नहीं हो पाता क्योंकि इसके शरीर में विद्यमान हवा उतनी ही मात्रा में बाहर की तरफ दबाव डालती है। फलतः वाह्य व आन्तरिक वायुदाव का सन्तुलन बना रहता है। उँचाई के साथ वायु के विरल होते जाने के कारण वायुमण्डलीय दाब कम होता जाता है। फलतः जब हम पर्वतों या पहाड़ियों के सहारे ऊपर चढ़ते हैं या वायुयान की यात्रा करते हैं तो हमारे शरीर में स्थित वायु द्वारा बाहर की ओर डाले गये वाह्य दबाव तथा वायुमण्डल द्वारा अन्दर की ओर डाले गये वायु दाव के मध्य असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इनके प्रभाववश हमारे नाक–कान से खून आने लगता है और घुटल बढ़ जाती है। इस स्थिति के पीछे आक्सीजन की कमी का भी हाँथ रहता है क्योंकि बढ़ती उँचाई के साथ आक्सीजन की मात्रा भी कम होती जाती है।

वायुदाब की खोज सर्वप्रथम म्यूरिख ने 1761 ई० में की थी। इसे मापने के लिए सामान्य वायुदाब मापी, मरकरी बैरोमीटर, (फोर्टिन पैरो मीटर) निद्रव वायुदाबमापी, बैरोग्राफ एवं माइक्रोबैरोग्राफ आदि का उपयोग किया जाता है। बैरोमीटर में वायुदाव का ज्ञान पारे की उँचाई से किया जाता है। मरकरी बैरोमीटर में काँच की नली में 0. 1 इंच पारे की उँचाई 3.4 मिलीवार को प्रदर्शित करती है। उँचाई के साथ वायुदाब में प्रति 600 फीट (180 मीटर) पर 1 इंच या 3.4 मिलीवार का ह्रास होता है। यह स्थिति कतिपय हजार मीटर तक ही होती है क्योंकि अधिक उँचाई बढ़ने पर वायु के हल्के व विरल हो जाने पर वायुदाब बड़ी तेजी से कम होता है। सामान्यतया 1800 फीट की उँचाई (540 मीटर) तक वायुमण्डल का आधा दाब स्थित होता है। यह भी देखा गया है कि मानक वायुदाब में स्थानिक (क्षैतिज व लम्बवत रूपों में) कालिक परिवर्तन भी होते हैं। कालिक परिवर्तन में वायुदाब की दैनिक तथा

ऋत्विक भिन्नता महत्वपूर्ण होती है। सागर तल पर मानक वायुदाव (45^0 अक्षाँश व 15^{0c} तापमान पर) 1013.25 मिलीवार है जो 5 कि०मी० की ऊँचाई पर घटकर 540.48 मिलीबार हो जाता है। सामान्यतया क्षेत्रीय स्तर पर सागर तल पर वायुदाव में 982 से 1033 मिलीवार के मध्य परिवर्तन की स्थिति बनी रहती है। कभी–कभी चरम स्थिति भी बन जाती है जैसे 31 दिसम्बर 1968 को रुश के अगाता में 1083.8 मिलीवार व 12 अक्टूबर 1978 को प्रशान्त महासागर में गुआम के पास 870 मिलीवार वायुदाव आकलित किया गया है। वायु के तापमान व वायुदाव में विपरीत सम्बन्ध होता है। यदि तापमान में वृद्धि होती है तो वायुदाव में कमी एवं जब (यदि) तापमान में कमी होती है तो वायुदाव में वृद्धि होती है। अधिकतम वायुदाब 10 बजे प्रातः व 10 रात्रि में तथा न्यूनतम वायुदाब प्रातः 4 बजे व सायं 4 बजे आकलित किया जाता है।

5.4 वायुदाब को प्रभावित करने वाले कारक (FACTORS AFFECTING AIR PRESSURE) –

वायुदाब को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं।

(1) उँचाई (ALTITUDE)

(2) तापमान (TEMPERA TURE)

(3) जलवाष्प (WATER VAPOUR)

(4) पृथ्वी का धूर्णन (ROTATION OF THE EARTH)

(5) दैनिक परिवर्तन की गति (DUIRNAL CHANGE)

(1) उँचाई (ALTITUDE) –

धरातल पर वायुमण्डल की सभी परतें दबाव डालती हैं। यह स्वाभाविक हैं कि नीचे की परतों पर ऊपरी परतों का दबाव पड़ता है जिसके कारण निचली परतें अधिक सघन हो जाती है तथा उँचाई के साथ वायु विरल होती जाती है। फलतः निचली परत में सर्वाधिक भार व दाब होता है परन्तु यह बढ़ती उँचाई के साथ कम होता जाता है। सामान्यतः प्रति 1000 फीट की उँचाई पर 34 मिलीबार की दर से गिरावट होती है, जो निचली परतों में ही होती है। क्योंकि अधिक उँचाई पर वायु के हल्के व विरल होने से वायुदाब तेजी से कम होने लगता है। सामान्यतः 1800 फीट की उँचाई तक वायुमण्डल का आधा दाब स्थित होता है। उँचाई व वायुदाब के सम्बन्ध को तालिका में प्रदर्शित किया गया है।

समुद्र तल से उँचाई (फीट)	**वायुदाब मिलीबार में**	
समुद्रतल	29.92	1013.25
1000	28.86	976.5
2000	27.82	942.0
3000	26.81	910.0
4000	25.84	875.1
6000	23.94	812.0
10000	20.58	696.8
18000	14.94	506.0
40000	–	187.0

वायुदाब का ऊर्ध्वाधर वितरण

(2) तापमान (TEMPERATURE) –

तापमान व वायुदाब में परस्पर विपरीत सम्बन्ध होता है। वस्तुतः जब तापमान में वृद्धि होती है तो वायुदाव कम और जब तापमान में ह्रास होता है तो वायुदाब अधिक हो जाता है। वस्तुतः तापमान अधिक होने पर वायु गर्म होकर प्रसरित होती है जिससे उसका आयतन बढ़ जाता है पर भार कम हो जाता है। जबकि तापमान कम होने पर वायु ठंढ़ी एवं संकुचित हो जाती है जिससे उसका घनत्व बढ़ जाता है, आयतन कम हो जाता है तथा भार अधिक हो जाता है। इसी कारण से भूमध्यरेखीय प्रदेशों में उच्च तापमान के कारण निम्नवायुदाव जबकि ध्रुवीय प्रदेशों में कम तापमान के कारण उच्च वायुदाव की स्थिति रहती है।

(3) जलवाष्प (WATER VAPOUR) –

वायुमण्डल की निचली परतों में विद्यमान जलवाष्प गैसों में सबसे हल्की होती है। फलतः शुष्क वायु का भार अधिक तथा नम वायु का भार कम होता है। शरद ऋतु की अपेक्षा वर्षाऋतु की वायु में जलवाष्प की मात्रा अधिक होने के कारण, वायु हल्की होती है। स्पष्ट है कि वर्षाऋतु में वायुदाब कम व शीतकाल में अधिक होता है। इसी प्रकार महासागरों के उपर जलवाष्प की अधिकता रहने से स्थलीय भागों की अपेक्षा वायुदाब निम्न होता है।

(4) पृथ्वी का घूर्णन (ROTATION OF THE EARTH) –

वस्तुतः पृथ्वी की दैनिक गति या घूर्णन से उद्‌भूत अपकेन्द्रीय बल के फलस्वरूप उपध्रुवीय क्षेत्रों से हवा दूर होती जाती है जिससे वहाँ पर निम्न वायुदाब रहता है। जबकि दूसरी ओर स्थितिजिक ऊर्जा (गुरुत्व बल) के कारण उपध्रुवीय व भूमध्यरेखीय क्षेत्रों से ऊपर उठी हुई वायु पुनः अश्व अक्षाँशों (30^0 से 35^0 अक्षाँशों के मध्य) से नीचे उतरने लगती है जिससे वहाँ उपोष्ण उच्च वायुदाव का क्षेत्र बन जाता है।

(5) दैनिक परिवर्तन की गति (DUIRNAL CHANGE) –

दिन व रात्रि के समय वायुमण्डलीय दाब व ताप में होने वाले परिवर्तनों से दैनिक परिवर्तन की गति का सीधा सम्बन्ध है, जो स्थिति एवम दशा के अनुरूप अलग–अलग स्थान व समय के साथ परिवर्तित होती रहती है। वायुदाब का दैनिक परिवर्तन दिन के समय महाद्वीपों के आन्तरिक भागों व रात्रि के समय महासागरों व तटीय भागों में अधिक होता है। इसी प्रकार दिन में घाटियों में मैदानी भागों में निम्न वायु दाब तथा पर्वतों पर उच्च वायुदाब रहता है। रात्रि के समय पर्वतीय भागों में वायुदाब कम तथा मैदानी भागों व घाटियों में उच्च वायुदाव रहता है।

सूर्य से धरातल को प्राप्त होने वाला तापमान पृथ्वी को 10 बजे से सूर्यास्त तक प्राप्त हो जाता है जिसे पृथ्वी रात्रि में विसर्जित करती है। जिस तरह सूर्यातप तापक्रम के मध्य अन्तराल होता है उसी प्रकार उच्च तापमान व निम्न वायुदाब के बीच कुछ घण्टों का अन्तर रहता है। वस्तुतः दोपहर 12 बजे सर्वाधिक सूर्यातप होता है परन्तु सर्वाधिक तापमान 3 बजे होता है और निम्नतम वायुदाब 6 बजे होता है। वायुदाब के इस दैनिक परिवर्तन को बैरोमेट्रिक उतार–चढ़ाव कहते हैं। बैरोमेट्रिक के परीक्षणों से यह ज्ञात होता है कि प्रतिदिन वायुदाब दिन में 10 बजे से सांय 6 बजे तक कम होता है जबकि रात्रि 10 बजे से प्रातः 10 बजे तक बढ़ता है। वायुदाब का यह उतार–चढ़ाव भूमध्य रेखीय क्षेत्रों में अधिक होता है और ध्रुवों की तरफ कम होता जाता है। जबकि 60^0 उ० अक्षाँश से ध्रुवों की ओर वायुदाब में विशेष अन्तर नहीं पाया जाता है।

5.5 दाब प्रवणता (PRESSURE GRADIENT) –

विभिन्न मान वाली समदाब रेखाओं के मध्य वायुदाब के कम होने की दिशा के सन्दर्भ में दाब प्रवणता को जाना जाता है। वस्तुतः उच्च से निम्न वायुदाब की ओर के ढाल को ही दाब प्रवणता कहा जाता है। उच्च व निम्न वायुदाब शब्दों का उपयोग सदैव सापेक्षता के अर्थ में किया जाता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि 'दाब प्रवणता' दो स्थानों के मध्य प्रति इकाई क्षैतिज दूरी पर वायुदाब के कम होने की दर को प्रदर्शित करता है। यह सदैव उच्च से निम्न वायुदाब की तरफ तथा समदाब रेखा के लम्बवत होता है। दाब प्रवणता पर वायु की गति आधारित होती है। सन्निकट रूप में स्थित समदाब रेखाऐं तीव्र दाब प्रवणता व दूर–दूर स्थित समदाब रेखाऐं मन्द प्रवणता की द्योतक होती हैं। दाब प्रवणता को बैरोमेट्रिक ढाल के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

चित्र

5.6 वायुदाब के प्रकार (TYPES OF AIR PRESSURE) –

दो वर्गो (अ–उच्च वायुदाब व–निम्न वायुदाब) में वर्गीकृत किया जाता है। इन दोनों प्रकार के वायुदाब को समदाब रेखाओं की आकृति से पहचाना जाता है। बन्द समदाब रेखाओं द्वारा प्रदर्शित उच्च एवं निम्न वायुदाब की अवधि व आकार में भिन्नताएं होती हैं जिन्हें उच्च व निम्न वायुदाब तन्त्र कहते हैं। इस उच्च व निम्न वायुदाब तन्त्र को निम्न 03 उपकोटियों में विभाजित किया गया है।

(1) अर्द्ध स्थायी वायुदाब तन्त्र –

यह वृहद स्तरीय घटना के रूप में जाने जाते हैं एवं बड़े भूभाग को आच्छादित करते हैं। मौसम मानचित्रों पर प्रदर्शित (मासिक, मौसमी एवं वार्षिक) अवस्थिति के आधार पर मौसम सम्बन्धी दशाओं का ज्ञान होता है।

(2) अस्थायी वायुदाब तन्त्र

यह भूमध्यरेखीय एवं अल्प समय वाले होते हैं। इनकी अवधि एक दिन से कम की होती है। इनके द्वारा दैनिक मौसम की घटनाओं का बोध होता है। आकार एवं अवस्थिति के निरन्तर परिवर्तित होते रहने के कारण यह दैनिक मौसम दशाओं का बोध कराते हैं।

(3) गतिशील वायुदाब तन्त्र – यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर गतिशील रहते हैं।

5.7 वायुदाब का क्षैतिज वितरण (HORIZONTAL DISTRIBUTION OF AIR PRESSURE) –

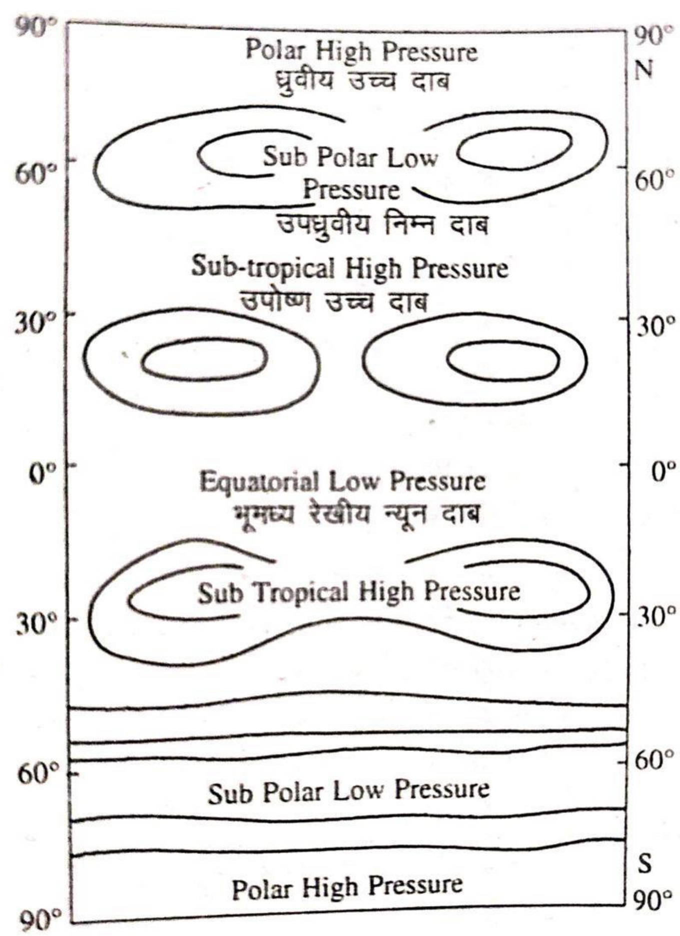

चित्र 5.4 : वायुदाब का सामान्य आदर्श वितरण।

वायुदाब के अक्षाँशीय वितरण को ही क्षैतिज वितरण कहा जाता है। समान वायुदाब प्रदेशों को वायुदाब पेटियों के रूप में जाना जाता है। ग्लोब पर वायुदाब के वितरण का अध्ययन समदाब रेखाओं के द्वारा किया जाता है। यह कल्पित रेखाऐं होती हैं और (समुद्र तल पर समायोजित) समान वायुदाव वाले स्थानों को मिलान करते हुए खींची जाती हैं। सामान्यतः यह देखा गया है कि ग्लोब पर उच्च तथा निम्न वायुदाब का सुनिश्चित प्रणाली के रूप में वितरण है। हमारी आवर्तनशील पृथ्वी का तल समाँगी (सभी स्थल या सभी जल) है। जिस पर वायुदाब का वितरण क्रमबद्ध मेंखला के रूप में मिलता है तथापि भूतल पर जल एवं स्थल के असमान वितरण के कारण तापक्रम तथा वायुदाब के वितरण में जटिलता देखने को मिलती है। स्थलखण्ड की प्रधानता के कारण उ० गोलार्द्ध में वायुदाब में मेखलाओं की न मात्र निरन्तरता भंग होती है वरन् इनके अनेक केन्द्र भी होते हैं। जबकि जल खण्ड की अधिकता के कारण द० गोलार्द्ध में अविछिन्न वायुदाब की मेखलाओं का विस्तार मिलता है।

धरातल पर वायुदाब का भूमध्य रेखा से लेकर ध्रुवों तक नियमित वितरण नहीं पाया जाता है। भूमध्य रेखा के पास तापमान की अधिकता के कारण निम्न वायुदाब मिलता है जबकि कर्क व मकर रेखाओं के निकट उच्च वायुदाब व रहता है ध्रुवों की तरफ तापमान में कमी के कारण वायुदाब में बदलाव होना चाहिए परन्तु 60^0 अक्षाँशों के पास निम्न वायुदाब रहता है। वस्तुतः वायुदाब की पेठियों की उत्पत्ति का कारण पूर्णतः तापीय नहीं रहता बल्कि गतिक कारण भी महत्वपूर्ण होता है। पृथ्वी पर वायुदाब की कुल सात पेटियाँ हैं जिन्हें उत्पत्ति प्रक्रिया के आधार पर निम्न दो कोटियों में विभाजित किया जा सकता है –

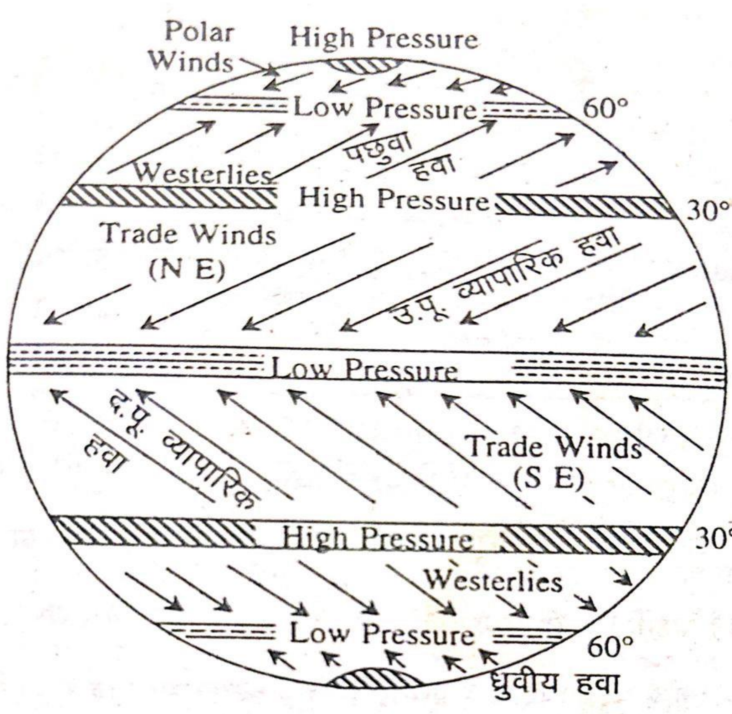

वायु एवं वायुदाब की पेटियां

A ताप जन्य वायुदाब पेटियां (THERMALPRESSURE BELT) –

इसमें भूमध्यरेखीय निम्न वायु दाब पेटी एवं ध्रुवीय उच्च वयु दाब पेटी को सम्मिलित किया जाता है, B. गति जन्य वायुदाब पेटी (DYNAMICALLY INDUCED PRESSURE BELT) इसके अन्तर्गत उपोष्ण कटिबन्धीय उच्च वायुदाब एवं उपध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी को सम्मिलित किया जाता है। इस आधार पर विभिन्न वायुदाब पेटियों का विवरण निम्नवत है।

(1) भूमध्यरेखीय निम्न वायुदाब पेटी (EQUATORIAL LOW PRESSURE BELT) –

यह पेटी भूमध्य रेखा के दोनों तरफ 5^0 उ० तथा द० अक्षाँशों के मध्य प्रसरित है परन्तु यह स्थिति स्थायी

नहीं रहती है। सूर्य के ऋत्विक उत्तरायण व दक्षिणायन होने के कारण यह पेटी क्रमशः उत्तर व दक्षिण को स्थानान्तरित हो जाती है। जुलाई माह में यह पेटी अफ्रीका में लगभग 20^0 उ० अक्षाँश तथा एशिया में कर्क रेखा के लगभग 30^0 उत्तर तक प्रसरित है। जबकि जनवरी माह में इस पेटी का विस्तार द० की ओर हो जाता है। द० महाद्वीपों व द० हिन्दमहासागर पर इसका विस्तार क्रमशः 10^0 व 20^0 द० अक्षाँश तक हो जाता है। यहाँ सम्पूर्ण वर्ष सूर्य की किरणें लम्बवत पड़ती है तथा दिन–रात बराबर होता है। फलतः उच्चतापमान रहता और हवाएं गर्म होकर फैलती हैं, हल्की होकर ऊपर उठती हैं जिससे सदैव निम्न वायुदाब की स्थिति बनी रहती है। वस्तुतः यह निम्न वायुदाब की पेटी प्रत्यक्ष रूप में तापमान से सम्बन्धित है। यह क्षेत्र धरातल पर क्षैतिजीय प्रवाह लगभग शून्य होने के कारण शान्त वातावरण रहता है। इसी कारण इस पेटी को डोलड्रम कहा जाता है। धरातल से कुछ उँचाई पर विपरीत पवन प्रवाह सक्रिय होने के कारण यह शान्त वातावरण भंग हो जाता है।

(2) उपोष्ण उच्च वायुदाब पेटियाँ (SUB-TROPICAL HIGH PRESSURE BELTS) –

यह पेटी भूमध्य रेखा के दोनों ओर 30^0 से 35^0 अक्षाँशों के मध्य प्रसरित है। यहाँ वर्ष में 02 माह छोड़कर शेष सभी महीनों में उच्च तापमान रहता है। ग्रीष्म काल में यहाँ ग्लोब का सबसे अधिक तापमान अंकित किया जाता है। परन्तु यहाँ निम्न वायुदाब के स्थान पर उच्च वायुदाब पाया जाता है। वस्तुतः इस पेटी का उच्च वायुदाब पृथ्वी की दैनिक गति तथा वायु के अवतलन से सम्बन्धित है न कि तापमान से ज्ञातव्य हो कि यहाँ उच्च वायुदाब की स्थिति की प्रमुख कारण धरातल से कुछ उँचाई पर उपध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी तथा भूमध्य रेखीय निम्न वायुदाब पेटी के ऊपर प्रवाहित होने वाली वायुधाराओं का अपसरण व अवतलन है। यहाँ क्षैतिजीय हवाएं न चलकर ऊपर से नीचे की ओर वायुधारा प्रवाहित होती है। नीचे उतरती हुई वायु का घनत्व अधिक होता है जो ऐसी स्थिति का सृजन करती है। इस प्रकार यह उच्च वायुदाब गतिजन्य होता है। इस पेटी को अश्व अक्षाँश कहा जाता है। इसका यह कारण है कि 'प्राचीन काल में ब्रिटेन से आस्ट्रेलिया जाने वाला जहाज एक बार इस पेटी में फंस गया था जिसे बचाने के लिए इसके भार को कम करने के लिए घोड़ों को जहाज से उतारकर भारी संख्या में समुद्र में छोड़ दिया गया था। वास्तव में वायु शान्ति होने के कारण पाल युक्त जहाज आगे नहीं बढ़ पा रहा था।

(3) उपध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटियाँ (SUB-POLAR LOW PRESSURE BELTS) –

यह पेटी भूमध्य रेखा के दोनों ओर 60^0 से 65^0 अक्षाँशों के मध्य प्रसरित है। यहाँ सम्पूर्ण वर्ष कम तापमान होने के पश्चात भी निम्न वायुदाब की स्थिति रहती है। इस पेटी में भी निम्न वायुदाब का तापमान से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता है। वस्तुतः पृथ्वी की घूर्णन गति के फलस्वरूप इन अक्षाँशों से वायु प्रसरित होकर स्थानान्तरित हो जाती है फलतः गतिजन्य निम्न वायुदाब की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यह प्रक्रिया यद्यपि विषुवत रेखा पर अधिक प्रभावी होनी चाहिए परन्तु यहाँ तापमान इतना बढ़ जाता है कि पृथ्वी के धूर्णन से वायु के फैलने का कारण कम प्रभावी रहता है और यहाँ निम्न वायुदाब की स्थिति बन जाती है।

यह वायुदाब पेटी द० गोलार्द्ध में अधिक विकसित है और अधिक नियमित भी है परन्तु उ० गोलार्द्ध में इसकी नियमित होने का क्रम भंग हो जाता है। जिसका प्रमुख कारण उ० गोलार्द्ध में स्थल व द० गोलार्द्ध में जल भाग की अधिकता है। उ० गोलार्द्ध में वायुदाब की नियमित व सतत पेटियों के स्थान पर प्रशान्त महासागरीय अल्यूशियन द्वीपों तथा अटलांटिक महासागर में ग्रीन लैण्ड व आइसलैण्ड के समीपस्थ सुनिश्चित निम्न वायुदाब के केन्द्र विकसित हैं। उल्लेखनीय है कि उतरी गोलार्द्ध में महाद्वीपों तथा महासागरों के तापमान में ग्रीष्मकाल के समय अन्तर होने के कारण निम्न वायु की पेटी का क्रम भंग हो जाता है जबकि शीतकाल में इसी तापीय भिन्नता के कम रहने पर निम्न वायुदाब की पेटी प्रायः नियमित व सतत बनी रहती है। द० गोलार्द्ध में जल भाग की अधिकता से ग्रीष्म तथा शीतकालीन तापीय अन्तर कम होता है फलतः उपध्रुवीय निम्न वायुदाब की मेखला में क्रमबद्धता एवं नियमितता देखने को मिलती है।

(4) ध्रुवीय उच्च वायुदाब पेटी (POLAR HIGH PRESSURE BELT)–

यह पेटी दोनों गोलार्द्धों में ध्रुवीय क्षेत्रों में प्रसरित है। इन क्षेत्रों में अत्यधिक शीत के कारण वायुदाब उच्च रहता है जो तापजन्य होता है। सम्पूर्ण वर्ष ,तापमान हिमाँक बिन्दु से नीचे बने रहने के कारण यहाँ नियमित एवं सतत उच्च वायुदाब की स्थिति बनी रहती है। इन क्षेत्रों में तापीय एवं गतिक दोनों कारकों की सक्रियता रहती है। पृथ्वी घूर्णन के कारण वायु के बाहर की ओर फैलने से वायु परतों के पतला होने का प्रभाव तापीय कारक के कारण निस्प्रभावी हो जाता है। निष्कर्षत हम कह सकते हैं कि यहाँ उच्च वायुदाब का प्रमुख कारण सदैव निम्न तापमान

की स्थिति का होना है।

5.8 वायुदाब का समदाबी क्षैतिज वितरण वायुदाव के प्रकार

(ISOBARIC HORIZONTAL DISTRIBUTION OF AIR PRESSURE) –

समदाब रेखाएं मानचित्र पर वह काल्पनिक रेखाएं होती है जो सागरतल पर समान वायुदाब वाले स्थानों को मिलाते हुए खींची जाती है। वायुदाब के मौसमी तथा वार्षिक क्षैतिज वितरण का अध्ययन ग्लोब के ऊपर जुलाई तथा जनवरी की समदाब रेखाओं के द्वारा किया जाता है। जुलाई माह की समदाब रेखाएं ग्रीष्म कालीन एवं जनवरी माह की समदाब रेखाएं शीतकालीन वायुदाब के वितरण का प्रतिनिधित्व करता है। समदाब रेखाओं का मान मिलीबार में प्रदर्शित किया जाता है। इसका वर्ग अन्तराल 03 मिलीवार होता है। वायुदाब के मौसमी तथा वार्षिक क्षैतिज वितरण का अध्ययन निम्न रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है।

जनवरी का वायुदाब :

दक्षिणी गोलार्द्ध पर जनवरी माह में सूर्य की किरणें सीधी पड़ती है जिसके फलस्वरूप भूमध्य रेखीय निम्न वायुदाब दक्षिण की ओर खिसक जाता है। उ० गोलार्द्ध में शरद काल का मौसम हो जाता है जिससे उच्च वायुदाब का केन्द्र मध्य एशिया (1032 मिलीबार), कैलीर्फोनिया तट, कोलम्बिया पठार, सहारा मरूस्थल (1020 मिलीबार) तथा अटलांटिक महासागरीय क्षेत्र में अफ्रीका में उ०प० तट के निकट (1023 मिलीबार) में पाया जाता है।

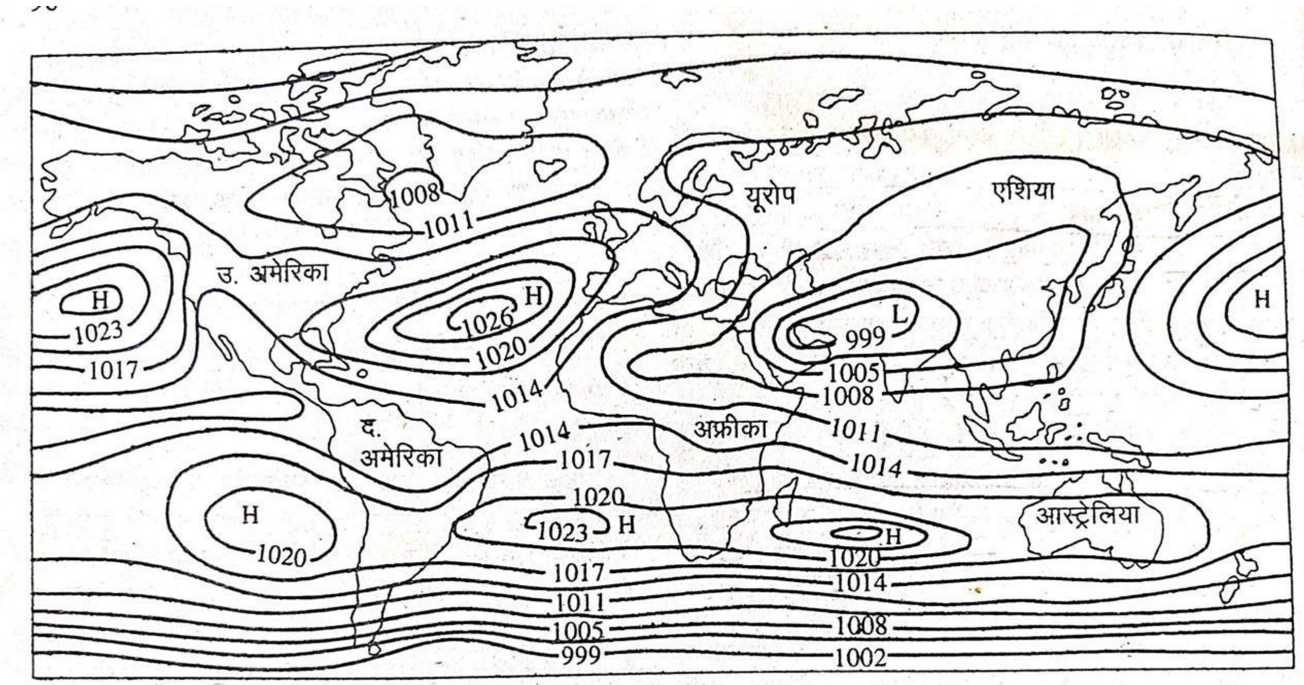

जनवरी की समदाब रेखायें तथा ग्रीष्मकालीन वायुदाब का विश्व वितरण ; समदाब रेखाओं का मान मिलीबार, mb में है।

द० गोलार्द्ध में उच्च वायुदाब का केन्द्र द० अटलांटिक व हिन्द महासागर (1020 मिलीबार) तथा पश्चिमी प्रशान्त महासागर (1017 मिलीवार) पर रहता है। उ० गोलार्द्ध में आइसलैण्ड द्वीप (996 मिलीबार) व अल्यूशियन द्वीप (1002 मिलीबार) के समीप निम्न वायुदाब की स्थिति बनी रहती है। द० गोलार्द्ध में निम्न वायुदाब का केन्द्र भूमध्यरेखा के निकट द० अमेरिका, अफ्रीका, आष्ट्रेलिया तथा पूर्वी द्वीप समूह के आन्तरिक भागों में केन्द्रित रहता है।

जुलाई का वायुदाब :

उत्तरी गोलार्द्ध पर जुलाई माह में सूर्य की किरणें लम्बवत पड़ती है फलतः भूमध्यरेखीय निम्न वायुदाब पेटी सूर्यातप के साथ–साथ भूमध्यरेखा से उत्तर की ओर खिसक जाती है जिसका प्रभाव उससे सम्बन्धित समस्त वायुदाब पेटियों पर पड़ता है। आस्ट्रेलिया, उपोष्ण उच्च वायुदाब का प्रमुख केन्द्र रहता है जो द० गोलार्द्ध में अधिक

सक्रिय रहता है। उ० यूरेशिया,उ० अमेरिका व उ० प्रशान्त महासागर पर उच्च वायुदाब केन्द्रित रहता है। द० गोलार्द्ध में उपध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी अविछिन्न रहती है परन्तु उ० गोलार्द्ध में वह अनेक छोटे केन्द्रों में खण्डित हो जाती है। उ० अमेरिका का द०प० भाग व मध्य एशिया अत्यधिक तापमान के कारण इतने सक्रिय रहते हैं कि उपोष्ण उच्च वायुदाब पेटी की क्रमबद्धता भंग हो जाती है और वह कमजोर उच्च वायुदाब कोशिकाओं में विखण्डित हो जाती है।

5.9 सारांशः–

वायुदाब का अध्ययन, जलवायु एवं मौसम के विषय में जानकारी के लिए परम आवश्यक है। इस हेतु प्रस्तुत इकाई में वायुदाब के विभिन्न घटकों, परिभाषा, प्रकार प्रभावित करने वाले कारकों एवं इनके वितरण का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इससे वायुदाब सम्बन्धी तत्वों की जानकारी मिल जाती है। वायुदाब के प्रभाव से आने वाली विभिन्न प्रकार की वायु एवं चक्रवातीय दशाओं से जनमानस को बचने के लिए तैयार करेगी। प्रस्तुत इकाई शिक्षार्थियों के वायुमण्डल सम्बन्धी जानकारी में वृद्धि करेगी।

5.10 बोध प्रश्नः–

दीर्घ उत्तरी (निबन्धात्मक) प्रश्न :– Long Answer type Question

प्र0 1 वायुदाब क्या है? भू पृष्ठ पर इसके वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।

प्र0 2 वायुदाब से आप क्या समझते है? वायुदाब की विभिन्न पेटियों का सचित्र वर्णन कीजिए।

प्र0 3– वायुदाब को प्रभावित करने वाले कारकों का उल्लेख करते हुए इसके समदाब रेखीय वितरण का सचित्र वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरी प्रश्न :– Short Answer type Questions

प्र0 1 वायुदाब क्या है? परिभाषित करते हुए इसके प्रभावों का वर्णन कीजिए।

प्र0 2 विश्व में कितनी वायुदाब पेटियाँ है? सचित्र वर्णन कीजिए।

प्र0 3 जनवरी माह के वायुभार रेखाओं एवं उनके विस्तार का सचित्र प्रदर्शन कीजिए।

प्र0 4 कौन–कौन से कारक वायुदाब को प्रभावित करते है? वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नोत्तर :– Objective type Question Answer

प्र0 1 मिलीबार एक इकाई है–

(i) वायुताप की (ii) वायुआर्द्रता की

(iii) वायुदाब की (iv) वायुवेग की

प्र0 2 वायुदाब मापने का यन्त्र है–

(i) थर्मामीटर (ii) बैरोमीटर

(iii) हाइग्रोमीटर (iv) एनीमोमीटर

प्र0 3 समुद्र तल पर औसत वायुदाब कितना होता है?

(i) 1013.25mb (ii) 914.3 mb

(iii) 948.2 mb (iv) 965 mb

प्र0 4 पृथ्वी पर वायुदाब पेटियों की संख्या कितनी है?–

(i) 3 (ii) 4 (iii) 5 (iv) 7

प्र0 5 विषुवत रेखीय प्रदेश (डोलड्रम) में किस प्रकार का वायुदाब पाया जाता है–

(i) उच्च वायुदाब (ii) निम्न वायुदाब

(iii) उच्च एवं निम्न वायुदाब (iv) इनमें से कोई नहीं

प्र0 6 30^0 से 35^0 अक्षांशों पर उच्च वायुदाब का प्रमुख कारण क्या है–

(i) तापमान (ii) पृथ्वी की घूर्णनगति

(iii) सूर्य की स्थिति (iv) आर्द्रता

5.11 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

1. डी. एस. लाल – जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज
2. डा. सविद्र सिंह – जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पुस्तक भवन प्रयागराज
3. डा. वाई. आई. सिंह – जलवायु विज्ञान, एशियन ह्यूमेनटिस प्रेस (AHP)
4. डा. चतुर्भुज मामोरिया – डा. एम. एस. सिसोदिया – जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, साहित्य भवन कानपुर

इकाई 6

पवन पेटिया, पवन पेटियों का अंक्षाशीय विस्थापन, त्रिकोशीय रेखांशिक परिसंचरण।

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 वायुमण्डलीय गतियाँ

6.4 पवन दिशा तथा तत्सम्बन्धी नियम

6.5 वायुमण्डलीय परिसंचरण

6.6 वायुमण्डल का कटिबन्धीय परिसंचरण

6.7 वायुदाब एवं वायु पेटियों का मौसमी स्थानान्तरण

6.8 वायुमण्डल का त्रिकोशीय देशान्तरीय परिसंचरण

6.9 सारांश

6.10 बहुविकल्पीय प्रश्न

6.12 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

6.11 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

वायुमंडलीय वायु पेटियाँ और उनका स्थानिक वितरण पृथ्वी के मौसम और जलवायु पर गहरा प्रभाव डालते हैं। वायुमंडलीय वायु पेटियाँ पृथ्वी के विभिन्न अक्षांशों पर स्थित होती हैं और इन्हें स्थिर उच्च और निम्न दबाव क्षेत्रों के रूप में पहचाना जाता है। ये पेटियाँ पृथ्वी की सतह पर हवा के प्रवाह और मौसम प्रणाली की दिशा को नियंत्रित करती हैं।वायु पेटियों का अक्षांशीय स्थानांतरण मौसमी और वार्षिक परिवर्तनों के कारण होता है। यह परिवर्तन जलवायु और मौसम की विविधता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिससे विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के मौसम प्रतिरुप उत्पन्न होते हैं। इस अध्याय में, हम वायुमंडलीय वायु पेटियों के बारे में जानेंगे और यह समझेंगे कि ये पेटियाँ पृथ्वी की सतह पर हवा के प्रवाह और मौसम प्रणाली की दिशा को कैसे नियंत्रित करती हैं। हम अक्षांशीय स्थानांतरण को समझेंगे, जो मौसमी और वार्षिक परिवर्तनों के कारण होता है और विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के मौसम प्रतिरुप को उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त, हम त्रिकोशिकीय वायु परिसंचरण का अध्ययन करेंगे, जिसमें हैडली, फैरेल और ध्रुवीय कोशिकाओं के माध्यम से हवा के प्रवाह का विश्लेषण करेंगे। यह अध्ययन हमें वायुमंडलीय प्रवाह की जटिलताओं और मौसम तथा जलवायु पर उनके प्रभाव को गहराई से समझने में मदद करेगा।

6.2 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य पवन पेटियों, उनके अक्षांशीय विस्थापन, और त्रिकोणीय परिसंचरण की अवधारणाओं की गहरी समझ प्रदान करना है। पवन पेटियाँ पृथ्वी की वायुमंडलीय परिसंचरण की महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं जो वैश्विक मौसम प्रतिरूप को प्रभावित करती हैं। इस अध्याय में पवन पेटियों की परिभाषा, उनके प्रकार, और उनके निर्माण की प्रक्रिया पर विस्तार से चर्चा की जाएगी। अक्षांशीय विस्थापन की अवधारणा को समझाया जाएगा, जिसमें यह देखा जाएगा कि कैसे पवन पेटियाँ पृथ्वी के विभिन्न अक्षांशों पर भिन्न होती हैं और इसके कारण विभिन्न मौसमीय प्रभाव उत्पन्न होते हैं। त्रिकोणीय परिसंचरण, जो उष्णकटिबंधीय और मध्यम अक्षांशों में पवन के स्थायी प्रणाली को दर्शाता है, पर भी ध्यान दिया जाएगा। इस अध्याय का उद्देश्य शिक्षार्थी को पवन पेटियों के वितरण, उनके अक्षांशीय विस्थापन, और त्रिकोणीय परिसंचरण के जटिल तंत्र की पूरी तरह से व्याख्या की क्षमता विकसित करना है, ताकि वे जलवायु विज्ञान की गहराई से जानकारी प्राप्त कर सकें।

6.3 वायुमण्डलीय गतियाँ (ATMOSPHERIC MOTIONS) –

वायुमण्डल एक प्रकार का विक्षुब्ध गैसीय स्वरूप होता है। वायुमण्डल के सन्दर्भ में गैसें तथा जलवाष्प गैस होता हैं तथा वायुमण्डलीय संघटन के प्रमुख घटक होते हैं। वस्तुतः गति के सन्दर्भ में गैसें एवं द्रव वस्तु के नियम वायुमण्डलीय गतियों के सम्बन्ध में भी लागू होते हैं। द्रव पदार्थ में मुख्य रूप से दो तरह की गतियाँ होती हैं – (1) स्तरीय/सतही प्रवाह (LAMINAR FLOW) (2) अशांत (TURBULENT FLOW) स्तरीय प्रवाह में अणु एक ही दिशा में गतिशील होते हैं जो सदैव आगे बढ़ते रहते है। अशांत प्रवाह में अणु समस्त दिशाओं में गतिशील होते हैं जिससे यह संवहनीय या भंवर का रूप ले लेते हैं। अशांत प्रवाह का जनन असमान वलों के कारण होता है। वलों की यह असमानता ताप व वायुदाब में भिन्नता के कारण उद्भूत होती है। न्यूटन की गति के नियम के अनुसार 'जो गतिमान है, ऐसी किसी भी वस्तु के वेग में परिवर्तन तब प्रभावी होता है जब क्रियाशील बल में परिवर्तन होता है और वह असन्तुलित हो जाता है। किसी भी वस्तु (वायुमण्डल के सन्दर्भ में) का वेग एवं उसकी दिशा तब तक स्थिर रहती है जब तक गति में वृद्धि करने वाला बल स्थिर व सन्तुलित अवस्था में रहता है। पृथ्वी के वायुमण्डल में वायु सदैव सीधी रेखा, समान वेग व एक ही दिशा में गतिशील नहीं होती। तापमान एवं वायुदाब की दशाओं में बार–बार परिवर्तन होने से वायु के प्रवाह मार्ग तथा गति में परिवर्तन होता रहता है। वस्तुतः वायु गति की वृद्धि उस पर कार्यरत सभी प्रकार के बलों के योग का प्रतिफल होता है। ऐसे बल निम्नांकित हैं –

(1) वायुदाब प्रवणता बल (PRESSURE GRADIENT FORCE)

(2) कोरिआलिस बल या पृथ्वी का विक्षेप बल (EARTH'S DEFLECTNE FORCE)

(3) पृथ्वी के घूर्णन का बल (EARTH'S ROTATIONAL FORCE) –

(4) घर्षण बल (FRICTIONAL FORCE)

(1) वायुदाब प्रवणता (PRESSURE GRADIENT) –

दो स्थानों के मध्य वायुदाब के अन्तर विशेष को वायुदाब प्रवणता कहते हैं। वायुदाब एवं तापमान में विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। स्थल एवं जल भाग की सतहों के गर्म एवं शीतल होने की प्रक्रिया, प्रकृति एवं दर में भिन्नता के कारण वायुदाब में भिन्नता देखने को मिलती है। वायुदाब का वितरण समदाव रेखाओं द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। समीप–समीप स्थित समदाब रेखाऐं तीव्र एवं दूर–दूर स्थित समदाब रेखाऐं मन्द ढाल प्रवणता को प्रदर्शित करती हैं। जब दो स्थानों के तापमान में अधिक अन्तर होता है तो तीव्र व कम अन्तर होता है तो मन्द दाब प्रवणता रहती है। यह प्रवणता उच्च वायुदाब से निम्न वायुदाब की तरफ होती है। यह सदैव समदाब रेखाओं पर लम्ब रूप होती है। प्रवाह दिशा व वेग के सन्दर्भ में दाब प्रवणता एवं वायु संचरण में गहरा सम्बन्ध होता है। सामान्यतः वायु उच्च वायुदाब से निम्न वायुदाब की ओर प्रवाहित होती है। वायु प्रवाह की गति वायुदाब प्रवणता के परिमाण पर आधारित होती है। सामान्यतः वायुदाब प्रवणता व पवन गति में सीधा घनात्मक सम्बन्ध रहता है अर्थात दाब प्रवणता के बढ़ने पर वायु की गति अधिक व कम रहने पर कम होगी। वायु की प्रवाह दिशा उच्च वायुदाब से निम्न वायुदाब की ओर होती है। चूँकि वायुदाब–प्रवणता की दिशा समदाब रेखाओं पर लम्ब की दिशा में होती है इसलिए वायु की दिशा समदाब रेखाओं के समकोण पर होती है परन्तु वास्तविकता यह है कि पवन दिशा में अपेक्षित सैद्धान्तिक दिशा से विचलन पाया जाता है। यह विचलन कोरिआलिस बल के कारण होता है। इसीलिए हवाऐं समदाब रेखाओं को न्यून कोण पर काटती हैं। उच्च वायुदाब का केन्द्र वायु के प्रवाह में अपसरण और न्यून वायुदाब अभिसरण वायुसंचार का जनन करता है।

वायुदाब प्रवणता से उद्भूत बल का दाब प्रवणता बल कहा जाता है जो समस्त प्रकार के वायु संचरण हेतु गतिवर्धक बल के रूप में कार्य करता है। वायुदाब में भौतिक तथा लम्बवत रूपों में परिवर्तन होता है फलतः दाब प्रवणता बल को दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है (1) क्षैतिज दाब प्रवणता बल (PH), (2) लम्बवत दाब प्रवणता बल (PV)। क्षैतिज दाब प्रवणता बल उच्च से निम्न वायुदाब की ओर धरातल की सतह पर वायु की क्षैतिज गति का संचार करता है जबकि लम्बवत दाब प्रवणता बल संवहन तरंग व अशान्त वायु संचार के रूप में ऊपर तथा नीचे की ओर अर्थात लम्बवत गति का संचार उद्भूत करता है। हवा की गति दाब प्रवणता व दाब प्रवणता बल पर आधारित होती है इसलिए उसका उपरिमुखी संचरण तीव्रगामी होता है परन्तु गुरुत्व बल के कारण यह संचार कम हो जाता है। जब उपरिमुखी दाब प्रवणता बल व अधोमुखी गुरुत्व बल बराबर हो जाते (सन्तुलित) हैं तो लम्बवत

वायु गतिवर्धन शून्य हो जाने से हाइड्रोस्टेटिक सन्तुलन की स्थिति बन जाती है और संचार में स्थिरता आ जाती है। जब भी यह सन्तुलन विगड़ जाता है तो अनेक वायुमण्डलीय अस्थिरताएं उद्भूत होने लगती है। परन्तु स्थल एवं जल सतह द्वारा जनित घर्षण बल के फल स्वरूप पवन के क्षैतिज प्रवाह गति में व्यवधान से यह गति मन्द पड़ने लगती है।

(2) कोरिआलिस बल प्रभाव (CORIOLIS FORCEIEFFECT) –

क्षैतिज रूप में प्रवाहित होने वाली धरातलीय सतह पर वायु की दिशा, दाब प्रवणता तथा पृथ्वी के घूर्णन से निर्धारित होती है। अपनी अक्ष रेखा के सहारे पृथ्वी पश्चिम से पूर्व दिशा में घूर्णन करती है फलतः वायु की दिशा में विचलन होने लगता है। इस वायु की दिशा को विचलित करने वाले बल को विक्षेपण बल कहा जाता है। इस प्रक्रिया का सर्वप्रथम अध्ययन जी०जी० कोरिआलिस के (1792–1843 ई०) द्वारा किया गया इसीलिए इसे कोरिआलिस बल/प्रभाव कहा जाता है। इसी बल के प्रभाव उ० गोलार्द्ध में दायीं ओर तथा द० गोलार्द्ध में बायी ओर सभी हवाऐं मुड़ जाती हैं। पृथ्वी के घूर्णन के सन्दर्भ में ही हवाओं की दिशा में दाहिनी या बायीं ओर को विक्षेपण होता है।

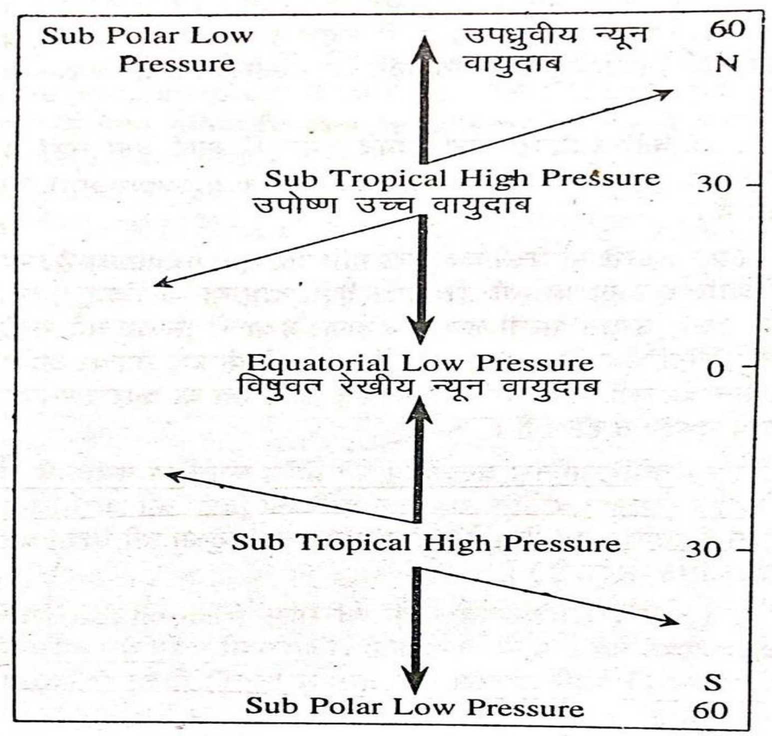

पवन की दिशा पर कोरिआलिस बल (विक्षेप बल) का प्रभाव।

इन्हीं कारणों से उ० गोलार्द्ध में निम्न वायुदाब तन्त्र में हवाएं घड़ी की सुई की दिशा के विपरीत व द० गोलार्द्ध में अनुकूल दिशा में प्रवाहित होती है जिसके कारण चक्रवातीय संचार का जनन होता है। इस बल प्रभाव (कोरिआलिस बल) की निम्नांकित विशेषताएं होती हैं।

- ❖ कोरिआलिस बल मात्र पृथ्वी की घूर्णन गति का प्रभाव है।
- ❖ किसी भी गतिशीत वस्तु पर कोरिआलिस बल प्रभावी होता है जैसे हवा, उड़ते पक्षी, हवाई जहाज, मिसाइलों, तोप के गोलों, आदि पर इस बल के प्रभाव के कारण गति की दिशाएं प्रभावित होती हैं।
- ❖ यह बल वायु की दिशा को प्रभावित करता है वेग को नहीं यह बल हवा की दिशा को उसके मार्ग से विक्षोपित कर देता है।

- ❖ हवाओं के वेग द्वारा इस बल के परिमाण का निर्धारण होता है। वस्तुतः हवाओं की गति जितनी अधिक होगी, इस बल के प्रभाववश हवाओं की दिशा में उतना ही अधिक विक्षेपण होगा।
- ❖ भूमध्यरेखा पर यह बल शून्य जैसा रहता है जबकि ध्रुवों पर यह बल सर्वाधिक होता है क्योंकि यहाँ पृथ्वी की घूर्णन गति न्यूनतम रहती है।
- ❖ यह बल क्षैतिज रूप में प्रवाहित हवाओं व अन्य गतिमान वस्तुओं के समकोण पर कार्यशील होता है परिणामतः क्षैतिज प्रवाही हवाऐं उ० गोलार्द्ध में दाये तथा द० गोलार्द्ध में बायें तरफ मुड़ जाती हैं।
- ❖ यह बल अक्षाश रेखा के साइन सीधे समानुपातिक होता है। इसका प्रभाव गतिमान वस्तु के द्रव्यमान के सीधे समानुपातिक होता है तथा यह बल क्षैतिज दिशा में गतिशील हवाओं के वेग के भी सीधे समानुपातिक होता है।

6.4 पवन दिशा तथा तत्सम्बन्धी नियम (WIND DIRECTION AND ITS RELATED LAW) –

वायुदाब तथा पृथ्वी की घूर्णन गति द्वारा धरातल पर प्रवाहित हवाओं की दिशा का निर्धारण होता है। हवाओं की दिशा में विक्षेपण पृथ्वी की अक्षीय गति के कारण होता है। आगे के विद्वानों ने इस विक्षेप बल कोरिआलिस बल नाम दिया। इसी विक्षेप बल के फलस्वरूप उ० गोलार्द्ध में सभी हवाएं प्रवणता की दिशा की दाहिनी ओर व द० गोलार्द्ध में बायीं ओर मुड़ जाती है। प्रवणता की दिशा उच्च वायुदाब से निम्न वायुदाब की ओर होती है। पृथ्वी पश्चिम से पूर्व दिशा में घूमती है। प्रत्येक अक्षाँश रेखाए एक वृत्त के रूप में होती है। सबसे बड़ा वृत्त भूमध्य रेखीय होता है जबकि ध्रुवों की ओर अक्षाँशीय वृत्त छोटा होता जाता है। लगभग 24 घण्टे में सम्पूर्ण पृथ्वी एक साथ एक चक्कर पूरा करती है। अतः भूमध्यरेखा पर घूर्णन की गति सर्वाधिक होती है जबकि ध्रुवों की ओर कम होती जाती है। जब वायु उ० या द० दिशा में सीधी रेखा में प्रवाहित होती है तब वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर नहीं पहुँच पाती है क्योंकि तब तक वह स्थान अक्षीय गति के कारण आगे बढ़ जाता है पवन पीछे छूट जाती है। वस्तुतः यह घूर्णन गति के कारण भूमध्यरेखा के समीप अधिक होता है क्योंकि यहाँ घूर्णन की गति सर्वाधिक होती है।

वायु की प्रवाह दिशा पर कोरिआलिस बल के प्रभावों के आधार पर पवनों की दिशा से सम्बन्धित निम्न दो नियमों का प्रतिपादन किया गया है।

फेरल का नियम (FERREL'S LAW) –

फेरल के पवन दिशा के नियमानुसार "जिस दिशा में हवा प्रवाहित हो रही है उस दिशा में मुह करके खड़े हो जाय अथवा जिस दिशा से पवन आ रही है उस दिशा में पीठ करके खड़े हो जाँय तो हवाएं उ० गोलार्द्ध में दाहिनी ओर तथा द० गोलार्द्ध में बायी ओर मुड़ जाती है।

वायज बैलेट का नियम (BUYS BALLOT'S LAW) –

वायज वैलेट ने वायुदाब की स्थितियों से सम्बन्धित अपने निम्नवत नियम का प्रतिपादन किया है –"जिस दिशा में वायु प्रवाहित हो रही है यदि उस दिशा में मुह करके खड़ा हुआ जाय तो उ० गोलार्द्ध में न्यून दाब बायी ओर तथा द० गोलार्द्ध में दाहिनी ओर होता है।

वायु की दिशा को घर्षण बल भी प्रभावित करता है। यह बल हवा की दिशा के विपरीत कार्य करता है। धरातल के असमान भाग को घर्षण बल अधिक प्रभावित करता है। ऊचाई बढ़ने के साथ इस बल का प्रभाव कम होता जाता है। घर्षण के कारण हवा सम वायुदाब रेखा के समानान्तर न होकर कोण बना कर प्रवाहित होती है। धरातल पर वह ढाल जिस ओर को पवन प्रवाहित होती है उसे पवनमुखी ढ़ाल (WINDWARD SLOPE) तथा विपरीत ढ़ाल को पवन विमुखी ढ़ाल (LEEWARD SLOPE) कहा जाता है।

धरातल के लगभग समानान्तर प्रवाहित होने वाली वायु को पवन कहा जाता है। **ट्रिवार्था** के अनुसार "पवन ऐसी गतिशील वायु है जिसकी दिशा अनिवार्यतः पृथ्वीतल के समानान्तर होती है।" **वायर्स** के अनुसार "पवन मात्र गतिशील वायु है जिसका मापन उसके क्षैतिज घटक में किया जाता है। वायुदाब में विद्यमान अन्तर के कारण ही हवाओं में गति उद्भूत होती है। पवन सदैव उच्च से निम्न वायुदाब की तरफ गतिशील होती है। इसकी दिशा एवं वेग दाब प्रवणता पर निर्भर करते हैं। पवनों के प्रकारों, प्रभावों व वितरण आदि के सन्दर्भ में इसकी परिसंचरण प्रक्रिया का अध्ययन आवश्यक है।

6.5 वायुमण्डलीय परिसंचरण (ATMOSPHERIC CIRCULATION) –

धरातलीय सतह व उसके ऊपर वायुमण्डल में वायुदाब प्रवणता के कारण स्थानीय से भूमण्डलीय स्तर पर दैनिक, मौसमी एवं वार्षिक रूप में हवाओं का गतिशील होना है। वायुमण्डलीय परिसंचरण के तीन घटक होते हैं : (1) स्थानिक घटक (2) कालिक घटक व (3) उँचाई घटक स्थानिक घटक के सन्दर्भ में उनके उद्‌भव के आधार वायुमण्डलीय परिसंचरण को 03 भागों में बाँटा जाता है– (1) प्राथमिक संचरण में ग्रहीय पवनों को सम्मिलित किया जाता है जिसमें पहुँवा तथा ध्रुवीय हवाऐं प्रमुख हैं। इसी परिसंचरण में भूमण्डलीय–वायुमण्डलीय परिसंचरण के रूप में जेट स्टीम, वाकर परिसंचरण तथा द० दोलन भी आते हैं। (2) द्वितीयक परिसंचरण में चक्रवातीय, प्रति चक्रवातीय, मौसमी परिसंचरण, मानसूनी हवाओं व वायुराशियों आदि को रखा जाता है। (3) तृतीयक परिसंचरण में अनेक स्थानीय हवाओं तथा दैनिक हवाओं को रखा जाता है। कालिक घटक के सन्दर्भ मे पवनों को दीर्घकालिक, मौसमी व दैनिक परिसंचरण में विभक्त किया जाता है।

वायुमण्डल के सामान्य परिसंचरण में सम्पूर्ण ग्लोब के वायु प्रतिरूपों को सम्मिलित किया जाता है। भूमण्डलीय सन्दर्भ में इसी वायु परिसंचरण का मौसम व जलवायुविक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। वायुमण्डल का प्राथमिक संचरण ही द्वितीयक व तृतीयक परिसंचरण के उद्‌भव का आधारभूत कारक है। वायुमण्डल का प्राथमिक निम्न रूपों में महत्वपूर्ण है।

- ❖ वायु का सामान्य परिसंचरण अधिक ऊष्मा वाले उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों से (35^0 उ० से 35^0 द० अक्षाँशों के मध्य से)न्यून उष्मा वाले क्षेत्रों में (उच्च अक्षाँशीय) उष्मा का स्थानान्तरण करता है।
- ❖ सामान्य परिसंचरण ऊर्जा के स्थानान्तरण की एक क्रिया विधि है जिसके धरातल की सतह पर ऊष्मा का समान वितरण सम्भव हो पाता है।
- ❖ महासागरीय भागों से महाद्वीपीय भागों के ऊपर आर्द्रता का परिवहन होता है फलतः सघनन व बादल निर्माण से वर्षण की प्रक्रिया सम्पन्न होती है। यह सामान्य वायुसंचरण के के कारण ही सम्भव हो पाता है। इस परिसंचरण के कारण ही निम्न अक्षाँशों से उच्च अक्षाँशों की ओर भी आर्द्रता के परिवहन की प्रक्रिया सम्पन्न होती है।
- ❖ वृहद कालिक मापक के सन्दर्भ में सामान्य वायुमण्डलीय परिसंचरण परिवर्तनशील रहता है जिससे भूमण्डलीय स्तर पर जलवायुविक परिवर्तन होता है।
- ❖ सामान्य वायुमण्डलीय परिसंचरण भूमध्यरेखीय अधिक आर्द्रता वाले क्षेत्रों से कम आर्द्रता वाले रेगिस्तानी क्षेत्रों में आर्द्रता परिवहन करता है। फलतः वायुमण्डलीय आर्द्रता का सन्तुलन बन पाता है।

6.6 वायुमण्डल का कटिबन्धीय परिसंचरण (ZONAL CIRCULATION OF ATMOSPHERE) –

वायुमण्डल के क्षैतिज परिसंचरण को ही कटिबन्धीय परिसंचरण भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत भूमध्यरेखा से ध्रुवों की तरफ अक्षाँश पेटियों में ग्रहीय या स्थायी हवाओं के वितरण व उनके प्रवाह प्रतिरूप का अध्ययन किया जाता है। वायुदाब तथा वायुदाब पेटियों से ही वायुमण्डल का कटिबन्धीय संचरण सम्बन्धित होता है। इस वायुदाब तथा इनकी पेटियों में मौसमी स्थानान्तरण भी होता रहता है। अर्थात ध्रुवीय वायुदाब एवं वायु की पेटियों को छोड़कर शेष सभी पेटियाँ स्थानिक एवं कालिक दृष्टि से परिवर्तनशील होती हैं। धरातलीय सतह की पवनों के कटिबन्धीय परिसंचरण को तीन कटिबन्ध तन्त्रों (1) उष्णकटिबन्धीय परिसंचरण, (2) मध्य अक्षाँशीय परिसंचरण, (3) ध्रुवीय परिसंचरण में विश्लेषित किया जाता है। स्थायी अथवा ग्रहीय धरातलीय सतह की पवनों की पेटियों का प्रदर्शन मात्र अनुमानित किया जाता है। वस्तुतः वास्तविक स्थिति में पवनों की पेटियाँ अविछिन्न नहीं होती। स्थल एवं जल के असमान वितरण तथा उनके विभिन्न दरों के तापन एवं शीतलन के कारण वायुदाब व उनके पेटिंयों की निरन्तरता भंग होती रहती है।

सामान्यीकरण हेतु भूमण्डल पर उच्च व निम्न वायुदाब पेटियों की स्थिति को लगभग स्थायी मान लिया जाता है। नियमानुसार उच्च से निम्न वायुदाब की ओर हवाऐं चलने लगती हैं। सम्पूर्ण वर्ष इनकी दिशा प्रायः एक जैसी रहती है। अतः इन्हें स्थायी व सनातनी हवाऐं कहा जाता है। इनकी उत्पत्ति तापमान तथा पृथ्वी के घूर्णन से उद्‌भूत उच्च व निम्न वायुदाब से सम्बन्धित है। इसीलिए इन्हें ग्रहीय हवाओं के नाम से भी सम्बोधित किया जाता

है। व्यापारिक हवाएं, पहुवा हवाएं तथा ध्रुवीय हवाएं आदि इनके महत्वपूर्ण उदाहरण हैं।

(1) अयनवर्ती ऊष्णकटिबन्धी प्रदेश की हवाएं (WINDS OF THE TROPICS) –

यह प्रदेश भूमध्य रेखा से दोनों ओर 30^0 उ० से 30^0 द० अक्षाँशों के मध्य प्रसरित है। पूर्व में इस प्रदेश के सन्दर्भ में यह अवधारणा प्रचलित थी कि इस पेटी में उपोष्ण उच्च वायुदाब से भूमध्यरेखीय निम्न वायुदाब की ओर व्यापारिक पवनें प्रवाहित होती है। इनकी दिशा उ० गोलार्द्ध में उ०पू० व द० गोलार्द्ध में द०पू० रहती है। भूमध्यरेखा के निकट पहुँचकर ये हवाएं अभिसरित हो जाती हैं। वायुमण्डल के ऊपरी भाग में प्रतिव्यापारिक हवाऐं धरातलीय व्यापारिक हवाओं के विपरीत प्रवाहित होती है तथा मौसम दशाएं एक जैसी रहती हैं। भूमध्यरेखा के निकट डोलड्रम या शान्त पेटी रहती है। वस्तुतः यह अवधारणा प्राचीन है। वर्तमान अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि व्यापारिक हवाऐं स्थायी रूप से सम्पूर्ण अयनवर्ती महासागरों के मत्र पूर्वीभाग पर ही मिलती हैं और प्रतिव्यापारिक हवाऐं उँचाई पर सीमित क्षेत्रों में ही मिलती हैं। इस प्रदेश की मौसम सम्बन्धी दशाओं में चक्रवातों, हरीकेन, सागरीय तरंगों तूफानों आदि की सक्रियता के कारण समरूपता नहीं रहती है। सामान्यतः इस प्रदेश में निम्न हवाओं का वर्णन किया जा सकता है।

(1) डोलड्रम पेटी व विषुवतरेखीय पछुवा हवा (DOLDRUM AND EQUA TORIAl WESTERLY) –

सामान्यतया भूमध्यरेखा के दोनों ओर 5^0 उ० से 5^0 द० अक्षाँशों के मध्य निम्न वायुदाब की पेटी प्रसरित होती है जहाँ हवाएं शान्त रहती हैं। इसी पेटी को शान्त पेटी या डोलड्रम कहा जाता है। डोलड्रम का प्रसरण प्रत्येक स्थापन पर क्रमबद्ध पेटी के रूप में न होकर मौसम के अनुरूप बदलता रहता है। सूर्य के उत्तरायण होने की स्थिति में यह उत्तर की ओर खिसक जाती है जबकि दक्षिणायन होने की स्थिति में यह पूर्ववत हो जाती है। फ्लॉन ने डोलड्रम का विस्तार 200^0 देशान्त तक माना है। भूमध्यरेखा के सहारे डोलड्रम के निम्न स्पष्ट क्षेत्र पाये जाते हैं–

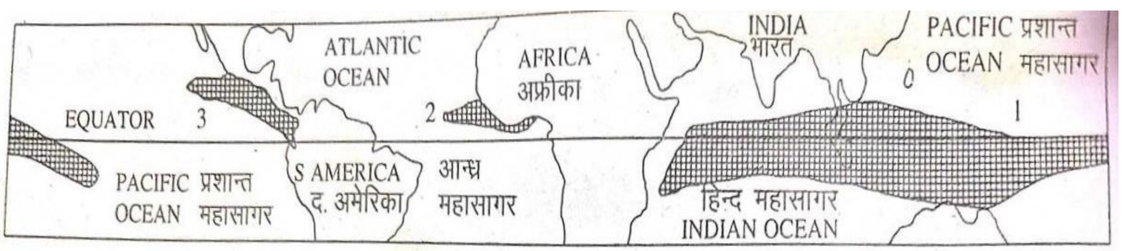

डोलड्रम की स्थितियाँ। 1. हिन्द-प्रशान्त महासागरीय डोलड्रम, 2. अफ्रीका का भूमध्यरेखीय पश्चिमी तटीय प्रदेश, तथा 3. मध्य अमेरिका का पश्चिमी तटीय प्रदेश।

(अ) हिन्द प्रशान्त डोलड्रम, अफ्रीका के पूर्वी भाग से प्रशान्त महासागर में 180^0 देशान्तर तक लगभग 16000 कि०मी० की लम्बाई में 25900000 वर्ग कि०मी० क्षेत्र में विस्तृत है। डोलड्रम की यह पेटी सम्पूर्ण भूमध्य रेखा के लगभग 1/3 भाग को घेरे हुए हैं।

(ब) भूमध्यरेखीय अफ्रीका के पश्चिमी छोर पर।

(स) भूमध्यरेखीय मध्य अमेरिका के पश्चिमी छोर पर।

सामान्यतः धरातल पर डोलड्रम पेटी में प० से पू० दिशा में हवाऐं प्रवाहित होती हैं जिन्हें फ्लॉन महोदय ने विषुवत रेखीय पछुआ हवाओं के नाम से सम्बोधित किया है और कहा है कि द०प० मानसून हवाएं वास्तव में विषुवतरेखीय हवाएं ही होती हैं। जिस स्थान पर व्यापारिक हवाएं इन हवाओं से मिलती है उसे उत्तरी अन्तरा अयनवर्तीय अभिसरण (NITC उ० गोलार्द्ध में) तथा दक्षिणी अन्तरा अयनवर्तीय अभिसरण (SITC दक्षिणी गोलार्द्ध में) कहा जाता है।

(2) व्यापारिक हवाएं (TRADE WINDS) –

अयनवर्तीय उच्चवायुदाब से भूमध्य अन्तरा उष्णकटिबन्धीय अभिसरण तथा उसकी उत्तरी (NITC) व दक्षिणी (SITC) सीमा निम्न वायुदाब की ओर हवाएं प्रवाहित होती हैं। इनके प्रवाह की दिशा उ० गोलार्द्ध में उ०पू० से द०प० व द० गोलार्द्ध में द०पू० से उ०प० को रहती है। नियमित दिशा के कारण पूर्व काल में व्यापारियों को अपनी

पाल युक्त नौकाओं के संचालन में यह मार्ग सुगम व अधिक प्रयोजनीय था। इसीलिए इसे व्यापारिक पवनें कहा जाने लगा। कोरिआलिस बल के प्रभाव से तथा फेरल के नियमानुरूप ये हवाएं उ० गोलार्द्ध में दाहिने व द० गोलार्द्ध में बायीं तरफ मुड़ जाती हैं। विभिन्न भागों में इन व्यापारिक हवाओं में अन्तर पाया जाता है। उपोष्ण उच्चदाब के निकट का भाग हवाओं के नीचे उतरने के कारण शुष्क रहता है। प्रतिचक्रवातीय दशाएं होती हैं, वायुमण्डल स्थिर रहता है, तापमान का प्रतिलोमन अधिक व मौसम स्वच्छ रहता है। जबकि भूमध्यरेखा की ओर का भाग आर्द्र रहता है, वायुमण्डल में अस्थिरता रहती है, तथा वर्षा होती है। स्थलीय भागों की अपेक्षा सागरीय भागों पर इन व्यापारिक हवाओं की स्थिति अधिक सुदृढ़ रहती है। ग्रीष्मकाल में स्थलीय भागों पर (विशेषतः द०पू० ऐशिया द० संयुक्त राज्य अमेरिका) अधिक तापमान के कारण निम्न वायुदाब की स्थिति रहती है और उच्च वायुदाब कहीं–कहीं लुप्त भी हो जाता है। फलतः व्यापारिक पवन अदृश्य भी हो जाती है परन्तु शीतकाल में महाद्वीपीय क्षेत्रों पर व्यापारिक हवाएं विशेषतः व्यवस्थित एवं सुदृढ़ हो जाती है।

इस पेटी को हैडिली कोशिका भी कहा जाता है। सभी ग्रहीय हवाओं (व्यापारिक पछुवा तथा ध्रुवीय हवाओं को ग्रहीय या स्थायी पवन कहते हैं) में व्यापारिक हवाएं सबसे सुदृढ़ तथा नियमित पवन तन्त्र मानी जाती है। लम्बवत रूप में इनमें दो परतें (प्रथम–आर्द्र व अस्थिर हवाओं की सतह की वायु परत द्वितीय शुष्क व स्थिर हवा की ऊपरी वायु परत) होती हैं।

(2) मध्य अक्षाँशीय परिसंचरण पवनें (MIDLATITUDE CIRCULATION)

इस परिसंचरण पेटी का विस्तार भूमध्य रेखा से दोनों ओर 30^0 से 60^0 अक्षाँशों के मध्य मिलता है। यह पेटी उपध्रुवीय कोशिका या फेरल की तापीय अप्रत्यक्ष कोशिका के अन्तर्गत आती है। इस पेटी में हवाएं उपोष्ण कटिबन्धीय अर्द्ध स्थायी उच्च वायुदाब मेखला (30^0 से 35^0 अक्षाँश) से उपध्रुवीय गतिजन्य अर्द्ध स्थायी निम्न वायुदाब व मेखला (60^0 से 65^0 अक्षाँश) की ओर प्रवाहित होती हैं। इस परिसंचरण पेटी में फेरल कोशिका उतना सक्रिय नहीं रहती जितना उष्णकटिबन्धीय वायुमण्डलीय परिसंचरण मेरवला में हेडली कोशिका क्रियाशील रहती है। धरातलीय सतह पर वायु का सामान्य परिसंचरण प० से पू० दिशा में रहता है जो कोरिआलिस बल (प्रभाव) के कारण उ० गोलार्द्ध में द०प० तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में उ०प० रहता है।

(1) अश्व अक्षाँश (HORSE LATITUDE) –

दोनों गोलार्द्धों में 30^0 से 35^0 अक्षाँशों के मध्य उपोष्ण उच्च वायुदाब की स्थिति रहती है। वस्तुतः यह पेटी दो विपरीत धरातलीय हवाओं (व्यापारिक तथा पछुवा हवाओं) के मध्य विभाजन का कार्य करती है। भूमध्यरेखा पर ऊपर उठी हवा व्यापारिक हवाओं की विपरीत दिशा में प्रवाहित होती हुई 30^0 से 35^0 अक्षाँशों के समीप नीचे उतरती है फलतः उसका दाब बढ़ जाता है। इन्ही कारणों से यहाँ प्रति चक्रवातीय दशाएं स्थापित होने से वायुमण्डल में स्थिरता आ जाती है। यहाँ पवन संरचरण न्यून तथा प्रत्येक दिशा में होता है। प्रायः शान्त तथा अनिश्चित हवाओं की इस मेखला में पूर्वकाल में घोड़े से लदे जलयानों के संचालन में कठिनाई थी और व्यापारिक कुछ घोड़ों को जलयान हल्का करने के लिए समुद्र में फेंक देते थे इसीलिए इसे अश्व अक्षाँश कहा जाता है। इस भाग में हवाओं के नीचे उतरने के कारण उपोष्णकटिन्बधीय प्रति चक्रवातों का जनन होता है जिसके प० तथा पू० भागों में पर्याप्त अन्तर होता है। पूर्वी भाग में हवा के नीचे उतरने तथा तापीय प्रतिलोमन के फलस्वरूप वायुमण्डल में अस्थिरता व शुष्कता आ जाती है। महाद्वीपों के प० में इन प्रतिचक्र बलों का पूर्वी भाग रहता है और महासागरों के पूर्वी भाग के ऊपर रहता है। यही वह कारण है कि 20^0 से 30^0 अक्षाँशों के मध्य महाद्वीपों के प० किनारों पर शुष्क मरूस्थल (सहारा, कालाहारी, चिली, पेरू, अटाकामा, अरव के रेगिस्तान आदि) मिलते हैं। इन चक्रवातों का प० भाग अपेक्षतया आर्द्र रहता है जिससे महाद्वीपों के पू० तथा सागरों के प० भागों (कैरेबियन सागर, मैक्सिको की खाड़ी का निकटस्थ स्थलीय भाग, पूर्वी चीन, द० जापान, द०पू० ब्राजील तथा पूर्वी आस्ट्रेलिया) में वायुमण्डल में अस्थिरता आ जाती है, हवाओं का अवतलन क्षीण हो जाता है तथा पर्याप्त वर्षा होती है।

(2) पछुवा हवाएं (WESTERLIES) –

उपोष्ण उच्च वायुदाब (30^0 से 35^0 अक्षाँश) से उपध्रुवीय निम्न वायुदाब (60^0 से 65^0 अक्षाँश) के मध्य दोनों गोलार्द्धों में चलने वाली स्थानीय हवाओं को पछुवा हवाएं कहा जाता है। उ० गोलार्द्ध में इनकी दिशा द०पू० से उ०पू० तथा द० गोलार्द्ध में द०प० से द०पू० की ओर होती है। इनकी ध्रुवीय सीमा में परिवर्तन भी होता है। जहाँ पर गर्म तथा आर्द्र पछुआ हवाऐं जब ध्रुवों से आने वाली ठंढ़ी हवाओं के सम्पर्क में आती हैं तो वहाँ जनित होने वाले

वाताग्र को शीतोष्ण वाताग्र कहा जाता है। व्यापारिक हवाओं की तुलना में पछुआ हवाएं अधिक प्रचण्ड रहती हैं इन हवाओं के साथ चक्रवात तथा प्रति चक्रवात भी प० से पू० दिशा में चलते हैं जिनके कारण पछुआ हवाओं के स्वभाव में परिवर्तन आता है। स्थल भाग की अधिकता के फलस्वरूप उ० गोलार्द्ध में यह और जटिल हो जाती है। प्रायः जाड़े में अधिक और गर्मियों में कम सक्रिय रहती है। सागरीय भागों के ऊपर प्रवाहित होने के कारण ये हवाएं नमी से युक्त हो जाती हैं तथा अपने अक्षाँशों पर महाद्वीपों के प० भागों में पर्याप्त वर्षा करती है। स्थल भाग की कमी के कारण द० गोलार्द्ध में इन हवाओं का वेग तूफानों की भाँति हो जाता है। इन हवाओं के साथ प्रचण्ड झंझावातों की स्थिति बन जाती है। इसी कारण इन्हें द० गोलार्द्ध में 40^0 से 50^0 अक्षाँशों के मध्य गजरती चालीसा (ROARING FORTIES) 50^0 द० अक्षाँश के निकट भयंकर पचासा (FURIOUS FIGLIES) एवं 60^0 अक्षाँश के निकट चीखती साठा (SHRIEPING SIXTIES आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पछुआ हवाओं की मुख्य विशेषता उनकी परिवर्तनशीलता व मौसमी क्रम है। शीतकाल में इनका वेग अधिक व ग्रीष्मकाल में कम हो जाता है। पछुआ हवाओं से मुख्य रूप से प० यूरोप व उ०कनाडा में प्रायः वर्ष भर वर्षा होती है। भूमध्य सागरीय जलवायु कटिबन्धों में (द० यूरोप, उ० कैलीफोर्निया, मध्य चिली, द० अफ्रीका तथा द०प० आस्ट्रेलिया) शीतकाल के समय पर्याप्त वर्षा होती है।

(3) ध्रुवीय परिसंचरण व ध्रुवीय पवने (POLAR CIRULATION AND POLAR WINDS) –

यह परिसंचरण पेटी सामान्यतः 60^0 से 90^0 अक्षाँशों के मध्य दोनों गोलार्द्धों में सक्रिय रहती है। इस वायुमण्डलीय परिसंचरण का प्रतिनिधित्व ध्रुवीय कोशिका के द्वारा किया जाता है। इस परिसंचरण पेटी की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं –

- ❖ धरातलीय सतह पर उ० गोलार्द्ध में उ०पू० तथा द० गोलार्द्ध में द०पू० ध्रुवीय हवाओं का संचरण रहता है।
- ❖ वायुमण्डल में ऊपरी भाग पर अर्थात ऊपरी क्षोभमण्डल में परिध्रुवीय भँवर की स्थिति रहती है तथा यहाँ प्रायः पछुआ हवायें प्रवाहमान रहती है।
- ❖ यहाँ ऊपरी वायुमण्डल में पूर्व की ओर जेट स्ट्रीम का प्रवाह रहता है तथ हवाओं का अपसरण भी होता है।
- ❖ ऊपरी वायुमण्डल में तापमान का प्रतिलोमन होता है।
- ❖ ध्रुवों की धरातलीय सतह पर हवाओं का अपसरण होता है।

उल्लेखनीय है कि अति न्यून तापमान से जनित यहाँ शीत व भौगोलिक ध्रुवों के मध्य सामन्जस्यपूर्ण स्थिति नहीं रहती फलतः उत्तरी गोलार्द्ध में उ० अमेरिकन तथा यूरेशियन दो शीत ध्रुव होते हैं। इन क्षेत्रों में वर्ष के अधिकाँश अवधि तक तापमाान हिमाँक बिन्दु से नीचे बना रहता है। जिससे यहाँ उच्च वायुदाब तन्त्र तथा उससे उद्भूत अपसारी परिसंचरण अधिक स्थायी व नियमित बना रहता है। यद्यपि यह स्थिति वर्ष भर बनी रहती है परन्तु मौसमी उतार–चढ़ाव होता रहता है। हवा का परिसंचरण ध्रुवीय उच्च वायुदाब तथा परिध्रुवीय निम्न वायुदाब के मध्य की दाब प्रवणता के कारण होता है। इस हवा के परिसंचरण को पूर्वी परिसंचरण तथा ध्रुवीय परिसंचरण भी कहा जाता है। वस्तुतः दोनों गोलार्द्धों में 60^0–65^0 अक्षाँशों के मध्य गतिजन्य न्यून वायुदाब की पेटी होती है जो ग्रीष्म काल में अधिक स्थायी व नियमित मिलती है जबकि शीतकाल में लुप्त हो जाती है। आइसलैण्डिक तथा अल्यूशियन न्यूनदाब की कोशिका की स्थिति बनी रहती है परिणामतः ध्रुवीय अति उच्च वायुदाब से परिध्रुवीय निम्न वायुदाब कोशिकाओं की ध्रुवीय हवाओं का प्रवाह होता है। जिनकी दिशा कोरिआलिस बल (प्रभाव) के कारण उ० गोलार्द्ध में उ०पू० व द० गोलार्द्ध में द०पू० हो जाती है।

6.7 वायुदाब एवं वायु पेटियों का मौसमी स्थानान्तरण (SEASONAL SHIFTING OF PRESSURE AND WIND BELTS) –

हमारी पृथ्वी अपने अक्ष पर 23–1/2^0 झुकी हुई है और अपने अण्डाकार कक्ष के सहारे 365/1/4 दिन में सूर्य की परिक्रमा करती है जिसके कारण उसकी सूर्य से दूरी में परिवर्तन होता रहता है। इस कारण सूर्य के उत्तरायण तथा दक्षिणायन होने पर वायुदाब व पवन पेटियों की स्थिति में भी परिवर्तन हो जाता है। 21 जून को सूर्य कर्क रेखा पर लम्बवत चमकता है जिसके कारण ध्रुवीय उच्च वायुदाब की पेटी छोड़कर शेष सभी वायुदाब पेटियाँ उत्तर की ओर खिसक जाती है। भूमध्यरेखीय निम्न दाब 0^0 तथा 10^0 अक्षाँश के मध्य, उपोष्णकटिबन्धीय उच्चदाब

30^0 से 40^0 के मध्य हो जाता है। इसी के प्रभाववश उनसे सम्बन्धित वायुदाब की पेटियाँ भी इधर–उधर स्थानान्तरित हो जाती हैं। 23 सितम्बर को सूर्य भूमध्यरेखा पर लम्बवत होता है फलतः वायु पेटियाँ अपनी यथावत स्थिति में आ जाती है। अब सूर्य दक्षिणायन हो जाता है तथा 22 दिसम्बर को मकर रेखा पर लम्बवत होता है फलतः वायुदाब तथा वायुपेटियाँ द० की ओर खिसक जाती हैं। 21 मार्च को पुनः सूर्य के भूमध्य रेखा पर लम्बवत होने के कारण ये पेटियाँ यथावत स्थिति में हो जाती है। इस प्रकार ऋतु परिवर्तन के साथ वायुपेटियों का भी स्थानान्तरण होता रहता है जिससे अनेक प्रकार की विशिष्ट जलवायुविक दशाओं का जनन होता है। जिसका विवरण निम्नवत हैं –

- दोनों गोलार्द्धों में 30^0 से 40^0 अक्षाँशों के मध्य महाद्वीपों के प० भागों में रूम सागरीय जलवायु वाले प्रदेश पाये जाते हैं। उपोष्ण उच्च वायुदाब की पेटी 30^0 से 35^0 अक्षाँशों के मध्य होती है। ग्रीष्म काल में इन क्षेत्रों में व्यापारिक हवाएं चलती हैं जो स्थलीय भाग से आने के कारण वर्षा नहीं कर पाती हैं। शीतकाल में इस उच्च वायुदाब की पेटी के भूमध्यरेखा की ओर खिसकने के कारण 30^0 से 40^0 अक्षाँशों पर पछुआ हवाओं का विस्तार हो जाता है। पछुआ हवाऐ समुद्र के ऊपर से आने के कारण नमी से युक्त होकर रूम सागरीय क्षेत्रों में वर्षा करती हैं। फलतः आर्द्रशीतकाल व शुष्क ग्रीष्मकाल वाली रूप सागरीय जलवायु क्षेत्र का जनन होता है।

- 60^0 से 70^0 अक्षाँशों के मध्य का क्षेत्र भी दो प्रकार की हवाओं से वर्ष में प्रभावित होता है। इसका कारण इस क्षेत्र में वायु की पेटयों व वायुदाब का स्थानान्तरण होना है। सूर्य के उत्तरायण होने पर उ० गोलार्द्ध के इन क्षेत्रों में उ० पूर्वी ध्रुवीय हवाओ का वेग कम हो जाता है तथा पछुआ हवाएं महाद्वीपों के सुदूरभागों तक पहुँच जाती हैं परन्तु द० गोलार्द्धों में इसके ठीक विपरीत स्थिति होती है। सूर्य के दक्षिणायण होने पर पछुआ हवाऐं उ० गोलार्द्ध में द० की ओर खिसक जाती हैं जिससे इन अक्षाँशों पर उ०पू० ध्रुवीय हवाओं का प्रभाव हो जाता है। वर्षा विशेषकर गर्मियों में होती है और यूरोप तुल्य जलवायु का जनन होता है। सम्पूर्ण वर्ष सक्रिय चक्रवातीय दशाओं के कारण हवाओं की पेटियों के खिसकने का प्रभाव अधिक महत्वपूर्ण नहीं हो पाता है।

- वायु पेटियों के स्थानान्तरण के कारण ही मानसून हवाओं का जनन होता है। उ० गोलार्द्ध में गर्मियों में सूर्य के उत्तरायण होने से डोलड्रम पेटी का उ० की तरफ स्थानान्तरण हो जाता है जिससे 30^0 उ० अक्षाँश तक उत्तरी अन्तरा उष्णकटिबन्धीय अभिसरण (NITC) के विस्तार होने से द०पू० एशिया में विषुवत रेखीय पछुआ हवाओं का विस्तार हो जाता है। यही ग्रीष्मकालीन द०प० मानसून हवाएं होती है। शीतकाल में पेटियों के द० में स्थानान्तरण के कारण इन भागों में व्यापारिक पवने आ जाती हैं जो शीतकाल की उ०पू० मानसून पवनें होती हैं। भारतीय मानसून वस्तुतः ग्रीष्म व शीतकाल में ऊपरी क्षोभमण्डल में पछुआ हवाओं या जेट स्ट्रीम की स्थितियों में परिवर्तन के द्वारा प्रभावित होता है।

6.8 वायुमण्डल का त्रिकोशीय देशान्तरीय परिसंचरण (TRICELLULAR MERIDIONAL CIRCULATION OF THE ATMOSPHERE) –

प्राचीन मान्यता के अनुसार हवाओं का परिसंचरण तापमान पर निर्भर करता है। दूसरे रूपों में कहा जा सकता है कि दायुदाव प्रवणता या तापीय प्रवणता के फलस्वरूप धरातलीय सतह पर हवाओं का प्रवाह होता है। वास्तव में प्राचीन अवधारणा में पवनों के क्षैतिज प्रवाह पर विशेष चर्चा की गयी है आधुनिक अवधारणा के अन्तर्गत वायुमण्डलीय परिसंचरण के अन्तर्गत क्षैतिज तथा लम्बवत दोनों प्रकार के पवन प्रवाह को सम्मिलित किया जाता है। आधुनिक विचारधारा पवनों के देशान्तरीय संचरण के सन्दर्भ में तीन कोशिका के मॉडल पर विश्वास करती है। यह माडल इस अवधारणा पर आधारित है कि प्रत्येक देशान्तर पर हवा का कोशिकीय रूप में प्रवाह होता है। धरातल के सतह पर पवनें उच्च वायुदाब से निम्न वायुदाब व क्षेत्रों की ओर प्रवाहित होती है परन्तु वायुमण्डल के ऊपरी भाग में धरातलीय हवाओं की दिशा के विपरीत दिशा में प्रवाहित होती है। वस्तुतः दोनों गोलार्द्धों पर हवाओं के परिसंचरण की तीन कोशिकाएं होती हैं जिन्हें (1) उष्णकटिबन्धीय है हेडिली कोशिका, (2) फेरल वायु कोशिका तथा (3) ध्रुवीय या उपध्रुवीय कोशिका के नाम से जान जाता है। इन सभी का विश्लेषण निम्न रूपों में किया जा सकता है –

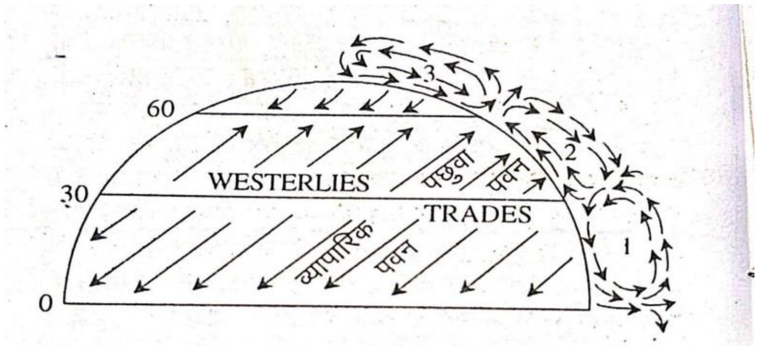

वायुमण्डल का त्रिकोशिकीय देशान्तरीय परिसंचरण : (1) उष्णकटिबन्धी हैडिली कोशिका, (2) मध्य अक्षांशीय या फेरल कोशिका, तथा (3) ध्रुवीय कोशिका।

(1) उष्णकटिबन्धीय या हैडले कोशिका (TROPICAL OR AHDLEY CELL)

यह कोशिका हैडिली द्वारा पहली बार 1735 ई० में दोनों गोलार्द्धों में तापजन्य परिसंचरण कोशिका के रूप में निर्धारित की गयी। वस्तुतः भूमध्य रेखा पर अधिक ऊष्मा के कारण हवाऐं गर्म होकर प्रसरित हो जाती हैं ऊपर की ओर उठती हुइ ये हवाऐं गर्म व आर्द्र होती हैं जो संघनन के पश्चात गुप्त ऊष्मा अवमुक्त करती हैं। भूमध्यरेखा के ऊपर क्षोभमण्डल में 8–12 कि०मी० की उँचाई पर पहुँचने के पश्चात क्षैतिज रूप में यह हवाऐं ध्रुवों की तरफ मुड़ जाती है। इन ऊपर उठती हवाओं के स्थान पर धरातल के सतह पर प्रवाहित होने वाली उपोष्णकटिबन्धीय उच्च वायुदाब से व्यापारिक हवाऐं भूमध्यरेखा की ओर प्रवाहित होने लगती हैं। यह प्रवाह क्षैतिज रूप में होता है। ऊपरी वायुमण्डल धरातलीय में पूर्वी हवाओं के विपरीत पश्चिम को प्रवाहित होने वाली हवाओं को प्रति व्यापारिक पवनें कहा जाता है। 30^0 से 35^0 अक्षाँशों पर दोनों गोलार्द्धों में ऊपरी वायुमण्डलीय प्रतिव्यापारिक हवाऐं नीचे उतरती हैं और पुनः भूमध्यरेखा की ओर प्रवाहित होती है तथ गर्म होकर पुनः ऊपर उठती हैं। इस प्रकार देशान्तरीय परिसंचरण की एक पूर्ण कोशिका का निर्माण हो जाता है। यह उष्णकटिबन्धीय दशान्तरीय कोशिका दोनों गोलार्द्धों में भूमध्यरेखा से 30^0 अक्षाँशों के मध्य रहती है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि द्वितीय विश्वयुद्ध की अवधि व उसके पश्चात् वायुमण्डल विषयक प्राप्त आधिकारिक आँकड़ो के आधार पर ऊपरी वायुमण्डल में प्रति व्यापारिक हवाओं की सतता तथा नियमितता को लेकर जलवायु व मौसम विज्ञानियों ने असहमति व्यक्त की है।

(1) मध्य अक्षाँशीय या फेरल कोशिका (FERREL CELL) –

प्राचीन मान्यता के अनुसार धरातलीय पछुआ हवाऐं उपोष्ण कटिबन्धीय अर्द्ध स्थायी उच्च वायुदाब की पेटी उपध्रुवीय अर्द्ध स्थायी निम्न वायुदाब की मेखला की ओर प्रवाहित होती है। धरातलीय हवाऐं पृथ्वी के घूर्णन के फलस्वरूप 60^0 से 65^0 अक्षाँश पर ऊपर उठती है तथा क्षोभमण्डल की ऊपरी सीमा पर पहुँचने के पश्चात विपरीत दिशाओं अर्थात ध्रुवों व भूमध्यरेखा की ओर अपसरित होती हैं। भूमध्यरेखा की तरफ अपसरित हवाऐं अश्व अक्षाँशों के पास (30 से 35^0) उपोष्ण कटिबन्धीय उच्च वायुदाब में पुनः वृद्धि करने के उपरान्त नीचे उतरती है और धरातलीय सतह पर पुनः ध्रुवों व भूमध्यरेखा की ओर प्रवाहित होती है। फलतः पवन परिसंचरण की पूर्ण कोशिका का निर्माण होता है।

आधुनिक मतानुसार 30^0 से 60^0 अक्षाँशों के मध्य वायु का परिसंचरण प्रतिरूप धरातलीय पछुआ हवाओं से मिलकर बनता है। वस्तुतः धरातलीय पवनें उपोष्णकटिबन्धीय उच्च वायुदाब की पेटी से उपध्रुवीय निम्न वायुदाब की ओर प्रवाहित होती हुई कोरिआलिस बल (प्रभाव) के कारण लगभग पछुआ हवाऐं हो जाती हैं। इन (पछुआ) हवाओं की नियमितता, निरन्तरता व अविच्छिन्नता गतिशील शीतोष्ण चक्रवातों एवं प्रतिचक्रवातों के कारण प्रायः भंग होती रहती हैं। 30^0 से 60^0 अक्षाँशों के मध्य ऊपरी वायुमण्डल में पछुआ हवाओं की उपस्थिति का पता रासवी महोदय ने किया। ट्रिवार्था का यह मानना है कि मध्यवर्ती व ऊपरी क्षोभमण्डल में पछुआ हवाओं के साथ जेट स्ट्रीम भी सम्मिलित रहती है। ध्रुवीय वाताग्र के सहारे गर्म हवा ऊपर उठती है जो मध्य क्षोभमण्डल में अधिक नियमित है। इस अवधारणा से मध्य अक्षाँशों में देशान्तरीय कोशिका परिसंचरण की व्याख्या स्पष्ट नहीं होती है।

(3) ध्रुवीय वायु कोशिका (POLAR ORS UBPOLAR CELL) –

दोनों गोलार्द्धों में 60^0 से 90^0 अक्षाँशों के मध्य प्रसरित इस मेखला में ठंढ़ी ध्रुवीय पूर्वी हवाएं ध्रुवीय उच्च वायुदाब क्षेत्र से उपध्रुवीय निम्न वायुदाब क्षेत्र की ओर धरातलीय हवाओं के रूप में प्रवाहित होती हैं। इन धरातलीय ध्रुवीय हवाओं की दिशा कोरिआलिस बल (प्रभाव) के फलस्वरूप पूर्वी हो जाती है। 60^0 से 65^0 अक्षाँशों पर ध्रुवीय ठंढ़ी हवाएं गर्म पछुआ हवाओं के साथ अभिसरिता होकर ध्रुवीय वाताग्र का जनन करती है। जिससे शीतोष्ण चक्रवातों का उद्भव होता है। उपध्रुवीय निम्न वायुदाब क्षेत्र (60^0 से 65^0 अक्षाँश) पर पृथ्वी की घूर्णन गति के कारण हवाऐं ऊपर उठती हैं और मध्य क्षोभमण्डल में पहुँचने पर यह ध्रुवों व भूमध्यरेखा की ओर मुड़ जाती हैं। ध्रुवों की ओर गतिशील ऊपरी वायु ध्रुवों के पास नीचे उतरती है तथा ध्रुवीय उच्च वायुदाब को और बढ़ा देती है। जिससे ध्रुवीय वायु परिसंचरण कोशिका का निर्माण हो जाता है।

वायुमण्डल के इस देशान्तरीय कोशिका परिसंचरण के सन्दर्भ में अनेकशः आपत्तिया भी है। वस्तुतः इनका परिसंचरण मात्र ताप प्रवणता के आधार पर नहीं मानना चाहिए क्योंकि ग्लोब पर समस्त उच्च व निम्न वायुदाब की स्थिति के पीछे केवल तापमान ही उत्तरदायी कारक नहीं है। उपोष्ण उच्चदाब तथा शीतोष्ण निम्न दाब गतिक (वायु के नीचे उतरने व पृथ्वी के घूर्णन के कारण वायु का प्रसरण) कारणों से जनित होता है। उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में व्यापारिक हवाओं के विपरीत दिशा में प्रति व्यापारिक पवनें वायुमण्डल के ऊपरी भाग में कई देशान्तरों पर नहीं मिलती हैं। यदि केवल ताप के कारण व्यापारिक हवाओं का परिसंचरण होता तो अयन रेखाओं पर ताप प्रवणता पूर्णतः दिखनी चाहिए परन्तु ऐसा नहीं होता है। समदाब रेखायें प्रायः अक्षाँशों के समानान्तर होती हैं। धरातल से लगभग 500 से 1000 मीटर की उँचाई पर हवाऐं समदाब रेखाओं के समानान्तर हो जाती हैं। अतः इस स्थिति में देशान्तरीय कोशिका का जनन सम्भव नहीं है। वायुमण्डल के अधिकांश निचले भाग में वायुदाब तथा पवनें अण्डाकार, गोलाकार या अन्य आकारों में कोशिका स्वरूप होती हैं। उक्त विश्लेषणों के आधार पर पुरानी अवधारणा का स्वतः खण्डन होता है।

6.9 सारांश

इस अध्याय में, हम वायुमंडलीय वायु पेटियों, उनके अक्षांशीय स्थानांतरण और त्रिकोशिकीय वायु परिसंचरण के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे। वायुमंडलीय वायु पेटियाँ पृथ्वी के विभिन्न अक्षांशों पर स्थित स्थिर उच्च और निम्न दबाव क्षेत्रों को दर्शाती हैं। ये पेटियाँ वायुमंडलीय प्रवाह और मौसम प्रणालियों की दिशा को नियंत्रित करती हैं, जिससे पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों में मौसम की विविधता उत्पन्न होती है।वायु पेटियों का अक्षांशीय स्थानांतरण मौसमी और वार्षिक परिवर्तनों के कारण होता है। उदाहरण के लिए, गर्मियों और सर्दियों के दौरान सूर्य के ऊष्मा वितरण में बदलाव के कारण, वायु पेटियाँ उत्तर और दक्षिण की ओर स्थानांतरित होती हैं। यह स्थानांतरण विभिन्न मौसम प्रतिरुप और जलवायु स्थितियों को प्रभावित करता है, जिससे दुनिया के विभिन्न हिस्सों में बारिश, सूखा, और तापमान में परिवर्तन होता है।त्रिकोशिकीय वायु परिसंचरण पृथ्वी के वायुमंडल में हवा के प्रवाह को तीन प्रमुख कोशिकाओं – हैडली, फैरेल और पोलर – के माध्यम से दर्शाता है। हैडली कोशिका भूमध्य रेखा के पास गर्म हवा को ऊपर की ओर उठाकर ऊष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में लाती है, जबकि फैरेल कोशिका और पोलर कोशिका वायुमंडलीय प्रवाह को मध्य और ध्रुवीय अक्षांशों में नियंत्रित करती हैं। यह परिसंचरण प्रणाली पृथ्वी की सतह पर हवा के वितरण और तापमान

6.10 बहुविकल्पीय प्रश्न :

1. कौन सी पेटी, विषुवत रेखा के नजदीक है और शान्त क्षेत्र है?

(क) व्यापारिक पवन **(ख)** पछुवा पवन **(ग)** ध्रुवीय पुर्वा **(घ)** डोलड्रम

2. पछुवा पवन का प्रवाह किस अक्षांशों के बीच होता है?

(क) 0° से 30° **(ख)** 30° से 60° **(ग)** 60° से 90° **(घ)** 0° से 60°

3. कोरियालिस बल का प्रभाव किस कारण से होता है?

(क) पृथ्वी का घूर्णन **(ख)** वायुमण्डलीय दाब **(ग)** महासागरीय धाराएं **(घ)** सूर्याताप

4. ध्रुवीय पूर्वी पवन की प्रवाह दिशा क्या होती है?

(क) पूर्व से पश्चिम **(ख)** पश्चिम से पूर्व **(ग)** उत्तर से दक्षिण **(घ)** दक्षिण से उत्तर

5. पृथ्वी पर पवन प्रवाह की ऊर्जा का मुख्य स्रोत है?

(क) गुरूत्वाकर्षण बल **(ख)** सौर विकिरण **(ग)** पृथ्वी का भू चुम्बकत्व **(घ)** ज्वारीय ऊर्जा

6. विषुवत रेखा पर व्यापारिक पवन की दिशा क्या होती है?

(क) पश्चिम से पूर्व **(ख)** पूर्व से पश्चिम **(ग)** उत्तर से दक्षिण **(घ)** दक्षिण से उत्तर

7. धूर्वीय पूर्वी पवन की क्या विशेषता है?

(क) विषुवत के पास पाया जाता है **(ख)** उच्च दाब **(ग)** गर्म तापमान **(घ)** तीव्र व सतत पवन

6.11 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :—

1. ITCZ क्या है, यह पवन प्रवाह को कैसे प्रभावित करता है?

2. त्रिकोशीय परिसंचरण को कोरियालिस बल कैसे प्रभावित करता है? व्याख्या करें।

3. समुद्री धाराएं व पवन पेटी के सम्बन्धों को स्पष्ट करें।

4. वैश्विक वायु प्रतिरूप में ऋत्विक परिवर्तन को स्पष्ट करें।

5. वायुमण्डल की त्रिकोशीय देशान्तरीय परिसंचरण मॉडल की व्याख्या करें।

6-12 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

1.डी. एस. लाल – जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज

2.प्रो0. सविद्र सिंह – जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पुस्तक भवन प्रयागराज

3.डॉ. वाई. आई. सिंह – जलवायु विज्ञान, एशियन ह्यूमेनटिस प्रेस (AHP)

4.डॉ. चतुर्भुज मामोरिया – डा. एम. एस. सिसोदिया – जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, साहित्य भवन कानपुर

इकाई 7

मानसूनः परिभाषा, मानसून प्रस्फोट, विश्व के प्रमुख मानसूनी क्षेत्र।

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 मानसून की परिभाषा एवं संकल्पनात्मक पृष्ठभूमि

7.4 मानसून के प्रकार

7.5 मानसून उत्पत्ति की संकल्पनाएं

7.6 मानसून प्रस्फोट

7.7 विश्व के मानसून क्षेत्र

7.8 भारतीय मानसून की उत्पत्ति

7.9 सारांश

7.10 बहुविकल्पीय प्रश्न

7.11 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

7.12महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

7.1 प्रस्तावना

मानसून एक प्रमुख मौसमी पवन प्रणाली है, जो पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक वर्षा और जलवायु परिवर्तन का कारण बनती है। मानसून की परिभाषा में मौसमी हवाओं की दिशा में परिवर्तन शामिल है, जो मुख्यतः ग्रीष्म और शीत ऋतुओं में होता है। मानसून के दौरान हवा के प्रवाह की दिशा में बदलाव के कारण वर्षा होती है, जो कृषि और जल संसाधनों के लिए महत्वपूर्ण है।इस अध्याय में, हम मानसून की परिभाषा और इसके महत्व को समझेंगे। हम मानसून के फटने की प्रक्रिया का अध्ययन करेंगे और यह जानेंगे कि यह कैसे कृषि और जल संसाधनों को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त, हम विश्व के प्रमुख मानसूनी क्षेत्रों का विश्लेषण करेंगे और यह समझेंगे कि विभिन्न क्षेत्रों में मानसूनी हवाएं और वर्षा कैसे भिन्न होती हैं। यह अध्ययन हमें मानसून के विभिन्न पहलुओं को गहराई से समझने में मदद करेगा और यह जानने में सहायता करेगा कि ये प्रणाली कैसे पृथ्वी के विभिन्न हिस्सों में जलवायु और मौसम को प्रभावित करती है।

7.2 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य मानसून की अवधारणा, उसके प्रस्फोट, और विश्व के प्रमुख मानसूनी क्षेत्रों की जानकारी प्रदान करना है। मानसून, वर्षा का एक महत्वपूर्ण मौसमीय प्रणाली है जो कृषि, जलवायु और पर्यावरण पर व्यापक प्रभाव डालता है। इस अध्याय में मानसून की परिभाषा की स्पष्टता प्रदान की जाएगी, जिसमें इसकी मौसमी विशेषताओं और संचरण की प्रक्रिया पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा।मानसून प्रस्फोट की अवधारणा को समझाते हुए, यह चर्चा की जाएगी कि कैसे मानसून की शुरुआत और वृद्धि विभिन्न मौसमीय कारकों, जैसे कि तापमान और वायुमंडलीय दबाव में बदलाव, के आधार पर होती है। इसके साथ ही, विश्व के प्रमुख मानसूनी क्षेत्रों, जैसे भारतीय उपमहाद्वीप, दक्षिण–पूर्व एशिया, और पश्चिमी अफ्रीका, की विशेषताओं और उनके मानसूनी प्रणाली की विस्तृत समीक्षा की जाएगी।इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को मानसून की विशेषताओं, प्रस्फोट की प्रक्रियाओं, और प्रमुख मानसूनी क्षेत्रों की गहरी समझ प्रदान करना है, ताकि वे मानसून के वैश्विक और स्थानीय प्रभावों को समझ सकें और उनकी महत्ता को सही ढंग से पहचान सकें।

7.3 मानसून की परिभाषा एवं संकल्पनात्मक पृष्ठभूमि (DEFINITION AND CONCEPTUAL FRAMEWORK OF THE MONSOON) –

मानसून शब्द मूलतः अरबी भाषा के **मौसिम** शब्द या **मलायन** शब्द **मानसिन (MONSIN)** का रूप है, जिसका अर्थ मौसम से लगाया जाता है। सबसे पहले इस शब्द का प्रयोग अरब सागर पर प्रवाहित होने वाली हवाओं के सन्दर्भ में किया जाता था। अरब सागर पर प्रवाहित होने वाली ये हवाएं शीतकाल अवधि में छः माह उ०पू० से द०प० तथा ग्रीष्म काल की अवधि में छः माह द०प० से उ०पू० की ओर प्रवाहित रहती है। इसी आधार पर ग्लोब की वह सभी हवाएं, जिनकी प्रवाह दिशा में ऋतु, के अनुरूप पूर्ण विपरीत स्थिति का परिवर्तन हो जाता है, उन्हें मानसून हवाएं कहा जाता है। हमारे ग्लोब पर कई अन्य स्थानों पर भी प्रवाहित होने वाली हवाओं में ऋत्विक परिवर्तन हो जाता है परन्तु उन्हें मानसूनी हवाएं नहीं कहा जाता है क्योंकि मात्र दिशा परिवर्तन ही मानसून हवाओं की विशेषता नहीं है। वास्तव में मानसून हवाएं धरातलीय संवहनीय क्रम हैं जिनका उद्‌भव स्थल एवं जल के विपरीत स्वभाव एवं तापमान की भिन्नता के कारण होता है। मानसूनी हवाओं के आधिक्य वाले क्षेत्र को मानसून जलवायु प्रदेश कहा जाता है। मानसून जलवायु का प्रमुख क्षेत्र द०पू० एशिया, चीन एवं जापान हैं। इसके अतिरिक्त गायना खाड़ी का प० अफ्रीकी क्षेत्र, अयनवर्ती पू० अफ्रीका, उ० आस्ट्रेलिया, द०पू० संयुक्त राज्य अमेरिका (विशेषतः खाड़ी के निकटवर्ती प्रान्त) आदि भी मानसूनी जलवायु प्रदेश के क्षेत्र है परन्तु यहाँ पर मानसूनी हवाओं मौलिक स्वरूप व स्वभाव नहीं रहता, वस्तुतः इन क्षेत्रों में मानसूनी हवाओं का परिवर्तित रूप ही देखने को मिलता है। **चांग चिया चेंग** के अनुसार "मानसून विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र पर सामान्य वायुमण्डलीय परिसंचरण का एक प्रवाह प्रतिरूप है, जिसके अन्तर्गत सम्बन्धित प्रदेश के प्रत्येक भाग में एक दिशा में प्रवाहित होने वाली स्पष्ट रूप से प्रमुख पवन होती है परन्तु उसमें प्रचलित पवन की दिशा में शरदकाल से ग्रीष्मकाल एवं ग्रीष्मकाल से शरदकाल में विपरीत स्थिति हो जाती है।" वस्तुतः मानसून उस वायु प्रणाली का द्योतक है जिसमें प्रतिवर्ष ऋत्विक प्रकारान्तर से विपरीत दिशाओं से हवाएं प्रभावित होती है तथा इससे सम्बद्ध जलवायु में स्पष्ट रूप से ऋत्विक विषमता विद्यमान रहती है।

7.4 मानसून के प्रकार (TYPES OF MONSOONS) –

प्रादेशिक आधार के सन्दर्भ में मानसून को निम्न तीन प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है।

(1) एशियाई मानसून

(अ) द०पू० एशियाई मानसून

(ब) दक्षिण एशियाई मानसून

(2) अफ्रीका मानसून

(2) अमेरिका मानसून

उपर्युक्त प्रादेशिक आधार के अतिरिक्त मानसून को निम्न दो प्रमुख कोटियों में विभक्त किया जा सकता है–

(1) परम्परागत मानसून

(2) प्रच्छन्न मानसून

मानसून के क्षेत्र (AREA OF MONSOONS)

1.	वास्तविक या परम्परागत मानसून	भारत, पाकिस्तान, बाग्लादेश, म्यामार, थाईलैण्ड लाओस, कम्बोडिया, उत्तरी एवं दक्षिणी वियतनाम, दक्षिणी चीन, फिलीपीन्स तथा आस्ट्रेलिया के उत्तरी तटीय क्षेत्र।
2.	प्रच्छन्न मानसून	अफ्रीका के द०प० तटीय प्रदेश (गायना सियरालिओन, लाइबेरिया एवं आइवरी कोस्ट के तटवर्ती भाग) पूर्वी अफ्रीका एवं पश्चिमी मेडागास्कर में प्रच्छन्न मानसून का विकास हुआ है।
3.	मानसूनी प्रभाव के क्षेत्र	लैटिन अमेरिका के उ०पू० तटीय प्रदेश (पू० वेनेजुएला, गायना, सुरीनाम, फ्रेन्च गायना तथा उ०पू० ब्राजील) ब्योर्टिको व डोमेनिकल रिपब्लिक

4. परिवर्तित मानसून क्षेत्र — मध्य अमेरिका के कई भागों एवं द०पू० संयुक्त राज्य अमेरिका में मानसून परिवर्तित रूप में विकसित हुआ है।

7.5 मानसून उत्पत्ति की संकल्पनाएं (CONCEPT OF THE ORIGIN OF MONSOONS) –

मानसून के उत्पत्ति की संकल्पनाएं यद्यपि तापीय एवं गतिक कारकों से सम्बन्धित हैं परन्तु इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। यह मतभेद इस बात को लेकर है कि क्या मानसून की उत्पत्ति स्थानिक एवं कालिक भिन्नता के कारण होती है अथवा इसकी उत्पत्ति का और कोई कारण है। विशेषतः गतिक कारको (हवा का ऊपर उठना या नीचे उतरना, अपने अक्ष पर पृथ्वी का घूर्णन, सूर्य के चारों ओर अण्डाकार कक्षा में परिभ्रमण, कोरिआलिस बल, ऊपरी वायुमण्डलीय परिसंचरण आदि) से सम्बन्धित है। इस सन्दर्भ में निम्न दो संकल्पनाएं विशेष महत्वपूर्ण हैं।

(अ) तापीय संकल्पना (THERMAL CONCEPT) –

1686 ई० में इस संकल्पना का प्रतिपादन सर्वप्रथम हैले ने किया था। तापीय संकल्पना के अनुसार मानसून की उत्पत्ति मात्र पृथ्वी के असमान संघटन (स्थल व जल का विन्यास) व उनके गर्म व ठंढ़े होने के विपरीत गुणों के कारण होती है। पृथ्वी के समांग (मात्र स्थल अथवा मात्र जल के विस्तार की दशा) होने पर मानसून की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वस्तुतः मानसून हवाएं स्थल तथा जल समीर का ही विस्तृत रूप होती हैं। ग्रीष्मकाल की अवधि में अत्यधिक सूर्यातप के कारण स्थलीय भाग अधिक गर्म होने के कारण न्यूनदाब का क्षेत्र बन जाता है फलतः सागर से स्थल की ओर पवनों का प्रारम्भ हो जाता है। इसे ग्रीष्मकाल का मानसून कहा जाता है। शीतकाल की अवधि में इसके ठीक विपरीत स्थिति होने से स्थल से जल की ओर पवनों का प्रवाह प्रारम्भ हो जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि दो मानसून की स्थितियों का विश्लेषण करना अपरिहार्य होगा।

ग्रीष्मकालीन मानसून –

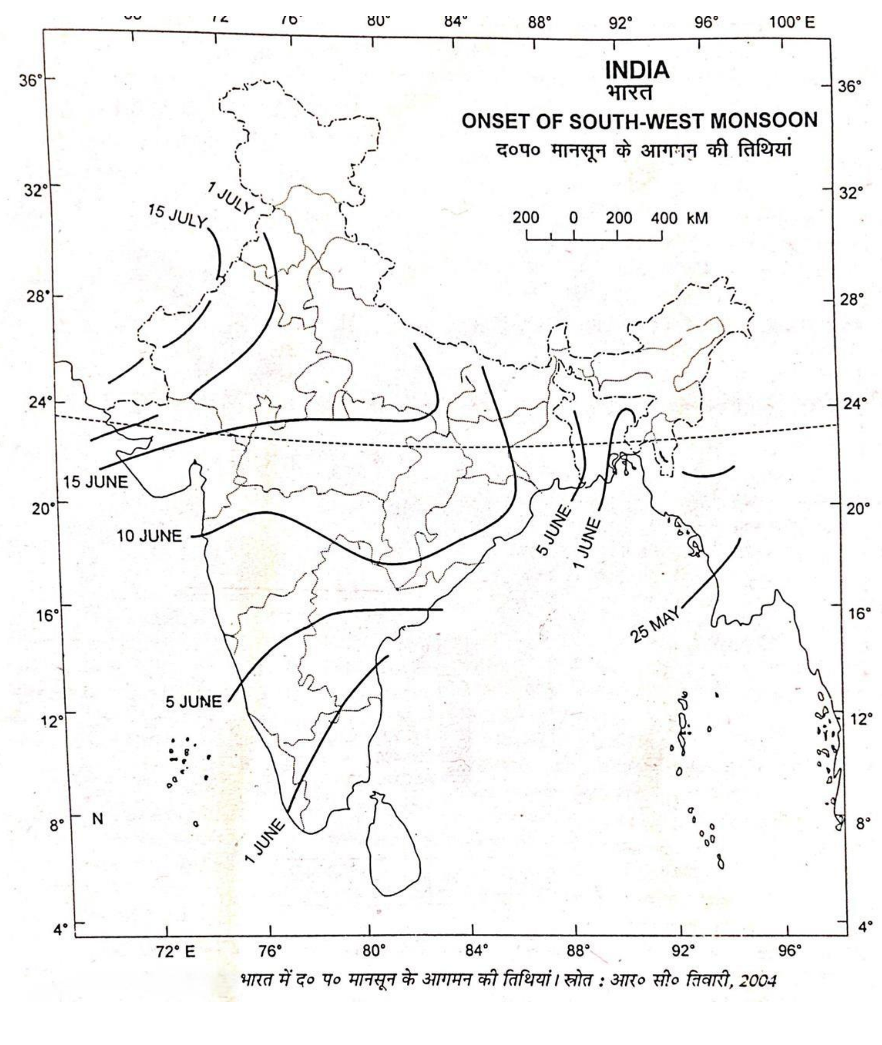

भारत में द० प० मानसून के आगमन की तिथियां। स्रोत : आर० सी० तिवारी, 2004

उ० गोलार्द्ध में 21 मार्च के पश्चात सूर्य के उत्तरायण हो जाने पर सूर्य सीधा चमकने के फलस्वरूप सर्वाधिक सौर्यिक ऊर्जा प्राप्त होने लगती है। कर्क रेखा पर 21 जून को सूर्य सीधा चमकने लगता है और अत्यधिक तापमान होने के कारण एशिया पर न्यून वायु दाब की स्थिति बन जाती है। हिमालय की उपस्थिति के कारण निम्न वायुदाब की स्थितियाँ दो स्थानों पर (वैकाल झील के निकट तथा मुलतान के निकट) उद्भूत हो जाती हैं। जबकि द० गोलार्द्ध में शीतकाल होने के कारण द० हिन्दमहासागर एवं उ०प० आस्ट्रेलिया के निकट उच्च वायुदाब की स्थिति बन जाती है।

जापान के द० में प्रशान्त महासागर में भी उच्चदाब बन जाता है। परिणामतः महासागरों (उच्च दाब क्षेत्र) से स्थलीय भागों (निम्नवायुदाब दाब क्षेत्र) की ओर हवाएं चलने लगती हैं। सागरों के ऊपर से प्रवाहित होने वाली ये हवाएं नमी से परिपूर्ण होने के कारण वर्षा करती हैं। जब निम्न वायुदाब का क्षेत्र व्यापक हो जाता है तो द०पू० व्यापारिक हवाएं भी भूमध्यरेखा को पार करके फेरल के नियमानुसार मानसूनी हवाओं से मिल जाती है। (द०प० हवाओं) इसे द०प० मानसून (भारत) कहा जाता है। एशिया में मानसून की दो शाखाएं (चीन व जापान की शाखा एवं द० एशिया की शाखा हो जाती है। भारत पर भी द०प० मानसून की दो शाखाएं हो जाती है। एक बंगाल खाड़ी की शाखा है जो देश के पूर्वी एवं मध्य उत्तरी भाग को प्रभावित करती है। जबकि दूसरी अरब सागर शाखा है जो भारत के दक्षिणी, पश्चिमी, उ०प० एवं मध्यवर्ती भागों को प्रभावित करती है।

शीतकालीन मानसून –

22 दिसम्बर को शीतकाल में सूर्य मकर रेखा पर लम्बवत रहता है फलतः उ० गोलार्द्ध में शीतकाल व द० गोलार्द्ध में ग्रीष्मकाल की स्थिति रहती है। एशिया महाद्वीप में वैकाल झील व पेशावर के समीप उच्चदाब की स्थिति बन जाती है। द० गोलार्द्ध में ग्रीष्मकालीन अवधि होने के कारण आस्ट्रेलिया के उत्तर में (भूमध्यरेखा के दक्षिण) निम्न वायुदाब बन जाता है जिससे स्थल भाग से सागरों की ओर हवाएं चलने लगती है। इसे उ०पू० मानसून (भारत) कहा जाता है। स्थल की ओर से आने के कारण ये हवाएं शुष्क होती हैं और वर्षा करने में असमर्थ रहती है। स्पष्ट है कि तापीय संकल्पना के आधार पर दोनों प्रकार के मानसून की उत्पत्ति का कारण ताप व तापजनित वायुदाब में अन्तर का होना है।

(ब) गतिक संकल्पना (DYNAMIC CONCEPT) –

मानसून उत्पत्ति की तापीय संकल्पना के अन्तर्गत अनेक विद्वानों द्वारा विरोध किया गया है। इसीलिए तापीय संकल्पना के विपक्ष में निम्नलिखित तक्र प्रस्तुत किये जा रहे हैं –

1. यदि ग्रीष्मकाल की अवधि में महाद्वीपों पर स्थापित निम्न दाबों का सम्बन्ध उच्च तापमान से ही होता तो कुछ समयावधि के लिए इन्हें अपने ही स्थानों पर स्थायी रहना चाहिए परन्तु दैनिक ऋत्विक मानचित्र देखने से यह ज्ञात होता है कि इनमें अचानक एवं व्यापक स्थानान्तरण होता रहता है। जिससे स्पष्ट होता है कि महाद्वीपों पर बने निम्न दाबों का सम्बन्ध तापमान के उच्च स्थिति से न होकर द०प० मानसून के साथ जनित होने वाले अनेक चक्रवातों से है।

2. तापीय संकल्पना में मानसून हवाओं द्वारा वर्षा प्रदान करने की शक्ति भी सन्देहास्पद है। यद्यपि सागरों के ऊपर से आने वाली ये हवाएं नमी से पूरित रहती है परन्तु वर्षा मुख्यतः तूफानों, चक्रवातों एवं संवहनीय धारा क्रम आदि से सम्बन्धित है।

3. यदि मानसून हवाओं की उत्पत्ति तापजन्य होती तो वायुमण्डल के ऊपरी भाग पर भी विपरीत हवाओं का क्रम होना चाहिए परन्तु यह स्थिति अभी तक प्रमाणित नहीं हो पायी है।

तालिका 14.2 : उष्णकटिबन्धी मानसूनी जलवायु के क्षेत्रों में औसत मासिक तापमान तथा वर्षा

महीना	जन०	फर०	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जु०	अ०	सि०	अ०	नव०	दि०	वार्षिक
						कोलकाता, भारत							
तापमान (^0C)	20	23	28	30	31	30	29	29	30	28	24	21	27
वर्षा (मिमी०)	13	24	27	43	121	259	301	306	290	160	35	3	1582
						डकार, सेनेगल							
तापमान (^0C)	21	20	21	22	23	26	27	27	28	28	26	25	24
वर्षा (मिमी०)	0	2	0	0	1	15	88	249	163	49	5	6	578
						डार्विन, आस्ट्रेलिया							
तापमान (^0C)	28	28	28	28	27	25	25	26	28	29	29	28	28
वर्षा (मिमी०)	341	338	274	121	9	1	2	5	17	66	156	233	1562

Source: based on Oliver and Hidore, 2003

उपर्युक्त तर्को के आधार पर **फ्लान महोदय** ने मानसून उत्पत्ति की तापीय संकल्पना का खण्डन करते हुए **गतिक संकल्पना** का प्रतिपादन किया है। इनके आधार पर मानसून हवाओं की उत्पत्ति वायुदाब तथा वायु पेटियों के खिसकाव के सम्बन्धित है। भूमध्यरेखा के निकट व्यापारिक पवनों के मिलने से अभिसरण होता है जिसे अन्तरा उष्णकटिबन्धीय अभिसरण (ITC) कहा जाता है। इसकी उत्तरी सीमा को NITC तथा दक्षिणी सीमा को SITC कहा जाता है। अन्तरा उष्णकटिबन्धीय अभिसरण के मध्य में डोलड्रम पेटी होती है जहाँ विषुवत रेखीय पछुआ हवाएं प्रवाहित रहती हैं। सूर्य के उत्तरायण होने की स्थिति में NITC खिसककर 30^0 उत्तरी अक्षाँश तक विस्तृत हो जाती हैं जिसके अन्तर्गत द० एवं द०पू० एशिया का क्षेत्र समाहित हो जाता है। NITC वाले पूर्व अर्थात पहले के भागों पर डोलड्रम की विषुवत रेखीय पछुआ हवाएं स्थापित हो जाती हैं जो ग्रीष्मकालीन द०प० मानसून हवाएं होती हैं। इन्हीं हवाओं के साथ अनेक वायुमण्डलीय चक्रवातों का जनन द०प० मानसून की विशिष्टताओं को परिलक्षित करता है।

शीतकालीन अवधि में मानसून हवाओं की उत्पत्ति द० गोलार्द्ध में स्थित निम्न वायुदाब से सम्बन्धित है। वस्तुतः हवाओं की पेटियों में दक्षिण की ओर खिसकाव हो जाने से उ०पू० व्यापारिक हवाओं की स्थिति पुनः स्थापित हो जाती है। सूर्य के दक्षिणायन होने की स्थिति में उत्तरी अन्तरा उष्णकटिबन्धीय अभिसरण द०पू० एशिया से हट जाता है। जिस पर उ०पू० व्यापारिक हवाएं विस्तृत हो जाती है। इन्हीं को शीतकालीन मानसून हवाओं के नाम से जाना जाता है।

7.6 मानसून प्रस्फोट

मानसून प्रस्फोट: एक विश्लेषण

मानसून प्रस्फोट, जिसे हिंदी में "मानसून का फटना" भी कहा जाता है, एक जलवायु घटना है जो भारतीय उपमहाद्वीप और अन्य मानसूनी क्षेत्रों में अनुभव की जाती है। यह घटना मानसून की शुरुआत के साथ जुड़ी होती है और विशेष रूप से तब होती है जब अचानक अत्यधिक मात्रा में बारिश होती है। मानसून प्रस्फोट, मौसम की उस स्थिति को दर्शाता है जब बारिश की तीव्रता बहुत अधिक होती है, जिससे कई बार भारी बाढ़ और भूस्खलन जैसी प्राकृतिक आपदाओं का खतरा बढ़ जाता है।

मानसून प्रस्फोट की अवधारणा

मानसून प्रस्फोट तब होता है जब मानसूनी बादलों से अचानक भारी बारिश होती है। सामान्य मानसूनी बारिश की तुलना में, मानसून प्रस्फोट की बारिश कहीं अधिक तीव्र और संक्षिप्त अवधि में होती है। इस प्रकार की बारिश आमतौर पर मानसून की शुरुआत में या इसके पहले चरण में होती है, जब वातावरण में नमी की मात्रा अत्यधिक होती है। अचानक और तीव्र बारिश के कारण नदियों का जलस्तर तेजी से बढ़ जाता है, जिससे बाढ़ का खतरा पैदा हो जाता है।

मानसून प्रस्फोट का असर उन क्षेत्रों पर अधिक होता है जहां जल निकासी की व्यवस्था कमजोर होती है

या जहाँ पहाड़ी इलाके होते हैं। इस कारण से, हिमालयी क्षेत्रों और पश्चिमी घाट जैसे क्षेत्रों में मानसून प्रस्फोट के कारण भूस्खलन जैसी आपदाएँ आम हैं।

उदाहरण मानसून प्रस्फोट की एक स्पष्ट उदाहरण 2013 में उत्तराखंड, भारत में देखने को मिली थी। जून 2013 में, उत्तराखंड में मानसून समय से पहले आ गया और अत्यधिक तीव्रता से बारिश होने लगी। इस बारिश की तीव्रता इतनी अधिक थी कि इसे मानसून प्रस्फोट की श्रेणी में रखा गया। इस मानसूनी प्रस्फोट के कारण नदियों का जलस्तर अचानक बढ़ गया, जिसके परिणामस्वरूप भयंकर बाढ़ आई और कई जगहों पर भूस्खलन हुआ।इस घटना ने व्यापक स्तर पर विनाश किया, जिसमें हजारों लोग बेघर हो गए, और सैकड़ों लोगों की जान चली गई। इस मानसून प्रस्फोट के कारण केदारनाथ मंदिर और आसपास के क्षेत्रों में भारी तबाही हुई। यह घटना मानसून प्रस्फोट के प्रभावों को समझने के लिए एक कड़वा अनुभव था, जिससे पता चलता है कि इस प्रकार की जलवायु घटनाएं कितनी विनाशकारी हो सकती हैं।

मानसून प्रस्फोट के प्रभाव

मानसून प्रस्फोट के प्रभाव बहुत व्यापक होते हैं और इसमें प्राकृतिक आपदाओं से लेकर आर्थिक और सामाजिक परिणाम शामिल होते हैं।भूस्खलन और बाढ़: मानसून प्रस्फोट के कारण पहाड़ी क्षेत्रों में भूस्खलन आम हो जाते हैं। निचले इलाकों में बाढ़ आ जाती है, जिससे जनजीवन प्रभावित होता है और फसलों का नुकसान होता है।आर्थिक क्षति: बाढ़ और ूस्खलन के कारण सड़कों, पुलों, और अन्य बुनियादी ढाँचे को भारी क्षति पहुँचती है। इससे आर्थिक गतिविधियों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।सामाजिक प्रभाव: मानसून प्रस्फोट के कारण विस्थापन होता है, जिससे सामाजिक ताने–बाने में विघटन होता है। आपातकालीन सेवाओं पर दबाव बढ़ता है, और प्रभावित क्षेत्रों में स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

निष्कर्ष

मानसून प्रस्फोट एक प्राकृतिक घटना है, लेकिन इसके प्रभावों को समझना और उनसे बचाव के उपाय करना अत्यंत आवश्यक है। सही पूर्वानुमान और आपदा प्रबंधन की उचित रणनीतियों के द्वारा मानसून प्रस्फोट से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप, जल निकासी प्रणाली को मजबूत करना, बाढ़ के संभावित क्षेत्रों की पहचान करना, और समय पर चेतावनी प्रणाली का विकास करना, ऐसे उपाय हैं जो इस प्राकृतिक आपदा के प्रभाव को सीमित कर सकते हैं।

7.7 विश्व के मानसून क्षेत्र

पश्चिमी अफ्रीका के मानसून की उत्पत्ति

पश्चिमी अफ्रीका का मानसून एक महत्वपूर्ण मौसमी पवन प्रणाली है, जो इस क्षेत्र की जलवायु, कृषि, और जीवन पर गहरा प्रभाव डालती है। इस मानसून की उत्पत्ति में कई प्राकृतिक और वायुमंडलीय कारकों का योगदान होता है। आइए, इन कारकों और प्रक्रियाओं को विस्तार से समझते हैं।

1. इंटरट्रॉपिकल कन्वर्जेंस जोन (ITCZ)

पश्चिमी अफ्रीका के मानसून की उत्पत्ति का सबसे महत्वपूर्ण कारक इंटरट्रॉपिकल कन्वर्जेंस जोन (ITCZ) है। ITCZ वह क्षेत्र है जहां उत्तरी गोलार्ध से आने वाली पूर्वी व्यापारिक हवाएं और दक्षिणी गोलार्ध से आने वाली हवाएं मिलती हैं। इस क्षेत्र में जब दोनों गोलार्धों की हवाएं मिलती हैं, तो एक निम्न दबाव क्षेत्र बनता है, जिससे हवाएं ऊपर की ओर उठने लगती हैं और संघनन (Condensation) की प्रक्रिया होती है। इससे बादलों का निर्माण होता है और भारी बारिश होती है।ग्रीष्म ऋतु में, जब सूर्य भूमध्य रेखा से उत्तरी गोलार्ध की ओर खिसकता है, तो ITCZ भी उत्तर की ओर खिसक जाता है। पश्चिमी अफ्रीका के मानसून के दौरान, ITCZ की यह उत्तरी दिशा पश्चिमी अफ्रीका के सहेल क्षेत्र और गिनी तट के बीच के इलाकों पर भारी बारिश लाने का काम करती है। इस प्रक्रिया में ITCZ का स्थानांतरण प्रमुख भूमिका निभाता है, क्योंकि इसके साथ ही नमी युक्त हवाएं भी उत्तर की ओर बढ़ती हैं और मानसून की शुरुआत करती हैं।

2. समुद्री तापमान और नमी

अटलांटिक महासागर का समुद्री तापमान भी पश्चिमी अफ्रीका के मानसून की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मानसून के दौरान, समुद्र की सतह का तापमान गर्म हो जाता है, जिससे समुद्र से बड़ी मात्रा में पानी वाष्पित होकर वायुमंडल में प्रवेश करता है। यह वाष्पीकरण वायुमंडल में नमी की मात्रा को बढ़ाता है। जब यह नमी युक्त हवा पश्चिमी अफ्रीका की ओर बढ़ती है और ITCZ के साथ मिलती है, तो यह भारी बारिश का कारण बनती है। इस प्रक्रिया में समुद्र का तापमान और उसकी नमी मानसून की तीव्रता और वितरण को प्रभावित करते हैं।

3. हर्माटन हवाएं और सहारा हाई

पश्चिमी अफ्रीका के मानसून की उत्पत्ति में हर्माटन हवाओं और सहारा हाई का भी योगदान होता है। हर्माटन हवाएं शुष्क और धूल भरी होती हैं, जो सर्दियों के महीनों में सहारा रेगिस्तान से निकलकर पश्चिमी अफ्रीका की ओर बहती हैं। यह हवाएं मानसून की हवाओं के आगमन से पहले प्रबल होती हैं और एक शुष्क वातावरण का निर्माण करती हैं।हालांकि, गर्मियों में जब ITCZ उत्तर की ओर खिसकता है और मानसून की नमी युक्त हवाएं पश्चिमी अफ्रीका की ओर आती हैं, तो हर्माटन हवाएं कमजोर पड़ जाती हैं। लेकिन मानसून की बारिश के समय, ये शुष्क हवाएं नमी युक्त हवाओं से टकराती हैं, जिससे बादलों का निर्माण और भारी बारिश होती है। सहारा हाई, जो कि एक उच्च दबाव प्रणाली है, भी मानसून की हवाओं के मार्ग को प्रभावित करता है। यह उच्च दबाव प्रणाली हवाओं को दक्षिण की ओर धकेलती है, जिससे मानसून की बारिश सहेल क्षेत्र तक पहुंचती है।

4. स्थानीय स्थलाकृतिक प्रभाव

पश्चिमी अफ्रीका के भौगोलिक और स्थलाकृतिक विशेषताएं भी मानसून की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पश्चिमी अफ्रीका का भूभाग पहाड़ी और मैदानी दोनों प्रकार का है। जब मानसून की नमी युक्त हवाएं इन पहाड़ियों से टकराती हैं, तो वे ऊपर की ओर उठने लगती हैं, जिससे संघनन होता है और बारिश होती है।विशेष रूप से गिनी तट और उसके आसपास के क्षेत्र में पहाड़ियों और ऊंचे इलाकों का प्रभाव मानसून की बारिश को बढ़ाने में मदद करता है। इन क्षेत्रों में मानसून की बारिश अधिक होती है, क्योंकि नमी युक्त हवाएं पर्वत श्रृंखलाओं से टकराकर अधिक संघनित हो जाती हैं और भारी बारिश का कारण बनती हैं।

5. गिनी तट और सहेल क्षेत्र का आपसी संबंध

पश्चिमी अफ्रीका के मानसून की उत्पत्ति में गिनी तट और सहेल क्षेत्र का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। गिनी तट, जो अटलांटिक महासागर के किनारे स्थित है, मानसून की शुरुआत का मुख्य केंद्र होता है। यहां से मानसून की हवाएं उत्तरी दिशा में सहेल क्षेत्र की ओर बढ़ती हैं। जैसे–जैसे हवाएं आगे बढ़ती हैं, वे सहेल क्षेत्र में पहुंचकर बारिश लाती हैं। इस प्रकार, गिनी तट और सहेल क्षेत्र के बीच का संबंध पश्चिमी अफ्रीका के मानसून की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मानसून की प्रक्रिया

मॉनसून का आरंभ

मानसून की प्रक्रिया का पहला चरण मानसून का आरंभ होता है। यह तब होता है जब ITCZ उत्तर की ओर खिसकता है और नमी युक्त हवाएं समुद्र से भूमि की ओर बढ़ने लगती हैं। भारत में, मानसून का आरंभ आमतौर पर केरल के तट पर जून की शुरुआत में होता है। यहां से मानसून की हवाएं धीरे–धीरे उत्तर और पूर्व की ओर बढ़ती हैं, जिससे पूरे देश में बारिश का आगमन होता है। मानसून के आरंभ का समय और तीव्रता विभिन्न कारकों पर निर्भर करते हैं, जैसे कि समुद्री तापमान, वायुमंडलीय दबाव, और हवाओं की गति।

मॉनसून का उत्कर्ष

मॉनसून का उत्कर्ष वह चरण होता है जब मानसून की हवाएं और बारिश अपनी चरम सीमा पर होती हैं। यह आमतौर पर जुलाई और अगस्त के महीनों में होता है। इस समय, नमी युक्त हवाएं लगातार भूमि की ओर बहती हैं, जिससे प्रतिदिन भारी बारिश होती है। मानसून का उत्कर्ष भारत, बांग्लादेश, म्यांमार, पश्चिमी अफ्रीका, और दक्षिण पूर्व एशिया जैसे क्षेत्रों में अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि यह बारिश कृषि, जल संसाधनों, और पर्यावरण के लिए आवश्यक होती है। इस चरण में अक्सर बाढ़, मिट्टी का कटाव, और नदियों का जलस्तर बढ़ जाता है।

मॉनसून का समापन

मॉनसून का समापन वह चरण होता है जब मानसून की हवाएं कमजोर हो जाती हैं और बारिश कम होने लगती है। यह आमतौर पर सितंबर के अंत और अक्टूबर की शुरुआत में होता है।

इस चरण में, ITCZ धीरे–धीरे दक्षिण की ओर खिसकने लगता है, जिससे हवाओं का प्रवाह कमजोर पड़ जाता है। जैसे–जैसे हवाओं की गति कम होती है, बारिश भी कम होने लगती है और शुष्क मौसम वापस आ जाता है। मानसून के समापन का समय और तीव्रता विभिन्न कारकों पर निर्भर करते हैं, जैसे कि वायुमंडलीय दबाव, समुद्र की सतह का तापमान, और हवाओं की दिशा।

मानसून का प्रभाव

मानसून की प्रक्रिया का प्रभाव व्यापक और बहुआयामी होता है। मानसून न केवल वर्षा का मुख्य स्रोत है, बल्कि यह कृषि, जल संसाधन, पर्यावरण, और जनजीवन को भी गहराई से प्रभावित करता है। मानसून की वर्षा उन क्षेत्रों के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है, जो वर्ष भर की कृषि और जल आपूर्ति के लिए इस पर निर्भर करते हैं। इसके अलावा, मानसून का प्रभाव नदियों, जलाशयों, और वनस्पतियों पर भी पड़ता है, जिससे जैव विविधता और पारिस्थितिकी संतुलित रहती है। हालांकि, मानसून के साथ कुछ चुनौतियां भी होती हैं, जैसे बाढ़, मिट्टी का कटाव, और सूखे की स्थिति, जो जनजीवन और अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती हैं।

उत्तर अमेरिका में मानसून

उत्तर अमेरिका में मानसून, जिसे विशेष रूप से "उत्तर अमेरिकी मानसून" के नाम से जाना जाता है, एक मौसमी पवन प्रणाली है जो मुख्य रूप से अमेरिका के दक्षिण–पश्चिमी हिस्सों, जैसे एरिजोना, न्यू मैक्सिको, नेवादा, और मेक्सिको के उत्तरी हिस्सों में सक्रिय होती है। यह मानसून जून से सितंबर के बीच होता है और इस क्षेत्र में बारिश का प्रमुख स्रोत है। हालांकि यह मानसून एशियाई मानसून जितना व्यापक नहीं है, फिर भी यह क्षेत्रीय जलवायु और पर्यावरण के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

उत्तर अमेरिकी मानसून का उत्पत्ति और प्रक्रिया

उत्तर अमेरिकी मानसून, जिसे "दक्षिण–पश्चिमी मानसून" या "अमेरिकन मॉनसून" के नाम से भी जाना जाता है, विशेष रूप से दक्षिण–पश्चिमी अमेरिका और उत्तरी मेक्सिको के लिए एक महत्वपूर्ण मौसमी पवन प्रणाली है। यह मानसून गर्मियों के महीनों में सक्रिय होता है, आमतौर पर जून से सितंबर के बीच, और इस क्षेत्र में बारिश का मुख्य स्रोत होता है। उत्तर अमेरिकी मानसून की उत्पत्ति और प्रक्रिया में विभिन्न मौसमीय और भूगर्भीय कारक शामिल होते हैं। आइए इन पर विस्तार से चर्चा करते हैं।

उत्तर अमेरिकी मानसून की उत्पत्ति

उत्तर अमेरिकी मानसून की उत्पत्ति मुख्य रूप से तीन प्रमुख कारकों पर निर्भर करती है

1. सौर विकिरण और सतही तापमान

उत्तर अमेरिकी मानसून की उत्पत्ति का सबसे महत्वपूर्ण कारक ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की ऊर्ध्वाधर स्थिति है, जिससे दक्षिण–पश्चिमी अमेरिका और उत्तरी मेक्सिको का तापमान बहुत बढ़ जाता है। गर्मियों के महीनों में, सूर्य की किरणें इस क्षेत्र पर सीधी पड़ती हैं, जिससे सतह का तापमान तेजी से बढ़ता है। यह उच्च तापमान भूमि के ऊपर वायुमंडलीय दबाव को कम करता है, जिससे एक निम्न दबाव क्षेत्र बनता है। इस निम्न दबाव क्षेत्र के कारण समुद्री हवाएं, विशेष रूप से मेक्सिको की खाड़ी और प्रशांत महासागर से, इस क्षेत्र की ओर खिंचने लगती हैं।

2. वायुमंडलीय परिसंचरण

उत्तर अमेरिकी मानसून की उत्पत्ति में वायुमंडलीय परिसंचरण का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। ग्रीष्मकाल के दौरान, उत्तर अमेरिका के पश्चिमी हिस्से में एक उच्च दबाव प्रणाली स्थापित हो जाती है, जिसे प्रशांत उच्च दबाव क्षेत्र (Pacific High) कहा जाता है। इस प्रणाली के चलते हवाओं का प्रवाह दक्षिण से उत्तर और पश्चिम से पूर्व की ओर होता है। जब ये हवाएं समुद्र से भूमि की ओर बढ़ती हैं, तो वे नमी युक्त होती हैं। इस नमी को जब यह हवाएं दक्षिण–पश्चिमी अमेरिका और उत्तरी मेक्सिको के ऊपर पहुंचती हैं, तो यह बारिश का कारण बनती हैं।

3. स्थलाकृतिक विशेषताएं

उत्तर अमेरिकी मानसून की उत्पत्ति में क्षेत्र की स्थलाकृतिक विशेषताओं का भी महत्वपूर्ण योगदान है। दक्षिण–पश्चिमी अमेरिका और उत्तरी मेक्सिको के इलाके पहाड़ी हैं, जिसमें सिएरा माद्रे पर्वत श्रृंखला और रॉकी पर्वत प्रमुख हैं। जब नमी युक्त हवाएं इन पहाड़ी क्षेत्रों से टकराती हैं, तो ये ऊपर की ओर उठती हैं, जिससे वातावरण में संघनन (Condensation) होता है और बादल बनते हैं। इन बादलों से बारिश होती है, जिसे मानसून की वर्षा कहा जाता है। यह बारिश आमतौर पर दोपहर और शाम के समय होती है और कभी–कभी अत्यधिक तीव्र होती है, जिससे अचानक बाढ़ का खतरा भी उत्पन्न हो सकता है।

उत्तर अमेरिकी मानसून की प्रक्रिया

उत्तर अमेरिकी मानसून की प्रक्रिया कुछ प्रमुख चरणों में विभाजित की जा सकती है

1. मॉनसून का आरंभ

उत्तर अमेरिकी मानसून आमतौर पर जून के अंत में या जुलाई की शुरुआत में शुरू होता है। इस समय, दक्षिण–पश्चिमी अमेरिका और उत्तरी मेक्सिको में सतह का तापमान चरम पर होता है, और निचले दबाव का क्षेत्र बन जाता है। प्रशांत महासागर और मेक्सिको की खाड़ी से हवाएं इस निचले दबाव क्षेत्र की ओर खिंचती हैं। जब ये हवाएं पर्वतीय क्षेत्रों से टकराती हैं, तो मानसून की पहली बारिश होती है, जिसे "मॉनसून के आगमन" के रूप में जाना जाता है।

2. मॉनसून का उत्कर्ष

मॉनसून के आरंभ के बाद, जुलाई और अगस्त के महीनों में मानसून अपनी चरम सीमा पर होता है। इस समय क्षेत्र में दैनिक आधार पर भारी बारिश होती है। इस बारिश का वितरण असमान होता है, जो कभी–कभी केवल कुछ क्षेत्रों में सीमित होती है। यह बारिश अक्सर दोपहर और शाम के समय होती है, जब दिन का तापमान उच्चतम होता है और नमी संघनित होकर बादलों का निर्माण करती है। मानसून की इस अवस्था में अचानक बाढ़ और तूफानी हवाएं आम होती हैं।

3. मॉनसून का समापन

सितंबर के अंत में, जब सतह का तापमान धीरे–धीरे गिरने लगता है और वायुमंडलीय दबाव में बदलाव आता है, तो उत्तर अमेरिकी मानसून का समापन शुरू होता है। इस समय, हवाओं का प्रवाह धीरे–धीरे कमजोर हो जाता है और मानसून की बारिश कम हो जाती है। मानसून के समापन के बाद क्षेत्र में सूखा मौसम लौट आता है, जो सर्दियों के महीनों तक जारी रहता है।

पूर्वी अफ्रीका के मानसून

पूर्वी अफ्रीका के मानसून का क्षेत्रीय जलवायु, कृषि, और सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों पर गहरा प्रभाव है। यह मानसून प्रणाली भारतीय महासागर से उठने वाली हवाओं और नमी के कारण बनती है और पूर्वी अफ्रीका के विभिन्न हिस्सों में बारिश लाती है। पूर्वी अफ्रीका के मानसून की उत्पत्ति और इसकी प्रक्रिया को समझने के लिए, हमें इस क्षेत्र की भौगोलिक, वायुमंडलीय, और समुद्री परिस्थितियों पर गौर करना होगा।

1. भौगोलिक और वायुमंडलीय पृष्ठभूमि

पूर्वी अफ्रीका की भौगोलिक स्थिति इसे मानसून की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले क्षेत्रों में से एक बनाती है। यह क्षेत्र भूमध्य रेखा के नजदीक स्थित है और भारतीय महासागर से घिरा हुआ है। इस क्षेत्र की जलवायु पर भारतीय महासागर, अदन की खाड़ी, और लाल सागर का प्रभाव गहरा है। पूर्वी अफ्रीका का मानसून मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं: दक्षिण–पश्चिम मानसून और उत्तर–पूर्व मानसून। दक्षिण–पश्चिम मानसून गर्मियों के दौरान होता है, जब सूर्य की किरणें भूमध्य रेखा से उत्तरी गोलार्ध की ओर बढ़ती हैं। उत्तर–पूर्व मानसून सर्दियों के दौरान होता है, जब सूर्य की किरणें भूमध्य रेखा से दक्षिण की ओर खिसकती हैं।

2. दक्षिण–पश्चिम मानसून की प्रक्रिया

दक्षिण–पश्चिम मानसून पूर्वी अफ्रीका का सबसे प्रमुख मानसून है, जो आमतौर पर जून से सितंबर के बीच

सक्रिय रहता है। यह मानसून भारतीय महासागर से उठने वाली नमी युक्त हवाओं के कारण बनता है, जो पूर्वी अफ्रीका की ओर बहती हैं। इस मानसून की प्रक्रिया की शुरुआत तब होती है जब भारतीय उपमहाद्वीप और पूर्वी अफ्रीका में गर्मी के कारण सतह का तापमान बढ़ जाता है। उच्च तापमान के कारण इन क्षेत्रों में निम्न दबाव क्षेत्र बनता है, जिससे हवाएं भारतीय महासागर से नमी लेकर भूमि की ओर खिंचती हैं। इन हवाओं में उच्च मात्रा में नमी होती है, जो जब पूर्वी अफ्रीका के पर्वतीय क्षेत्रों से टकराती हैं, तो संघनन की प्रक्रिया होती है और बारिश शुरू होती है। इस समय पूर्वी अफ्रीका के तटीय क्षेत्रों, विशेष रूप से केन्या, तंजानिया, और यूगांडा में भारी बारिश होती है।

3. उत्तर–पूर्व मानसून की प्रक्रिया

उत्तर–पूर्व मानसून पूर्वी अफ्रीका में अक्टूबर से दिसंबर के बीच सक्रिय रहता है। यह मानसून अदन की खाड़ी और अरब सागर से आने वाली हवाओं के कारण बनता है, जो इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत ठंडी और शुष्क होती हैं। इस मानसून की प्रक्रिया की शुरुआत तब होती है जब सर्दियों के दौरान सूर्य की किरणें भूमध्य रेखा से दक्षिण की ओर खिसकती हैं। इससे उत्तरी गोलार्ध में उच्च दबाव क्षेत्र बनता है और हवाएं दक्षिण की ओर बहने लगती हैं। ये हवाएं जब पूर्वी अफ्रीका के तटीय क्षेत्रों और पर्वतीय इलाकों से टकराती हैं, तो वे नमी युक्त हवाओं से मिलकर हल्की से मध्यम बारिश का कारण बनती हैं।

उत्तर–पूर्व मानसून के दौरान, तटीय क्षेत्रों में अपेक्षाकृत कम बारिश होती है, लेकिन यह बारिश कृषि के लिए महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि यह फसल की बुवाई और बढ़ने के लिए आवश्यक जल की पूर्ति करती है। इस समय सोमालिया, केन्या के उत्तरी हिस्से, और इथियोपिया में भी बारिश होती है।

4. इंडियन ओशन डाइपोल (IOD) का प्रभाव

पूर्वी अफ्रीका के मानसून पर इंडियन ओशन डाइपोल (IOD) का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। IOD एक समुद्री–अवधि घटना है, जो भारतीय महासागर के पश्चिमी और पूर्वी हिस्सों के समुद्री सतह तापमान में होने वाले अंतर के कारण बनती है। जब IOD सकारात्मक स्थिति में होता है, तो भारतीय महासागर के पश्चिमी हिस्से में सतह का तापमान बढ़ जाता है, जिससे पूर्वी अफ्रीका में अधिक नमी और भारी बारिश होती है। इसके विपरीत, जब IOD नकारात्मक स्थिति में होता है, तो भारतीय महासागर के पूर्वी हिस्से में सतह का तापमान बढ़ जाता है, जिससे पूर्वी अफ्रीका में सूखा और कम बारिश होती है। प्व्क की स्थिति पूर्वी अफ्रीका के मानसून की तीव्रता और वितरण को गहराई से प्रभावित करती है।

5. स्थानीय स्थलाकृतिक प्रभाव

पूर्वी अफ्रीका के मानसून पर स्थानीय स्थलाकृति का भी महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। पूर्वी अफ्रीका के पर्वतीय क्षेत्र, जैसे कि केन्या की अलेगोरि पहाड़ियाँ, रिफ्ट घाटी, और किलिमंजारो पर्वत, मानसून की हवाओं के लिए प्रमुख अवरोधक का काम करते हैं।

जब मानसून की नमी युक्त हवाएं इन पहाड़ियों और पर्वत श्रृंखलाओं से टकराती हैं, तो वे ऊपर की ओर उठने लगती हैं, जिससे संघनन होता है और भारी बारिश होती है। इस समय पूर्वी अफ्रीका के तटीय और पर्वतीय क्षेत्रों में विशेष रूप से भारी बारिश होती है।

6. मानसून का प्रभाव

पूर्वी अफ्रीका के मानसून का प्रभाव व्यापक और बहुआयामी है। मानसून की बारिश कृषि, जल संसाधनों, और पर्यावरण के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है। यह बारिश उन फसलों के लिए आवश्यक है, जो इस क्षेत्र की खाद्य सुरक्षा और अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण हैं।हालांकि, मानसून के साथ कई चुनौतियाँ भी आती हैं, जैसे कि बाढ़, मिट्टी का कटाव, और जलजनित रोग। पूर्वी अफ्रीका के कई हिस्सों में मानसून की असामान्यता, जैसे कि अत्यधिक बारिश या सूखा, जनजीवन और अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है पूर्वी अफ्रीका के मानसून की उत्पत्ति और प्रक्रिया जटिल और कई कारकों पर निर्भर करती है। भौगोलिक स्थिति, वायुमंडलीय परिस्थितियाँ, समुद्री तापमान, और स्थानीय स्थलाकृति सभी मिलकर इस मानसून की वर्षा का निर्माण करते हैं। पूर्वी अफ्रीका के मानसून की प्रक्रिया और प्रभाव को समझना इस क्षेत्र की जलवायु, कृषि, और सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों के प्रबंधन के लिए आवश्यक है।

ऑस्ट्रेलिया के मानसून की प्रक्रिया

ऑस्ट्रेलिया का मानसून एक महत्वपूर्ण मौसमी पवन प्रणाली है, जो इस क्षेत्र की जलवायु, कृषि, और पर्यावरण पर गहरा प्रभाव डालती है। यह मानसून मुख्य रूप से उत्तरी ऑस्ट्रेलिया और इसके आस–पास के क्षेत्रों में सक्रिय रहता है। मानसून की प्रक्रिया, इसकी उत्पत्ति, और इसका प्रभाव समझने के लिए हमें ऑस्ट्रेलिया की भौगोलिक स्थिति, वायुमंडलीय परिस्थितियों, और समुद्री तापमान पर विचार करना होगा। ऑस्ट्रेलिया की भौगोलिक स्थिति इसे मानसून प्रभावित क्षेत्रों में से एक बनाती है। यह क्षेत्र विशेष रूप से उत्तरी ऑस्ट्रेलिया के लिए महत्वपूर्ण है, जहां मानसून की बारिश से जल संसाधन, कृषि, और पारिस्थितिकी पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ऑस्ट्रेलिया का मानसून मुख्य रूप से गर्मियों के महीनों में होता है, जब दक्षिणी गोलार्ध में गर्मी का मौसम होता है। इस समय सूर्य की किरणें सीधे भूमध्य रेखा और उससे सटे क्षेत्रों पर पड़ती हैं, जिससे सतह का तापमान बढ़ जाता है। इस बढ़े हुए तापमान के कारण भूमि पर निम्न दबाव क्षेत्र का निर्माण होता है, जो मानसून की हवाओं को आकर्षित करता है।

मानसून की उत्पत्ति

ऑस्ट्रेलिया का मानसून मुख्य रूप से दिसंबर से मार्च के बीच सक्रिय रहता है। इस समय उत्तरी ऑस्ट्रेलिया का तापमान अत्यधिक गर्म हो जाता है, जिससे यहाँ एक निम्न दबाव क्षेत्र का निर्माण होता है। इस निम्न दबाव क्षेत्र के कारण, हवाएं भारतीय और प्रशांत महासागरों से नमी उठाकर उत्तरी ऑस्ट्रेलिया की ओर बहने लगती हैं। जब ये नमी युक्त हवाएं भूमि से टकराती हैं, तो संघनन की प्रक्रिया होती है, जिससे बादलों का निर्माण और बारिश होती है। इस समय, उत्तरी ऑस्ट्रेलिया के कई हिस्सों में भारी बारिश होती है, जो कृषि और जल संसाधनों के लिए महत्वपूर्ण है।

मॉनसून के प्रभावी क्षेत्र

ऑस्ट्रेलिया का मानसून मुख्य रूप से उत्तरी क्षेत्रों में सक्रिय रहता है, जिसमें उत्तरी क्वींसलैंड, उत्तरी टेरिटरी, और पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया शामिल हैं। इन क्षेत्रों में मानसून की हवाओं के कारण भारी बारिश होती है, जो स्थानीय पारिस्थितिकी और कृषि के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसके अलावा, ऑस्ट्रेलिया के मानसून का प्रभाव आसपास के समुद्री क्षेत्रों, जैसे कि टिमोर सागर, अराफुरा सागर, और कारपेंटारिया की खाड़ी पर भी पड़ता है। यह मानसून इन समुद्री क्षेत्रों में भी भारी बारिश और तूफानों का कारण बनता है, जो समुद्री पारिस्थितिकी और मत्स्य पालन को प्रभावित करता है।

मानसून का उत्कर्ष और समापन

ऑस्ट्रेलिया के मानसून का उत्कर्ष जनवरी और फरवरी के महीनों में होता है। इस समय, मानसून की हवाएं अत्यधिक सक्रिय होती हैं और उत्तरी ऑस्ट्रेलिया में लगातार भारी बारिश होती है। मानसून का समापन आमतौर पर मार्च के अंत और अप्रैल की शुरुआत में होता है, जब सूर्य की किरणें दक्षिणी गोलार्ध से हटकर उत्तरी गोलार्ध की ओर बढ़ने लगती हैं। इस समय, मानसून की हवाएं कमजोर हो जाती हैं और बारिश कम होने लगती है।

ला निना और इंडियन ओशन डाइपोल का प्रभाव

ऑस्ट्रेलिया के मानसून पर ला निना (La Niña) और इंडियन ओशन डाइपोल (IOD) का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। ला निना के दौरान, प्रशांत महासागर के पूर्वी हिस्से में समुद्री सतह का तापमान कम हो जाता है, जिससे ऑस्ट्रेलिया के उत्तर में मानसून की बारिश अधिक होती है। इंडियन ओशन डाइपोल का प्रभाव भी ऑस्ट्रेलिया के मानसून पर देखा जाता है। जब IOD सकारात्मक स्थिति में होता है, तो भारतीय महासागर के पश्चिमी हिस्से में समुद्री सतह का तापमान बढ़ जाता है, जिससे ऑस्ट्रेलिया के उत्तर में अधिक नमी और बारिश होती है। इसके विपरीत, नकारात्मक IOD स्थिति में, ऑस्ट्रेलिया में सूखा पड़ सकता है।

मानसून का प्रभाव

ऑस्ट्रेलिया के मानसून का प्रभाव व्यापक और बहुआयामी होता है। मानसून की बारिश उत्तरी ऑस्ट्रेलिया के कृषि, जल संसाधन, और पारिस्थितिकी के लिए आवश्यक होती है। यह बारिश उन फसलों के लिए महत्वपूर्ण होती है, जो इस क्षेत्र की खाद्य सुरक्षा और अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक हैं। हालांकि, मानसून के साथ कई चुनौतियाँ भी आती हैं, जैसे कि बाढ़, मिट्टी का कटाव, और जलजनित रोग। उत्तरी ऑस्ट्रेलिया के कई हिस्सों में मानसून की

असामान्यता, जैसे कि अत्यधिक बारिश या सूखा, जनजीवन और अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है।

ऑस्ट्रेलिया के मानसून की प्रक्रिया एक जटिल और बहुआयामी प्राकृतिक घटना है, जिसमें कई वायुमंडलीय, समुद्री, और भूगर्भीय कारक शामिल होते हैं। यह मानसून न केवल उत्तरी ऑस्ट्रेलिया की जलवायु और पर्यावरण के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि यह कृषि, जल संसाधन, और पारिस्थितिकी को भी गहराई से प्रभावित करता है। मानसून की प्रक्रिया और इसके प्रभावों को समझना उत्तरी ऑस्ट्रेलिया के विकास और प्रबंधन के लिए आवश्यक है।

एशिया में मानसून

एशिया में मानसून का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। मानसून एक मौसमी पवन प्रणाली है जो हर साल एक निश्चित समय पर बारिश लाती है। एशिया में, खासकर दक्षिण और दक्षिण–पूर्वी एशिया में, मानसून की बारिश कृषि, जल संसाधनों, और जनजीवन के लिए बेहद जरूरी है। यह क्षेत्र में जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा है, लेकिन इसके साथ–साथ यह कई चुनौतियां भी लाता है। मानसून का अ"मानसून" शब्द अरबी भाषा के "मौसिम" शब्द से लिया गया है, जिसका मतलब है "मौसम" या "ऋतु" यह वह प्रणाली है जिसमें हवाएं एक दिशा में बहती हैं और फिर दूसरे मौसम में विपरीत दिशा में। एशिया में मानसून की दो मुख्य धाराएं होती हैं: दक्षिण–पश्चिम मानसून और उत्तर–पूर्व मानसून।

दक्षिण–पश्चिम मानसून

दक्षिण–पश्चिम मानसून एशिया में विशेष रूप से भारतीय उपमहाद्वीप, दक्षिण–पूर्व एशिया, और चीन के कुछ हिस्सों में अत्यधिक महत्वपूर्ण मौसमीय घटना है। यह मानसून न केवल इन क्षेत्रों के कृषि, जल संसाधनों और अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि इसे क्षेत्र के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन का भी एक अभिन्न हिस्सा माना जाता है।

दक्षिण–पश्चिम मानसून

दक्षिण–पश्चिम मानसून एक मौसमी हवा प्रणाली है जो गर्मियों के दौरान हिंद महासागर से उत्तर की ओर बहती है और भारी बारिश लाती है। यह मानसून आमतौर पर जून से सितंबर के बीच सक्रिय रहता है। यह उस समय शुरू होता है जब गर्मी के कारण उपमहाद्वीप का तापमान बढ़ जाता है, और इससे हवा का दबाव कम हो जाता है। परिणामस्वरूप, हिंद महासागर से नमी युक्त हवाएं उत्तर की ओर खिंच जाती हैं, जो भारत, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका, और अन्य पड़ोसी देशों में बारिश लाती हैं।

दक्षिण–पश्चिम मानसून की उत्पत्ति

दक्षिण–पश्चिम मानसून की उत्पत्ति में तीन मुख्य कारक शामिल हैं:

भूमध्य रेखा पर गमी:

गर्मियों में, सूर्य की किरणें पृथ्वी पर लगभग सीधे गिरती हैं, जिससे भारतीय उपमहाद्वीप में तापमान बहुत अधिक बढ़ जाता है। इस गर्मी से हवा का दबाव कम हो जाता है और नमी युक्त हवाओं को आकर्षित करता है।

हिमालय पर्वत:

हिमालय की ऊंची पर्वत श्रृंखला दक्षिण से आने वाली हवाओं को उत्तर की ओर आगे बढ़ने से रोकती है। इससे हवाएं और अधिक नमी इकट्ठा करती हैं और वर्षा होती है।

हिंद महासागर:

हिंद महासागर की गर्म जलधारा नमी युक्त हवाओं को अधिक नमी प्रदान करती है, जो अंततः बारिश के रूप में गिरती है।

दक्षिण–पश्चिम मानसून का विभाजन

दक्षिण–पश्चिम मानसून को मुख्य रूप से दो धाराओं में बांटा जा सकता है

अरब सागर शाखा:

यह शाखा दक्षिण–पश्चिम भारत के तटीय क्षेत्रों से होते हुए पश्चिमी घाटों में प्रवेश करती है। यह सबसे पहले केरल में पहुंचती है, जिसे भारतीय उपमहाद्वीप में मानसून के आगमन का पहला संकेत माना जाता है। इसके बाद, यह पश्चिमी और मध्य भारत की ओर बढ़ती है, जिससे महाराष्ट्र, गुजरात, और राजस्थान में भारी बारिश होती है।

बंगाल की खाड़ी शाखा:

यह शाखा बंगाल की खाड़ी से निकलती है और पूर्वोत्तर भारत, पश्चिम बंगाल, और बांग्लादेश में प्रवेश करती है। यह उत्तर भारत और नेपाल की ओर भी बढ़ती है, जिससे गंगा के मैदान में भारी बारिश होती है।

एशिया में उत्तर–पूर्व मानसून

उत्तर–पूर्व मानसून

दक्षिण–पश्चिम मानसून के बाद आने वाली मौसमी पवन प्रणाली है, जो मुख्य रूप से दक्षिण एशिया और दक्षिण–पूर्व एशिया के कुछ हिस्सों में प्रभाव डालती है। इस मानसून का मौसम अक्टूबर से दिसंबर के बीच होता है और यह क्षेत्रों में ठंडी, शुष्क हवाओं के साथ शुरू होता है। हालांकि इसका प्रभाव दक्षिण–पश्चिम मानसून जितना व्यापक नहीं है, लेकिन यह मानसून विशेष रूप से दक्षिण भारत और श्रीलंका के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

उत्तर–पूर्व मानसून क्या है?

उत्तर–पूर्व मानसून वह मौसमी पवन प्रणाली है जो अक्टूबर से दिसंबर के बीच भारतीय उपमहाद्वीप के कुछ हिस्सों और दक्षिण–पूर्व एशिया में सक्रिय होती है। यह मानसून तब शुरू होता है जब दक्षिण–पश्चिम मानसून का समापन हो जाता है और सूर्य की स्थिति बदलने के कारण हवा का प्रवाह दक्षिण से उत्तर की ओर हो जाता है। इस दौरान, हवाएं हिमालय पर्वत से होकर दक्षिण भारत, श्रीलंका, और दक्षिण–पूर्व एशिया के कुछ हिस्सों में नमी युक्त हवाएं लेकर आती हैं, जिससे इन क्षेत्रों में बारिश होती है।

उत्तर–पूर्व मानसून का क्षेत्रीय प्रभाव

1. दक्षिण भारत

उत्तर–पूर्व मानसून मुख्य रूप से दक्षिण भारत, खासकर तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, और पुडुचेरी में सक्रिय रहता है। जबकि अधिकांश भारत में बारिश का मुख्य मौसम दक्षिण–पश्चिम मानसून होता है, तमिलनाडु के लिए उत्तर–पूर्व मानसून सबसे महत्वपूर्ण है। इस समय की बारिश के कारण राज्य के जलाशय और जल संसाधन भरते हैं, जो कि रबी फसल के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं। चेन्नई जैसे शहरों में भी पीने के पानी की आपूर्ति उत्तर–पूर्व मानसून पर निर्भर करती है।

2. श्रीलंका

श्रीलंका में भी उत्तर–पूर्व मानसून का विशेष प्रभाव होता है, खासकर पूर्वी और उत्तरी हिस्सों में। इस दौरान श्रीलंका के कुछ हिस्सों में भारी बारिश होती है, जो कृषि और जल संसाधनों के लिए आवश्यक है। उत्तर–पूर्व मानसून के दौरान श्रीलंका के इन क्षेत्रों में चावल और अन्य फसलों की खेती की जाती है।

3. दक्षिण–पूर्व एशिया

उत्तर–पूर्व मानसून दक्षिण–पूर्व एशिया के कुछ हिस्सों, जैसे मलेशिया, थाईलैंड, और इंडोनेशिया में भी बारिश लाता है। इन क्षेत्रों में, मानसून की यह बारिश कृषि और अन्य गतिविधियों के लिए महत्वपूर्ण होती है, हालांकि इसका प्रभाव दक्षिण–पश्चिम मानसून के मुकाबले कम होता है।

उत्तर–पूर्व मानसून की उत्पत्ति

उत्तर–पूर्व मानसून की उत्पत्ति हिमालय पर्वत और उसके आसपास के उच्च दबाव क्षेत्रों में होती है। जब दक्षिण–पश्चिम मानसून समाप्त होता है, तो सूर्य की स्थिति दक्षिण की ओर खिसकती है, जिससे उत्तरी गोलार्ध में सर्दी शुरू हो जाती है। इससे हवा का दबाव बढ़ता है और ठंडी, शुष्क हवाएं हिमालय पर्वत से दक्षिण की ओर

बहने लगती हैं। ये हवाएं बंगाल की खाड़ी और हिंद महासागर से नमी लेकर तमिलनाडु और अन्य क्षेत्रों में बारिश करती हैं।

7.8 भारतीय मानसून की उत्पत्ति (ORIGIN OF INDIAN MONSOONS) –

20वीं शताब्दी के मध्य दशक के पश्चात मौसम एवं जलवायु विज्ञान के शोध परक अध्ययनों के उपरान्त यह स्पष्ट होता है कि भारतीय मानसून की उत्पत्ति और उसकी सम्पूर्ण प्रणाली निम्नलिखित तथ्यों से सम्बन्धित हैं –

- ❖ भारतीय मानसून की उत्पत्ति में हिमालय पर्वत व तिब्बत के पठार की स्थिति एक यान्त्रिक अवरोध के रूप में उच्च तलीय ऊष्मा के स्रोत की भूमिका के रूप में है।
- ❖ क्षोभमण्डल में वायुराशि के चक्राकार परिसंचरण प्रतिरूप का निर्मित होना।
- ❖ उच्चतलीय क्षोभमण्डल में जेट स्ट्रीम की स्थिति का रहना तथा उसके परिसंचरण का होना।
- ❖ एशिया महाद्वीप के वृहद स्तरीय स्थलीय भाग तथा हिन्दमहासागरीय जल भाग के गर्म व ठंढ़ा होने में विद्यमान भिन्नता।
- ❖ एल निनो–दक्षिणी दोलन परिघटना का प्रभावी होना।

क्षोभमण्डल के मध्यवर्ती तथा ऊपरी भाग में पवन संचरण की प्रणाली का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हुआ है कि मानसून एक जटिल पवन परिसंचरण तन्त्र है। ध्रुवों के ऊपर आर्कटिक वृत्त में धरातल पर वायु के ऊपर से नीचे उतरने तथा बैठने के कारण उच्च वायुदाब की स्थिति बन जाती है तथा क्षोभमण्डल में इस धरातलीय उच्च वायुदाब के ऊपर निम्न वायुदाब की स्थिति बन जाती है (उच्च तलीय)। इस प्रकार ध्रुवों के ऊपर उच्चतलीय परिध्रुवीय भँवर का जनन होता है जिससे हवाएं चक्राकार रूप में चक्रवातीय क्रम में प्रवाहित होती हैं। उ० गोलार्द्ध के शरदकालीन मौसम में जाड़े की लम्बी रातों के कारण ऊपर स्थित वायु अति ठंड़ी होकर भारी हो जाती है जिसके आर्कटिक क्षेत्र में नीचे बैठने से उच्च वायुदाब बन जाता है। ऊपर से नीचे वायु के सरकने के फलस्वरूप क्षोभमण्डल में धरातलीय उच्चवायुदाब के ऊपर निम्न वायुदाब बन जाता है जिसका प्रमुख कारण ऊपर की वायु का नीचे की ओर बैठ जाना है। इस उच्चवायुमण्डलीय निम्नवायुदाब क्षेत्र के चतुर्दिक हवाएं भँवर के रूप में चक्रवातीय क्रम में प्रवाहित होने लगती हैं। सामान्यतः एशिया के ऊपर इन हवाओं की दिशा प० से पू० को रहती है। इस उच्च तलीय पवन संचरण के भूमध्यरेखा की ओर वाले भाग को जेट स्ट्रीम कहा जाता है। जेट स्ट्रीम का परिसंचरण मोड़दार रहता है। शरदकालीन आर्कटिक उच्चतलीय भँवर प्रबल रूप में सक्रिय रहता है फलतः उच्चतलीय पछुआ जेट स्ट्रीम की स्थिति 20^0 से 35^0 अक्षाँशों के मध्य हो जाती है। इस परिध्रुवीय भँवर के अधिक द० तक प्रसरित हो जाने के फलस्वरूप अन्तरा उष्णकटिबन्धीय अभिसरण की स्थिति सामान्य से हटकर दक्षिण की ओर चली जाती है तथा भारतीय उप महाद्वीप के ऊपर उ०पू० व्यापारिक हवाएं विस्तृत हो जाती हैं।

सामान्य द० एशिया में उच्चतलीय पछुआ जेट स्ट्रीम की स्थिति क्षोभमण्डल में लगभग 12 कि०मी० की उँचाई पर रहती है। जिसे यहाँ उपोष्णकटिबन्धीय पछुआ जेट स्ट्रीम (200 मिलीवार वायुदाब) कहा जाता है। 60^0 उ० अक्षाँश पर यह लगभग 10 कि०मी० की ऊचाई पर जबकि ध्रुवों पर यह कम उँचाई पर रहती है। इस उच्चतलीय पछुआ जेट स्ट्रीम का शीतकाल की अवधि में उ० गोलार्द्ध के अन्तर्गत हिमालय तिब्बत पठार के यान्त्रिक अवरोध के कारण दो भाग हो जाता है। एक शाखा तिब्बत पठार के उ० में चाप के आकार में प० से पू० को हो जाती है। जबकि दूसरी मुख्यशाखा तिब्बत के पठार व हिमालय के द० में प० से पूर्व को प्रवाहित होती है। जेट स्ट्रीम की मुख्यशाखा अफगानिस्तान व पाकिस्तान के ऊपर से होकर चक्रवातीय मार्ग का अनुसरण करती हैं। वस्तुतः इन हवाओं के मार्ग में घड़ी की सुई के विपरीत दिशा में मोड़ होता है फलतः जेट स्ट्रीम मार्ग की दिशा के दाहिनी ओर गतिजन्य प्रति चक्रवातीय पवनों का संचरण होने लगता है। जिससे जेट स्ट्रीम के द० अफगानिस्तान व पाकिस्तान के प० भाग के ऊपर वायुमण्डल में 10 से 12 कि०मी० की उँचाई पर उच्चतलीय उच्चदाब बन जाता है। परिणामतः पवनों का संचरण प्रतिचक्रवातीय रूप में होने से हवा नीचे बैठने लगती है। जबकि इसके विपरीत हिमालय के द० में पछुआ जेट स्ट्रीम की प्रमुख शाखा का मार्ग पर्वतीय अवरोध के कारण घड़ी की सुई की विपरीत दिशा में या चक्रवातीय हो जाता है। फलतः जेट स्ट्रीम के इस चक्रवातीय चापाकार मार्ग के उत्तर अर्थात उसके मार्ग की गयी। ओर तिब्बत पठार के ऊपर क्षोभमण्डल में हवाओं का संचरण घड़ी की सुई की विपरीत दिशा में होने लगता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकत है कि तिब्बत के पठार पर गतिजन्य उच्चतलीय चक्रवातीय दशा का

निर्माण हो जाता है।

अक्टूबर से फरवरी के मध्य शरदकालीन अवधि में उत्तरी ध्रुवीय उच्चत तलीय भँवर के दक्षिण की ओर विस्तृत हो जाने से 20^0 से 35^0 उ० अक्षाँश तक जेट स्ट्रीम भी विस्तृत हो जाती है। हिमालय तथा तिब्बत पठार के यान्त्रिक अवरोध के फलस्वरूप उच्चवायुमण्लीय पछुआ जेट स्ट्रीम की दो शाखाएं—एक तिब्बत के पठार के उ० में तथा दूसरी हिमालय के द० में हो जाती है। अफगानिस्तान एवं पाकिस्तान के ऊपर वायुमण्डल के क्षोभमण्डल में उच्चतलीय उच्च वायुदाब तथा प्रतिचक्रवातीय दशाओं का जनन हो जाता है। फलतः उ० भारत के उ० भाग में हवाऐं ऊपर से नीचे बैठने लगती हैं जिससे वायुमण्डलीय दशा में स्थिरता आ जाने से मौसम शुष्क एवं साफ हो जाता है। ज्ञातव्य है कि उच्चतलीय जेट स्ट्रीम के परिणाम स्वरूप मौसम की दशाओं में परिवर्तन होते रहते हैं। इस परिवर्तन का प्रमुख कारण यह है कि इस पछुआ जेट स्ट्रीम के नीचे शीतोष्ण कटिबन्धीय निम्नदाब अथवा चक्रवातीय लहर की स्थिति रहती है और यह जेट स्ट्रीम के साथ—साथ उसके नीचे प० से पू० की ओर रूमसागर के ऊपरी भाग से चलकर उ०प० पाकिस्तान एवं उ०प० भारत तक पहुँचते रहते हैं। यह तीव्रगामी हवाएं लहर के रूप में रहती है। इनकी स्थिति सागर तल से 200 मीटर की उँचाई पर रहती है। इनके ही नीचे उ०पू० व्यापारिक पवनों का धरातल पर संचरण रहता है जिसके कारण अल्पकालिक वृष्टि के साथ ही तापमान में न्यूनता आ जाती है। इनके चले जाने के पश्चात मौसम फिर से साफ हो जाता है। इन चक्रवातीय लहरों व उनसे प्राप्त होने वाली अल्पकालिक वर्षा की पूर्वी सीमा बिहार प्रान्त के पटना शहर तक है।

ज्ञातव्य हो इसी समय इन क्षेत्रों के ऊपर तलीय उच्चदाब एवं प्रति चक्रवातीय दशाएं होती हैं और यहीं से हवा नीचे बैठती है। परिणामतः उसके नीचे (उच्च तलीय उच्चदाब) धरातलीय व्यापारिक पवनों के ऊपर 200 मीटर की उँचाई पर स्थित चक्रवातीय लहर वाली वायु ऊपर नहीं उठ पाती है। इसका कारण यह है कि उच्च तलीय उच्चदाब से नीचे को बैठने वाली हवा ऊपर उठने से रोकती है तथा इस चक्रवातीय लहर से नीचे धरातलीय व्यापारिक ठंडी हवा उसे ठंड़ा ही करती रहती है। वस्तुतः इन शरदकालीन चक्रवातीय लहरों से होने वाली अधिकतर वर्षा पर्वतीय होती है तथा भारत शीतकाल में सर्द एवं शुष्क बना रहता है।

21 मार्च के बाद सूर्य की स्थिति उत्तरायण होने लगती है और ध्रुवीय धरातलीय उच्चदाब कमजोर होने लगता है फलतः शरदकालीन इसका 20^0 से 35^0 अक्षाँशों तक का बढ़ा हुआ भाग उ० की ओर खिसकने लगता है। इस उच्चतलीय ध्रुवीय भँवर के उ० की ओर खिसकने के कारण उच्च तलीय पछुआ जेट स्ट्रीम भी उ० की ओर खिसकने लगती है जिससे शीत वायुराशि (ध्रुवीय भँवर) की गतिक शक्ति में शिथिलता आने से पछुआ जेट स्ट्रीम की दक्षिण वाली शाखा स्थिर नहीं रह जाती। अतः पछुआ जेट स्ट्रीम हिमालय तथा तिब्बत के पठार के ओर उ० की तरफ खिसक जाती है। भारतीय उप महाद्वीप से जेट स्ट्रीम का पूर्ण पतन मध्य जून के पश्चात ही होता है। मार्च माह से लेकर मध्य जून तक की अवधि का मौसम धरातल की तापीय दशा तथा जेट स्ट्रीम के उ० दिशा की ओर खिसकाव द्वारा प्रभावित रहता है।

उ०प० पाकिस्तान तथा उ०प० भारत में अप्रैल—मई माह की अवधि में प्राप्त होने वाले सूर्यातप से धरातल के गर्म होने के कारण तापीय निम्न वायुदाब बन जाता है परन्तु जब तक इस धरातलीय निम्नदाब के ऊपर जेट स्ट्रीम की स्थिति बनी रहती है (वस्तुतः जब तक जेट स्ट्रीम हिमालय के द० बनी रहती है) तब तक वह अफगानिस्तान, उ०प० पाकिस्तान व उ०प० भारत पर गतिक चक्रवातीय स्थिति बनाये रखती है। इस उच्च तलीय उच्च दाब से नीचे बैठने वाली हवा धरातलीय तापीय निम्नदाब से वायु को ऊपर उठने से रोकती है जिसके कारण मौसम न मात्र गर्म एवं शुष्क बना रहता है वरन् उच्चतापमान व वाष्पीकरण के पश्चात भी वर्षा नहीं हो पाती है। मई माह में जहाँ उ०प० भारत शुष्क रहता है वहीं हिमालय की पूर्वी सीमा के पूर्व दिशा में उच्च तलीय पछुआ जेट स्ट्रीम के कारण उच्चतलीय निम्नदाब का निर्माण होने से म्यांमार के द० भाग से आने वाली पवन ऊपर उठ जाती है तथा तीव्र वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। इसका प्रभाव बांग्लादेश व भारत के सीमावर्ती भाग पर भी पड़ता है फलतः पूर्व मानसून वर्षा होती है। इस प्रकार मई माह में उ०पू० एवं पूर्वी भारत तो आर्द्र हो जाता है परन्तु उ०प० भारत शुष्क व गर्म बना रहता है।

जून माह के प्रथम सप्ताह तक भारत के ऊपर से शरदकालीन जेट स्ट्रीम की द० शाखा आर्थत पछुआ जेट स्ट्रीम उत्तर की ओर खिसक जाने के कारण समाप्त हो जाती है। जेट स्ट्रीम की स्थिति वस्तुतः तिब्बत पठार के और उ० की ओर चली जाती है और इसके संचरण मार्ग का वक्र शीतकालीन मार्ग के विपरीत हो जाता है। ईरान के उ० भाग एवं अफगानिस्तान के ऊपर इस उच्च तलीय जेट स्ट्रीम का प्रवाह मार्ग घड़ी की सुई की विपरीत दिशा

में चक्रवातीय वक्र के स्वरूप होता है फलतः वायु के ऊपरी भाग परिवर्तन मण्डल में गतिक निम्न दाब एवं चक्रवातीय दशा का निर्माण हो जाता है। (शीतकाल की अवधि में इसी स्थान पर ठीक इसके विपरीत की स्थिति रहती है।) इस उच्च तलीय निम्न दाब की स्थिति भारत व पाकिस्तान के उ०प० भाग तक विस्तृत हो जाती है जबकि इसके धरातलीय भाग पर निम्न वायुदाब की स्थिति निर्मित रहती है। इस स्थिति के कारण जहाँ एक तरफ हवा नीचे से ऊपर को उठती हैं वहीं धरातलीय निम्न दाब के ऊपर स्थित उच्चतलीय निम्नदाब नीचे से ऊपर उठने वाली हवा को और ऊपर खींचता है फलतः द०प० मानसून का एकाएक प्रस्फोट हो जाता है। ज्ञातव्य हो कि उ० गोलार्द्ध के ग्रीष्मकालीन स्थिति के ठीक विपरीत स्थिति द० गोलार्द्ध में जहाँ शरदकाल होता है, रहती है। द० ध्रुवीय भंवर विस्तृत होकर भूमध्यरेखा के समीप आ जाता है जिससे उन्तराउष्णकटिबन्धीय अभिसरण भूमध्यरेखा के उ० की तरफ ढ़केल दिया जाता है। द० ध्रुवीय भंवर के इस ढ़केल दिये जाने के कारण द०पू० व्यापारिक हवाएं भूमध्यरेखा को पार करने पर विक्षेप बल अर्थात कोरिआलिस बल के कारण द०प० दिशागामी होकर तीव्र गति से भारत के ऊपर फैल जाती हैं। उल्लेखनीय है कि अन्तरा उष्णकटिबन्धीय अभिसरण का तीव्र गति से उ० की ओर बढ़ते का कारण द० परिध्रुवीय भॅवर के ढ़केलने से ही सम्बन्धित है न कि उ०प० भारत के धरातलीय तापजन्य निम्न दाब के द्वारा खीचने से। हाँ इस निम्नदाब के कारण अन्तरा उष्णकटिबन्धीय अभिसरण के उत्तरगामी होने की गति तीव्र अवश्य हो जाती है। इस अन्तरा उष्णकटिबन्धीय अमिसरण में वाताग्री चक्रवात न होकर गतिजन्य लहरें होती है जो भारत के ऊपर पहुँचने पर चक्रवातीय भँवर के रूप में विकसित हो जाती हैं। इन्हीं चक्रवातीय भँवरों के विकास चक्र के फलस्वरूप ही भारत की ग्रीष्मकालीन मानसूनी वर्षा सम्भव हो पाती है।

भारतीय मानसूनी वर्षा की अवधि व मात्रा में स्थानिक एवं कालिक परिवर्तन भी देखने को मिलता है जिसमें उच्चावच का प्रभाव परिवर्तन की एक कारको में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प० घाट के अवरोध के कारण द०प० मानसून की अरब सागरीय शाखा अचानक ऊपर उठती है और प० घाट के शिखर के सहारे वर्षा करती है। प० घाट के पू० में हवा नीचे उतरने से गर्म रहती है। जिससे कम वर्षा होती है। कम वर्षा वाले भाग को वृष्टि छाया प्रदेश कहा जाता है। हिमालय पर्वत बंगाल खाड़ी की मानसून शाखा को दो रूपों में प्रभावित करता है : (1) हिमालय के पर्वतीय भाग के अवरोध के कारण ही हवाऐं ऊपर उठती हैं और पर्याप्त वर्षा करती हैं। (2) पर्वतीय अवरोध के कारण ही हवाएं उसके सहारे प० दिशा की ओर प्रवाहित होने लगती है और गंगा की घाटी में प० तक प्रवेश कर जाती है तथा उ०प० भाग तक वर्षा करती है। भारत की उ०प० भाग तथा पाकिस्तान के निकटवर्ती भाग में धरातल पर प्रबल तापीय निम्नदाब के पश्चात भी कम वर्षा होती है। सामान्यतया इसका कारण अरावली पहाड़ियों की अरब सागरीय शाखा की मानसून हवाओं के समानान्तर स्थिति या पर्वतीय अवरोधक के अभाव को बताया जाता है। जबकि इसका प्रमुख कारण है यह कि यहाँ पर धरातलीय तापीय निम्न दाब के ऊपर मानसून प्रवाह की मोटाई उच्चतलीय गतिजन्य प्रति चक्रवातीय दशा पर निर्भर करती है। वस्तुतः सहारा के ऊपर उच्चदाब रहता है जो ईरान व अफगानिस्तान तक प्रसारित रहता है जिसके कारण हवाएं तेजी से ऊपर नहीं उठ पाती हैं। ज्ञातव्य है कि कभी–कभी यह उच्चतलीय उच्चदाब पश्चिमी की ओर खिसक जाता है फलतः मानसूनी हवाएं तेजी से ऊपर उठती हैं और तीव्र वर्षा करती हैं।

तिब्बत पठार एवं मोनेक्स (TIBET PLATEAU AND MONEY) –

1973 ई० में भारतीय तथा रूस के वैज्ञानिकों के द्वारा संयुक्त रूप से मानसून से सम्बन्धित जानकारी का अभियान प्रारंभ किया गया। इस हेतु हिन्दमहासागर में आधुनिक मौसम संबंधी उपकरणों के माध्यम से मौसम सम्बन्धी अनेक सूचनाऐं प्राप्त हुई। मोनेक्स के दौरान प्राप्त जानकारी के आधार पर यह स्पष्ट हुआ है कि भारतीय मानसून तिब्बत पठार के उष्मन एवं शीतलन से सम्बन्धित है। तिब्बत पठार का भाग 600 किलोमीटर और पूर्वी भाग लगभग 1000 कि०मी० चौड़ा है। सागर तल से इस पठार की ऊंचाई 400 से 500 मीटर तक है। भारतीय मौसम वैज्ञानिक पी० कोटेश्वरम ने 1958 ई० में ही स्पष्ट कर दिया था कि भारतीय मानसून की उत्पत्ति और उसकी विधि के लिए तिब्बत का पठार एक महत्वपूर्ण कारक है। तिब्बत पठार का प्रदेश भारतीय मानसून को दो रूपों में प्रभावित करता हैः (1) एक शक्तिशाली यांत्रिक अवरोध के रूप में, (2) ऊष्मा स्रोत के रूप में।

भारतीय मानसून तथा एल नीनो दक्षिणी दोलन (ENSO) परिघटना –

दक्षिणी दोलन की उच्च एवं निम्न प्रावस्थाओं का निर्धारण उष्णकटिबंधीय पूर्वी एवं पश्चिमी प्रशांत महासागर में उच्च वायुदाब एवं निम्न वायुदाब प्रणाली में कालिक व स्थानिक परिवर्तन के आधार पर किया जाता है। दक्षिणी दोलन के प्रबल एवं कमजोर होने की अवस्थाओं को हि दक्षिणी दोलन सूचकांक कहा जाता है। दक्षिणी दोलन की

दो प्रावस्थाएं होती हैं (1) उच्च प्रावस्था (HIGH PHASE) (2) निम्न प्रावस्था (LOW PHASE) दक्षिणी दोलन की उच्च प्रावस्था सम्मान्य स्थिति को प्रदर्शित करती है जिससे NON-ENSO प्रावस्था भी कहा जाता है। इस प्रावस्था के समय पूर्वी एवं दक्षिणी–पूर्वी उष्णकटिबंधीय प्रशान्त महासागर की सतह पर सबल उच्चवायुदाब का निर्माण होता है जबकि उष्णकटिबन्धीय प्रशान्त महासागर के प० भाग पर निम्न वायुदाब का विकास होता है। धरातलीय (स्थलीय व जलीय भाग की सतहों पर) सतह पर सबल पूर्वी हवाओं का संचरण होता है। ऊपरी वायुमण्डलीय अर्थात क्षोभमण्डलीय जेट स्ट्रीम कमजोर पड़ जाती है और दोनों गोलार्ध में ध्रुवों की ओर खिसक जाती है और ला निना सशक्त हो जाती है जिसके कारण प्रभावी प्रबल मानसून का आर्विभाव होता है तथा द० एवं द०पू० एशिया में पर्याप्त वर्षा होती है। जबकि द० अमेरिका के पूर्वी तटीय भागों विशेषताः पेरू एवं चिली के तटीय भागों में सूखे की स्थिति हो जाती है। वस्तुतः कमजोर एल–निनो व प्रबल ला निना भारतीय मानूसन की सक्रियता में वृद्धि कर देती है।जिससे मानसून सक्रिय हो जाता है। द० दोलन की निम्न प्रवास्था में स्थिति उच्च प्रावस्था की दशाओं के विपरीत हो जाती है और एल निनो प्रावस्था प्रारम्भ हो जाती है। इस अवस्था में पश्चिमी उष्णकटिबंधीय प्रशान्त महासागर पर निम्न वायुदाब प्रणाली तथा उष्णकटिबन्धीय पूर्वी प्रशान्त महासागर पर निम्न वायुदाब प्रणाली विकसित हो जाती है। ला निना परिघटना समाप्त या कमजोर हो जाती है, एल–निनो परिघटना सक्रिय हो जाती है और पश्चिमी धरातलीय हवाओं का संचरण होने लगता है। उपर्युक्त की संयुक्त परिणामस्वरूप भारतीय उपमहाद्वीप तथा द०पू० एशिया में मानसून कमजोर हो जाने से कम वर्षा प्राप्त होती है तथा सूखे की स्थिति अद्भुत हो जाती है।

7.9 सारांश

इस अध्याय में, मानसून, इसकी परिभाषा, मानसून का फटना और विश्व के प्रमुख मानसूनी क्षेत्रों के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है। मानसून एक महत्वपूर्ण मौसमी पवन प्रणाली है, जो मुख्यतः ग्रीष्म और शीत ऋतुओं में हवाओं की दिशा में परिवर्तन के कारण होती है। यह प्रणाली व्यापक वर्षा और जलवायु परिवर्तन का कारण बनती है, जो कृषि और जल संसाधनों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।मानसून का फटना एक ऐसी प्रक्रिया है, जब अचानक और तीव्र वर्षा होती है। यह प्रक्रिया मानसून के आगमन के प्रारंभिक चरण में होती है और यह वर्षा का मुख्य स्रोत होती है। मानसून के फटने के कारण होने वाली वर्षा कृषि और जल संसाधनों को प्रभावित करती है, जिससे फसल की उत्पादकता और जल संसाधनों की उपलब्धता पर प्रभाव पड़ता है।विश्व के प्रमुख मानसूनी क्षेत्र एशिया, अफ्रीका, उत्तरी ऑस्ट्रेलिया और अमेरिका के कुछ हिस्सों में स्थित हैं। इन क्षेत्रों में मानसूनी हवाओं के प्रभाव से जलवायु और मौसम प्रणाली प्रभावित होती है। एशिया में भारतीय उपमहाद्वीप, दक्षिण पूर्व एशिया और पूर्वी एशिया प्रमुख मानसूनी क्षेत्र हैं, जहां ग्रीष्म ऋतु में भारी वर्षा होती है। अफ्रीका में पश्चिमी अफ्रीका और पूर्वी अफ्रीका मानसूनी हवाओं के प्रभाव में हैं। उत्तरी ऑस्ट्रेलिया और अमेरिका के कुछ हिस्सों में भी मानसूनी हवाएं और वर्षा देखी जाती हैं।इस प्रकार, इस अध्याय में मानसून की परिभाषा, मानसून का फटना और विश्व के प्रमुख मानसूनी क्षेत्रों के बारे में एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान किया गया है। यह अध्ययन हमें मानसून के विभिन्न पहलुओं को गहराई से समझने में मदद करेगा और यह जानने में सहायता करेगा कि ये प्रणाली कैसे पृथ्वी के विभिन्न हिस्सों में जलवायु और मौसम को प्रभावित करती है।

7.10 बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1. दक्षिण–पश्चिमी मानसून का आगमन भारत में किस समय आता है?

(क) शीत ऋतु **(ख)** ग्रीष्म ऋतु **(ग)** वसन्त ऋतु **(घ)** शरद ऋतु

2. भारतीय मानसून की उत्पत्ति में किस महासागर की भूमिका है?

(क) अटलान्टिक महासागर **(ख)** प्रशान्त महासागर **(ग)** हिन्द महासागर **(घ)** दक्षिणी सागर

3. मानसूनी वर्षा के लिए आर्द्रता की प्राप्ति कहां से होती है?

(क) रेगिस्तान **(ख)** हिम **(ग)** महासागर **(घ)** झील

4. मानसूनी पवनों द्वारा कौन प्रत्यक्षतः प्रभावित नही होता है?

(क) दक्षिणी पूर्वी एशिया **(ख)** उत्तरी अमेरिका **(ग)** पूर्वी अफ्रिका **(घ)** आस्ट्रेलिया

5. लौटते हुए मानसून से कौन सा देश प्रभावित होता है?

(क) चीन **(ख)** भारत **(ग)** आस्ट्रेलिया **(घ)** जापान

6. निम्न से कौन सा मानसूनी जलवायु की विशेषता है?

(क) निम्न आर्द्रता **(ख)** सम्पूर्ण वर्ष में सतत वर्षा

(ग) उच्च तापीय भिन्नता **(घ)** स्थिर वायु प्रवाह

7. मानसून पर हिमालय का क्या प्रभाव है?

(क) मानसूनी पवनों को रोकता है **(ख)** मानसूनी पवनों को त्वरित करता है

(ग) मानसूनी पवनों की दिशा परिवर्तित करता है **(घ)** कोई प्रभाव नहीं

7.11 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. मानसूनी पवनों की उत्पत्ति में हिमालय का क्या योगदान है? व्याख्या करें।

2. भारतीय मानसून में तिब्बत के पठार का क्या योगदान है?

3. भारतीय मानसून में जेट स्ट्रीम व बंगाल की खाड़ी का महत्व का वर्णन कीजिए।

4. भारतीय कृषि में मानसून का आर्थिक योगदान क्या है, मानसून फसल को किस प्रकार प्रभावित करता है?

5. मानसून प्रस्फोट क्या होता है? टिप्पणी लिखें।

7.12 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

1.डी एस. लाल – जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज

2 प्रो0 सविद्र सिंह – जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पुस्तक भवन प्रयागराज

3. डॉ. वाई. आई. सिंह – जलवायु विज्ञान, एशियन ह्यूमेनटिस प्रेस (AHP)

4.डॉ. चतुर्भुज मामोरिया – डा. एम. एस. सिसोदिया – जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, साहित्य भवन कानपुर

ईकाई – 08

भारतीय मानसून की उत्पत्ति, जेट वायुधारा, स्थानीय पवन, स्थल व सागरीय समीर, पर्वत व घाटी समीर

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 मानसून की उत्पत्ति

8.4 मानसून की उत्पत्ति की संकल्पनायें

8.5 मौसमी दशाएं

8.6 जेट स्ट्रीम

8.7 जेट स्ट्रीम की विशेषताएं

8.8 जेट स्ट्रीम के प्रकार

8.9 जेट स्ट्रीम का विकास चक्र

8.10 जेट स्ट्रीम का महत्व

8.11 एलनिनो–लानिना परिघटना

8.12 वाकर परिसंचरण तथा एल–निनो–दक्षिणी दोलन

8.13 स्थानीय एवं मौसमी हवाए

8.14 स्थानीय हवाओं का वर्गीकरण

8.15 सामयिक स्थानीय हवाऐं

8.16 असामयिक स्थानीय हवाऐं

8.17 सारांश

8.18 बहुविकल्पीय प्रश्न :–

8.19 अभ्यास प्रश्न–

8-20 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

8.1 प्रस्तावना–

इस इकाई के अन्तर्गत आप मानसून, मानसून की उत्पत्ति, मानसून से सम्बन्धित संकल्पनायें (प्राचीन एवं नवीन) तथा मौसमी दशाओं का अध्ययन करेंगे। भारतीय मानसून की संकल्पना में तापीय संकल्पना, गतिक संकल्पना, जेट वायु संकल्पना, तिब्बत पठार से सम्बन्धित संकल्पना तथा मौसमी दशाओं में शीत ऋतु, ग्रीष्म ऋतु, वर्षा ऋतु एवं शरद ऋतु का वर्णन देखेंगे। इसमें समझेंगें कि मानसून की उत्पत्ति कैसे होती है कौन–कौन कारक इसके उपत्ति में सहायक है। मौसमी दशा में तापमान, वर्षा, आर्द्रता, वायुदाब, पवने तथा मानसून का आगमन। मौसमी दशाएं जेट स्ट्रीम ,जेट स्ट्रीम की विशेषताएं, जेट स्ट्रीम के प्रकार, जेट स्ट्रीम का विकास चक्र, जेट स्ट्रीम का महत्व ,एलनिनो–लानिना परिघटना ,वाकर परिसंचरण तथा एल–निनो–दक्षिणी दोलन , असामयिक स्थानीय हवाए आदि की व्याख्या की गयी है ।

8.2 उद्देश्य

भारत के मानसून विशद् अध्ययन के बाद आप–

- मानसून की उत्पत्ति को समझ सकेगें।
- मानसून की उत्पत्ति में कौन–कौन कारक विद्यमान है।
- मानसून की उत्पत्ति से सम्बन्धित संकल्पनाओं को समझ सकेंगे।

जेट स्ट्रीम ,एलनिनो–लानिना ,वाकर परिसंचरण,असामयिक स्थानीय हवाए आदि की व्याख्या कर सकेंगे।

8.3 मानसून की उत्पत्ति–

भारतीय जलवायु मानसूनी है। इसकी प्रमुख विशेषताएं ग्रीष्म एवं शीतकाल में मौसमी दशाओं में विशेष परिवर्तन है। ग्रीष्म काल में अधिक तापमान, वायुदाब प्रवणता अधिक, आर्द्रता एवं व्यापक वर्षा है जबकि शीतकाल में सामान्य तापमान कम, कम वायुदाब प्रवणता, सापेक्षिक आर्द्रता कम तथा सामान्यतः वर्षा का अभाव। मानसूनी जलवायु में वर्षा ग्रीष्म काल में 2 से 4 माह तक सीमित, अनिश्चितता एवं अनियमितता, वर्षा की मात्रा में असमानता तथा विभंगता होती है। इसका प्रभाव फसल उत्पादन, जनजीवन तथा अर्थ तंत्र पर पड़ता है। भारतीय उपमहाद्वीप में मानसूनी जलवायु की प्रमुख विशेषताएं हैं–

इसमें प्रचुर वर्षा तथा अति न्यून वर्षा की दो ऋतु स्पष्ट होती है। वर्षा की अधिकांश मात्रा ग्रीष्म काल में तथा कम वर्षा की मात्रा शीतकाल में होती है। वर्षा की मात्रा में वर्षा ऋतु के दौरान वर्ष प्रतिवर्ष औसत से अधिक विचलन होने की संभावना बनी रहती है। सामान्यतः 5 वर्ष की अवधि में केवल एक ही वर्ष दीर्घ औसत वर्षा की होती है अन्य 4 वर्षों में वर्षा की मात्रा में बहुत अधिक उतार–चढ़ाव पाया जाता है। जून माह के कुछ तिथियों में वर्षा हो जाने की लोग अपेक्षा करते हैं लेकिन वर्षा प्रारंभ होने की कोई निश्चित नहीं होती है। कभी वर्षा अपेक्षित तिथि से पहले तो कभी तिथि के काफी बाद में प्रारंभ होती है। इसी के साथ वर्षा की समाप्ति की तिथि भी अनिश्चित होती है। भारत के जिस क्षेत्र में वर्षा कम होती है वहां वर्षा की अनिश्चितता कम पाई जाती है। शीतकाल में संपूर्ण भारत में न्यून वर्षा होती है इस समय पंजाब तथा तमिलनाडु के भाग में थोड़ी बहुत वर्षा होती है जबकि संपूर्ण भारत प्रायः शुष्क रहता है। सामान्यतः सर्वत्र भारत मे सालों भर पर्याप्त तापमान बना रहता है परंतु अत्यधिक ऋत्विक घट – बड़ होती है।समुद्रतटीय, द्वीपीय क्षेत्र तथा समुद्र के आस पास के क्षेत्र में ऋत्विक तापांतर कम तथा विशाल मैदान के उत्तर पश्चिम में ऋत्विक तापांतर अधिक होता है। सामान्य तौर पर यहां ग्रीष्म ऋतु में भी दो प्रकार का मौसमी दशाएं पाई जाती हैं– प्रथम वर्षा विहीन तथा द्वितीय वर्षा युक्त। मध्य मार्च से जून तक देश के अधिकांश क्षेत्र पर उच्च तापमान (35 डिग्री सेल्सियस से अधिक) रहता है। उत्तरी मैदानी भाग में प्रायः लू का प्रकोप बना रहता है। मध्य जून से मध्य अक्टूबर तक संपूर्ण उपमहाद्वीप में वर्षा होती है जिससे तापमान तो कम हो जाता है लेकिन सापेक्षिक आर्द्रता अधिक रहती है।

मानसून शब्द की उत्पत्ति अरबी भाषा के शब्द मौसिम से हुआ है जिसका तात्पर्य 'मौसम या ऋतु' है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अरब के नाविकों द्वारा किया गया है। नाविकों द्वारा अरब सागर में चलने वाली उन हवाओं के लिए किया जाता था जिसका मौसम के अनुसार दिशा परिवर्तन हो जाता था, अर्थात् ये हवायें जाड़े में उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम तथा गर्मी में दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व की ओर चला करती थी। हवा की दिशा में मौसमी परिवर्तन भारतीय मानसून की सबसे प्रमुख विशेषता है।

मानसून एक जटिल जलवायु प्रक्रिया का अंग है। वैज्ञानिकों एवं शोधों में हुए नवीन–नवीन प्रयोगों तथा जैसे–जैसे वायुमण्डलीय सम्बन्धित आंकड़े सुलभ होते गये वैसे–वैसे इसके जटिलता से रूबरू होते जा रहे हैं।

8.4 मानसून उत्पत्ति की संकल्पनायें–

मानसून उत्पत्ति से सम्बन्धित संकल्पनाओं का विवरण इस प्रकार है।

8.4.1 तापीय संकल्पना–

इस संकल्पना को क्लासिक सिद्धान्त भी कहा जाता है जिसका प्रतिपादन एडमण्ड हैली ने सन 1686 में किया था जिसका उद्देश्य एशियाई मानसून की उत्पत्ति की व्याख्या करना था। इनके संकल्पना के अनुसार मानसून एवं महासागरीय क्षेत्रों के विभिन्न मौसमी ऊष्मन से उत्पन्न वृहद स्तर की स्थल एवं जलीय हवायें है। जब सूर्य मकर रेखा पर लम्बवत चमकता है तो एशिया अपने समीपस्थ महासागर की अपेक्षा तेजी से ठण्डा होने लगता है

जिससे इसके मध्य भाग (बैकाल झील एवं पेशावर) में एक प्रबल उच्चदाब का क्षेत्र बन जाता है।

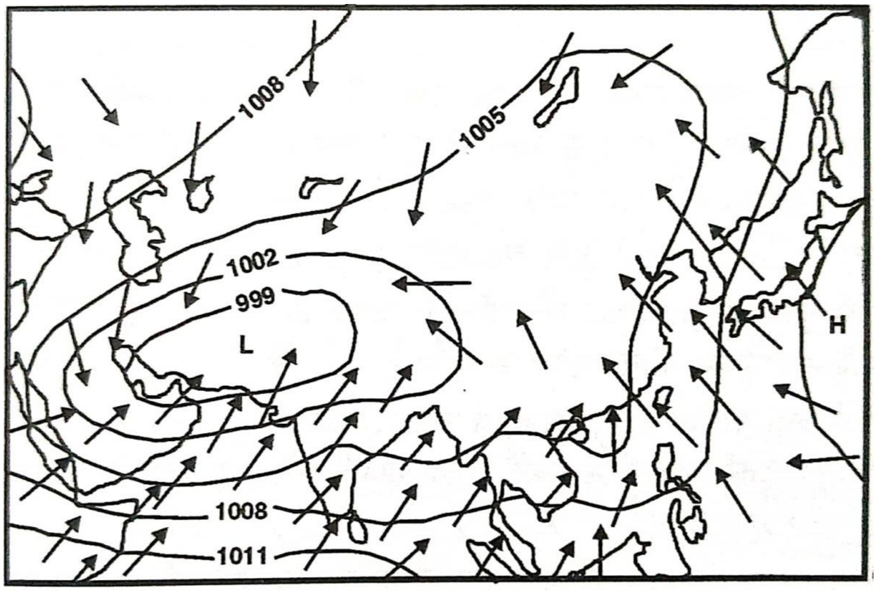

चित्र 1

इसके विपरीत दक्षिणी हिन्द महासागर के क्षेत्रों में कम वायुदाब का क्षेत्र बन जाता है। इसलिए शीतकाल में हवायें स्थलीय उच्चवायु से महासागरीय निम्न वायुदाब की ओर चलती है जिसे उत्तर–पूर्वी मानसून कहते हैं। ये हवायें स्थल से आने के कारण शुष्क, आर्द्रता विहीन और वर्षा करने में अक्षम होते हैं।

ग्रीष्म ऋतु के समय तापमान एवं दाब दशायें पलट जाती है। इन दिनों सूर्य की किरणे सीधा कर्क रेखा पर पड़ती है जिससे एशिया का भूखण्ड तप्त हो जाता है। बैकाल झील एवं पश्चिमी भारत के इलाकों में कम दाब केन्द्र का निर्माण हो जाता है जबकि हिन्द महासागर के दक्षिणी भाग में उच्च दाब केन्द्र रहता है। जिसके परिणामस्वरूप दक्षिण–पूर्व व्यापारिक हवायें निम्न दाब केन्द्रों की ओर खिंची चली आती है।

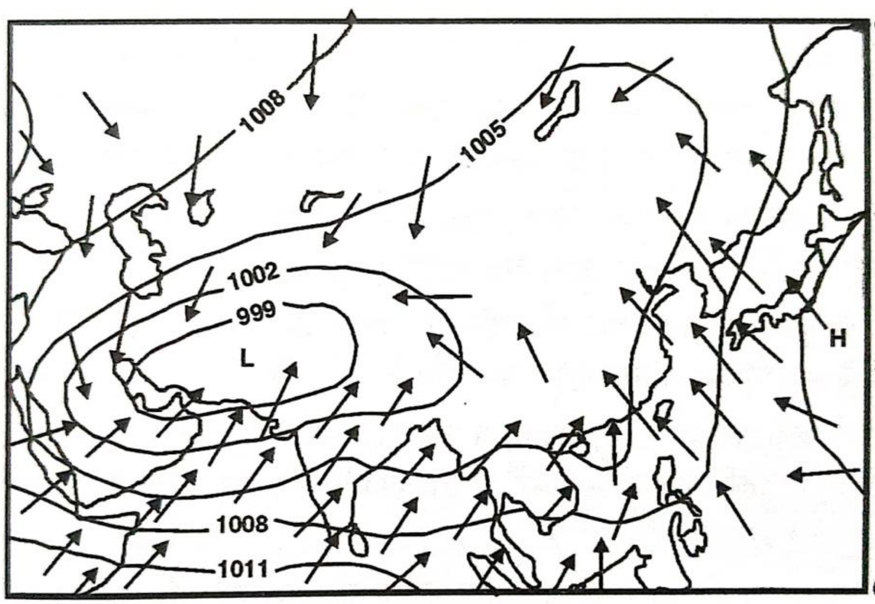

विषुवत रेखा को पार करते समय ये हवायें विरोध बल (फेरल नियम) के कारण दक्षिण–पश्चिम होती है। ये हवायें महासागर से आने के कारण आर्द्रता से परिपूर्ण होती है। इनके मार्ग में अवरोध हो जाने से वर्षा की प्राप्ति होती है।

8.4.2 गतिक संकल्पना–

इस संकल्पना के प्रतिपादक फ्लॉन महोदय को जाता है इन्होने अपना विचार 1951 प्रस्तुत किया, जिनके अनुसार मानसून की उत्पत्ति मौसमी परिवर्तन के कारण वायुदाब पेटियों के स्थानान्तरण पर आधारित है। दक्षिण एशिया की मानसूनी हवायें वास्तव में उष्ण कटिबन्धीय ग्रहीय पवन तन्त्र का संशोधित रूप है। इनके अनुसार ग्रीष्म ऋतु में भारत के उत्तर–पश्चिमी भाग में निम्न दाब क्षेत्र और दक्षिण–पश्चिम मानसून दोनों ही उत्तर अन्तरोष्ण अभिसरण के उत्तर की ओर दक्षिण और दक्षिण–पूर्व एशियाई क्षेत्र पर लगभग 30^0उत्तरी अक्षांश तक प्रसारित हो जाने के कारण उत्पन्न होते हैं। इस स्थानान्तरण में उपमहाद्वीप का ग्रीष्म काल में अत्यधिक ऊष्मन प्रमुख भूमिका अदा करता है। जिसके कारण उपमहाद्वीप पर स्थित डोलड्रम की मेखला में प्रवाहित विषुवतीय पछुआ पवने प्रवाहित होने लगती हैं जिन्हें दक्षिणी–पश्चिमी मानसून कहते हैं।

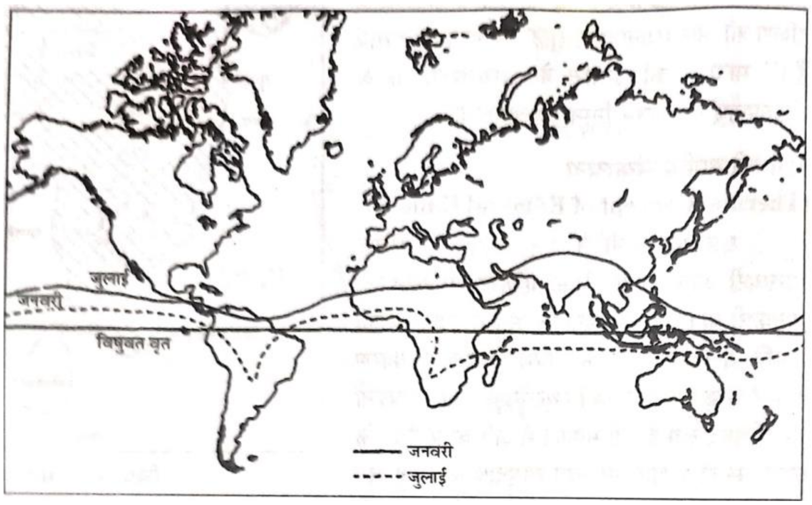

जाड़े की ऋतु में सूर्य के दक्षिणायन होने के कारण सभी वायुदाब पेटियां दक्षिण को ओर खिसक जाती है जिससे दक्षिण एशिया का क्षेत्र पुनः उत्तर–पूर्व व्यापारिक पवनों के प्रभाव में आ जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शीतकालीन मानसून उष्ण अक्षांशों में प्रवाहित व्यापारिक पवन–तंत्र का स्थापन मात्र है।

8.4.3 नवीन अवधारणायें–

जेट वायु धारायें–

जाड़े की ऋतु में जेट स्ट्रीम क्षोभमण्डल में लगभग 12 किमी0 की ऊँचाई पर स्थित होती हैं जो हिमालय तथा तिब्बत पठार के अवरोध के कारण दो भागों में बंट जाता है। इसमें से उत्तरी शाखा पश्चिम से पूरब को अपने वक्राकार मार्ग पर हिमालय के उत्तर तथा दूसरी शाखा इन पर्वतों के दक्षिण प्रवाहित होती हैं। दक्षिणी शाखा द्वारा बनाये गये चाप के कारण इन दिनों अफगानिस्तान और

भारत में जाड़े की ऋतु में 9- 13 कि.मी. ऊंचाई पर वायु दिशा

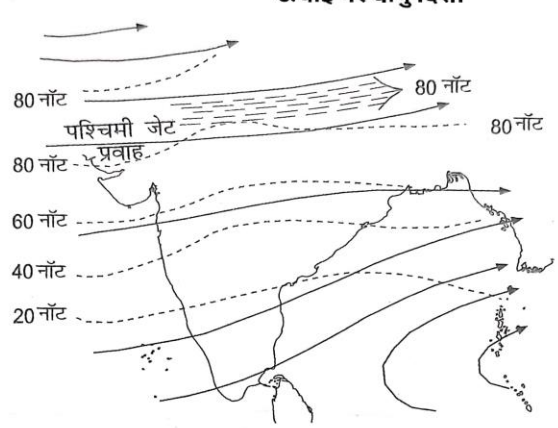

उत्तर–पश्चिम पाकिस्तान के क्षेत्र पर एक उच्च दाब केन्द्र का निर्माण हो जाता है जिससे वायुमण्डल में स्थिरता पैदा हो जाती है और उत्तरी–पूर्वी मानसून हवाओं के उद्भव में मदद मिलती है।

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणों के कर्क रेखा पर लम्बवत चमकने के कारण ध्रुवीय उच्च वायुदाब कमजोर पड़ने लगता है जिससे जेट स्ट्रीम खिसककर हिमालय के पार बहने लगती है। लगभग जून माह तक जेट स्ट्रीम की दक्षिणी शाखा हिमलय के दक्षिण से लुप्त हो जाती है एवं यह उत्तरी शाखा से मिल जाती है। इससे भूमध्यरेखीय पछुआ हवाओं को दक्षिण एशिया में प्रशस्त होने का अवसर मिल जाता है। जेट स्ट्रीम के बनने वाले लूप के ही कारण इन दिनों उत्तर–पश्चिम भारत के भाग में एक निम्न दाब का केन्द्र बन जाता है। जो मानसून प्रस्फोट में मददगार होता है। इन दिनों दक्षिणी गोलार्द्ध की जेट स्ट्रीम अधिक प्रबल होती है। जो ITCको उत्तरी की तरफ धकेलने में सहायता करती है।

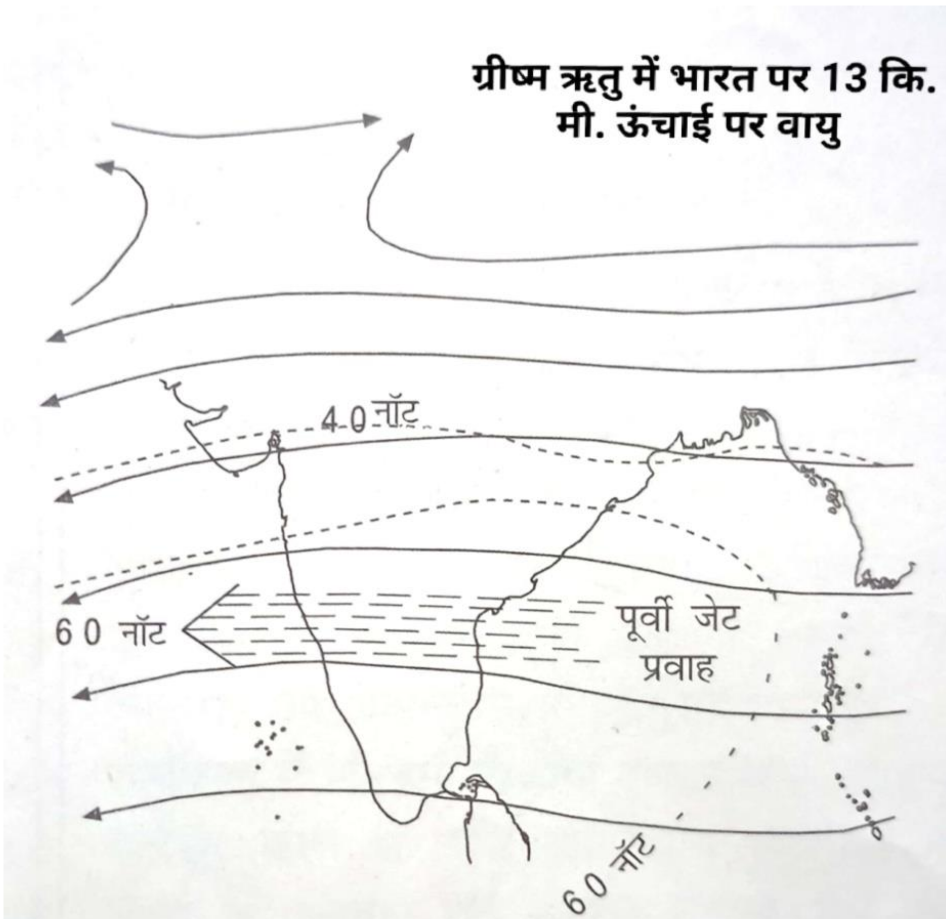

भारतीय मानसून तथा तिब्बत का पठार–

यह भारतीय एवं सोवियत मौसम वैज्ञानिकों के सहयोग से 1973 में किया गया, जिसमें 4 रूसी और 2 भारतीय जहाजों ने मई से जुलाई माह के दौरान अरब सागर एवं हिन्दमहासागर के क्षेत्रों से आधुनिक यंत्रों की सहायता से मौसमी आंकड़ों का संग्रह किया। इसके आधार पर मानसून की उत्पत्ति में तिब्बत के पठार की प्रमुख भूमिका होती है। इस प्रकार का विचार डॉ0 पी0 कोटेश्वरम् ने सन 1958 में एक अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में भाग लेते हुए यह विचार व्यक्त किया कि तिब्बत के पठार की गर्मी में तापन मानसून परिसंचरण के उत्पत्ति तथा उसे कायम रखने में सबसे महत्वपूर्ण कारक है। भारतीय तथा सोवियत वैज्ञानिकों ने इस विचार से सहमत थे ।

डॉ0 पी0 कोटेश्वरम् के अनुसार तिब्बत का पठार 2–3^{0}Cअधिक सूर्यातप प्राप्त करता है था ग्रीष्म ऋतु गर्म हो उठता है जिससे तापीय प्रति चक्रवात उत्पन्न हो जाता है। इससे पश्चिमी उपोष्ण जेट स्ट्रीम कमजोर होने लगती है एवं प्रतिचक्रवात के दक्षिणी भाग में पूर्वी जेट स्ट्रीम का निर्माण होता है। यह पूर्व से खिसकती हुई पश्चिम

में भारत, अरब सागर एवं पूर्वी अफ्रीका तक फैल जाती है। इस जेट स्ट्रीम के सहारे प्रवाहित वायु का हिन्द महासागर में अवतलन होता है। जिससे उच्च दाब को बल मिलता है और दक्षिण–पश्चिम मानसून का प्रादुर्भाव होता है।

महासागर क्षेत्र

इसमें मौसम विज्ञानियों तथा अनुसंधानकर्ताओं द्वारा एल– निनो सोमाली सागरी धारा, दक्षिणी दोलन एवं वाकर कोशिका का संबंध भारतीय मानसून के साथ स्थापित करने का प्रयास किया है।एल– निनो पेरू तट (दक्षिणी अमेरिका) पर प्रवाहित होने वाली एकगर्म महासागर धारा है जो दिसंबर माह में उत्पन्न होती है यह धारा सामान्य तौर पर वर्ष भर प्रवाहित होने वाली शीतल पेरू या हंबोल्ट धारा को बेदखल कर देती है। सामान्य परिस्थिति में पूर्वी प्रशांत (पेरू एवं इक्वाडोर के पास) का जल शीतल एवं उतर तथा पश्चिमी प्रशांत (पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया एवं इंडोनेशिया) उष्ण एवं गहरा होता है।इससे दक्षिणी– पश्चिमी मानसून सशक्त रहता है लेकिन एल नीनो के प्रभाव से या क्रम उलट जाता है इससे दक्षिण– पश्चिमी मानसून कमजोर पड़ जाता है और भारत में सूखे की संभावना बढ़ जाती है जिसे एल– नीनो के प्रभाव के नाम से जाना जाता है।दक्षिणी दोलन से तात्पर्य हिंद महासागर प्रशांत महासागर के मौसमी परिवर्तन से ऐसा देखा गया है कि जब प्रशांत महासागर में वायुदाब ऊंचा होता है तो हिंद महासागर में वायुदाब कम होता है इसके विपरीत जब प्रशांत महासागर में वायुदाब कम होता है तो हिंद महासागर में अधिक होता है। इस दोलन की जानकारी सर गिलबर्ट वाकर ने 1924 में दी थी। दक्षिणी दोलन की तीव्रता की माप ताहिती एवं डार्विन के बीच वायुदाब के अंतर से की जाती है।धनात्मक मान के अंतर्गत हिंद महासागर के क्षेत्र में ठंडी में वायुदाब कम तथा प्रशांत के क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है।इस परिस्थिति में मानसून सामान्य पाया जाता है। इसके विपरीत ऋणात्मक मान के दौरान हिंद महासागर क्षेत्र में ठंडी के महीने में वायुदाब अधिक पाया जाता है इससे आने वाली मानसून कमजोर पड़ जाती है ।इस प्रकार ऋणात्मकमान का एल नीनो के विकास में सीधा संबंध पाया जाता है।इस एल– निनो तथा ऋणात्मक दक्षिणी दोलन के संयोग को इन्सो कहा जाता है।

मौसम से संबंधित अनुसंधान तथा वैज्ञानिक खोज से यह स्पष्ट होता है कि उष्णकटिबंधीय क्षेत्र का वायु संचरण दो वृहद कोशिकाओं से प्रभावित होता है प्रथम– हेडली कोशिका जो उत्तर– दक्षिण धरातलीय व्यापारिक हवाओं और वायुमंडल में ऊंचाई पर प्रवाहित प्रति व्यापारिक द्वारा बनाई जाती है द्वितीय– वाकर कोशिका इसका विस्तार पूर्व– पश्चिम होता है सामान्यतः ऊपरी उड़ती वायु के क्षेत्र में तापमान अधिक (इंडोनेशिया तथा ऑस्ट्रेलिया) तथा बैठतीवायु के क्षेत्र (पेरू तट) में कम होता है। इस स्थिति में सामान्य मानसून पाया जाता है परंतु ऋणात्मक दक्षिणी दोलन तथा एल– निनो के द्वारा वाकर कोशिका का अवरोही भाग पूरब की तरफ खिसक जाता है जिससे संपूर्ण भारत अवरोहण के प्रभाव में आ जाता है । जिससे मानसून कमजोर हो जाता है और सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

हिंद महासागर की गर्म धारा सोमाली जो अपने ऊपर चलने वाली वायु के अनुसार अपना दिशा बदलती रहती है। ग्रीष्म काल में यह धारा भूमध्य रेखा के दक्षिण से उत्तर के 10 डिग्री उत्तरी अक्षांश तक चलती है और आगे बढ़ कर भारत के तट की ओर मुड़ जाती है।जाड़े में यह उत्तर– पूर्व मानसून का अनुसरण करती हुई दक्षिण की ओर प्रवाहित होती है। यह धारा दो वलय में प्रवाहित होती है प्रथम– उत्तरी वलय(5 डिग्री से 9 डिग्री उत्तरी अक्षांश के मध्य)द्वितीय दक्षिणी दोलन (0 डिग्री से 5डिग्री के मध्य)। गर्मी बढ़ने के साथ –साथ दक्षिणी वलय, उत्तरी में बढ़कर उत्तरी वलय मे विलीन हो जाती है। अच्छे मानसून के समय दक्षिणी वलय की तीव्रता अधिक और कमजोर मानसून के समय मंद पाई जाती है। दोनों वालयों के बीच का क्षेत्र तीव्र उद्वेलन से प्रभावित होता है।इससे जून के माह में सोमालिया (15 डिग्री सेल्सियस)एवं मुंबई (30 डिग्री सेल्सियस) के पास तापमान में पर्याप्त अंतर पाया जाता है। यह ताप प्रवणता मानसून के विकिरण संतुलन को प्रभावित करती है।

8.5 मौसमी दशाएं

भारतीय मौसमी दशाएं अत्यंत परिवर्तनशील है फिर भी भारतीय वैज्ञानिकों ने सुविधा के अनुसार ऋतु में बांटा है–

1. शीत ऋतु–मध्य दिसम्बर से मध्य मार्च तक
4 ग्रीष्म ऋतु–मध्य मार्च से मई तक

5 वर्षा ऋतु– जून से सितम्बर तक

6 शरद ऋतु–अक्टूबर से मध्य दिसम्बर तक

1. शीत ऋतु–

भारत में यह नवम्बर माह से शुरुआत होती है और दिसम्बर तक पूरे भारत में छा जाता है। इस ऋतु की विशेषता प्रतिचक्रवात, शुश्क तथा स्थायी वायु व नीला आकाश होता है। इस समय जेट स्ट्रीम की दक्षिणी शाखा हिमालय के दक्षिण में होती है जिससे उत्तरी गोलार्द्ध की ध्रुवीय गतिकी के पुनः प्रबल होने की सहायता आभास मिलता है। पश्चिमी जेट स्ट्रीम वापस हो जाती है और उत्तरी–पूर्वी व्यापारिक हवायें चलने लगती है। ITC पीछे हट जाता है। उत्तर–पश्चिम भारत में प्रतिचक्रवात बन जाता है जिससे देश का अधिकांश भाग शुष्क रहता है।

तापमान–

इस समय समताप रेखायें अक्षांशो के समानान्तर पायी जाती है। इसमें तापमान दक्षिण से उत्तर की ओर सामान्यतः घटता जाता हैं। जनवरी में भारत के उत्तर–पश्चिम में 15^0Cतापमान तथा उत्तर भारत में 10^0Cसे कम पाया जाता है। पंजाब एवं हरियाणा में कभी–कभी शीत लहर का प्रकोप छा जाता है। प्रायद्वीपीय भाग में शीत ऋतु कम प्रभावी होता है। रात में पंजाब हरियाणा तथा राजस्थान में कभी–कभी तापमान घटकर हिमांकं से नीचे चला जाता है जिसके प्रभाव से तुषारित हो जाता है। प्रायः रात का तापमान सामान्य औसत से 6 डिग्री सेल्सियस से अधिक घट जाता है जिसके कारण उत्तरी गोलार्ध में शीतलहर चलती है।

वायुदाब–

तापमान का वायुदाब पर सीधा प्रभाव रहता हैं उत्तर–पश्चिम के भागों में इस समय वायुदाब बढ़कर 1019 मिलीबार हो जाता है जो उच्च वायु केन्द्र का द्योतक है जिससे प्रतिचक्रवात दशायें उत्पन्न होती है। यहां से हवाएं दक्षिण में निम्न वायुदाब (महासागर) की ओर चलती है। इस समय भूमध्य सागर से चक्रवात पूर्व की ओर चलकर उत्तर भारत में पहुंचकर उत्तर–पश्चिमी भाग में वर्षा करते हैं।

वर्षा–

शीत ऋतु सामान्य रूप से शुष्क होता है।शीत ऋतु की विशेषता भूमध्य सागर से उत्पन्न पश्चिमी विक्षोभ का अंतरवाह है। इन विक्षोभ की बारंबारता दिसंबर से मार्च तक होती है। इस समय उत्तर–पश्चिम भारत में कुछ वर्षा पश्यिमी विक्षोभ से होता है जो दिसम्बर से फरवरी के मध्य में सक्रिय होते हैं। यह रबी की फसल के लिए लाभ व्यापक होते हैं। बंगाल की खाड़ी में अक्टूबर और नवम्बर में बनने वाले अवदाब से कोरोमण्डल के कुछ भाग में भी वर्षा होती है। इसके अलावा भारत का उत्तर– पूर्वी भाग भी शीत ऋतु में कुछ वर्षा प्राप्त करता है जिसमें अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड तथा आश्रम शामिल है जहां वर्षा 50 से मी रिकॅार्ड करते हैं।

2. ग्रीष्म ऋतु–

उत्तरी भारत में मार्च से मध्य जून के बीच स्पष्ट ग्रीष्म ऋतु देखने को मिलता है। इस समय सूर्य कर्क रेखा पर लम्बवत चमकता है जिससे परिध्रुवीय वातचक्र कमजोर होने लगता है। उत्तर–पश्चिम में निम्न वायुदाब अधिक तापमान के कारण जेट स्ट्रीम हिमालय के दक्षिण में होने के कारण ऊपर वायुमण्डल में गतिक चक्रवात ही क्रियाशील रहता है। इससे धरातलीय निम्न दाब आरोही प्रवाह और वर्षा नहीं कर पाता है।

तापमान–

इस ऋतु में तापमान लगातार बढ़ता रहता है। अप्रैल तक प्रायद्वीपीय क्षेत्र का औसत अधिकतम तापमान 40^0C पहुंच जाता है। उत्तर–पश्चिम भाग में औसत अधिकतम तापमान 42^0Cपहुंच जाता है। श्री गंगानगर में 54^0Cसे भी अधिक तापमान प्राप्त किया गया है। दक्षिण भारत में उत्तर की तुलना में तापमान कम रहता है। पूर्वी भारत और पहाड़ी क्षेत्रों में भी तापमान कम पाया जाता है। औसत दैनिक तापान्तर तटीय भागों में कम तथा आन्तरिक भागों और उत्तर–पश्चिम में अधिक पाया जाता है।

वायुदाब एवं पवने–

शीत ऋतु एवं दक्षिण–पश्चिम मानसून के मध्य संक्रमण के कारण ग्रीष्म ऋतु में वायुदाब और पवने संचार अस्थिर रहते हैं। सूर्य कर्क रेखा पर लम्बवत चमकने के कारण निम्न दाब का क्षेत्र दक्षिण–पूर्व से उत्तर–पश्चिम की

ओर खिसकने लगता है। उत्तर भारत में दिन के समय गर्म व शुष्क पछुआ पवने तीव्र गति से चलती हैं। जिन्हें लू कहते हैं। जहां ये उष्ण एवं शुष्क स्थनीय हवायें समुद्री आर्द्र पवनों से मिलती है प्रचंड स्थानीय तूफान बन जाते हैं जिनसे वर्षा और ओले पड़ते हैं।

आर्द्रता एवं वर्षा–

देश के मध्यवर्ती भाग में वायु शुष्क पाई जाती है जिसमें आपेक्षिक आर्द्रता 30 प्रतिशत या कम मिलती है। उत्तर–पश्चिम भाग में 2.5 सेमी0 से भी कम मैदानी भाग में 5–15 सेमी, मालाबार तट पर 15–25 और असम में 50 सेमी से अधिक वर्षा प्राप्त होती है।

3. वर्षा ऋतु–

ग्रीष्म ऋतु के अन्त तक आरोही वायु युक्त एक तीव्र निम्न दाब का निर्माण पश्चिम राजस्थान के क्षेत्र में हो जाता है। उष्ण कटिबन्धीय जेट स्ट्रीम की दक्षिणी शाखा कमजोर पड़ जाती है तथा यह हिमालय के दक्षिण से मध्य जून तक पीछे हट जाती है जिसके कारण सतही तापीय निम्न दाब पर एक गत्यात्मक चक्रवात बनता है। ITCZउत्तर की ओर बढ़ता है मध्य जून तक 25^0Cउत्तरी अक्षांश पर पहुंच जाता है जिसके कारण विषुवत रेखीय पछुआ हवाएं उपमहाद्वीप में प्रविष्ट कर जाती हैं। तिब्बत के पठार के तापीय उष्मन से उद्भव पूर्वी जेट स्ट्रीम द्वारा हिन्द महासागरीय उच्च दाब को बल मिलता है जिससे अण्टाक्रटिक परिध्रुवीय वातचक्र द्वारा प्रेरित दक्षिण–पूर्वी व्यापारिक पवने दक्षिण–पश्चिम मानसून के रूप में परिणत हो जाती है। इस ऋतु के दौरान देश के अधिकतर हिस्से में आसमान बादलों से ढका रहता है। इस ऋतु के दौरान सापेक्षिक आर्द्रता सामान्य तौर पर 65 प्रतिशत से अधिक होती है। असम तथा केरल में सबसे अधिक सापेक्षिक आर्द्रता दर्ज की जाती है।वर्षा ऋतु में सापेक्षिक आर्द्रता 80प्रतिशत से अधिक रहती है।

तापमान–

मानसून के आगमन से पहले जून में तापमान अधिकतम हो जाता है। कुछ स्थानों पर 46^0Cसे भी अधिक हो जाती है। जून माह का औसत दैनिक अधिकतम तापमान जोधपुर एवं इलाहाबाद में 40^0C, नई दिल्ली में 39^0C, चेन्नई में 38^0C,कोलकाता में 33^0C, कोच्चि का औसत तापमान उत्तर–पश्चिम तथा कोरोमण्डल तट पर 30^0Cसे अधिक पाया जाता है। उत्तरी मैदान में 25^0Cके बीच रहता है।

मानसून का आगमन–

भारत की आकृति के कारण दक्षिण–पश्चिम मानसून पवने विभाजित होकर दो प्रमुख शाखा के रूप में देश में प्रवेश करती है। तीव्र गर्जन, चमक के साथ वर्षा की शुरूआत होती है जिसे मानसून प्रस्फोट कहते हैं।अरब सागरीय शाखा 1 जून के आस–पास केरल तट से आगे बढ़ती हुई 10 जून तक मुम्बई पहुंचती है। जून के मध्य तक मध्य भारत में फैल जाता है। बंगाल की खाड़ी की शाखा 20 मई तक अण्डमान–निकोबार द्वीपों में और 1 जून तक त्रिपुरा और मिजोरम में पहुंच जाता है। 7 जून तक कोलकाता, 15 जून तक वाराणसी पहुंच जाती है। जून के अन्त तक सम्पूर्ण देश में छा जाता है। मानसून का निवर्तन सितम्बर के मध्य से उत्तर–पश्चिम से प्रारम्भ होता है और नवम्बर के अन्त तक देश के समूचे भाग से हट प्रभाव जाता है।

वर्षा का वितरण–

मौसम तथा वर्षा की मात्रा को अनेक चक्रवती गर्थ प्रभावित करते हैं जो बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर की माध्यम से देश में प्रवेश करते हैं। मानसून अवधि के दौरान 20 से 25 चक्रवात का विकास होता है जिसमें कुछ अधिक तीव्र होते हैं जिसके द्वारा तटवर्ती क्षेत्र में काफी नुकसान पहुंचाते हैं। चक्रवात उसे

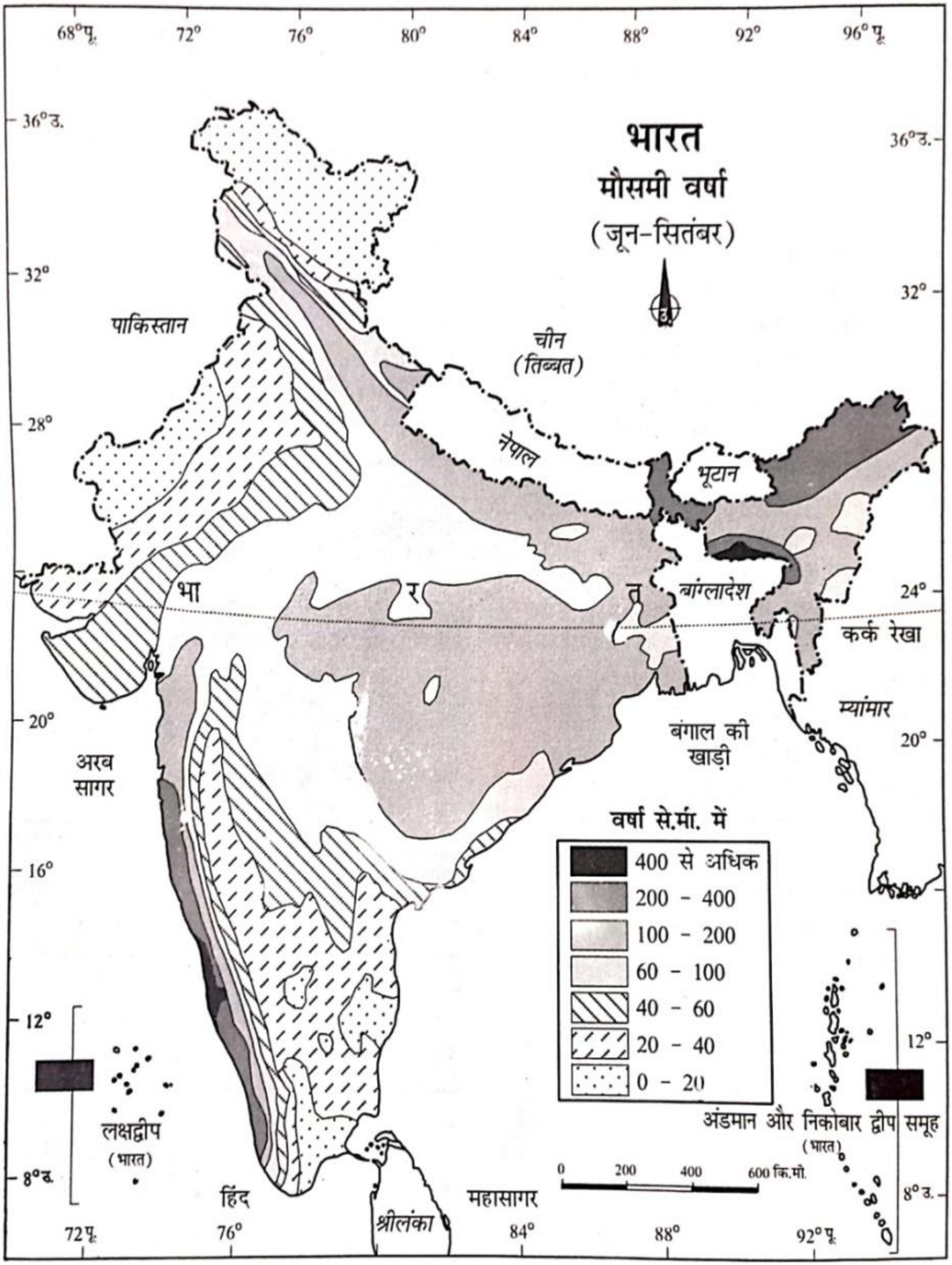

भारी वर्षा होती है जिसकी मात्रा तटीय क्षेत्रों से दूर जाने पर घटती जाती है।इन दिनों जम्मू–कश्मीर, लद्दाख तथा तमिलनाडु के कुछ भाग को छोड़कर समूचे भारत में वर्षा होती है। पश्चिमी तट, सह्याद्रि, मेघालय,

अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम एवं दार्जिलिंग पहाड़ियों में 200 सेमी से अधिक वर्षा प्राप्त होती है। पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, पू0 बिहार, छत्तीसगढ़, तराई क्षेत्र तथा उत्तराखण्ड में वर्षा 100–200 सेमी पायी जाती है। राजस्थान, पं0 गुजरात, द0 आन्ध प्रदेश, कर्नाटक पठार, तमिलनाडु, हरियाणा, पंजाब और जम्मू–कश्मीर के भागों में वर्षा की मात्रा 50 सेमी0 से कम है। अन्य क्षेत्र में 50 से 100 सेमी0 वर्षा की मात्रा पायी जाती है।

4. शरद ऋतु–

सितम्बर के अन्त तक सूर्य की किरण भूमध्यरेखा पर लम्बवत चमकती है। जिसके कारण उत्तर–पश्चिम का निम्न वायुदाब का गर्त कमजोर होकर दक्षिण की ओर खिसक जाता है। अक्टूबर में उत्तरी बंगाल की खाड़ी में स्थित हो जाता है। इससे मानसून कमजोर पड़ने लगता है तथा पं0 राजस्थान से पीछे हटने लगता है। सितम्बर के अन्त तक मानसून पंजाब तथा समीची भाग से हट जाता है जिससे मौसम साफ व सुहावना हो जाता है।

तापमान–

इसमें तापमान में गिरावट आने लगता है और दिसम्बर तक शीत ऋतु का प्रभाव स्थापित हो जाता है। अक्टूबर माह में देश के अधिकांश भाग का औसत तापमान 25–27.5^{0}Cके बीच पाया जाता है।

वायुदाब एवं पवनें–

इस समय उ0–पं0 में अस्थित निम्न दाब क्षेत्र क्षीण होने लगता है। पूर्व की ओर खिककर बंगाल की खाड़ी के उत्तर में केन्द्रित हो जाता है। धीरे–धीरे दक्षिण में खिसककर दिसम्बर के अन्त तक भूमध्यरेखीय निम्न दाब में विलीन हो जाता है। नवम्बर तक उत्तर–पश्चिम भारत में एक उच्च दाब का केन्द्र स्थापित हो जाता है जिससे गंगा के मैदान में हवाएं उत्तर–पश्चिम या पश्चिम से प्रवाहित होती है। असम एवं प0 बंगाल में हवायें पूर्व से प्रायद्वीपीय भाग में उत्तर–पूर्व से और पूर्वी तट के सहारे उत्तर–पश्चिम से चलती है।

आर्द्रता एवं वर्षा–

इस ऋतु में मेघाच्छादन और आर्द्रता की मात्रा कम पाई जाती है। तमिलनाडु में लौटते मानसून से वर्षा होती है। इस ऋतु में वर्षा का होना चक्रवातों की देन है। इन उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात से तटीय क्षेत्र अधिक प्रभावित होते हैं। चक्रवातों की बारम्बारता अरब सागर की अपेक्षा बंगाल की खाड़ी में अधिक देखने को मिलता हैं।

आप इस द्वितीय इकाई में मानसून, मानसून उत्पत्ति के कारणों मानसून की प्राचीन एवं नवीन संकल्पनाओं तथा मौसमी दशाओं का अध्ययन किया है। अब आप समझ गये होंगे कि मानसून भारत में कब जन्म लेता है और कब निवर्तन हो जाता है, मानसून की प्रवृत्ति कैसी है, मानसून की उत्पत्ति में कौन–कौन अन्य कारक बल प्रदान करते है। मानसून का प्रभाव किस क्षेत्र में अधिक है तिब्बत का पठार तथा हिन्द महासागर का महत्व।

8.6 जेट स्ट्रीम (JET STREAM) –

क्षोभमण्डल की ऊपरी सीमा पर सैकड़ों कि०मी० की चौड़ाई वाली पट्टी में प० से पू० दिशा को प्रवाहित होने वाली परिध्रुवीय प्रबल पवन धारा को जेट स्ट्रीम कहा जाता है। (सविन्द्र सिंह) दोनों गोलार्द्धों में 20^0 अक्षाँशों से ध्रुवों के मध्य लगभग 7 से 14 कि०मी० की उँचाई के मध्य इस प्रबल पवन धारा का परिसंचरण रहता है। समतापमण्डल में अर्द्ध क्षैतिज अक्ष के सहारे प्रवाहित होने वाली प्रबल संकरी पवन धारा को जेट स्ट्रीम कहते हैं। (विश्व स्वास्थ्य संगठन) इस प्रबल पवन धारा में लम्बवत व क्षैतिज अपरूपण होता है तथा एक से अधिक अधिकतम वायु वेग होता है। वस्तुतः द्वितीय विश्व युद्ध के समय जब अमेरिकी बमवर्षक जेट विमानों को जापान की ओर उड़ान भरते समय (पू० से प०) गति के अवरोध का सामना करना पड़ा और जापान से वापसी करते समय (प० से पू०) गति में वृद्धि होती गयी तो अध्ययन के उपरान्त यह तथ्य प्रकाश में आया कि ऐसा क्षोभमण्डल की ऊपरी सीमा में प० से पू० को प्रवाहित होने वाली प्रबंल वेग की हवाओं के कारण सम्भव हुआ। इसीलिए प० से पू० को विसर्पण करती हुई तीव्रगामी पवन धाराओं का नाम जेट स्ट्रीम रख दिया गया।

8.7 जेट स्ट्रीम की विशेषताएं (CHARACTERISTC OF JET STREAM) –

- ❖ ऊपरी क्षोभमण्डल में लगभग 7 से 14 कि०मी० की उँचाई पर संकरी पट्टी में प० से पू० दिशा को जेट स्ट्रीम का संचरण रहता है। यह लम्बाई में हजारों चौड़ाई में सैकड़ों तथा गहराई में कुछ कि०मी० तक

रहती है।

- ❖ दोनों गोलार्द्धों में 20^0 अक्षाँश से ध्रुवों के मध्य इनका परिसंचरण रहता है। चूँकि इनका संचार दोनों गोलार्द्धों में ध्रुवों के चतुर्दिक रहता है इसलिए इन्हें परिध्रुवीय भंवर भी कहा जाता है।
- ❖ इनका लम्बवत पवन अपरूपण 5 से 10 मीटर प्रति सेकेण्ड अर्थात 18 से 35 कि०मी० प्रति घण्टा होता है। तात्पर्य यह है कि इस जेट स्ट्रीम के सीमा के ऊपर या नीचे 18 से 36 कि०मी० प्रति घण्टा की दर से वायु का वेग न्यून हो जाता है। क्षैतिज पवन अप रूपण 5 मीटर प्रति सेकेण्ड अर्थात 18 कि०मी० प्रति घण्टा रहता है। जेट स्ट्रीम का न्यूनतम वायु वेग 30 मीटर प्रति सेकेण्ड अर्थात 108 कि०मी० प्रति घण्टा रहता है।
- ❖ जेट स्ट्रीम का प्रवाह मार्ग विसर्पित तथा लहरदार रहता है।
- ❖ जेट स्ट्रीम के वेग में मौसम के अनुरूप परिवर्तन भी होता रहता है। शीतकाल में इनका वेग ग्रीष्म काल की तुलना में दो गुना हो जाता है। इनकी अधिकतम गति 480 कि०मी० प्रति घण्टा होती है।
- ❖ जेट स्ट्रीम का विस्तार ग्रीष्मकाल (उत्तरी गोलार्द्ध) में कम हो जाता है तथा स्थानान्तरण उ० की ओर हो जाता है जबकि शीतकाल में इसका अधिकतम विस्तार रहता है और इसकी पहुँच 20^0 उ० अक्षाँश तक रहती है।

8.8 जेट स्ट्रीम के प्रकार (TYPES OF JET STREAM) –

जेट स्ट्रीम को अवस्थिति के आधार पर निम्न प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) ध्रुवीय वाताग्र जेट स्ट्रीम –

इसकी स्थिति धरातलीय ध्रुवीय शीत वायुराशियों एवं उष्णकटिबन्धीय गर्मवायुराशियों के सम्मिलन क्षेत्र अर्थात 40^0 से 60^0 अक्षाँश के ऊपर होती है। दो अलग वायु राशियों के कारण ताप प्रवणता अधिक रहती है। ये अधिक अनियमित रहती है तथा प० से पू० दिशा की ओर प्रवाहित होती है।

(2) उपोष्ण कटिबन्धीय पछुआ जेट स्ट्रीम –

इसकी स्थिति धरातलीय उपोष्ण कटिबन्धीय उच्च वायुदाब पेटी के ऊपरी क्षोभमण्डल में 30^0–35^0 अक्षाँशों के ऊपर रहती है। यह ध्रुवाय वाताग्र जेट स्ट्रीम की तुलना में अधिक नियमित रहती है। इसका प्रवाह पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर होता है।

(3) उष्णकटिबन्धीय पूर्वी जेट स्ट्रीम –

इसकी स्थिति ऊपरी क्षोभमण्डल में पूर्वी व्यापारिक हवाओं के ऊपर भारत व अफ्रीका के ऊपर ग्रीष्मकाल में रहती है। भारतीय मानसून के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण इस स्ट्रीम का सम्बन्ध तिब्बत के पठार के ऊष्मन से भी रहता है।

(4) ध्रुवीय राशि जेट स्ट्रीम या समतापमण्डलीय उपध्रुवीय जेट स्ट्रीम –

सागरतल से 30 कि०मी० की उँचाई पर क्षोभमण्डल के ऊपर शीत ध्रुव के ऊपर तीव्र ताप प्रवणता के कारण शीतकाल में उस समय होता है जब प्रबल पछुआ जेट स्ट्रीम का संचरण होता है। इस जेट स्ट्रीम का वेग ग्रीष्मकाल में कम हो जाता है और इसकी प्रवाह दिशा पूर्व को हो जाता है।

(5) स्थानीय जेट स्ट्रीम –

इसकी स्थिति स्थानिक तापीय एवं गतिकीय दशाओं के कारण कतिपय विशिष्ट स्थानों पर होती है। इनका महत्व स्थानीय स्तर तक सीमित रहता है।

8.9 जेट स्ट्रीम का विकास चक्र (DEVELOPMENT OF JET STREAM CYCLE) –

जेट स्ट्रीम की उत्पत्ति भूमध्यरेखा से ध्रुवों की तरफ तापमान प्रवणता, ध्रुवीय धरातलीय भाग पर उच्च दाब तथा उसके ऊपर क्षोभमण्डल में निम्न दाब के कारण उद्भूत परिध्रुवीय भँवर से सम्बन्धित है। वस्तुतः उ० गोलार्द्ध में शीतकालीन लम्बी रातों के कारण धरातल के ऊपर स्थित वायु अत्यधिक ठंडी व भारी होकर नीचे (आर्कटिक क्षेत्र

में) बैठने लगती है फलतः धरातल पर उच्च दाब बन जाता है। जबकि ऊपर से वायु के नीचे सरकने के फलस्वरूप क्षोभमण्डल में धरातलीय ध्रुवीय उच्च वायुदाब के ऊपर निम्न वायुदाब की स्थिति बन जाती है। इसी उच्च तलीय क्षोभमण्डल के निम्न दाब के चतुर्दिक हवा चक्रवातीय क्रम (प० से पू० को) में एक भँवर के रूप में प्रवाह होने लगती हैं। एशिया के ऊपर इसकी दिशा सामान्यतया प० से पू० को रहती है। इस उच्च तलीय वायु संचार के भूमध्यरेखा के तरफ वाला भाग जेट स्ट्रीम कहा जाता है। जेट स्ट्रीम का संचरण मोड़दार रहता है। शीतकाल में आर्कटिक उच्चतलीय भवँर उत्तरी गोलार्द्ध में अत्यधिक प्रबल तथा सक्रिय हो जाता है फलतः उच्च तलीय पछुआ जेट स्ट्रीम की स्थिति 20^0 उत्तरी अक्षाँश तक हो जाती है। जेट स्ट्रीम की स्थिति व विस्तार ध्रुवों से भूमध्यरेखा की ओर प्रायः परिवर्तनशील रहता है। जेट स्ट्रीम का प्रारूप सामान्यतया प० से पू० दिशा में प्रवाह से विसर्पित हो जाता है। इसे रासवी तरंग भी कहते हैं। सीधे से लहरनुमा प्रवाह बनने की अवधि को सूचकांक चक्र कहते हैं जो चार अवस्थाओं में पूर्ण होता है। इसे जेट स्ट्रीम का विकास चक्र कहा जाता है।

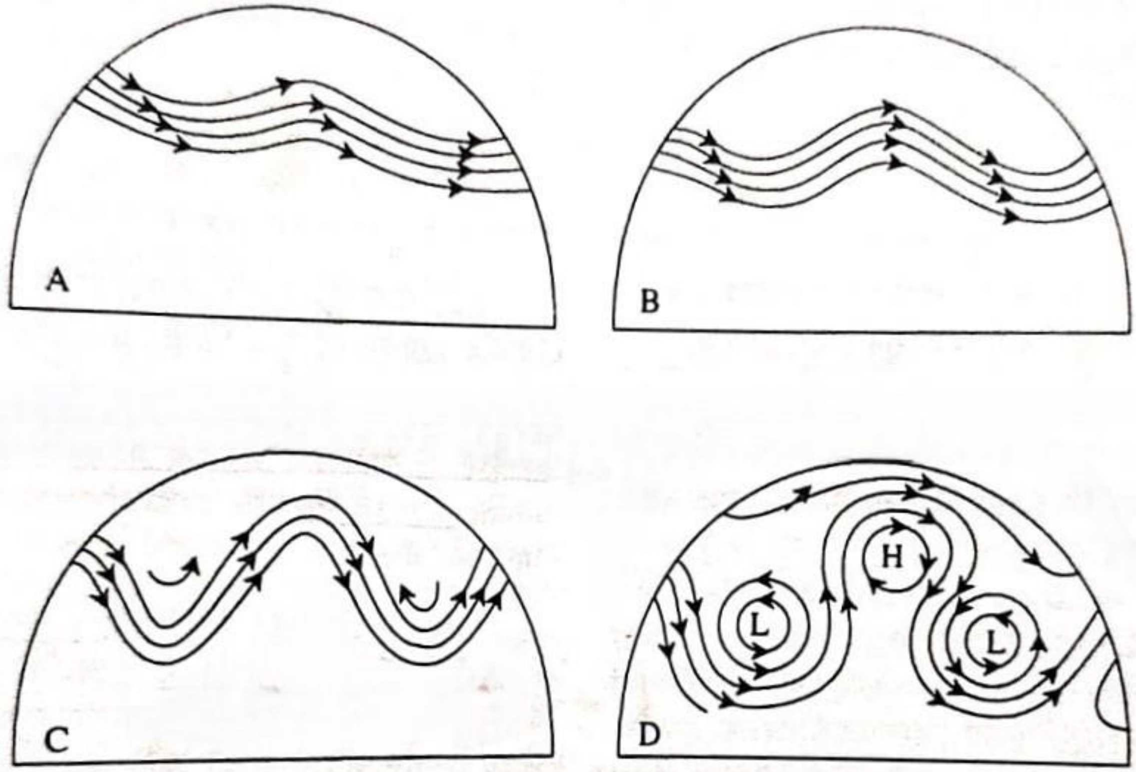

जेट स्ट्रीम का सूचकांक चक्र (index cycle) या विकास चक्र (नामियास के अनुसार)।

प्रथम अवस्था –

ध्रुवों के निकट जेट स्ट्रीम की स्थिति होती है। इसके उत्तर में ध्रुवीय ठंड़ी हवा तथा द० गर्म पछुआ हवाएं होती है। जेट स्ट्रीम का प्रवाह प० से पूर्व लगभग सीधे मार्ग में होता है क्योंकि इस स्थिति तक रासवी लहर का निर्माण नहीं हो पाता है। चक्रवातीय दशा का जनन धरातल पर ठंढ़ी ध्रुवीय वायुराशि व गर्म पछुआ वायुराशि के अभिसरण के कारण होता है। इस प्रबल उच्च तलीय पछुआ पवन धारा के आर–पार तीव्रदाब प्रवणता होती है फलतः उच्च मण्डलीय सूचकाँक (HIGH ZONAL INDEX) रहता है।

द्वितीय अवस्था –

इस अवस्था में जेट स्ट्रीम के अन्तर्गत लहर का निर्माण होने लगता है। वस्तुतः रासबी लहर का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है फलतः रासबी लहर का आयाम बढ़ने से जेट स्ट्रीम भूमध्य रेखा की तरफ विस्तृत होने लगती

है।

तृतीय अवस्था –

इस अवस्था में जेट स्ट्रीम का स्वरूप पूर्णतः लहरनुमा हो जाता है जिससे वह भूमध्यरेखा के नजदीक हो जाती है। इस अवस्था में दाब प्रवणता प्रथम दो अवस्थाओं की भाँति (उ०द०) न होकर पूर्व–पश्चिम दिशा में हो जाती है। भूमध्यरेखा की ओर ध्रुवीय शीत वायुराशियों का तथा ध्रुवों की ओर उष्णकटिबन्धीय गर्म वायु राशियों का विस्थापन हो जाता है।

चतुर्थ अवस्था –

इस अवस्था में अत्यधिक देशान्तरीय प्रवाह के कारण तरंगों का विच्छेदन हो जाने से वह मूल धारा से परे हटकर चक्राकार मार्ग में प्रवाहित होने लगती हैं। इस चक्राकार वायु–प्रणाली की कई कोशिकाएं विकसित हो जाती हैं। जेट स्ट्रीम के भूमध्यरेखा की ओर (द० भाग) चक्रवातीय कोशिकाएं एवं ध्रुवों की तरफ वाले भाग (उ० की ओर) में प्रतिचक्रवातीय कोशिकाएं निर्मित हो जाती हैं। इस प्रकार विलग चक्रवातीय या विलग प्रति चक्रवातीय वायु प्रणाली जेट स्ट्रीम के प० से पूर्व दिशा के प्रवाह को बाधित करती है।

8.10 जेट स्ट्रीम का महत्व (IMPORTANCE OF JET STREAM) –

जेट स्ट्रीम के व्यवहार के सन्दर्भ में अभी तक विस्तृत जानकारी नहीं है फिर भी इसके स्थानीय एवं प्रादेशिक मौसम पर पड़ने वाले प्रभाव व महत्व का विश्लेषण निम्न रूपों में किया जाता है।

- ❖ जेट स्ट्रीम व मध्य अक्षाँशीय (शीतोष्ण कटिबन्धीय) चक्रवातों की सक्रियता में घनिष्ट सम्बन्ध होता है। जब धरातलीय शीतोष्ण चक्रवातों के ऊपर उच्चतलीय क्षोभमण्डलीय जेट स्ट्रीम की स्थिति होती है तो ये चक्रवात प्रबल होकर सामान्य से अधिक वर्षा करते हैं।
- ❖ जेट स्ट्रीम के कारण धरातलीय चक्रवातों एवं प्रति चक्रवातों के स्वरूप में परिवर्तन होता है फलतः स्थानीय मौसम में बाढ़ व सूखे की स्थिति बनती रहती है।
- ❖ क्षोभमण्डल के ऊपरी भाग में क्षैतिज अभिसरण व अपसरण की स्थिति बनती है जिसका कारण जेट स्ट्रीम है। इसी कारण उच्च तलीय चक्रवातों व प्रति चक्रवातों का निर्माण होता है।
- ❖ जेट स्ट्रीम में वायु का संचरण दो रूपों में होता है। चक्रवातों में हवा ऊपर को उठती है तथा प्रति चक्रवातों में हवा नीचे बैठती है। इस प्रकार उच्च तलीय हवा में उपरि मुखी व अधोमुखी संचरण होने से क्षोभमण्डल व समताप मण्डल में हवाओं का तेजी से मिश्रण होता है फलतः मानजजतिनत प्रदूषकों का क्षोभमण्डल से समताप मण्डल में स्थानान्तरण हो जाता है। जिससे ओजोन अल्पता व छीजन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।
- ❖ द० एशियाई मानसून पर भी जेट स्ट्रीम का प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः उष्णकटिबन्धीय मानसूनी वर्षा जेट स्ट्रीम से प्रभावित रहती है।

8.11 एलनिनो–लानिना परिघटना (ELNINO-LANINA) –

द० अमेरिका के प० तट पर मुख्यतया पेरू तट के समीप प्रशान्त महासागर में एल निनो नामक मौसम की महत्वपूर्ण घटना का आर्विभाव होता है। एलनिनो परिघटना की खोज सर्वप्रथम 1541 ई० में की गयी थी। लानिना परिघटना का जनन उष्णकटिबन्धीय प्रशान्त महासागर में होता है। लानिना का नामकरण 1986 ई० में किया गया था। इन दोनों परिघटनाओं का अलग–अलग विश्लेषण करना अपरिहार्य होगा।

एल निनो (EL-NINO) –

वैज्ञानिकों के द्वारा निनो को एक महासागरीय धारा के रूप में स्वीकार किया जाता है। विपरीत धारा के नाम से जानी जाने वाली यह धारा महासागरीय जल की सतह के ठीक नीचे प्रवाहित होने वाली एक अधस्तल (SUBSURFACE CURENT) धारा है। यह धारा द० अमेरिका के पेरूतट के प० में तट से 180 कि०मी० दूर उ० से द० दिशा में प्रवाहित होती है। इसका विस्तार 3^0 द० से 36^0 द० अक्षाँश तक रहता है। इसका विस्तार कतिपय

वर्षों में द० अमेरिका के प० तट के सुदूर द० छोर तक भी आकलित किया गया है। उल्लेखनीय है कि पेरू तट के निकट द० से उ० की ओर ठंढ़ी जलधारा प्रवाहित होती है। पेरू का सागर तटवर्ती भाग रेगिस्तानी भी है। उष्णगोलार्द्ध में वस्तुतः शरदकाल में विषुवतरेखीय विपरीत धारा द० की ओर खिसक जाती है जिससे एल निनों का जनन होता है। इस धारा के कारण पेरू तट का तापमान बढ़ जाता है। यह एक गर्म जलधारा है। इसके सक्रिय होने पर सागरीय जल का तापमान 3^0 से 4^0 से०ग्रे० बढ़ जाता है। एल निनो स्पेनिश भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है यीशु शिशु (CHRIST CHILD) इसका सम्बन्ध उष्णकटिबन्धीय पूर्वी प्रशान्त महासागरीय जल के तापमान में वृद्धि से जोड़ा जाता है। इसके प्रभाव का विश्लेषण निम्न रूपों में किया जा सकता है।

- ❖ एल निनो के सक्रिय होने पर पेरू के तटीय भागों में सामान्य से कई गुना अधिक–अधिक वर्षा होती है परन्तु तटीय प्रशान्त महासागर में (लैक्टन के अभाव व पोषक तत्वों की कमी के कारण लाखों मछलियों मर जाती है अथवा अन्यत्र पलायन कर जाती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि पेरूतट के स्थलीय (जो रोगीस्तान है) हरे–भरे व कृषि योग्य हो (केला, कपास, नारियल आदि) हो जाते हैं जबकि सागरीय भागों में आहार श्रृंखला भंग हो जाती है। (पेरू का तटवर्ती महासागरीय जल सागरीय जीवों के लिए विश्व में सर्वाधिक उत्पादक है क्योंकि यहाँ सागर के नितल से पोषक तत्वों से युक्त ठंढ़ी जलराशि का ऊपर की ओर आगमन होता रहता है।
- ❖ एल निनो परिघटना हिन्दू महासागर के मानसून को भी प्रभावित करती है। उल्लेखनीय है कि जब एल निनों द० अमेरिका के द० या अन्तिम छोर तक विस्तृत हो जाती है तो वहाँ का गर्म जल पूर्व की ओर ढ़केल दिया जाता है परिणामतः वह द० अटलांटिक महासागरीय प० धारा से मिलकर पूर्व की ओर बढ़ते हुए द० हिन्दु महासागर में पहुँचकर महासागरीय जल का तापमान बढ़ा देता है। इसी कारण जब द० गोलार्द्ध में शीतकाल रहता है तब द० हिन्द महासागरीय उच्च वायुदाब कमजोर पड़ जाता है जिससे द० एवं द०पू० एशिया में ग्रीष्मकाल में मानसून कमजोर पड़ जाता है।
- ❖ एल निनो परिघटना के प्रबल होने पर पूर्वी प्रशान्त महासागर के पूर्वी उष्णकटिबन्धी भाग में अति वृष्टि (4 से 6 गुना अधिक) जबकि उष्णकटिबन्धी प० प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र में सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिससे भारत, बांग्लादेश एवं इण्डोनेशिया आदि भी प्रभावित होते हैं।

ला निना (LA NINA) –

ला निना परिघटना का सम्बन्ध प० प्रशान्त महासागर के ऊष्मन से लगाया जाता है। विद्वानों का यह मत है कि ला निना का जनन होने के साथ ही प० प्रशान्तमहासागर के उष्णकटिबन्धीय भाग में तापमान में वृद्धि होने के कारण वाष्पीकरण अधिक होता है फलतः इण्डोनेशिया व समीपवर्ती भागों में अधिक जलवृश्टि होती है। ला निना का शाब्दिक अर्थ है छोटी बच्ची। एल निनों में समुद्री सतह गर्म होती है जबकि ला निना में ठंढ़ी हो जाती है। सामान्यतः पेरूपट की समुद्री सतह ठंढ़ी होती है परन्तु यह स्थिति जब अधिक समय तक बनी रहती है तो समुद्र सतह का तापमान असामान्य रूप से कम हो जाता है। इसी घटना को ला निना परिघटना कहा जाता है। ला निना को छोटी बच्ची, ठंडी घटना तथा एक ठंडा प्रसंग के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। ला निना परिघटना एल–निनो की विरोधी परिघटना है। इसके सक्रियता के प्रभाव का विश्लेषण निम्न रूपों में किया जा सकता है।

- ❖ ला निना परिघटना के सक्रिय होने पर द० दोलन (SOUTHERN OSCILLATION) तथा वाकर परिसंचरण (WALKER CIRCULATION) की सक्रियता में वृद्धि हो जाती है।
- ❖ पूर्वी प्रशान्त महासागर में पेरूतट के निकट नीचे से जलराशि ऊपर आती है जिसके कारण तटीय भाग में मौसम शुष्क हो जाता है और महासागरों में पोषक तत्वों की आपूर्ति हो जाने से मछली की मात्रा में वृद्धि होती है।
- ❖ प० उष्णकटिबन्धीय प्रशान्त महासागर के जल का तापमान बढ़ जाता है, मौसम आर्द्र हो जाता है, व्यापारिक हवाएं अत्यधिक शक्तिशाली हो जाती है। द०पू० एशिया में मानसूनी हवाओं के सबल हो जाने से इस क्षेत्र में सामान्य से अधिक वर्षा प्राप्त होती है।

❖ इसी परिघटना की प्रबलता के फलस्वरूप उष्णकटिबन्धीय पूर्वी प्रशान्त महासागर में द० अमेरिका के प० तट के निकट एल निनो निष्क्रिय हो जाती है और शुष्क मौसम की स्थिति बन जाती है।

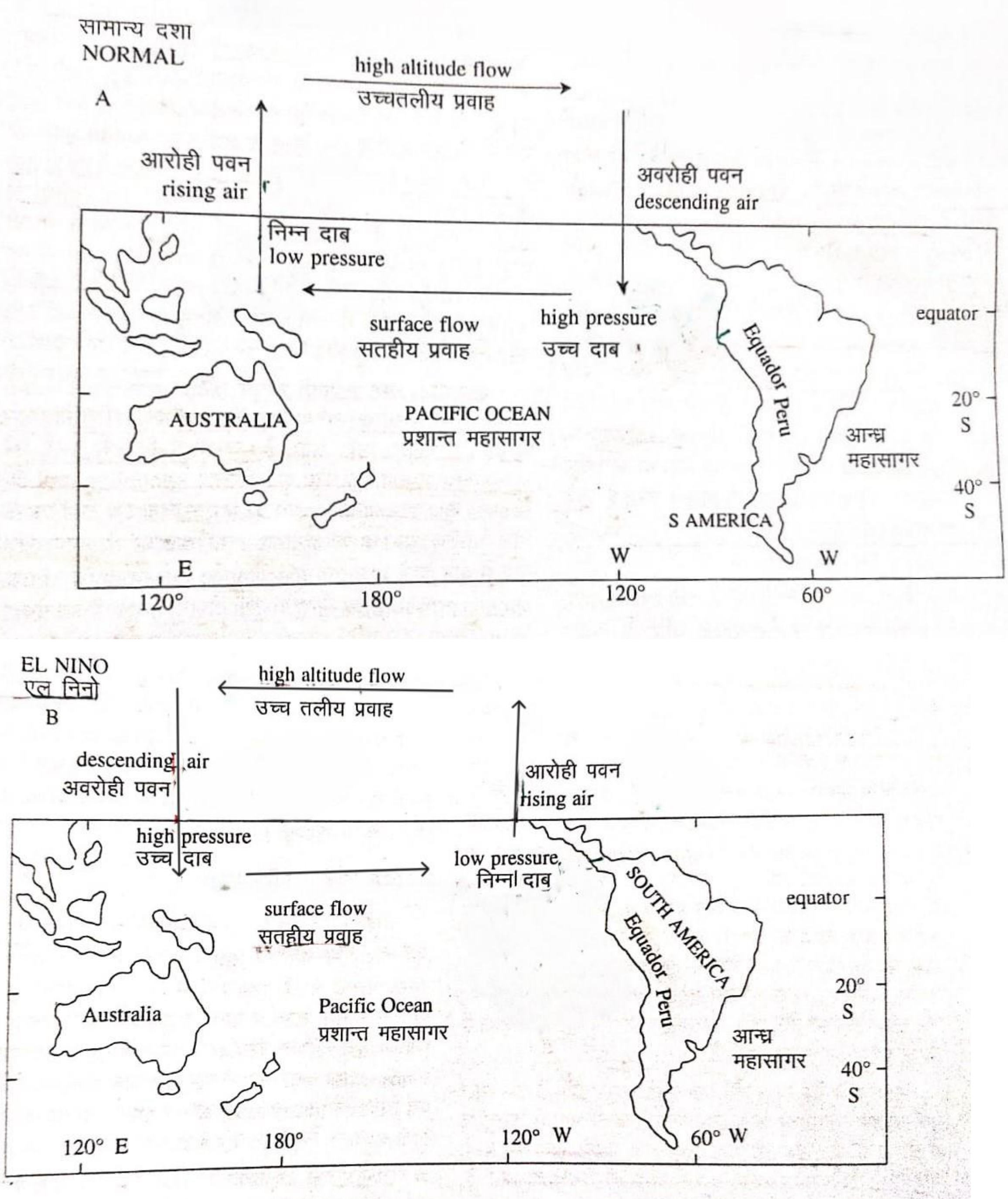

.. *दक्षिणी दोलन (Southern Oscillation), वाकर परिसंचरण (Walker Circulation), एल निनो तथा ला निना।*

8.12 वाकर परिसंचरण तथा एल–निनो–दक्षिणी दोलन (WALXER CIRULATION AND EL NINO-SOUTHERN OSCILLATION) –

वायुमण्डल की सामान्य परिसंचरण की स्थिति (धरातलीय व्यापारिक, पछुआ तथा ध्रुवीय परिसंचरण व

देशान्तरीय त्रिकोशीय पवन परिसंचरण) में कतिपय विम्बलन पाया जाता है कतिपय स्थानीय व मौसमी हवाओं का संचरण इसका उदाहरण है। इस दृष्टिकोण से पूर्व–पश्चिम दिशा में उष्णकटिबन्धीय हवाओं का कटिबन्धीय प्रवाह प्रमुख है। इसी पू०–प० हवाओं के संचरण को ही वाकर संचरण कहा जाता है। इस संचरण का नामकरण वैज्ञानिक जी०टी० वाकर (1922–23) के नाम के आधार पर किया गया है। वस्तुतः वाकर संचरण पवन संचरण की ही संवहनीय कोशिका है जिसका निर्माण भूमध्यरेखा के सहारे प्रशान्तमहासागर में दाब प्रवणता के फलस्वरूप पू० से प० दिशा को होता है। दो से तीन वर्षों के अन्तराल पर इस पू–प० दाब प्रवणता, जिसे सामान्य दशा कहते हैं उसमें विपरीत का जनन होता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि दाबप्रवणता प० से पू० हो जाती है। इस प्रकार दाब प्रवणता व पवन परिसंचरण के इस उतार–चढ़ाव को वाकर महोदय ने दक्षिणी दोलन के नाम से सम्बोधित किया है।

इस वाकर संचरण तथा द० दोलन का जनन भूमध्यरेखा के सहार द० अमेरिका के प० तटीय भाग अर्थात पू० प्रशान्त महासागरीय तथा द०पू० एशिया के निकट वायुदाब प्रवणता के कारण पू० प्रशान्त महासागरीय जल की सतह पर होता है। सामान्यतया पूर्वी प्रशान्त महासागर तथा द० अमेरिका के पश्चिमी तटीय स्थलीय भाग पर वायु के अवतलन एवं नीचे से ठढ़े सागरीय जल के ऊपर आने पर उच्च वायुदाब का निर्माण होता है तथा प० प्रशान्त महासागर में गर्म सागरीय सतह होने के कारण हवाओं के ऊपर की ओर उठने से निम्न वायुदाब का निर्माण होता है। उल्लेखनीय कि महासागरीय सतह पर पूर्व–पश्चिम दाब प्रवणता के कारण पू० से प० दिशा को व्यापारिक अथवा पूर्वी हवाओं का प्रवाह होने लगता है। जबकि इसके विपरीत सतहीय संचरण के ऊपर वायुमण्डल में प० से पू० की ओर पवन संचरण होता है जिससे एक पूर्ण कोशिका का निर्माण होता है। इस पवन संचरण से द० अमेरिका के प० तट से पवनों का प्रवाह पश्चिम की ओर होता है जो अपने साथ सागरीय जल को भी प० की ओर वहा कर ले जाती हैं। इसी कारण पेरू इक्वेडोर तट के निकट से ठंढ़े जल का ऊपर को उद्वेलन होने लगता है जिससे हवा और ठंढ़ी हो जाती है। इनके प्रभाववश वायुदाब अधिक हो जाता है, हवाऐं ऊपर नहीं उठ पाती, वायु में स्थिरता उत्पन्न हो जाती है तथा की क्रिया धीमी हो जाने से मौसम भी शुष्क हो जाता है। इनके विपरीत यह पवन उ०पू० व्यापारिक पवन के रूप में प० गर्म प्रशान्त महासागर की ओर चलने के कारण गर्म होकर ऊपर उठती है फलतः संघनन की क्रिया प्रारम्भ होने के कारण वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। ऊपर उठकर यह हवा पूर्व की ओर चलने लगती है और पूर्वी प्रशान्त महासागर पर नीचे उतरती है फलतः पूर्ण संचार कोशिका का निर्माण हो जाता है। स्पष्ट है कि उष्णकटिबन्धीय पू० प्रशान्त महासागर व उसके तटीय भागों में मौसम शुष्क जबकि प० प्रशान्त महासागर (पू० आष्ट्रेलिया, द०पू० एशिया आदि) में मौसम आर्द्र रहता है।

प० प्रशान्त महासागरीय निम्न वायुदाब का अक्टूबर नवम्बर माह में पू० प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र की ओर स्थानान्तरण हो जाता है। इसी समय व्यापारिक हवाएं मन्द पड़ जाती है जिसके कारण पूर्वी प्रशान्त महासागरीय जल की (जिसका प्रवाह पहले प० प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र की ओर हो गया था) द०पू० प्रशान्त महासागर की ओर वापसी हो जाती है। इस प्रकार द०पू० प्रशान्त महासागर विशेषतः द० अमेरिका परिचमी तटीय के समीप गर्म जलराशि आने के कारण निम्न वायुदाब का निर्माण हो जाता है, ठंढ़ी जलराशि का नीचे से ऊपर आना बन्द हो जाता है, हवाऐं ऊपर उठने लगती हैं और संघनन होने से वर्षा होने लगती है। इसी प्रभाव को एल–निनो कहा जाता है। वास्तव में यह सामान्य दशा के विपरीत की स्थिति है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि पू० प्रशान्त महासागर के ऊपर गर्म जल राशि के आने से उसके ऊपर स्थिति गर्म हवा के ऊपर उठने से निम्न वायुदाब का निर्माण हो जाता है। ऊपर की ठंढ़ी वायु क्षोभमण्डल के ऊपरी भाग में प० की ओर प्रवाहित होती है और प० प्रशान्त महासागर के पश्चिमी भाग में नीचे उतरती है फलतः उच्चदाब बन जाता है। इसी उच्च वायुदाब क्षेत्र से हवाएं पू० दिशा में द०पू० दिशा में प्रशान्त महासागर की ओर प्रवाहित होती हैं जिससे एक पूर्ण कोशिका का निर्माण हो जाता है। इसी दशा को एल निनोः दक्षिणी दोलन कहा जाता है। वस्ततः प० एवं पूर्वी प्रशान्तमहासागर में वायुदाब की स्थितियों का परिवर्तन ही दक्षिणी दोलन कहा जाता है। एल निनो घटना के समय महासागरीय सतह पर प्रवाहमान पछुआ हवाओं (विषुवतरेखीय पछुआ हवाओं) के कारण वाकर संचरण कमजोर परन्तु हैडिली संचरण प्रबल हो जाता है जिससे व्यापारिक हवाऐं सक्रिय हो जाती हैं और पू० प्रशान्त महासागर में जलराशि का प० की ओर पुनः प्रवाह प्रारम्भ हो जाता है। एल मिनो की समाप्ति के उपरान्त फिर से सामान्य स्थिति स्थापित हो जाती है।

दक्षिणी दोलन सूचकाँक (SOUTHERN OSCILLATION INDEX) –

उष्णकटिबन्धीय पूर्वी एवं प० प्रशान्त महासागर पर उच्चदाब एवं निम्न दाब में स्थानिक एवं कालिक स्थानान्तरण का निर्धारण दोनों क्षेत्र के वायुदाब में भिन्नता के आधार पर किया जाता है। वायुदाब की इस भिन्नता का निर्धारण तहिती (पूर्वी प्रशान्त महासागर, 18^0 दक्षिणी अक्षाँश तथा 15^0 प० देशान्तर) तथा डारविन (आश्ट्रेलिया, प० प्रशान्त महासागर, 12^0 द० अक्षाँश तथा 130^0 पूर्वी देशान्तर) के वायुदाबों के आधार पर किया जाता है। वायुदाब में स्थानिक एवं कालिक परिवर्तन को ही दक्षिणी दोलन सूचकांक कहा जाता है। इसकी दो प्रावस्थाएं अधिक महत्वपूर्ण हैः (1) उच्च प्रावस्था (HIGH PHASE) एंव (2) निम्न प्रावस्था (1) दक्षिणी दोलन की उच्च प्रावस्था सामान्य दशा को प्रदर्शित करती है। इसमें उष्णकटिबन्धीय पूर्वी तथा द०पू० प्रशान्त महासागर पर प्रबल उच्चदाब तंत्र एवं उष्णकटिबन्धीय प्रशान्त महासागर पर निम्न वायुदाब तंत्र का विकास होता है। धरातलीय सतह पर प्रबल पूर्वी हवाऐं प्रवाहित होती हैं, क्षोभमण्डलीय उपोष्ण कटिबन्धीय जेट स्ट्रीम कमजोर होकर ध्रुवों की ओर खिसक जाती है, ला निना परिघटना सक्रिय हो जाती है मानसून प्रबल हो जाता है फलत द० एवं द०पू० एशियाई क्षेत्रों, आमेजन वेसिन, मध्यअफ्रीका आदि क्षेत्रों में पर्याप्त वर्षा होती है जबकि द० अमेरिका के प० भाग विशेषतः पेरू एवं चिली के मध्यवर्ती क्षेत्र में सूरवे की स्थिति का सामना करना पड़ता है।

(2) द० दोलन की निम्न प्रावस्था वस्तुतः उच्च प्रावथा की विपरीत स्थिति का परिचायक है इस प्रावस्था की सक्रियता हो जाने के उपरान्त निम्नलिखित परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं–

- ❖ उष्णकटिबन्धीय पूर्वी प्रशान्तमहासागरीय उच्च वायुदाब के स्थान पर निम्न वायुदाब तथा उष्णकटिबन्धीय प० प्रशान्त महासागरीय निम्न वायुदाब के स्थान पर उच्च वायुदाब की स्थिति का जनन हो जाता है।
- ❖ चिली एवं पेरू तट के समीप पूर्वी प्रशान्त महासागरीय निम्न वायुदाब का क्षेत्र विकसित हो जाता है तथा इनके तटीय भागों में पर्याप्त वर्षा होती है।
- ❖ उष्णकटिबन्धीय प० प्रशान्त महासागर से ला निना परिघटना का समापन अथवा लोप हो जाता है।
- ❖ द० व द०पू० एशियाई भागों में मानसून कमजोर हो जाता है फलतः ये क्षेत्र सूखे की स्थिति से प्रभावित हो जाते हैं।

8.13 स्थानीय एवं मौसमी हवाएं (LOCAL AND SEASONAL WINDS) –

सामान्यतया अल्प क्षेत्र में सीमित तथा स्थानीय दशाओं से उद्भूत हवाओं को स्थानीय हवाऐं कहा जाता है। वस्तुतः यह स्थानीय हवाएं साधारण भूमण्डलीय, वायुमण्डलीय और धरातलीय हवाओं के संचरण का विचलन होती हैं। इस पवन परिसंचरण के अन्तर्गत स्थायी एवं ग्रहीय हवाओं (व्यापारिक, पछुआ एवं ध्रुवीय पवन) को सम्मिलित किया जाता है। स्थानीय हवाओं को वायुमण्डल के तृतीयक परिसंचरण की श्रेणी में रखा जाता है। इन हवाओं के क्षेत्रीय विस्तार एवं समय अवधि में अधिक भिन्नता होती है। कतिपय स्थानीय हवाऐं 24 घण्टे के अन्दर ही दिशा परिवर्तित करके अपना चक्रपूर्ण कर लेती हैं। वास्तव में स्थानीय हवाओं की उत्पत्ति स्थानीय स्तर पर वायुदाब में मिलने वाले अन्तर के कारण होती है। वायुदाब का यह अन्तर तापमान में भिन्नता के कारण होता है। धरातलीय भिन्नता भी स्थानीय हवाओं की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। इस प्रकार स्थानीय हवाओं के जनन व प्रवाह के अनेक कारक उत्तरदायी हैं। जिनके आधार पर इनका वर्गीकरण किया जा सकता है।

8.14 स्थानीय हवाओं का वर्गीकरण (CLASSIFICATION OF LOCAL WINDS)

क्षेत्रीय विस्तार, समय की अवधि, तापमान की विशेषता एवं हवाओं के प्रभाव आदि के आधार पर स्थानीय हवाओं का निम्न वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा सकता है –

(1) सामयिक स्थानीय पवन (PERIODIC LOCAL WINDS) –

(1) स्थलीय एवं जल समीर

(2) पर्वत एवं घाटी समीर

(2) असामयिक स्थानीय पवन (NON-PERIODIC LOCAL WINDS) –

(अ) तापीय विशेषता के आधार पर

(1) गर्म स्थानीय हवाऐं (चिनूक, हरमट्टान, सिरोको, फान, नारवेस्टर, खमसिन, शामल, विक्र फील्डर, सिमूस, डाक्टर, शान्ता–आना एवं लू आदि)

(2) शीत स्थानीय हवाऐं

(ब्लिजर्ड, बोरा, मिस्ट्रल, पर्गो, नार्दर्स वाइस, लैवेण्टर पैम्पेरो आदि)

(व) मानव जन्तु व वनस्पतियों पर पड़ने वाले प्रभाव के आधार पर

(1) लाभकारी प्रभाव

(चिनूक, फान, डाक्टर आदि)

(2) अलाभकारी प्रभाव

(नारवेस्टर, नार्दर्स, हरमट्टान, ब्लिजर्ड सिरोकों आदि)

उत्पत्ति प्रक्रिया व कारकों के आधार पर वर्गीकरण –

(1) अवरोध जनित स्थानीय हवाऐं (BARRIER-INDUCED LOCAL WINDS) –

(1) चिनूक पवन (राकी पर्वतीय अवरोध)

(2) फान पवन (आल्प्स पर्वतीय अवरोध)

(3) जोण्डा पवन (एण्डीज पर्वतीय अवरोध)

(2) चैनेल स्थानीय हवाऐं (CHANNELLED LOCAL WINDS) –

(1) यामो (जापान)

(2) शान्ता अना (द० कैलीफोर्निया)

(3) ट्रैमेण्टेन (मध्य यूरोप)

(3) विक्षोभ सम्बन्धी स्थानीय पवन (DEPRESSION RELATED LOCAL WINDS) –

(निम्नवायुदाब तन्त्र से सम्बन्धित)

(1) सिरोको (इटली)

(2) लेवेश (स्पेन)

(3) गिवली (ट्रयूनीशिया)

(4) संवहनीय या सूर्यातप जनित स्थानीय पवन (CONVECTION OR INSOLATION LOCAL WINDS)

(धरालीय सतह के तप्त होने से जनन)

(1) उच्च रेगिस्तानों की आँधी

(2) धूल भरी आँधी तूफान

(3) सूक्ष्म प्रस्फोट जैसे ववन्डर

(अ) शुष्क ववण्डर (सूडान, मोजोवे, एरिजोना रेगिस्तान, ग्रेट आस्ट्रेलियन रेगिस्तान में हबूब)

(व) आर्द्रववण्डर (यह वर्षा से सम्बन्धित है। तारिम बेसिन में इसे करावुरान कहते हैं।)

(5) प्रवाही स्थानीय पवन (ADVECTIONAL LOCAL WINDS)

(1) क्षैतिज प्रवाहि स्थानीय पवन (स्थालीय व जलीय समीर)

(2) लम्बवत प्रवाही स्थानीय पवन (पर्यत एवं घाटी समीर)

(6) नगरीय ऊष्मा द्वीप पवन या ग्राम्य–नगर समीर–(URBAN HEAT ISLAND WINDS OR COUNTRYSIDE-CITY BREEZE)

इस स्थानीय पवन की उत्पत्ति धरातलीय एवं आवासीय सतह के अति गर्म होने, प्रतिविकिरण (COUNTER RADIATION) या विलोम (आकाशीय) विकिरण में वृद्धि, दिन के समय प्राप्त सूर्यातप का अधिकाधिक भण्डारण, मानव स्रोतों से जनित अतिरिक्त ऊष्मा (स्वचालित वाहनों, कारखानों, तापीय विद्युत संयन्त्रों, घरेल कार्यों आदि से जनित) आदि कारणों से होती है (सविन्द्र सिंह 2016)।

8.15 सामयिक स्थानीय हवाऐं (PERIODIC LOCAL WINDS) –

तापमान व वायुदाब में दैनिक स्तरीय परिवर्तन होने के कारण जनित हवाओं को सामायिक या दैनिक स्थानीय हवाओं के नाम से सम्बोधित किया जाता है। दिन एवं रात्रि में दो अलग–अलग धरातलीय सतहों, आकृतियों के असमान तापन एवं शीतलन के कारण तापमान में भिन्नता आ जाती है फलतः उच्च व निम्न वायुदाब की भिन्नताओं का जनन होता है। दिन की अवधि में जलीय से स्थलीय सतह की ओर तथा रात्रि में स्थलीय से जलीय सतह की ओर हवाऐं प्रवाहित होने लगती है। इस प्रकार इन हवाओं की दिशाओं में 24 घण्टे के अन्दर ही विपरीत परिवर्तन की स्थिति बन जाती है। स्थलीय एवं जलीय पवनें क्षैतिज प्रवाही स्थानीय हवाओं का ही स्वरूप हैं। इसी प्रकार पर्वतीय घाटियों में दिन की अवधि में तली से ऊपर की ओर तथा रात्रि की अवधि में ऊपर से नीचे की ओर हवाऐं प्रवाहित होती है जिन्हें पर्वत एवं घाटी समीर के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

स्थलीय तथा सागरीय समीर (LAND AND SEA BREESZES) –

इस हवाओं को छोटे पैमाने पर मानसून हवाओं के नाम से जाना जाता है। 24 घण्टे में इन हवाओं में दो बार दिशा सम्बन्धी परिवर्तन हो जाता है। जलीय समीर दिन की अवधि में सागर से स्थल व रात्रि में स्थल से जल की ओर प्रवाहित होती हैं। यद्यपि इनका महत्व स्थानीय होता है परन्तु इनका स्थान विशेष की जलवायु व मौसम पर महत्वपूर्ण प्रभाव देखा जाता है। इन स्थलीय एवं जलीय हवाओं के संचरण का एक मात्र कारण स्थल व जल के गर्म तथा ठंढ़ा होने पर परस्पर विरोधी स्वभाव का होना है।

सागरीय समीर –

स्थलीय भाग दिन की अवधि में जल भाग की अपेक्षा शीघ्र गर्म हो जाता है फलतः सागरतटीय भागों पर निम्न दाब एवं सागरीय भाग पर उच्चदाब की स्थिति बन जाती है जिससे सागर से स्थल भाग की ओर हवाओं का प्रवाह होने लगता है। इन हवाओं का प्रवाह 10 से 11 बजे प्रातः तक प्रारम्भ होकर दोपहर 1 बजे से 2 बजे के मध्य सबसे अधिक सक्रिय व रात्रि 8 बजे तक समाप्त हो जाता है। इन हवाओं की उँचाई विभिन्न प्रकार के जलवायु प्रदेशों व स्थानीय दशाओं में परिवर्तित होती रहती है। विस्तृत झीलों के निकट इन हवाओं की उँचाई 200 से 500 मीटर, उष्ण व उपोष्ण कटिबन्धों के सागरतटीय भागों में 1000 से 2000 मीटर तक हो जाती हैं और स्थल भाग में इनका प्रवेश 50 से 60 कि०मी० तक तथा कहीं–कहीं 100 कि०मी० तक देखा गया है। विभिन्न अक्षाँशों पर इन हवाओं के प्रवाह वेग में पर्याप्त अन्तर रहता है। मध्य अक्षाँशों में इनकी गति मात्र 10 से 20 कि०मी० प्रति घण्टे रहती है परन्तु निम्न अक्षाँक्षों में यह तूफान के समान हो जाती है। निम्न अक्षाँशीय गर्म तटीय क्षेत्रों में जहाँ समान्तर ठंढ़ी जलधाराएं प्रवाहित होती है वहाँ इन हवाओं का वेग अधिक हो जाता है। उष्णकटिबन्धीय सागरतटीय भागों के तापमान को यह हवाऐं प्रभावित कर देती है। इन भागों में जैसे ही यह हवाऐं प्रविष्ट होती है, मात्र आधे घण्टे के अन्दर 15^0 से 20^0 फा० तापमान कम हो जाने से मौसम सुहावना हो जाता है। वस्तुतः नमी युक्त यह सागरीय हवाऐं सम्पूर्ण वर्ष प्रवाहित होती है। यद्यपि निम्न अक्षाँशों में शान्त प्रचलित हवाओं के कारण सागरीय समीर के संचरण में न्यून अवरोध रहता है परन्तु मध्य व उच्च अक्षाँशीय क्षेत्रों में वेगवान प्रचंड तूफानों के कारण इन हवाओं का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। वास्तव में इन हवाओं का प्रवाह मात्र ग्रीष्मकाल में दिन की अवधि में ही रहता है।

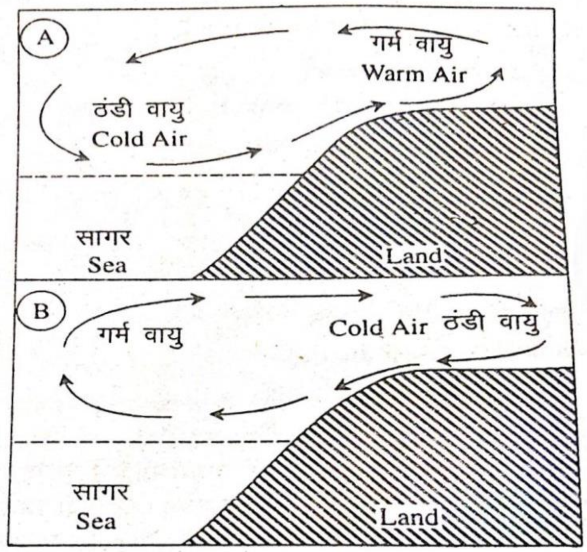

A = सागरीय समीर (sea breeze), B स्थलीय समीर (land breeze) ।

स्थलीय समीर –

सूर्यास्त होने के साथ ही जलीय समीर समाप्त होने लगती है। वस्तुतः जल की तुलना में स्थल भाग से तीव्र विकिरण व का ह्रास होने से स्थलीय भाग शीघ्र शीतल स्थिति में आ जाते हैं फलतः स्थलीय भाग पर उच्च व जल भाग पर निम्न वायु दाब की स्थिति बन जाती है जिससे स्थल से जल भाग की ओर हवाऐं चलने लगती हैं। ये हवाऐं शुष्क व जलीय समीर की अपेक्षा कम सक्रिय होती है। इन हवाओं का तटीय भागों की जलवायु पर समकारी प्रभाव देखा जाता है। इसीलिए सागर तटीय नगरों (कोलकाता,चेन्नई, मुम्बई आदि) अतिशीत व उष्णता नहीं रहती ।

ज्ञातव्य है कि रात्रि की अवधि स्थलीय भागों की तुलना में जलीय सतह का निम्न वायुदाब सागरीय सतह के रात्रिकालीन तापन के कारण नहीं उत्पन्न होता वस्तुतः रात्रि में स्थलीय भाग से वर्हिगामी पार्थिव विकिरण द्वारा उष्मा के अधिक ह्रास के कारण शीतलन की अधिक स्थिति हो जाती है जिससे उच्च वायुदाब बन जाता है जबकि सागरीय सतह देर में शीतल होती है फलतः वह स्थल भाग की तुलना में अधिक गर्म रहती है अतः वहाँ अपेक्षाकृत न्यून वायुदाब रहता है। सागरीय सतह व उसके समीप स्थलीय सतह पर रात्रि में ताप व वायुदाब की भिन्नता कम तथा दिन में अधिक रहती है। स्थलीय एवं जलीय समीर उष्ण व उपोष्ण कटिबन्धीय द्वीपों के निकट अधिक सक्रिय रहती है परन्तु उच्च अक्षाँशों पर अधिक सक्रिय नहीं रहती। इसका कारण वस्तुतः तापमान व उससे उद्भूत वायुदाब की कम भिन्नता का होना है। दिन की अवधि में कोशिका का निर्माण होता है अर्थात तटों की तरफ आने वाली सतहीय सागरीय समीर के ठीक ऊपर तट से सागर की ओर हवाऐं चलती हैं। रात्रि में संवहनीय कोशिका का विकास नहीं होता। तटोन्मुख सागरीय हवाएं तटवर्ती भागों में निश्चित ही किसी न किसी प्रकार का वाताग्र बनाती हैं जिससे कपासी बादलों का जनन होता है। कोरिआलिस बल के मध्य अक्षाँशों में अधिक प्रभावी होने के कारण तटोन्मुख सागरीय हवाएं तटों के समानान्तर (लगभग) प्रवाहित होती हैं। उ० गोलार्द्ध में यह स्थिति अधिक स्पष्ट रहती है।

यह स्थलीय एवं जल समीर स्थानीय स्तर मौसम को विशेष रूप में प्रभावित करती है। इन हवाओं के अभिसरण के फलस्वरूप कम प्रभावी कुहरे का निर्माण होता है जो दोपहर के पश्चात तटोन्मुख सागरीय हवाओं द्वारा समीप के तटवर्ती भागों में परिवहित हो जाता है। पर यह कुहरा रात्रि में समाप्त हो जाता है। यही स्थिति सम्पूर्ण वर्ष बनी रहती है। इन्हीं हवाओं के कारण तापमान का परिमितीकरण (MODERATION) हो जाता है फलतः सागर के तटवर्ती क्षेत्रों में दैनिक तापान्तर में कमी आ जाती है।

पर्वत तथा घाटी समीर (MOUNTAIN AND VALLEY BREEZES) –

इन हवाओं को भी सामयिक हवाओं के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इन स्थानीय एवं दैनिक हवाओं में 24 घण्टे के अन्दर दो बार दिशा सम्बन्धी परिवर्तन होता है। दिन की अवधि में पर्वतीय घाटियों के निचले भाग में अधिक तापमान के कारण गर्म होकर पर्वतीय ढ़ालों के सहारे ऊपर उठती हैं। इन्हें घाटी समीर या अनाबेटिक हवाऐं कहा जाता है। ये हवाऐं पर्वतों की चोटी पर पहुँचने के पश्चात् वर्षा करती हैं। रात्रि की अवधि में पर्वतीय ऊपरी भागों एवं ढ़ालों पर विकिरण होने से तापमान का अधिक ह्रास होता है और हवाऐं ठंढ़ी हो जाती है। यहीं ठंढ़ी व भारी हवाएं घाटियों में ढ़ालों के सहारे नीचे उतरती हैं। इन्हें पर्वतीय या कटावेटिक समीर कहा जाता है।

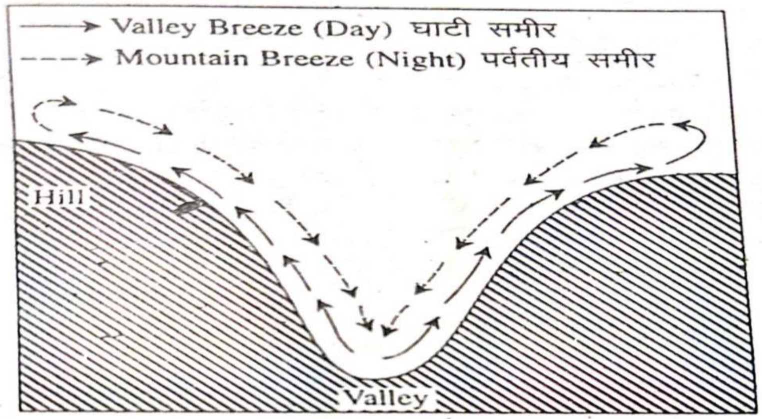

पर्वत (कटाबेटिक) तथा घाटी (अनाबेटिक) समीर।

इन हवाओं के कारण तापमान का प्रतिलोमन भी होता है जिससे रात्रि की अवधि में घाटियों में पाला अथवा तुषार पड़ता है तथा ऊपर के भाग पाला मुक्त रहते हैं। इन हवाओं के सन्दर्भ में सम्पन्न हुए अध्ययनों के आधार पर यह कहा जाता है कि घाटी समीर दिन की अवधि में लगभग 9 से 10 बजे प्रारम्भ होकर सूर्यास्त के साथ समाप्त हो जाती है। सूर्यास्त के पश्चात पर्वतीय समीर का प्रवाह प्रारम्भ हो जाता है। इन हवाओं का जनन मुख्यतः तापीय प्रक्रियाओं के कारण होता है परन्तु इन पर धरातलीय नियन्त्रत बना रहता है। तापीय प्रतिलोमन के कारण घाटियों के निचले भागों में विकिरण कुहरे का निर्माण होने लगता है।

8.16 असामयिक स्थानीय हवाएं (NON PERIODIC LOCAL WINDS) –

वह दैनिक पवन परिसंचरण जिसकी प्रवाह दिशा में 24 घण्टे के अन्दर दो बार पूर्ण परिवर्तन होता हो जाता है (जैसे स्थलीय व जल समीर, पर्वत व घाटी समीर) उन हवाओं के अतिरिक्त उन समस्त पवनों को असामयिक स्थानीय हवाओं के नाम से सम्बोधित किया जाता है जिनकी उत्पत्ति में तापीय एवं गतिक कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विशेष दशाओं में पर्वतीय अवरोध के कारण बलात ऊपर उठने या नीचे उतरने से कतिपय विशेष स्थानीय हवाएं उद्भूत हो जाती है। स्थानीय असामयिक हवाओं को तापीय विशेषता के आधार पर गर्म एवं ठंड़ी दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। गर्म स्थानीय असामायिक हवाओं में चिनूक तथा फान, सिरोको, हरमट्टान, ब्रिकफील्डर, नारवेस्टर, खमसिन शामल, सिमूम, शान्ताअना एवं लू आदि विशेष उल्लेखनीय है। जबकि मिस्ट्रल, ब्लिजर्ड, बोरा, वाइस, पुर्गा, नार्दन, पैम्पेरो एवं लैवेडर्स आदि ठंढ़ी असामयिक स्थानीय हवाओं के प्रमुख उदाहरण हैं। उपर्युक्त में महत्वपूर्ण असामायिक पवनों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

चिनूक तथा फान (CHINOOK AND FOEHN) –

पर्वतीय ढालों के सहारे प्रवाहित होने वाली गर्म तथा शुष्क स्थानीय हवाओं को संयुक्त राज्य अमेरिका में चिनूक तथा यूरोप में फान कहा जाता है। यह स्थानीय ऊर्ध्वाधर हवा चक्रवात जन्य होती है जिसका प्रभावित क्षेत्र की जलवायु पर अत्यधिक प्रभाव देखा जाता है। यह हवा चक्रवातों के साथ जब पर्वत को पार करके नीचे उतरती है तब गर्म एवं शुष्क चिनूक हवा का जनन होता है। राकी पर्वत के पूर्वी ढ़ाल के समान्तर वृद्ध मैदानों में चक्रवातीय निम्न दाब का जनन हो जाता है जिससे राकी पर्वत के प० ढाल के सहारे हवा ऊपर उठने लगती है तथा शुष्क

एडियावेटिक प्रक्रिया से ठंढ़ी होने लगती है फलतः प्रति 1000 मीटर पर 10^0 से०ग्रे० तापमान नीचे गिर जाता है। अधिक उँचाई पर पहुँचने के कारण वायु संतृप्त हो जाती है और संघनन की प्रक्रिया के फलस्वरूप वर्षा हो जाती है। इसी स्थिति में संघनन की गुप्त ऊष्मा प्राप्त हो जाती है और हवा पुनः हल्की होने के साथ ऊपर उठने लगती है परन्तु वायु के ठंढ़ी होने की दर प्रति 1000 मीटर पर 5^0 से०ग्रे० होती है। इसे आर्द्र एडियावेटिक प्रक्रिया कहा जाता है। अब पवन राकी पर्वत को पारकर पूर्वीढ़ाल के सहारे नीचे उतरते समय सम्पीड़न के कारण गर्म होने लगती है। प्रति 1000 मीटर पर 10^0 से०ग्रे० तापमान में वृद्धि के कारण हवा शुष्क व गर्म रहती है। जब यही हवा राकी पर्वत के पूर्वी ढ़ाल के आधार पर पहुँचती है तो इसे चिनूक के नाम से जाना जाता है।

मुख्यतः शीतकाल में प्रवाहित होने वाली यह हवा राकी पर्वत के 20 में उसके सहारे द० में कोलोरैड़ो के द० भाग से लेकर उ० में कनाड़ा के ब्रिटिश कोलम्बिया प्रान्त तक प्रवाहित होती है। यद्यपि इस हवाका तापमान 4.4^0 से०ग्रे० ही रहता है परन्तु शीतकालीन प्रभावित क्षेत्रों में प्रति चक्रवतीय दशाओं के कारण हिमांक बिन्दु से भी तापक्रम के नीचे गिर जाने से यह हवाऐं गर्म लगने गतिल हैं। वस्तुतः प्रभावित क्षेत्रों में इन हवाओं के प्रवेश करते ही तापमान 24 घण्टों के अन्दर ही 4.4^0 से०ग्रे० तक बढ़ जाता है। कभी–कभी तापमान की 24 घण्टे में यह वृद्धि 20^0 से 22^0 से०ग्रे० तक आकलित की गयी है। इन हवाओं को हिमभक्षिणी के नाम से भी जाना जाता है। राकी पर्वत के पू० में उ० से द० तक एक संकरी पट्टी के रूप में हिम के पिघल जाने के कारण शीतकाल की अवधि में चारागाह खुल जाते हैं। वसन्त काल में इनके आगमन से गेहूँ की कृषि शीघ्र प्रारम्भ हो जाती है।

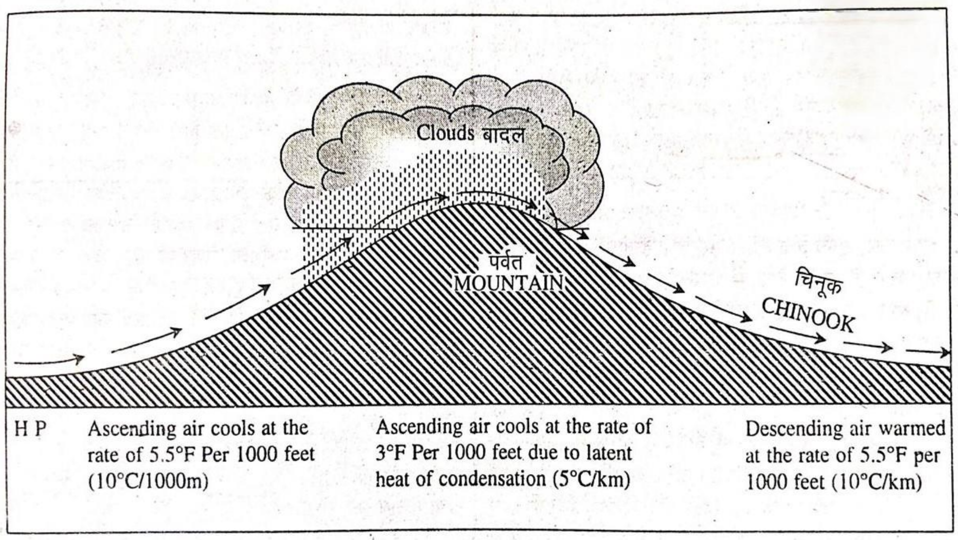

चित्र 7.3 : चिनूक पवन की उत्पत्ति।

चिनूक हवाओं के प्रवाहित होने के उपरान्त संयुक्त राज्य अमेरिका के महान मैदानी प्रदेशों–प्रदेशों में अति शीत की स्थितियों में इतनी कमी हो जाती है कि पूरा मौसम सुहावना व आरामदायक हो जाता है परन्तु, तापमान में अचानक वृद्धि के कारण हिम द्रवित जल का अधिकाँश भाग वसन्तकाल के पूर्व ही वाष्पीकृत हो जाता है। फलतः मृदा से नमी का ह्रास हो जाता है। यह हवाएं तीव्र गतिशील व तूफान युक्त होती हैं। कभी–कभी इनकी इनकी गति लगभग 150 कि०मी० प्रति घण्टा हो जाती है। मात्र 2 मिनट में 7^0 से०ग्रे० तापमान में वृद्धि कर देना इनकी नाटकीय विशेषता है।

आल्पस पर्वत के द० ढाल से ऊपर की ओर चढ़ने वाली हवा जब उत्तरी ढ़ाल के सहारे नीचे की ओर उतरती है तो गर्म एवं शुष्क हो जाती है जिसे फान के रूप में जाना जाता है। यह हवा स्वितरलैण्ड में सर्वाधिक प्रभावशाली होती हैं। ये हवाऐं वसन्त ऋतु व पतझड़ के समय प्रवाहित रहती हैं। इन हवाओं के सक्रिय होने पर तापमान में लगभग 4.5^0 से०ग्रे० का ह्रास हो जाने के कारण वर्फ विघल जाती है और मौसम आनन्दायक हो जाता है। इसी कारण स्विटजरलैण्ड की घाटियाँ शीतकालीन मरूद्यान के रूप में जानी जाती है। इन हवाओं के प्रभाववस कृषि कार्य के शीघ्रता आ जाती है, पतझड़ के समय तुषार रूक अथवा कम हो जाता है और अंगूर की फसल शीघ्र ही पक व तैयार हो जाती है।

जोण्डा (JONDA) –

फान व चिनूक शुष्क तथा गर्म हवाओं के समान ही अर्जेन्टीना में प्रवाहित होने वाली गर्म शुष्क हवाओं को जोण्डा के नाम से सम्बोधित किया जाता है। द० अमेरिका के एण्डीज पर्वत के पूर्वी ढाल पर यह हवा प्रवाहित होती है। इसकी गति 120 कि०मी० प्रति घण्टा तक होती है। शीतऋतु की अवधि में यह हवा अत्यन्त ही प्रबल एवं प्रचण्ड हो जाती है। अर्जेण्टीना के स्थानीय मौसम पर इस गर्म एवं शुष्क हवा का अधिक प्रभाव रहता है।

सान्ता–अना (SANTA ANA) –

यह एक सम्पीडन एवं चैनेल युक्त हवा है जो द० कैलीफोर्निया में सान्ता अना घाटी में निचले ढ़ाल की ओर प्रवाहित होती है। चिनूक के समान गर्म एवं शुष्क हवा शान्ता अना चिनूक हवा के विपरीत दिशा में विस्तृत घाटी में चैनेल हवा के रूप में चलती है। वस्तुतः अपने प्रवाहित क्षेत्र में मिट्टियों के नमी को सुख देने वाली यह हवा एक जलवायुविक प्रकोप के रूप में भी जानी जाती है। इस हवा के अधिक तापमान व शुष्क होने के जंगलों में आग लगने की घटनाऐं घटित होती हैं। सान्ता अना में धूल मिल जाने के कारण धूल भरी तेज आँधी चलती है। यह हवा वागवानी कृषि को दुष्प्रभावित कर देती है। यह हानिकर व प्रतिकूल प्रभाव की पवन है। इसी प्रकार गर्म व शुष्क घाटी में निचले ढ़ाल की ओर प्रवाहित चैनेल पवन को जापान में यामों तथा मध्य यूरोप में ट्रैमोनटान (YAMO & TRAMONTANE) कहा जाता है।

सिराको (SIROCCO) –

यह गर्म शुष्क एवं रेत से भरी हुई हवाएं सहारा रेगिस्तान में उत्तर दिशा में भूमध्यसागर की ओर प्रवाहित होती हुई इटली एवं स्पेन में प्रवेश करती हैं। रूमसागर पर चक्रवातों का जनन हो जाने के पश्चात यह अत्यधिक सवल हो जाती हैं। एटलस पर्वत के उत्तरी ढ़ाल के सहारे नीचे की ओर उतरने पर इनकी शुष्कता एवं तापमान में वृद्धि हो जाती है। अफ्रीका में इन्हें अनेक स्थानीय नामों से सम्बोधित किया जाता है जैसे मिश्र में **खमसिन,** लीविया में, **गिब्ली,** ट्यूनीशिया में **चिली** आदि नामों से इन्हें जानते हैं। अरब के रेगिस्तान में इन गर्म एवं शुष्क हवाओं को **सिमूम** कहते हैं। सिराको हवाओं में लाल रेत की मात्रा अधिक रहती है। रूमसागर से गुजरते हुए हवायें नमी ग्रहण कर लेती हैं और इटली के द० भाग में कभी–कभी वर्षा भी करती हैं। इन हवाओं की लाल रेत जब नीचे बैठने लगती है तो रक्त वृद्धि जैसा दिखाई देता है। यद्यपि यह हवाएं हर मौसम में प्रवाहित होती हैं परन्तु वसन्त काल में जब रूमसागर पर चक्रवातों की सक्रियता रहती है तो इनका स्वरूप अधिक व्यवस्थित हो जाता है। इन हवाओं का विनाशकारी प्रभाव वनस्पतियों, कृषि एवं वागवानी पर अधिक रहता है। स्पेन एवं इटली में ये हवाएं जैतून व अंगूर को भारी नुकसान पहुँचाती हैं।

वस्तुत सिराको प्रकार की हवाएं रेत व धूल से इतनी भरी रहती है कि दिन में ही इनके आगमन से अंधेरा हो जाता है। मोरक्को में इन हवाओं को **लेस्टी** स्पेन में '**लेवेचे** कहा जाता है। उ० अफ्रीका व अरब रेतीली खमसिन के प्रवाह आने पर वायुमण्डलीय तापमान 38^0 से 40^0 से०ग्रे० हो जाता है जो शीतकाल के अन्त व वसन्त के प्रारम्भ में अधिक प्रबल होता है। सूडान में इसी प्रकार की हवाओं के प्रवाह को **ह्बूव** कहते हैं जो ग्रीष्मकाल के आरम्भ में अधिक प्रबल व सक्रिय रहती है।

हरमट्टान (HARMATTAN) –

सहारा रेगिस्तान के पूर्वी भागों में उत्तर पू० एवं प0 दिशा से प्रवाहित होने वाली गर्म एवं शुष्क हवाओं को हरमट्टान कहा जाता है। विशाल सहारा रेगिस्तान के ऊपर से प्रवाहित होने के कारण इन हवाओं की नमी का लोप हो जाता है और उष्णता बढ़ जाती है। यह हवायें रेत भरी होती हैं जिसमें लाल रेत की अधिकता होती है। अफ्रीका का प० तट उष्ण तथा आर्द्र है। अर्थात अधिक तापमान व अधिक आर्द्रता के कारण मानव जीवन असहज रहता है। परन्तु हरमट्टान के प्रवाहित होने पर मौसम में शुष्कता आ जाती है और यहाँ के लिए मौसम सुहावना हो जाता है। हरमट्टान की उष्णता व शुष्कता के कारण आर्द्रता नष्ट हो जाती है (वायु मण्डल की) इसी प्रभाव के कारण गिनी के तट पर इस हवा को डाक्टर पवन कहा जाता है। यह हवा अति प्रचंड रहती है इसके प्रवाह से वृक्ष के तने भी कट जाते हैं और वनस्पतियाँ अलग जाती हैं। प्रायः रेतभरी आँधी का रूप धारण करने वाली इस हवा के प्रवाह में दृश्यता समाप्त हो जाती है। ग्रीष्मकाल में इनका प्रभाव अधिक होता है। ये हवाएं उ०पू० व्यापारिक हवाओं का ही रूप होती हैं जो सहारा के गर्म रेगिस्तान के कारण शुष्क हवाओं के रूप में बदल जाती हैं। स्थलीय भाग से आने के कारण ये हवाएं वर्षा करने में भी अक्षम रहती हैं। आस्ट्रेलिया के विक्टोरिया प्रान्त में प्रवाहित होने वाली

इसी प्रकार की हवाओं को ब्रिकफिल्डर कहा जाता है जिसका तापमान लगभग 40^0 से०ग्रे० तक चला जाता है। ऐसी ही गर्म एवं शुष्क हवाओं को संयुक्त राज्य अमेरिका में **'ब्लैकरोलर**, मेसोपोटामिया व फारस की खाड़ी वाले क्षेत्र में **शामल** तथा न्यूजीलैण्ड में **नारवेस्टर** के नाम से जाना जाता है।

लू (LOO) – ग्रीष्मकालीन अवधि में उ० भारत में उ०प० तथा प० से पू० दिशा में प्रवाहित होने वाली हवाओं को लू कहा जाता है। वास्तव में इन प्रचण्ड उष्ण व शुष्क हवाओं के प्रवाह को तापीय लहर भी कहा जाता है इनके प्रवाहित होने पर तापमान 38^0 से०ग्रे० से 48^0 से०ग्रे० पर पहुच जाता है। कभी–कभी इनका प्रवाह इतना तीव्र होता है कि रातें भी इनसे प्रभावित हो जाती हैं। यह हवा प्रायः मई व जून में चलती है। कभी–कभी इनका प्रभाव कई सप्ताह तक रहता है। यह हवायें प्रायः दिन में 11 बजे से 5 बजे तक अधिक प्रचंड रहती हैं।

मिस्ट्रल (MISTRAL) रूमसागर के उ०प० भाग विशेषतः स्पेन एवं फ्रान्स को प्रभावित करने वाली मिस्ट्रल एक ठंढ़ी एवं ध्रुवीय हवा है। शीतकाल की अवधि में यूरोप पर उच्चदाब तथा रूमसागर पर निम्नदाब की स्थिति बन जाती है जिसके कारण उ०प० तथा प० हवाएं उद्भूत होती हैं और पू० तथा द०पू० दिशा को प्रवाहित होती हैं। फ्रान्स के मध्यवर्ती पठार से प्रवाहित होकर द० में नीचे उतरने के कारण ये हवायें अत्यधिक ठंडी हो जाती हैं। रोन नदी की संकरी घाटी से प्रवाहित होने के कारण इनकी गति तेज हो जाती है। इस हवा की गति सामान्यतः 55 से 65 कि०मी० होती है परन्तु कभी–कभी इनकी गति 125 से 130 कि०मी० प्रति घण्टा हो जाती है जो वायुयानों के गति को भी प्रभावित कर देती है। इनके प्रवाहित होने पर मौसम अत्यधिक ठंडा व तापमान हिमाँक बिन्दु से भी नीचे चला जाता है।

ब्लिजर्ड (BLIZZARD) – ब्लिजर्ड का तात्पर्य हिमझंझावात होता है। यह ध्रुवीय हवाएं वर्फ के कणों से युक्त होती है। जिसके कारण दृश्यता नष्ट हो जाती है। उ० तथा द० ध्रुवीय क्षेत्र, साइवेरिया कनाड़ा एवं संयुक्त राज्य अमेरिका इन हवाओं के प्रमुख प्रवाह क्षेत्र हैं। इनकी गति 80 से 90 कि०मी० प्रति घण्टा होती है। इनके प्रवाह से तापमान हिमाँक बिन्दु से नीचे चला जाता है, वर्फ का साम्राज्य हो जाता है और शीत लहर प्रवाहमान हो जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में प०पू० धरातलीय अवरोध न रहने के कारण समस्त मध्यवर्ती मैदान में प्रवाहित होती हुई द० प्रान्तों में प्रवेश कर जाती हैं। यहाँ इनको **नार्दर्न** तथा साइवेरिया में **बुरान** कहा जाता है।

बोरा (BORA) – बोरा एक अति ठंडी हवा है जो एड्रियाटिक सागर के पूर्वी किनारे पर प्रवाहित होती है। विशेषतः इटली का उ० भाग इस हवा से अधिक प्रभावित होता है। वस्तुतः यह हवाएं आल्पस पर्वत के द० ढ़ाल से नीचे उतर कर ये उत्तरी तथा उत्तरी–पूर्वी हवाएं द० की ओर प्रवाहित होने लगती हैं। एड्रियाटिक सागर से सम्पर्क करती हुई आने के कारण ये हवाएं नमी धारण कर लेती हैं। रूमसागरीय चक्रवातों की सक्रियता पर ही इन हवाओं का स्थायी होना निर्भर रहता है।

लैटिन भाषा के बोरा शब्द का शाब्दिक अर्थ उत्तरी होता है। शीतकाल की अवधि में बोरा की औसत गति 53 कि०मी० प्रति घण्टा व ग्रीष्मकाल की अवधि में 380 कि०मी० प्रति घण्टा रहती है। यह निचले ढ़ाल की ओर प्रवाहित होने वाली बोरा एडियावेटिक विधि से तापवृद्धि के कारण गर्म हवा है क्योंकि आल्पस के द० ढ़ालों से उतरते समय इस हवा के तापमान में शुष्क एडियावेटिक दर से प्रति कि०मी० नीचे आने पर 10^0 से०ग्रे० की वृद्धि हो जाती है। इसके पश्चात् भी बोरा हवा का तापमान समीपस्थ सागर तटीय क्षेत्रों से काफी कम रहता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आल्पस से नीचे उतरने से पूर्व ठंडी हवा होती है परन्तु नीचे उतरने के पश्चात इसका तापमान शुष्क ऐडियावेटिक ताप परिवर्तन के कारण कुछ अवश्य बढ़ जाता है। वर्ष में यह औसतन 36 बार सक्रिय होती है। शीतकाल में इसकी आवृत्ति अधिक रहती है। इसके सक्रिय होने पर शीतकाल की अवधि में एड्रियाटिक सागर के समीप तापमान हिमाँक बिन्दु से नीचे चला जाता है।

आँधी बगुला (DUST DEVILLS) –

उष्ण एवं उपोष्ण कटिबन्धीय रेगिस्तानों में धूल व रेत से युक्त उठने वाली वायु स्तम्भ को आँधी वगुला कहते हैं। भारत में इन्हें बवंडर कहते हैं जो अप्रैल से जून माह में आते हैं। इस प्रकार के बवंडर का निर्माण धरातलीय सतह के अत्यधिक गर्म होने व स्थानीय स्तर पर गर्म हवाओं के चक्राकार रूप में ऊपर उठने से होता है। वस्तुतः निचले वायुमण्डल में चक्कर काटती वायुराशि के कारण ऊपर उठती हवाएं अत्यधिक तीव्र हो जाती हैं। यह कीपाकार टोरनैड़ो जैसे दिखते हैं तथा वायुमण्डल में 300 मीटर की उँचाई तक सक्रिय रहते हैं। कभी–कभी ये हवाऐं इतनी प्रचंड होती हैं कि यह मकानों की छतों, धरातल पर पड़ी वस्तुओं व छोटे वाहनों को अपनी शक्ति से

ऊपर उठा ले जाती हैं। यह प्रत्येक दशा में हानिकारक पवन संचरण है।

अन्य स्थानीय हवाऐं (OTHER LOCAL WINDS) –

पपागायों (PAPAGAYO) – कोस्टारिका के उ०प० तट व पपागायों खाड़ी में सक्रिय प्रचंड उ०पू० हवा।

टेहुआण्टेपसर (TEHUAN TEPECER) – द० मैक्सिकों तथा उ० मध्य अमेरिका में सक्रिय उत्तरी स्थानीय हवा।

फ्रायगेम (FRIAGEM) – अमेजन घाटी में सक्रिय प्रबल शीत हवा।

आँधी–अधंड़ (DUST STORMA) – उ० भारत में अप्रैल से मध्य जून तक धूल भरी चलने वाली प्रचंड हवा।

मौसमी हवाएं (SEASONAL WINDS) –

यहाँ मौसमी हवाओं के अन्तर्गत उन वृहद स्तरीय धरातलीय हवाओं को सम्मिलित किया गया है जिनकी दिशा में न्यूनतम 120^0 का वर्ष में दो बार परिवर्तन होता है। इस आधार पर मानसून हवाएं प्राथमिक मौसमी हवा है जिसका विवरण प्रस्तुत करना अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

8.17 सारांश

इस अध्याय में, हम भारतीय मानसून की उत्पत्ति, स्थानीय हवाओं और विभिन्न प्रकार की विशेष हवाओं के बारे में विस्तार से चर्चा भारतीय मानसून की उत्पत्ति हिंद महासागर, बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में गर्मी के कारण होती है। गर्मियों में, इन क्षेत्रों में गर्म हवा ऊपर उठती है और उसकी जगह लेने के लिए समुद्र से ठंडी हवा आती है, जिससे मानसूनी हवाओं का निर्माण होता है। यह प्रक्रिया भारी वर्षा और जलवायु परिवर्तन का कारण बनती है, जो भारतीय उपमहाद्वीप के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।स्थानीय हवाओं में स्थल समीर और समुद्री समीर शामिल हैं। स्थल समीर रात के समय समुद्र से भूमि की ओर चलती है, जबकि समुद्री समीर दिन के समय स्थल से समुद्र की ओर चलती है। घाटी समीर और पर्वतीय समीर पहाड़ी क्षेत्रों में देखी जाती हैं। घाटी समीर दिन में घाटी से पहाड़ की ओर और पर्वतीय समीर रात में पहाड़ से घाटी की ओर चलती है।विशेष हवाओं में चिनूक और फोहन पर्वतीय क्षेत्रों में गर्म, शुष्क हवाएं होती हैं जो बर्फ को तेजी से पिघलाने में सक्षम होती हैं। सांता एना हवाएं दक्षिणी कैलिफोर्निया में गर्म, शुष्क हवाएं होती हैं जो जंगल की आग का कारण बन सकती हैं। लू भारतीय उपमहाद्वीप में गर्मियों में चलने वाली गर्म, शुष्क हवा है। ब्लिजार्ड ठंडी, बर्फीली हवाएं होती हैं जो उत्तरी अमेरिका और यूरोप में भारी बर्फबारी और ठंड का कारण बनती हैं। हरमट्टन पश्चिम अफ्रीका में चलने वाली शुष्क, धूलभरी हवा है। सिरोको उत्तरी अफ्रीका से यूरोप की ओर चलने वाली गर्म, धूलभरी हवा है।इस प्रकार, इस अध्याय में भारतीय मानसून की उत्पत्ति, स्थानीय हवाओं और विभिन्न प्रकार की विशेष हवाओं के बारे में एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान किया गया है। यह अध्ययन हमें विभिन्न प्रकार की हवाओं और उनकी उत्पत्ति, उनके प्रभावों और उनके महत्व को गहराई से समझने में मदद करेगा, जिससे हम मौसम और जलवायु के विभिन्न पहलुओं को बेहतर ढंग से समझा दिया गया है।

8.18 बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1. सान्ताअना पवन कहां चलती है?

   (क) दक्षिण अफ्रिका (ख) स्पेन (ग) सहारा (घ) कैलिफोर्निया

2. सागरीय समीर कब प्रवाहित होती है?

   (क) दिन में (ख) रात में (ग) गर्मियों में (घ) सर्दियों में

3. फॉन कहां की स्थानीय पवन का नाम है?

   (क) एडीस (ख) हिमालय (ग) आल्प्स (घ) ग्रेट डिवाइडिंग

4. भारतीय मानसून की तापीय संकल्पना का प्रतिपादन किसने किया?

(क) रोजर्स (ख) पीव कोटेश्वरम (ग) इसार्ड (घ) डेविस

5. हरमट्टान स्थानीय पवन कहां पायी जाती है?

(क) सहारा (ख) स्पेन (ग) कैलिफोर्निया (घ) जापान

6. कौन सा समीर पर्वत की चोटी पर पहुंच कर वर्षा प्रदान करता है?

(क) फॉन (ख) चिनूक (ग) पर्वत समीर (घ) घाटी समीर

7. ऊष्मा विकिरण की खिड़की किसे कहा जाता है?

(क) मैदान (ख) समुद्र (ग) पर्वत (घ) घाटी

8. भारत में प्रति चक्रवात दशाएं विद्यमान होती है–

(क) मार्च से जून (ख) दिसम्बर से फरवरी (ग) फरवरी से मई (घ)मई से सितम्बर

9. मानसून वर्षा की जो विशेषता नहीं है वह है–

(क) मौसमी वर्षा (ख) अनिश्चित तथा अनियमित वर्षा

(ग) वर्षा का असमान वितरण(घ) वर्षा होने वाले दिनों की निरन्तरता

10. भारत के कोरोमण्डल तट पर सर्वाधिक वर्षा होती है–

(क) जनवरी–फरवरी में (ख) जून–सितम्बर में

(ग) मार्च–मई में (घ)अक्टूबर–नवम्बर में

11 .भारत में शरदकालीन वर्षा कहां होती है–

(क) तमिलनाडु–कर्नाटक (ख) पंजाब–राजस्थान

(ग) पंजाब–तमिलनाडु (घ)उड़ीसा–बिहार

12.शीत ऋतु में तमिलनाडु में होने वाली वर्षा का प्रकार है–

(क) चक्रवाती (ख) संवहनीय

(ग) पर्वतीय (घ) प्रति चक्रवाती

8.19 अभ्यास प्रश्न–

प्र0–1 :मानसून उत्पत्ति से सम्बन्धित तापीय संकल्पना को स्पष्ट कीजिए।

प्र0–2 : भारतीय मानसून पर तिब्बत पठार का प्रभावों का वर्णन कीजिए।

प्र0–3 : मानसून पर जेट स्ट्रीम के योगदान का वर्णन कीजिए।

प्र0–4 : भारतीय मानसून की उत्पत्ति से सम्बन्धित चिर सम्मतकालीन संकल्पना का वर्णन कीजिए।

प्र0–5 : भारतीय मौसमी दशाओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

प्र0–7 सनातनी पवने के विश्व वितरण की व्याख्या करें।

प्र0–8. पर्वत व समुद्र स्थानीय मौसम को कैसे प्रभावित करते है? स्पष्ट करें।

प्र0–9 लौटते हुए मानसून के कारणों एवं प्रभावों की व्याख्या करें।

8.20 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

1. डी एस. लाल – जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज

2. प्रो0 सविद्र सिंह – जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पुस्तक भवन प्रयागराज

3. डॉ. वाई. आई. सिंह – जलवायु विज्ञान, एशियन ह्यूमेनटिस प्रेस (AHP)

4.डॉ. चतुर्भुज मामोरिया – डा. एम. एस. सिसोदिया – जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, साहित्य भवन कानपुर

5. के. सिद्धार्थ – जलवायु और समुद्र विज्ञान – किताब महल

6. डॉ0 बी0सी0 जाट, भारत का भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर

7. सिंह, आर0एल0– इण्डिया : रीजनल जियोग्राफी एन0जी0एस0आई0, गोरखपुर।

8. Nag, P. and Sengupta, 8- Geography of India, Gorakhpur, Concept Pu

इकाई 9

आर्द्रताः अर्थ, प्रकार तथा महत्व, संधनन, कुहरा एवं प्रकार, वर्शण के सिद्वान्त, वर्शण के रूप, वर्शा के प्रकार, विश्व का वितरण।

9.1 **प्रस्तावना**

9.2 उद्देश्य

9.3 गुप्त ऊष्मा

9.4 आर्द्रता

9.5 संधनन व उसके रूप 9.6 कुहरा

9.7 बादल

9.8 जल वर्षा

9.9 वर्षण के सिद्धान्त

9.10 जल वर्षा के प्रकार

9.11 जल वर्षा का धरातल पर वितरण

12 जल वर्षा का कटिबन्धों के अनुरूप वितरण

9.13 वर्षा की प्रवृत्ति

9.14 तड़ितझंझा

9.15 सारांश

9.16 बहुविकल्पीय प्रश्न

9.17 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

9.18 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

9.1 प्रस्तावना

दिवतीय सेमेस्टर के पुस्तक में हम लोग, आर्द्रता, वर्षा के प्रकार और वितरण की चर्चा करेंगे एवं जलवायु विज्ञान के अध्ययनरत छात्रों के लिए ही नहीं बल्कि समूचे मानव समुदाय के लिए वायुमंडल अथवा जलवायु की समझ आवश्यक होती है हम कोई भी कार्य करें उसमें वर्षा चक्रवात, वायुराशि, आर्द्रता की जानकारी, उसकी पूर्व सूचना, उसके संपूर्ण विश्लेषण की जानकारी आवश्यक होती है यात्रा प्रारंभ करने से पूर्व या विमान द्वारा उड़ान भरने से पूर्व, खेतों में कृषि कार्य करने से पूर्व, सड़क निर्माण से पूर्व, नहर में पानी छोड़ने से पूर्व, बिल्डिंग निर्माण के कार्य के पूर्व, संपूर्ण कार्यों के पहले हमें मौसम के बारे में जानकारी एकत्रित करनी होती है वायुमंडल में उपस्थित जलवाश्प को हम लोग आते हैं आर्द्रता अनेक प्रकार की होती है इसमें निरपेक्ष आर्द्रता ,सापेक्षिक आर्द्रता ,विशिष्ट आर्द्रता, आर्द्रता मिश्रण अनुपात यह महत्वपूर्ण होता है आर्द्रता विभिन्न अक्षांश में विभिन्न ऊंचाइयों पर भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न स्तर पर अंकित की जाती है इसका ही परिणाम है कि वायुमंडल में अनेक प्रकार की घटनाएं घटती है ।जैसे बादल तड़ित झंझा या जल वर्षा वायुमंडलीय स्थिरता यह सारी चीजें कोहरा और पाला संपूर्ण घटनाक्रम आर्द्रता से ही पूरी तरह से जुड़ा हुआ है वायुमंडल में विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से जलवाश्प एकत्रित होता है कहीं पर वाष्पीकरण कहीं पर वाश्पोत्सर्जन से एकत्र जलवाश्प का वायुमंडल में संघनन होता है और यह जलवाश्प जल में अथवा हिम में परिवर्तित होकर वर्षा के रूप में धरातल पर प्रकट होती है जिसे हम लोग वर्षण क्रिया कहते हैं वर्षा में अनेक घटनायें होती हैं वर्शा से संबंधित विद्वानों ने अनेक सिद्धांत दिया है जैसे मेघस्थिरता सिद्धांत ,टकराव सिद्धांत आर्द्र महत्वपूर्ण है वर्षा पर्वतीय वर्षा, चक्रवातीय वर्षा,संवहनीय वर्षा तीन प्रकार की होती है

वर्षा की विश्व में 6 पेटियां पाई जाती है कुछ विद्वानों ने इसे अनेक रूपों में विचलित करने का प्रयास किया है इस तरह से इस इकाइ हम लोग,आर्द्रता, बादल, कुहरा ,वर्षा आदि का अध्ययन करेंगे

9.2 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य आर्द्रता की अवधारणा, इसके प्रकार और महत्व की गहरी समझ प्रदान करना है। आर्द्रता, वायुमंडलीय जलवाष्प की मात्रा को दर्शाती है और मौसम और जलवायु पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। इस अध्याय में आर्द्रता के विभिन्न प्रकार, जैसे सापेक्ष आर्द्रता और विशिष्ट आर्द्रता, के बारे में चर्चा की जाएगी और उनके महत्व को समझाया जाएगा।संघनन, कुहरा, और उनके प्रकारों की व्याख्या की जाएगी, जिसमें यह बताया जाएगा कि कैसे आर्द्रता की मात्रा वायुमंडल में संघनित होती है और इसके परिणामस्वरूप कुहरा जैसे मौसमी परिघटनाएँ उत्पन्न होती हैं।वर्षण के सिद्धांत, उसके रूप और प्रकार, जैसे वर्षा, बर्फबारी, और ओले, की समीक्षा की जाएगी। वर्षण के वैश्विक वितरण को समझते हुए, यह विश्लेषण किया जाएगा कि कैसे विभिन्न क्षेत्रों में वर्षण की मात्रा और प्रकार भिन्न होते हैं और इसके पीछे के कारक कौन से हैं।इस अध्याय का उद्देश्य शिक्षार्थी में आर्द्रता, संघनन, और वर्षण की प्रक्रियाओं की पूरी व्याख्या की क्षमता प्रदान करना है, ताकि वे इन महत्वपूर्ण मौसमी तत्वों की गहराई से समझ प्राप्त कर सकें और उनके प्रभावों का मूल्यांकन कर सकें।

9.3 गुप्त ऊष्मा (LATENT HEAT) –

जल को वाष्प या गैस में बदलने हेतु ऊष्मा के रूप में ऊर्जा का होना आवश्यक है। ऊष्मा की इकाई कैलोरी होती है। एक ग्राम बर्फ को जल में बदलने के लिए 79 कैलोरी एवं एक ग्राम जल को वाष्प में बदलने के लिए 607 कैलोरी ऊर्जा आवश्यक होती है। ज्ञातव्य है कि हिम से जल तथा जल से वाष्प में स्थितिज ऊर्जा (POTENTIAL ENERGY) अधिक रहती है। वाष्प के अन्तर्गत ऊष्मा या गुप्त ऊर्जा होती है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में यह ऊर्जा सौर ऊर्जा ही होती है। वाष्पीकरण की प्रक्रिया में ऊष्मा क्षय के अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। जल से स्नान करने पर हमें ठंडक का अनुभव इसलिए होता है क्योंकि हमारा कुछ ताप जल को वाष्प में बदलने पर खर्च हो जाता है। इसी प्रकार गर्मियों में पसीना निकलने पर पंखे व खुली हवा के लगने पर ठंढ़क का अहसास होता है क्योंकि ताप के कारण व पसीना रूपी जल वाष्पीकृत हो जाता है स्पष्ट है कि वाष्पीकरण की प्रक्रिया में वाष्प बनने के समय ऊर्जा क्षय होता है जबकि संघनन द्वारा वाष्प का जल के रूप में परिवर्तन होने से ऊष्मा मुक्त होती है। इसी मुक्त ऊष्मा को संघनन की गुप्त ऊष्मा (LATENTHERT OF CONDENSATION) कहा जाता है।

9.4 आर्द्रता (HUMIDITY)

वायुमण्डल में विद्यमान जलवाष्प को आर्द्रता कहते हैं। सम्पूर्ण वायुमण्डलीय संगठन में जलवाष्प की मात्रा औसत रूप से 2 प्रतिशत रहती है। जलवाष्प की यह मात्रा प्रत्येक स्थान पर एक समान नहीं रहती वरन् यह शून्य से 5 प्रतिशत तक विद्यमान रहती है। वायुमण्डल के निचले भाग में लगभग 2000 मीटर तक जलवाष्प की कुल मात्रा का 50 प्रतिशत भाग्य विद्यमान रहता है। वर्षा की मात्रा व स्वरूप पृथ्वी से विकिरण द्वारा ऊष्मा क्षय की मात्रा, धरातल का तापमान, वायुमण्डलीय गुप्तऊष्मा, वायुराशियों की स्थिरता एवं स्थिरता आदि मौसम सम्बन्धी महत्वपूर्ण घटक विघमान जलवाष्प की मात्रा पर निर्भर करते हैं। वायुमण्डल जलवाष्प की प्राप्ति सागरों, नदियों, झीलों जलाशयों, तालाबों वनस्पतियों, सिंचित कृषि क्षेत्रों से जल के वाष्पीकरण की प्रक्रिया द्वारा होती है। किसी स्थान पर वाष्पीकरण की मात्रा एवं उसकी तीव्रता हवाओं के तापमान, गति एवं शुष्कता पर आधारित होती है। उच्च तापमान वाली शुष्क हवाओं में नमी को धारण करने की क्षमता अधिक होती है फलतः वायु को संतृप्त होने में अधिक समय लगने के कारण वाष्पीकरण की गति व मात्रा अधिक होती हैं। स्थिर हवाओं में नमी का स्थानान्तरण न हो पाने से हवाएं शीघ्र ही संतृप्त हो जाती हैं जबकि हवाओं के अस्थिर रहने पर वाष्प के स्थानान्तरण की प्रक्रिया होती रहती है। सागरीय भागों पर वाष्पीकरण, स्थल भागों की अपेक्षा अधिक होता है। दोनों गोलार्द्धो में 10^0 अक्षाँशों तक महाद्वीपों पर सर्वाधिक वाष्पीकरण होता है । दोनों गोलार्द्धों में 10^0 से 20^0 अक्षाँशो के मध्य महासागरीय भागों पर सर्वाधिक वाष्पीकरण होता है जिसका प्रमुख कारण यह है कि निम्न अक्षाँशों पर हवाओं की गति मन्द होती है परन्तु यहाँ तीव्र रहती है। संघनन (CONDENSATION) एवं वाष्पीकरण (EVAPORATION) परस्पर विरोधी प्रक्रियाएं हैं, क्योंकि वाश्पीकरण के द्वारा जल, वाष्प में बदल जाता है जबकि संघनन के द्वारा वाष्प जल अथवा ठोस रूप में बदल जाती है। वायु में विद्यमान जल के गैसीय आवासीय रूप को ही वायुमण्डलीय आर्द्रता या नमी कहा जाता है।

आर्द्रता पृथ्वी द्वारा वाष्पीकरण की विभिन्न रूपों में वायुमण्डल को प्राप्त होती है। जलवायु विज्ञान के अन्तर्गत इस का अध्ययन व महत्व विशेष है क्योंकि आर्द्रता ही वह कारक है जिस पर जलवर्षा (RAINFALL) वर्षण (PRECIPITATION) के विभिन्न रूप, वायुमण्डलीय तूफान बिक्षोभ आदि की दशाएं निर्भर करती हैं। वायुमण्डलीय आर्द्रता को विशिष्ट आर्द्रता (SPECIFIC HUMIDITY), निरपेक्ष आर्द्रता (ABSOLUTE HUMIDITY) एवं सापेक्षिक आर्द्रता (RELATIVE HUMIDITY) के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है।

1 वायुमण्डल की आर्द्रता सामर्थ्य (HUMIDITY CAPACITY OF ATMOSPHERE) –

वायु की आर्द्रता की माप वायु के प्रति घनफुट आयतन पर ग्रेन इकाई अथवा प्रति घन से०मी० पर ग्राम में किया जाता है। वाष्पीकरण आर्द्रता की मुख्य प्रक्रिया होती है। तापमान एवं वाष्पीकरण में सीधा सम्बन्ध होता है। **कि निश्चित तापमान पर वायु में निश्चित आयतन पर अधिकतम नमी धारित करने की क्षमता को ही वायु की आर्द्रता सामर्थ्य (HUMIDITY CAPACITY) कहा जाता है।** वायु में नमी धारण करने की क्षमता तापमान की अधिकता पर निर्भर करती है। वस्तुतः 30^0 फा० तापमान पर एक घनफुट हवा 1.9 ग्रेन आर्द्रता रख सकती है। जबकि 10^0 फा० तापमान की वृद्धि हो जाने यह क्षमता एक ग्रेन बढ जाती है। शीतकाल की अपेक्षा ग्रीष्मकाल में व रात्रि की अपेक्षा दिन में आर्द्रता सामर्थ्य अधिक होती है। आर्द्रता सामर्थ्य पर स्थल तथा जल के विस्तार एवं हवाओं की गति का भी प्रभाव पड़ता है। सागरों व उनके तटीय भागों पर महाद्वीपों के आन्तरिक भागों की तुलना में आर्द्रता सामर्थ्य अधिक होती है। भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर यह सामार्थ्य कम होती जाती है। यदि हवा में निश्चित तापमान पर आर्द्रता सामर्थ्य के बराबर भी मौजूद रहती है तो उसे संतृप्त वायु (SATURATED AIR) कहा जाता है।

तापमान व आर्द्रता सामर्थ्य का सम्बन्ध

तापमान (फा० में)	आर्द्रता सामर्थ्य (वाष्पग्रेन)	10^0 फा० के अन्तर पर आर्द्रता सामर्थ्य का अन्तर	अनुमानित विरपेक्ष आर्द्रता
30	1.9	–	–
40	2.9	1.0	–
50	4.1	1.2	4.1
60	5.7	1.6	4.1
70	8.0	2.3	4.1
80	10.9	2.9	4.1
90	14.7	3.8	4.1
100	19.7	5.8	4.1

2 निरपेक्ष आर्द्रता (ABSOLUTE HUMIDITY) –

सुनिश्चित आयतन पर हवा में विद्यमान नमी की कुल मात्रा को निरपेक्ष आर्द्रता कहते हैं। यही आर्द्रता हवा के निश्चित आयतन पर जलवाष्प के बाहर का प्रदर्शन करती है। जिसे प्रति घन फुट पर ग्रेन में तथा प्रति घन सेमी पर ग्राम में प्रदर्शित किया जाता है। वास्तविक आर्द्रता पर तापमान की कम या अधिक होने का कोई प्रभाव नहीं होता है । वस्तुतः वाष्पीकरण द्वारा अतिरिक्त नमी के प्राप्त होने या संघनन प्रक्रिया के उपरान्त वर्षा के फलस्वरुप नमी के खर्च होने पर ही वास्तविक आर्द्रता में अन्तर आ जाता है। ज्ञातव्य हो कि हवाओं के ऊपर जाकर फैलने या नीचे उतरकर सिकुड़ने पर निरपेक्षता में अन्तर आ जाता है। भूमध्य रेखा से एवं सागर तट से महाद्वीपों के आन्तरिक भागों की ओर निरपेक्षता की मात्रा कम होती जाती है। रात की अपेक्षा दिन एवं शीतकाल की अपेक्षा ग्रीष्मकालीन की अवधि में निरपेक्षता अधिक रहती है। वर्षा की संभावना निरपेक्षता पर निर्भर करती है जैसे 50^0 फा० तापमान पर एक घनफुट हवा की अधिकतम नमी धारण करने की क्षमता 4.1 ग्रेन है और वास्तविक आर्द्रता भी 4.1 ग्रेन है तो वर्षा का होना सुनिश्चित है। इससे कम निरपेक्षता रहने पर तब तक वर्षा नहीं होती जब तक की तापमान कम ना हो जाए अथवा नमी की वृद्धि 4.1 ग्रेन न हो जाय।

3 सापेक्षिक आर्द्रता (RELATIVE HUMIDITY) –

किसी निश्चित तापमान पर निश्चित आयतन वाली हवा की आर्द्रता सामर्थ्य (अधिकाधिक नमी धारण करने की क्षमता) तथा उसने विद्यमान आर्द्रता की वास्तविक मात्रा (निरपेक्ष आर्द्रता की मात्रा) के अनुपात को सापेक्षिक आर्द्रता कहते हैं। जैसे यदि 70^0 फा० तापमान पर आर्द्रता सामर्थ्य 8 ग्रेन है तथा वास्तविक आर्द्रता 4.1 ग्रेन है तो

सापेक्षिक आर्द्रता=निरपेक्षता आर्द्रता/आर्द्रता सामर्थ्य x100

4.1/8x=51.25%

इसी प्रकार यदि 70^0 पर यदि सामर्थ्य आर्द्रता 8 ग्रेन एवं निरपेक्ष आर्द्रता 6 ग्रेन है तो सापेक्षिक आर्द्रता 6/8=75% या 3/4 अथवा 3:4 होगी। सापेक्षिक आर्द्रता को भी अनुपात में प्रदर्शित किया जाता है परन्तु इसे प्रतिशत में प्रदर्शित करना वर्तमान समय में अधिक प्रचलन में है तथा व्यवहारिक रूप से उपयुक्त भी माना जाता है।

वस्तुतः तापमान तथा आर्द्रता सामर्थ्य में यदि सीधा सम्बन्ध है अर्थात तापमान के बढ़ने या घटने पर आर्द्रता सामर्थ्य बढ़ती या घटती है तो तापमान एवं सापेक्षिक आर्द्रता में विपरीत सम्बन्ध होता है अर्थात तापमान बढ़ने पर आर्द्रता कम होती है जबकि कम होने पर (सापेक्षिक आर्द्रता) बढ़ती है निरपेक्ष आर्द्रता स्थिर रहती है जबकि आर्द्रता सामर्थ्य में परिवर्तन होता रहता है। जब सापेक्षिक आर्द्रता 100 प्रतिशत हो जाती है तो हवा सतृप्त हो जाती है ऐसा तब होता है जब आर्द्रता सामर्थ्य और निरपेक्षता सामान हो जाती है। तापमान आर्द्रता सामर्थ्य ग्रेन प्रति घनफुट निरपेक्ष आर्द्रता ग्रेन प्रति घनफुट एवं सापेक्षिक आर्द्रता की स्थिति का अवलोकन उपयुक्त तालिका के आधार पर किया जा सकता है।

सापेक्षित आर्द्रता

तापमान (फा० में)	आर्द्रता सामर्थ्य (ग्रेन प्रति घनफुट)	निरपेक्ष आर्द्रता (ग्रेन प्रति घनफुट)	सापेक्षिक आर्द्रता प्रतिशत लगभग
30	1.9	1.9	100.0
40	2.9	1.9	65.5
50	4.1	1.9	46.3
60	5.2	1.9	33.3
70	8.0	1.9	23.7
80	10.9	1.9	17.4
90	14.7	1.9	12.9
100	19.7	1.9	9.6

सापेक्षिक आर्द्रता का महत्व (IMPORTANCE OF RELATIVE HUMIDITY) –

जलवायु के दृष्टिकोण से सम्पर्क आर्द्रता का महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि इसकी मात्रा पर वर्षा की सम्भावना निर्भर करती है। (आर्द्रता सापेक्षिक) का कुछ प्रतिशत वर्षा की सम्भावना एवं कम प्रतिशत पर शुष्क मौसम रहने का अनुमान किया जाता है तथा इसी आधार पर वाष्पीकरण की मात्रा भी निर्भर करती है। सापेक्षिक आर्द्रता के अधिक होने पर वाष्पीकरण कम एवं सापेक्षिक आर्द्रता के कम होने पर वाश्पीकरण अधिक होता है। सापेक्षिक आर्द्रता के कम या अधिक (60 प्रतिशत से) होने से मानव स्वास्थ्य भी प्रभावित रहता है। अधिक सापेक्षिक आर्द्रता वाले भूमध्य रेखीय प्रदेश तथा कम आर्द्रता वाले उष्णकटिबन्धीय मरुस्थलीय प्रदेश मानव स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त नहीं है। सापेक्षिक आर्द्रता वस्तुओं के स्थायित्व इमारतों की संरचना विद्युत एवं इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों आदि की कार्य क्षमता को भी प्रभावित करती है।

सापेक्षिक आर्द्रता का वितरण (DISTRIBUTION OF RELATIVE HUMIDITY) –

धरातल पर सापेक्षिक आर्द्रता का वितरण क्षैतिज पेटियों के आधार पर विश्लेषण किया जाता है। सर्वाधिक सापेक्षिक आर्द्रता भूमध्य रेखीय प्रदेशों में रहती है। दोनों गोलार्द्ध में 30^0 अक्षाँशों के निकट कम हो जाती है जबकि उच्च अक्षांशों की ओर बढ़ने पर पुनः बढ़ने लगती हैं। सूर्य की उत्तरायण और दक्षिणायन की स्थिति में सापेक्षिक आर्द्रता की पेटियों का खिसकाव हो जाता है। सापेक्षिक आर्द्रता के मौसमी वितरण पर अक्षाँशों का अधिक प्रभाव होता है। दोनों गोलार्द्धों में 30^0 अक्षाँशो तक सर्वोच्च सापेक्षिक आर्द्रता ग्रीष्म काल में एवं उच्च आक्षाँशों में औसत से अधिक सापेक्षिक आर्द्रता गर्मियों में रहती है। प्रातः अधिकतम तथा सांय काल के समय न्यूनतम आर्द्रता रहती है।

4 विशिष्ट आद्रता (SPECIFIC HUMIDITY) –

निश्चित आयतन की आर्द्र हवा में विद्यमान वास्तविक नमी की मात्रा को विशिष्ट आर्द्रता कहा जाता है। विशिष्ट आर्द्रता निश्चित आयतन वाली वायु के संकल्प भार एवं उसने विद्यमान जलवाष्प की भार के मध्य का अनुपात है। इकाई में किया जाता है। विशिष्ट आर्द्रता वाष्प दाब में सीधा संबंध होता है। वस्तुत आवास खुदा बन के बढ़ने या घटने पर विशिष्ट आर्द्रता में वृद्धि व कमी होती है। जबकि विशिष्ट अतिथि तथा वायुदाब में विपरीत का संबंध होता है क्योंकि वायुदाब के बढ़ने पर विशिष्ट आर्द्रता कम एवं वायदा के घटने पर विशिष्ट आर्द्रता बढ़ जाती है। भूमध्य रेखीय से ध्रुव की ओर विशिष्ट आर्द्रता में कमी होती जाती है। आईटी क्षेत्रों के शीत एवं शुष्क वायु की एक किलोग्राम मात्रा में विशिष्ट आर्द्रता की मात्रा मात्र 0.2 ग्राम होती है। जबकि भूमध्य रेखीय प्रदेशों की अति गर्म एवं आर्द्रता हवा की एक किलोग्राम मात्रा में विशिष्ट आद्रता की मात्रा 18 ग्राम रहती है। आद्रता के आधार पर वर्षा की संभावित मात्रा का अनुमान किए जाने के साथ प्राकृतिक जल संसाधनों को भी विश्लेशण किया जा सकता है।

9.5 संधनन व उसके रूप (CONDENSATION AND ASSOCIATED FORM)

जलवाष्प या जल के गैसीय रूप का ठोस में या तरल रूप में रूपांतरण को ही संघनन कहा जाता है। संघनन वाशपीकरण का विपरीत रूप है वायुमंडल में विद्यमान सापेक्षिक आर्द्रता की मात्रा पर संघनन क्रिया निर्भर करती है। सापेक्षिक आर्द्रता वाली मात्रा हवा को संतृप्त वायु कहा जाता है। हवा तभी संतृप्त होती है जब हवा में निश्चित तापमान पर निरपेक्ष आर्द्रता बढ़कर आर्द्रता सामर्थ्य के बराबर हो जाती है। वायु के संतृप्त हो जाने अथवा सापेक्षिक आर्द्रता व आदर के प्रतिशत हो जाने संघनन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। जिस तापमान होने पर हवा संतृप्त हो जाती है उसे ओसांक (DEW POINT) कहा जाता है। वायु के संतृप्त हो जाने के उपरान्त वायु को ठंडा होने के पश्चात संघनन प्रारम्भ हो जाता है। यदि तापमान 32^0 फा० के ऊपर है तो तरल स्वरूप में (ओस, कुहरा, बादल आदि) और यदि हिमांक (32^0 फा० से कम) के उपारन्त संघनन होता है तो हिमकणों (तुषार, हिम आदि) के रूप में वाष्प परिवर्तित हो जाती है।का सामर्थ्य दो बराबर हो जाए।तुषार हीम आदि के रूप में वास्तु दिखाई देती है।

एडियावेटिक ताप परिवर्तन तथा वायु का ठंडा होना (ADIABATIC CHANGE OF TEMPERATUR AND COOLING OF THE AIR) –

सागर तल से ऊँचाई की ओर बढ़ने पर प्रति 1000 फीट की ऊँचाई पर 3.6^0 सी तापमान में कमी आ जाती है जिसे रुद्धोश्म ताप पतन के नाम से जाना जाता है। यदि कोई निश्चित आयतन की हवा सागर तल से ऊपर उठती है तो वहाँ पर कम वायुमण्डलीय दाब के कारण फैलाव हो जाने से उसका आयतन बढ़ जाता है। जैसे सागरतल से (1016 मिलीवार) 1 घनफुट हवा जब 17500 फीट की ऊँचाई पर पहुँच आती है तो उसका आयतन बढ़कर दोगुना अर्थात 2 घंनफुट हो जाता है। जब की ऊँचाई से जब निश्चित आयतन वाली वायु नीचे उतरती है तो अधिक वायुमंडल भार के कारण सिकुड़ने से उसका आयतन कम हो जाता है। इस प्रकार हवा के ऊपर चढ़ने व नीचे उतरने के कारण बिना अतिरिक्त ऊष्मा के प्राप्त होने पर भी हवा के तापमान में परिवर्तन हो जाता है। वास्तव में इसी प्रक्रिया को रुद्धोष्म परिवर्तन कहा जाता है।

एड़ियाबेटिक ताप परिवर्तन के प्रकार (TYPES OF ADIABATIC CHANGE OF TEMPERATURE) –

ऊपर की ओर उठने वाली असंतृप्त वायु का तापमान प्रति 1000 फीट की ऊँचाई पर 5.5^0 फा० की दर से (प्रति 1000 मीटर पर 10^0 से०ग्रे०) कम होता जाता है जिसे शुष्क रुद्धोश्म दर या शुष्क एडियाबेटिक (DRY ADIABATIC RATE) कहा जाता है। चित्र में स्पष्ट किया गया हैं है जबकि सामान्य ताप पतन विभिन्न ऊँचाइयों का थर्मामीटर द्वारा अंकित किया गया तापमान होता है किसी भी तापमान पर एडियावेटिक ताप पतन दर सदैव एक

समान होती है। वायुमण्डल की अधिक ऊँचाई पर जाने पर वायु के संतृप्त होने के कारण ही संघनन प्रारम्भ हो जाता है तो संघनन की गुप्त ऊष्मा (LATENTHEAT OF CONDENSATION) वायु में मिल जाती है। यही वह कारण कि ऊपर उठती वायु के ठंडा होने की दर कम हो जाती है। यह प्रति 1000 फीट पर 3^0 फा० (6^0 से० प्रति 1000 मीटर पर) की दर से सम्पन्न होती है। इसे आर्द्र रूदोष्म दर, आर्द्र एडियाबेटिक दर तथा मंदित एडियावेटिक दर के नाम से भी सम्बोधित किया जाा है।

9.6 कुहरा (FOG)

कुहरा, सूक्ष्म जल सीकरों से युक्त एक प्रकार का बादल होता है जो सामान्य बादलों की तुलना में धरातल के अति निकट विद्यमान होकर धरातलीय अदृश्यता का कारण होता है। बादलों के निर्माण की प्रक्रिया गर्म हवा के ऊपर उठकर फैलने तथा ठंडी होने के मूलभूत कारणों से सम्बन्धित है। जबकि कुहरे का सृजन, धरातल के निकट विकिरण परिचालन एवं गर्म तथा ठंढ़ी वायराशियों के मिश्रण के फलस्वरूप होता है। वस्तुतः धरातल के निकट जब नम वायु का तापमान ओसाक के निकट हो जाता है तथा हवा और अधिक ठंडी हो जाती है तो संघनन के फलस्वरूप जलवाष्प वायुमण्डल में विद्यमान धूम्र एवं धूलिकणों के चतुर्दिक एकत्र होकर छोटे–छोटे जल सीकरों के रूप में बदल जाते हैं। यह जल सीकर हल्के होने के कारण हवा में लटके रहते हैं और उनका एकत्रित समूह धुँऐ के बादलों के समान दिखाई देता है। कुहरे के अधिक घना होने पर दृश्यता कम हो जाती है और कभी–कभी अँधेरा भी छा जाता है। जब तक 2 कि०मी० की वस्तुएं दिखाई देती हैं तो उसे हल्का कुहरा कहा जाता है। उसे कुहासा (MIST) भी कहते हैं। कुहरा दो स्थितियों के रहने पर जनित होता है। या तो निश्चित तापमान पर वायु में नमी की मात्रा बढ़ जाय (जैसा कि गर्म एवं ठंढ़ी हवाओं के मिलने पर होता है) या तो निश्चित नमी वाली हवा का तापमान कम हो जाय (हवा के बिना ऊपर उठे) जैसा कि तापीय प्रतिलोमन की स्थिति में होता है। कुहरे की स्थिति यद्यपि प्रायः सुबह रहती है परन्तु कभी–कभी यह दोपहर तक एवं रात्रि में भी देखी जाती है। दोपहर तक कुहरे की स्थिति बनी रहना सामान्य बात है।

कुहरा के प्रकार (TYPES OF FOG) –

इसे दृश्यता को आधार मानकर निम्न 4 प्रकारों में विभाजित किया जाता है।

क्रम	प्रकार	दृश्यता (दूरी मीटर में)
1	हल्का कुहरा	1100 मीटर तक
2	साधारण कुहरा	1100 से 550 मीटर तक
3	सघन कुहरा	550 से 300 मीटर तक
4	अति सघन कुहरा	300 मीटर से कम

निर्माण विधि (ओसाक प्राप्त होने की विधि) के आधार पर विलेट महोदय ने कुहरे को दो भागों में विभाजित किया है।

(1) **अन्तर–वायुराशि कुहरा** – इस प्रकार के कुहरे का निर्माण तब होता है जब वायु का तापमान कम होकर ओसांक पहुँच जाय।

(2) **वाताग्र या सीमान्त कुहरा** – इस प्रकार के कुहरे का निर्माण आर्द्रता के बढ़ने पर होता है। सामान्यतया कुहरे को निम्न प्रकारों में विभाजित किया जा सकता हैः

(1) अन्तर वायुराशि कुहरा (INTRA-AIRMASS FOG) –

(अ) विकिरण कुहरा (RADIATION FOG)

(व) सम्पर्कीय विकिरण कुहरा (ADVECTION RADIATION FOG)

(1) वाष्पीय कुहरा (STEAM FOG)

(2) पहाड़ी कुहरा (HILLFOG)

(2) वाताग्र या सीमान्त कुहरा (FRONTAL FOG) –

(1) (अ) विकिरण कुहरा (RADIATION FOG)

जब ठंढ़े धरातल के ऊपर गर्म एवं आर्द्र वायु होती है तो विकिरण कुहरे का निर्माण होता है। इसी के परिणामस्वरूप ऊपर विद्यमान उष्णार्द्र वायु ठंडी होकर संघनित होती है और जलकण आर्द्रताग्राही कणों के चारों तरफ एकत्र होकर जल सीकरों के रूप में परिवर्तित होकर कुहरे का निर्माण करते हैं। इस प्रकार के कुहरे के निर्माण हेतु निम्न आवश्यक दशाओं का होना आवश्यक हैः (1) बादलों के नीचे स्थित धरातलीय हवा गर्म तथा शुष्क न हो सके इसलिए कुहरे से एक दिन पूर्व आकाश बादलों से आच्छादित एवं हल्की वर्षा भी होनी चाहिए। बादलों के कारण सूर्यातप कम प्राप्त होगा और एक दिन पूर्व वर्षा होने से हवा को आर्द्रता प्राप्त हो जाती है। (2) रात्रि के तापमान का धरातलीय तापमान के प्रतिलोमन का होना आवश्यक है। इसके प्रभाव वश कुहरा ऊपर नहीं उठता है। वायु में मन्द संचार (10 कि०मी० प्रति घण्टा से कम) हो तथा रात्रि बादलों से रहित हो। कुहरे का निर्माण रात्रि में धरातल पर होता है तथा धीरे–धीरे उँचाई पर बढ़ने लगता है और प्रातः काल ताप प्रतिलोमन के समाप्त होने पर अदृश्य हो जाता है क्योंकि सूर्य की किरणों के कारण जल सीकरों का वाष्पीकरण हो जाता है। इस प्रकार कुहरा बड़े–बड़े नगरों व समीपी क्षेत्रों में अधिक रहता है इसका कारण वहाँ पर आर्द्रताग्राही कणों का सुलभ रहना है। वायुमण्डल में कभी–कभी कुहरे का निर्माण तापीय प्रतिलोमन के कारण उँचाई पर होता है। इसे उच्च प्रतिलोमन कुहरा कहा जाता है।

(1) (व) सम्पर्कीय विकिरण कुहरा (ADVECTION RADIRTION FOG) –

शीत धरातल पर जब गर्म एवं आर्द्र हवाओं का आगमन हो जाता है तो उष्णार्द्र एवं ठंडी हवाओं के मिलने से सम्पर्कीय कुहरे का निर्माण होता है। सामान्यतया इस प्रकार के कुहरे का जनन शीतकाल में स्थल भागों पर तथा ग्रीष्मकाल में सागरों के ऊपर निर्मित होता है क्योंकि शीतकाल में स्थल भाग सागरों की तुलना में अधिक ठंडे रहते हैं। ग्रीष्मकालीन अवधि में उच्च अक्षाँशों में वर्फ के विघलने के कारण सागरों का जल ठंढ़ा हो जाता है। जहाँ ठंडी एवं गर्म जलधाराओं का मिश्रण होता है वहाँ घना कुहरा जनित होता है। जैसे न्यूफाण्डलैण्ड के निकट गर्म खाड़ी धारा व ठंडी लैब्रोडोर धारा के मिश्रण से, जापान पर गर्म क्यूरोशियों एवं ठंडी क्यूराइल जल धारा के मिश्रण से कुहरा जनित होता है। सागरीय भागों पर इस कुहरे को सागरीय कुहरा कहते हैं। यह कुहरा सामान्यतया उन तटीय भागों के निकट पड़ता है जहाँ ठंडी जलधारा प्रवाहित होती है जैसी कि कैलीफोर्निया तट के निकट कैलीफोर्निया ठंढ़ी जलधारा के प्रभाव वस कुहरा पड़ता है। इसी प्रकार द० आस्ट्रेलिया, पीरू एवं बेगुला की जलधारा के प्रभाववश कुहरा पड़ता है। सागर से स्थल की तरफ प्रवाहमान हवाएं इस कुहरे को 400 कि०मी० अन्दर तक पहुँचा देती हैं। उष्ण कटिबन्धीय उष्णार्द्र हवाएं भी कभी–कभी उच्च अक्षाँशीय ठंडे भागों में पहुँचकर कुहरा पैदा कर देती हैं जो स्थल एवं जल दोनों पर रहता है। सम्पर्कीय कुहरा महाद्वीपों के आन्तरिक भागों में स्थित झीलों, तालावों व जलाशयों के ऊपर व उनके निकट के भागों में जनित होता है। इस कुहरे को दो भागों में विभाजित किया जाता है –

(1) **वाष्पीय कुहरा (STEAM FOG)** – इस कुहरे का निर्माण उस समय होता है जब ठंडी हवा गर्म सागरीय भागों के ऊपर आ जाती है। जिससे गर्म सागरीय हवा के संयोग से संघनन की प्रक्रिया होने लगती है और कुहरे का जनन हो जाता है। यह कुहरा सागरों के ऊपर दूर से ऐसे दिखाई देता है जल से भाप निकल रही हो। इस अल्प अवधि के कुहरे को वाष्पीय कुहरा एवं ध्रुवीय धुँआ के रूप में जाना जाता है। यह एक प्रकार का सम्पर्कीय कुहरा होता है।

(2) **पहाड़ी कुहरा (HILL FOG)** – महाद्वीपीय भागों में प्रवाहित होने वाली उष्णार्द्र हवाएं जब पहाड़ी ढालों के सहारे ऊपर उठती हैं तो संघनन प्रक्रिया के कारण कुहरे का जनन होता है। इस प्रकार के कुहरे का जनन शीतोष्ण कटिबन्धों के पहाड़ी ढालों पर कभी भी हो जाता है। इस प्रकार के कुहरे से पहाड़ों के निचले भाग रहते हैं फलतः वहाँ पर दृश्यता कम रहती है।

(2) **सीमान्त कुहरा (FRONTAL FOG)** – जब परस्पर दो विपरीत स्वभाव वाली (एक गर्म एवं दूसरी ठंडी) हवाएं विपरीत दिशाओं से आने के पश्चात् एक रेखा के सहारे आमने–सामने आकर मिलती हैं तो वाताग्र का जनन होता है। इसी वाताग्र के सहारे ही गर्म एवं ठंडी हवाऐं ऊपर की ओर उठकर ठंडी होती हैं। इनके ठंढ़ी

हो जाने के साथ संघनन प्रक्रिया के कारण कुहरे का जनन होता है। वस्तुतः ऊपर उठने वाली हवा के संघनन के कारण वर्षा होती है और निचली ठंडी के आर्द्र होने से कुहरे का जनन हो जाता है।

कुहरे का वितरण प्रतिरूप (DISTRIBUTIONAL PATTERN OF FOG) –

वास्तव में सबसे अधिक कुहरे का वितरण सागरीय भागों पर देखा जाता है। यह सागरीय कुहरा सम्पर्कीय प्रकार का होता है क्योंकि गर्म स्थलीय हवाएं अपेक्षाकृत ठंडे सागरीय भागों पर पहुँच कर कुहरे का जनन करती हैं। विश्व की अधिकतर ठंडी जल धाराएं (कैलीफोर्निया, वेगुला, पीरू आदि) महासागरों के पूर्वी भागों तथा महाद्वीपों के पश्चिमी तटीय भागों में प्रवाहित होती हैं। फलतः यही क्षेत्र विश्व के सबसे अधिक कुहरा वाले भाग हैं। चक्रवातों के कारण मध्य अक्षाँशीय क्षेत्रों में कुहरा उ० अटलांटिक महासागर के पूर्वी भाग, उ० प्रशान्त महासागर के अल्यूशियन द्वीप एवं अलास्का की खाड़ी के निकट जनित होता है। निम्न अक्षाँशीय क्षेत्रों के स्थल वाले भागों पर प्रायः विकिरण कुहरा जनित होता है। स्थल भागों पर शीतकाल में कुहरा अधिक व ग्रीष्मकाल में कम होता है। सागरीय भागों में ठीक इसके विपरीत स्थिति रहती है।

कुहरे का प्रभाव (DFFECTS OF FOG) –

महाद्वीपों तथा सागरों पर कुहरे के कारण सबसे अधिक सभी प्रकार का यातायात प्रभावित होता है। कुहरे के कारण वागाती कृषि विशेषतः चाय एवं कहवा का सूर्य की तीखी किरणों से बचाव हो जाता है। यमन की पहाड़ियों पर मोचा कहवा कुहरे के कारण रक्षित हो जाता है। कुहरा तब प्राण घातक हो जाता है जब इसका सम्बन्ध कारखानें से निकलने वाले गंधक के साथ हो जाता है। 26 अक्टूबर 1948 को यू०एस०ए० के पेन्सलवेनिया राज्य की डोनोरा घाटी में कारखानों से निसृत धुएं के साथ सल्फाइड फ्यूम के हवा में मिल जाने के कारण जहरीले कुहरे से वहाँ के 43 प्रतिशत नागरिक श्वसन रोग के शिकार हो गये और 20 नागरिकों की मौत हो गयी थी। दिसम्बर 1930 ई० में वेल्जियम की म्यूज घाटी में कारखानों से निकले (जिंक स्मेल्टर्स व सल्फ्यूरिक एसिड फैक्टरी) सल्फर डाई आक्साइड गैसों के कुहरे की जल सीकरों में मिल जाने के कारण जिस जहरीले कुहरे का निर्माण हुआ उससे श्वसन क्रिया में बाधा पहुँचने के कारण 63 लोगों की मृत्यु हो गयी थी। इसी तरह 1952 ई० में लन्दन शहर में दिसम्बर माह में कई दिनों तक छाये रहने वाले जहरीलें कुहरे के कारण लगभग 4000 लोगों की मृत्यु हो गयी थी। भारत की राजधानी नई दिल्ली में भी शीतकालीन अवधि में (दिसम्बर–जनवरी) इसी प्रकार के जहरीले कुहरे से बचाव करने के लिए सरकारी स्तर पर विगत कई वर्षो से प्रयास किया जाता है। इस प्रकार कुहरे का अच्छा और बुरा दोनों प्रभाव होता है, यह प्रभाव कुहरे की प्रकृति पर भी निर्भर करता है।

9.7 बादल (CLOUDS) –

जल अथवा हिम सीकरों के व्यापक स्तरीय समूह को बादल कहा जा है जिनकी प्राप्ति कुहरे से अपेक्षाकृत अधिक उँचाई पर होती है। ऊपर उठती गर्म एवं आर्द्र हवा की जब ऐडियावेटिक ताप पतन दर निकटवर्ती वायु के ताप पतन दर से कम होती है तो वायु अस्थिर होकर निरन्तर ऊपर ठंडी हो जाती है। इस ठंडी वायु के ओसाक की स्थिति में पहुँचने के उपरान्त संघनन होने लगता है और जब वह हिमांक के ऊपर सम्पन्न होता है तो जल सीकरों तथा हिमांक के नीचे हिम सीकरों का जनन हो जाता है। आकार में यह धीरे–धीरे बड़े हो जाते हैं और मात्रा में अधिक हो जाने पर इनके समूहन से बादलों का निर्माण हो जाता है। उल्लेखनीय है कि यह जल या हिमसीकर वायुमण्डल में लटकते रहते हैं। बादल समताप मण्डल के अतिरिक्त विभिन्न ऊँचाई पर मिलते हैं। भूमध्यरेखा से ध्रुवों की ओर इनकी उँचाई में भिन्नता मिलती है। निम्न अक्षाँशों भागों की ओर कम होती जाती है।

बादलों के प्रकार (TYPES OF CLOUDS) –

बादलों से सम्बन्धित 1932 में किये गये अर्न्तराष्ट्रीय विभाजन में धरातल से उँचाई, स्वरूप, आकार, आकाशीय विस्तार आदि कारकों को आधार बनाया गया है। इस विभाजन में उँचाई को प्रमुखता दी गयी है। अतः बादलों का निम्न वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है –

(1) उच्च बादल (6000 से 20000 मीटर) –

(1) **पक्षाभ बादल (CIRRUS CLOUDS)** – इन बादलों का निर्माण ऐसे लघु कणों से होता है जिनसे होकर सूर्य की किरणें गुजरती हैं तो उनका रंग श्वेत हो जाता है। सायकाल यह कई रंग के दिखते हैं। सर्वाधिक उँचाई पर विद्यमान रहने वाले यह बादल जब छितराये व असंगठित रहते हैं तो मौसम साफ रहता है परन्तु

जब यह संगठित होते हैं तो वर्षा अवश्य होती है। चक्रवातों के आगमन से पूर्व आकाश में पक्षाभ मेघ दिखाई देने लगते हैं।

(2) पक्षाभ स्तरी बादल (CIRRO-STRATUS CLOUDS) – आकाश में दूध वर्ण के पतली चादर के समान विस्तृत रहने वाले बादलों के आने पर सूर्य एवं चन्द्रमा के चतुर्दिक एक प्रभा मण्डल बन जाता है जो भावी चक्रवात के आने की सूचना माना जाता है।

(3) पक्षाभ कपासी बादल (CIRRO-CUMULUS CLOUDS) – छोटे–छोटे गोलाकार रूपों में लहरनुमा ये बादल श्वेत रंग के होते हैं।

(2) मध्यम उँचाई के बादल (2500 से 6000 मीटर) –

(4) उच्चत स्तीय बादल (ALTO-STRATUS CLOUDS) – नीले अथवा भूरे रंग की पतली चादर वाले आकाश में निरन्तर विस्तृत बादलों को उच्च स्तरी बादल कहते हैं। इनकी धनी चादरों के कारण (जब यह सघन हो जाते हैं) सूर्य एवं चन्द्रमा स्पष्टः दिखाई नहीं देते हैं। यह पक्षाभ स्तरी बादलों की तरह ही होते हैं और आगे चलकर उनमें समाविष्ट भी हो जाते हैं। इन बादलों से लगातार एवं विस्तृत क्षेत्रफल पर वर्षा होती है।

(5) उच्च कपासी बादल (ALTO CUMULUS CLOUDS) – यह बादल प्रायः पक्षाभ कपासी मेघो के समान होते हैं। इनका आकार गोलाकार व लहरनुमा रहता है। यह कम उँचाई व कम विस्तृत क्षेत्र पर मिलते हैं।

(3) निम्न बादल (2500 मीटर से ऊपर) –

(6) स्तरी कपासी बादल (STRATO CUMULUS CLOUDS) – हल्के भूरे रंग के यह बादल बड़े गोलाकार चकत्तो के रूप में 2500–3000 मीटर की उँचाई तक मिलते हैं।

(7) स्तरी बादल (STRATUS CLOUDS) – इन बादलों का जनन दो परस्पर विपरीत स्वभाव वाली हवाओं के मिलने से विशेषतः शीतकाल में शीतोष्ण कटिबन्धों में होता है। कुहरे के समान इन बादलों की रचना कई परतों के मिलने से होती है।

(8) वर्षा स्तरी बादल (NIMBO STRTUS CLOUDS) – धरातल के निकट मिलने वाले काले रंग के ये बादल अनेक आकार में सघनता से विस्तृत होकर प्रायः अतिशय वृष्टि करते हैं।

(9) कपासी बादल (CUMULUS CLOUDS) – यह अधिक घने, लम्बे व विस्तृत बादल होते हैं। इनका उत्तरी भाग गुम्बदाकार व नीचे का भाग प्रायः समतल होता है यद्यपि यह साफ मौसम की अनुभूति देते हैं परन्तु कभी–कभी यह बादल गर्जना भी करते हैं।

(10) कपासी वर्षा बादल (CUMULO-NIMBUS CLOUDS) – यह अत्यधिक विस्तृत, गहरे एवं उँचाई के बादल होते हैं। यह पर्वताकार लम्बवत रूप में दिखने वाले इन बादलों से न मात्र वर्षा होती है वरन् ओला वृष्टि व तड़ित झंझा की भी संभावना बनी रहती है।

9.8 जल वर्षा (RAINFALL) –

1 जल वर्षा की उत्पत्ति (ORIGIN OF RAINFALL) – जल वर्षा हेतु अस्थायी उष्णार्द्र हवा एवं वायुमण्डल के अन्तर्गत अत्यधिक मात्रा में आर्द्रता को ग्रहण करने वाले नाभिकों का विद्यमान रहना आवश्यक है। ऊपर की ओर उठती हुई हवाएं यद्यपि संतृप्त हो जाती है और संघनन के उपरान्त बादलों का जनन भी हो जाता है परन्तु वर्षा फिर भी नहीं हो पाती है। वस्तुतः वर्षा तभी होती है जब हवाएं अति संतृप्त (SUPERSATURATION) हो जाती है। सापेक्षित आर्द्रता की मात्रा 100 प्रतिशत हो जाने के उपरान्त हवाओं के ठंडी हो जाने से संघनन प्रक्रिया सम्पन्न होने लगती हैं। संघनन की यह प्रक्रिया सर्वप्रथम आर्द्रता को ग्रहण करने वाले नाभिकों के चतुर्दिक प्रारम्भ होती है। फलतः इससे निर्मित होने वाली बूँदों को मेघ सीकर कहा जाता है। इन्ही मेघ सीकरों का अधिक मात्रा में समूहन होने स`बादलों का निर्माण होता है। यह मेघ सीकर आकार में इतने छोटे होते हैं कि आसानी के साथ हवा में लटकते रहते हैं। जब तक यह मेघ सीकर आपस में इतने बड़े नहीं हो जाते कि हवाएं उन्हें रोकने में असमर्थ हो जाय तब तक वर्षा नहीं होती। यही कारण है कि कभी–कभी आकाश बादलों से भरा

रहता है परन्तु वर्षा नहीं हो पाती है। यदि किन्हीं स्थितियों में मेघ सीकर नीचे की ओर गिरने भी लगते हैं तो धरातल पर पहुँचने से पूर्व ही उनका वाष्पीकरण हो जाता है। यह मेघ सीकर आपस में मिलकर जल सीकर के रूप में तभी परिवर्तित होते हैं जब निम्न दशाएं उद्भूत हो –

(अ) यदि उष्णार्द्र हवाएं इतनी उँचाई पर पहुँच जाती हैं तो संघनन हिमांक से नीचे (32^0 फा० के नीचे) हो जाता है तो कतिपय जल सीकरों एवं हिम सीकरों का निर्माण हो जाता है। जल कणों एवं हिमकणों के वाष्पदाब में अन्तर रहता है जिससे जल कण का वाष्पीकरण हो जाता है और हिमकणों के चारों ओर उसका संघनन होने लगता है। इसी क्रिया के कारण (जब अपेक्षित समय तक सम्पन्न होती है) हिम सीकर बड़ी हो जाती है और हवा में निलम्वित नहीं रह पाती है। फलतः वह नीचे गिरने लगती है और तापमान के अधिक होने पर वह जलसीकरों के रूप में नीचे गिरती है।

(ब) बादलों में निलम्बित मेघ सीकरों का आकार अलग–अलग रहता है जिसके कारण अलग–अलग वेग से गिरते हुए आपस में टकराते रहते हैं जिससे मेघ सीकरों का आकार बढ़ते जाने से जल सीकरों का निर्माण हो जाता है। जब इनके आकार में वृद्धि हो जाने से ऊपर को उठती हुई हवाएं इन्हें रोक पाने में अक्षम हो जाती हैं तो जल वर्षा प्रारम्भ हो जाती है।

जल की एक आर्द्रता कण का व्यास 05 मि०मी० रहता है जिसमें 8,00,000 मेघ सीकर समाहित रहते हैं। इस जल आर्द्रता बूँद के गिरने की गति मेघ सीकरों की तुलना में 200 गुना अधिक होती है। जब बूँदों का आकार बहुत बड़ा हो जाता है तो इनके तीव्र गति (30 कि०मी० प्रति घण्टा से अधिक) से नीचे गिरने के कारण बूँदे मार्ग में टूट जाती हैं फलतः अतिशय वृष्टि होती है। हवाओं के ऊपर उठने की गति जब धीमी होती है तो सामान्य संघनन के कारण छोटी–छोटी जल सीकरे भी नीचे गिर जाती हैं। ऐसी वर्षा बौछार या फुहार कही जाती है। जब संघनन हिमाँक से नीचे रहता है तो वर्षा ठोस हिम के रूप में होती है जिसे हिम वर्षा कहा जाता है।

9.9 वर्षण के सिद्धान्त (CONCEPT OF PRECIPITATION) –

ऐतिहासिक परिवेश (HISTORICAL BACKGROUND) –

वर्षण से सम्बन्धित सिद्धान्त का प्रतिपादन एवं उससे ज्ञान का प्रारम्भ प्राचीन समय से ही माना जा सकता है। यूनानी विद्वान प्राचीन काल से वर्षण क्रिया की जानकारी रखते थे। अरस्तू द्वारा सबसे पहले यह कहा गया था कि जल बूँदों के समूह को बादल कहते हैं और उनके निर्माण की प्रक्रिया हवाओं के ठंडा होने से सम्बन्धित है। अरस्तू का यह विचार लम्बी अवधि तक प्रभावी रहा। रेने डिलकार्टिश ने 1637 ई० में बताया कि जलवाष्प वायु न होकर ऐसे कण होते हैं जिन्हे एक दूसरे से अलग किया जा सकता है। टोरिसली द्वारा जब बैरोमीटर का अविष्कार कर लिया गया तो उसके साथ ही वर्षा से सम्बन्धित वैज्ञानिक जानकारी हमें प्राप्त होने लगी। वर्षा से सम्बन्धित प्रसरण एवं सम्पीडन सिद्धान्त (EXPANSIONAND COMPRESSION THEORY) का प्रतिपादन हुआ। हेले द्वारा लवणीय उच्छवसन (SALINE EXHLATION) सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। हेमिल्टन ने 1765 ई० में संलयन सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की। आगे चलकर पर्वतीय वर्षा सिद्धान्त (हैली–1993, डिल्यूस 1772, डुकार्ला–1781), संवहन वर्षा सिद्धान्त, तथा वर्षा का विरलीकरण एवं शीतलन का सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया। 1788 ई० में हटन ने हवाओं की असमान घोलन शक्ति के आधार पर वर्षा सम्बन्धित सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। स्थैतिक विद्युत सिद्धान्त (फ्रैकलिन, इल्स, वेसारिया, वाटसन, नोलेट आदि) के द्वारा यह प्रमाणित करने का हर सम्भव प्रयास किया गया कि जल बूँदे विद्युत युक्त होती है और विद्युत आवेश के कारण ही यह बूँदे वर्षा की बूदों के रूप में बदल जाती हैं। डोव ने 1828 ई० में बताया कि तापमान जब संघनन बिन्दु से नीचे चला जाता है तभी वर्षा सम्भव हो पाती है। एलियास लूमिस ने 1841 ई० में वर्षा के कारणों की विशद व्याख्या प्रस्तुत की। विजनर (1895 ई० में) लेनार्ड (1904 ई० में) देफान्त (1905 ई० में) आदि ने जल बूँदों के निर्माण, आकार तथा विस्तार से सम्बन्धित व्याख्या प्रस्तुत की। 1933 ई० में वर्जरान का मेघ अस्थिरता सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ। इन उपर्युक्त सिद्धान्तों के सापेक्ष जल वर्षा की बूँदों के निर्माण, विस्तार आदि के सन्दर्भ में निम्न विचारों को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है।

- जल बूँदों में विद्युत आवेश के विभिन्न दर से विद्यमान रहने के कारण विद्युत आकर्षण के फलस्वरूप ये बूँदे आपस में मिल जाती हैं और उनका आकार भी बढ़ जाता है। इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि जल बूँदें आपस में अधिक दूर रहती हैं और विद्युत आवेश कम रहता है। इस आधार पर जल बूँदों का

संगठन व विस्तार नहीं हो सकता है।

- बड़ी जल बूँद छोटी बूँदों को अपने में समाहित करके और बड़ी हो जाती है। इस सन्दर्भ में अनेक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि जल बूँदों के आकार तथा वितरण में समानता विद्यमान रहती है।
- संतृप्त वाष्पदाब में विभिन्न तापमान पर भिन्नता मिलती है। जब गर्म तथा शीतल बूँदे वायु विक्षोभ के साथ–साथ रहती हैं तो इन बूँदों की सतह के सम्बन्ध में वायु के अति संतृप्त (ठंडी बूँदों के साथ) तथा कम संतृप्त गर्म बूँदों के साथ होने से गर्म बूँदों का वाष्पीकरण हो जाता है फलतः शीतल बूँदों के चतुर्दिक संघनन होने के कारण उसका आकार बड़ा हो जाता है।
- बड़े संघनन केन्द्रों के चतुर्दिक वर्षा की बूँदे निर्मित एवं विस्तृत होती है।

वर्षण से सम्बन्धित निम्नांकित दो सिद्धान्त विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जिनका उल्लेख किया जा रहा है।

वर्गरान–फिण्डीसेन (BERGERON-FINDEISEN) का मेघ अस्थिरता सिद्धान्त

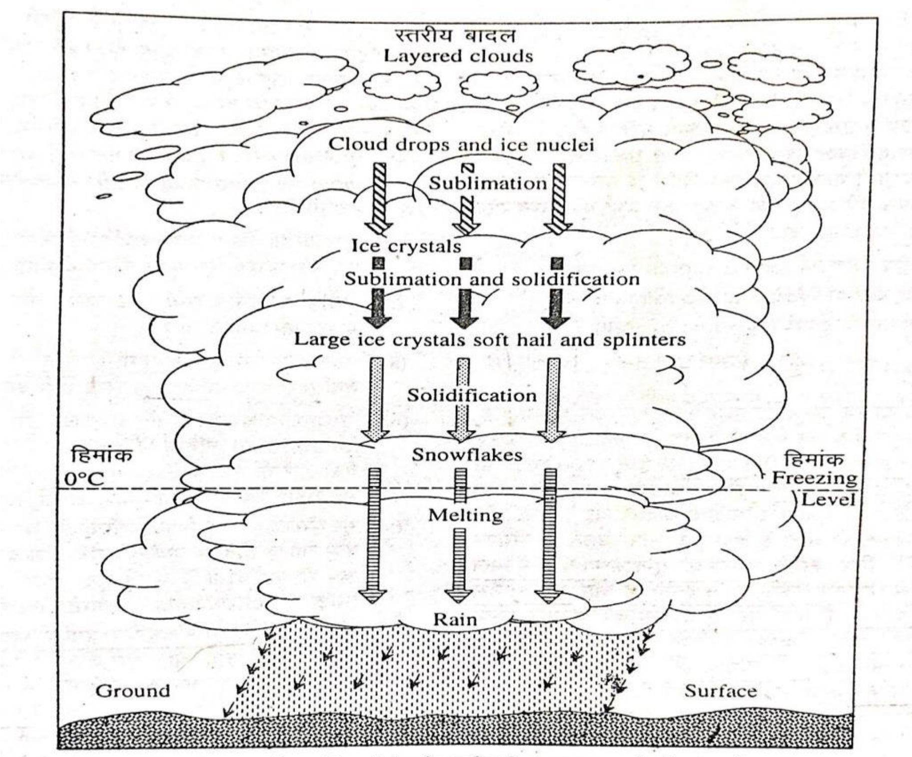

चित्र 9.2 : बर्जरान–फिण्डीसेन के वर्षण सिद्धान्त का आरेखीय प्रदर्शन।

अस्थिर मेघों में हिमांक के नीचे तापमान होने पर जल बूँदे एवं हिमकण एक साथ रहते हैं। जल सतह की अपेक्षा हिम सतह पर वायु की सापेक्षिक आर्द्रता अधिक रहती है। तापमान के शून्य अंश से नीचे चले जाने पर वायुमण्डल वाष्पदाब जल सतह की तुलना में हिम सतह पर तीव्र गति से कम होता है। फलतः सतृंप्त वाष्पदाब हिमतल की तुलना मे जल तल पर अधिक हो जाता है। इस स्थिति में अति ठंडी जल बूँदों (–5^0 से –25^0 से०ग्रे० तापमान वाली) का वाष्पीकरण हो जाता है जो हिम कणों के चतुर्दिक संग्रहीत हो जाता है। जल बूँदों के निर्माण हेतु आर्द्रता को ग्रहण करने वाले नाभिकों की तरह ही हिमकणों के निर्माण हेतु हिमायन नाभिकों की आवश्यकता होती है। इन हिमायन नाभिकों की प्राप्ति सूक्ष्म मिट्टी के कणों, धूल, उल्का धूल व ज्वालामुखी धूल से होती है।

यह हिम कण 0^0 से –5^0 से०ग्रे० तापमान की आदर्श दशाओं में धीरे–धीरे जाकर में बड़े होते रहते हैं। जब इन हिम कणों का आकार बड़ा हो जाता है और उनके नीचे की ओर गिरने की गति ऊपर उठने वाली वायु की गति से अधिक रहती है तो यही हिमकण नीचे की ओर गिरने लगते हैं। इनके नीचे गिरते समय जब हवाओं की मोटी परत का तापमान 0^0 से०ग्रे० से अधिक रहता है तो यह जल बूँदों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं और वर्षा

होने लगती है।

यद्यपि यह सिद्धान्त अधिक वैज्ञानिक एवं तर्क संगत है परन्तु इसे वर्षण के सन्दर्भ में विश्व व्यापी नहीं कहा जा सकता। उष्णकटिबन्धीय महासागरों के ऊपर कपासी मेघ मात्र 2000 मीटर की उँचाई पर ही अतिशय वृष्टि कर देते हैं जबकि उनके शीर्ष भाग का तापमान 5^0 से०ग्रे० या उससे भी अधिक होता है।

टकराव सिद्धान्त (COLLISION THEORY)

इस सिद्धान्त की मान्यता यह है कि वर्षा की बूँदो का निर्माण तथा विस्तार–टकराव, सम्मिलन एवं समेटने की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। पूर्व के विद्वानों की यह मान्यता है कि वायुमण्डलीय विक्षोभ के फलस्वरूप बूँदे आपस में टकराने के उपरान्त मिलकर होकर आकार में बड़ी हो जाती है। इन सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि टकराव के कारण बूँदों मं सम्मिलन की जगह टूटने व विसराव की प्रक्रिया होगी। ज्ञातव्य हो कि तूफानी एवं गर्जना करने वाले बादलों से कम वर्षा प्रायः देखी गयी है। आगे चलकर विद्वान लेंग म्योर महोदय ने इस सामान्य टकराव में संशोधन प्रस्तुत करते हुए कहा कि बूदों के गिरने की गति में व्यास के आधार पर अन्तर होता है। बड़ी बूदे शीघ्र (तीव गति से) और छोटी बूँदे विलम्ब से (धीमीगति से) गिरती हैं जिसके कारण बड़ी बूदे न मात्र छोटी बूँदों को अपने में आत्मसात कर तेजी हैं वरन् वरन् तीव्र गति से अपनी ओर समेट लेती हैं जिससे उनका आकार बड़ा हो जाता है। बूँदों के सम्मिलन के लिए यह आवश्यक है उनका अर्धव्यास 19 माइक्रान से अधिक हो। सम्मिलन के कारण बूँदों की गति प्रारम्भ में कम रहती है परन्तु बाद में तीव्र हो जाती है। (20 UM त्रिज्या वाली बूँद 50 मिनट में 200 UM त्रिज्या की हो जाती है)। जब बूँदो का आकार इस प्रकार बड़ा हो जाता है तो वह वायुमण्डल में निलम्बित न रहकर वर्षा के रूप में नीचे गिरने लगती हैं।

9.10 जल वर्षा के प्रकार (TYPES OF RAINFALL) –

सामान्यतः जब अपेक्षाकृत गर्म वायु ऊपर की ओर उठती है तो ऊपर पहुँचकर ठंडी होकर संतृप्त होने लगती है। वायु के संतृप्त होने पर संघनन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। यह संघनन ओसांक के पश्चात वायु के ठंडे होने पर प्रारम्भ होता है। वर्षा होने के लिए वायु का ऊपर उठना अधिक महत्वपूर्ण होता है। वायु सामान्यतया तीन रूपों में ऊपर उठती है। (1) धरातल के अति गर्म हो जाने पर हवा हल्की होकर संवहन धारा के रूप में ऊपर उठती है। (2) हवाएं पर्वत के सहारे ऊपर उठती हैं। (3) चक्रवातों में वाताग्र अथवा सीमान्त के सहारे गर्म वायु ऊपर उठती है। हवाओं के ऊपर उठने में मात्र एक ही कारक उत्तर दायी नहीं होता हवाओं को ऊपर की ओर उठाने में एक ही समय पर एक से अधिक कारक सक्रिय रह सकते हैं। ऐसी स्थिति में सर्वाधिक प्रभावशाली कारक के आधार पर ही वर्षा के प्रकारों का निर्धारण किया जाता है। इस आधार पर जल वर्षा को तीन प्रमुख प्रकारों में विभक्त किया गया है।

(1) संवाहनीय जल वर्षा (CONVECTIONAL RINFALL)

(2) पर्वतीय जल वर्षा (OROGRAPHIC RAINFALL)

(3) चक्रवातीय जल वर्षा (CYCLONIC RAINFALL)

संवहनीय वर्षा –

दिन में अत्यधिक ऊष्मा के कारण धरातल गर्म हो जाता है जिस कारण वायु गर्म होकर फैलने लगती है और फैलकर हल्की हो जाने के कारण ऊपर उठती है। शुष्क एडियावेटिक दर से प्रति 1000 मीटर पर ऊपर उठने वाली हवा का तापमान कम होने लगता है जिससे वायु ठंडी हो जाती है और उसकी सापेक्षित आर्द्रता में वृद्धि होने लगती है। वायु के शीघ्र ही संतृप्त होने और पुनः ऊपर उठने के कारण संघनन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है जिससे संघनन की गुप्त ऊष्मा का उस वायु में विलय हो जाता है और वायु पुनः ऊपर उठते हुए उस सीमा पर पहुँच जाती है जहाँ स्थित वायु का तापमान इसके बराबर हो जाता है। इस अवस्था में सघनन होने से कपासी बादलों के निर्माण से शीघ्र ही वर्षा होने लगती है। ऊपर की ओर उठती हुई वायु शीघ्र ही ठंडी होती है इसलिए संवहनीय वर्षा मूसलाधार होती है। कपासी वर्षा बादलों की उपस्थिति आकाश में सीमित क्षेत्र में रहने के कारण बादलों के शीघ्र छट जाने से यद्यपि वर्षा समाप्त हो जाती है परन्तु अल्प अवधि में ही अत्यधिक वर्षा हो जाती है। वर्षा के साथ बिजली की चमक व मेंघ गर्जन की स्थिति बनी रहती है। इस प्रकार की वर्षा विशेषतः भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में होती है। गर्म मौसम तथा दिन के समय में भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में दोपहर तक धरातल गर्म होने के कारण

संवहन धाराएं जनित हो जाती हैं, 2 से 3 बजे काले बादलों से आकाश भर जाता है और शीघ्र ही अतिशय वृष्टि होकर 4 बजे तक वर्षा समाप्त एवं मौसम साफ हो जाता है तथा गर्मी कम हो जाती है। यह वर्षा ग्रीष्मकालीन दिनों में नियमित होती है समशीतोष्ण भागों की संवाहनीय वर्षा सामान्य होती है जिससे वर्षा का अधिकाँश जल मृदा में समाहित हो जाता है। यहाँ भी यह वर्षा गर्मियों में होती है। उष्णरेगिस्तानों में भी यह वर्षा आकस्मिक एवं अनियमित रूप में होती है। भूमध्य रेखीय क्षेत्रों में इस वर्षा का जल शीघ्र ही नदियों के द्वारा सागर में चला जाता है। अल्पकालिक तीव्र वर्षा होने से भूमध्यरेखीय क्षेत्र में भू–क्षरण एवं मृदा अपरदन की समस्या बनी रहती है।

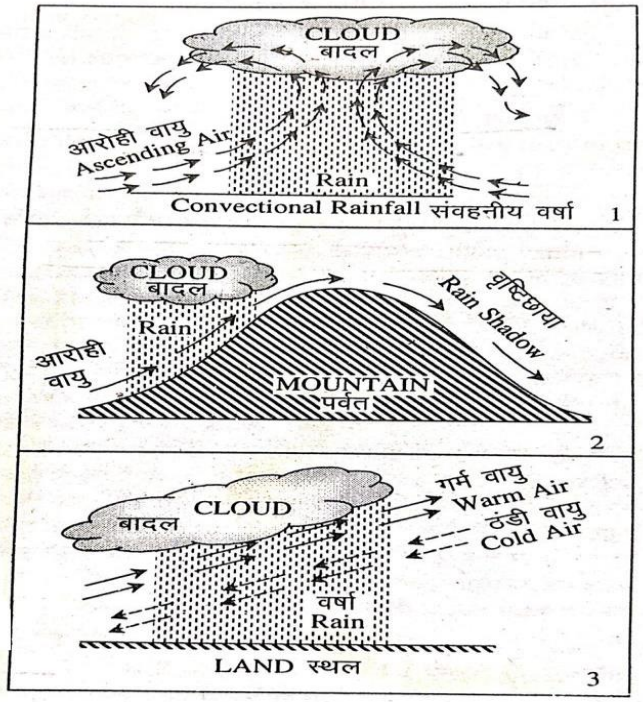

वर्षा के प्रकार : (1) संवहनीय वर्षा, (2) पर्वतीय वर्षा, तथा (3) वाताग्री (चक्रवातीय) वर्षा।

पर्वतीय जल वर्षा –

जब पर्वतीय भागों से अवरूद्ध होकर उष्ण एवं आर्द्र हवाऐं उन्हीं पर्वतीय ढ़ालों के सहारे ऊपर उठने लगती हैं तो शुष्क एडियावेटिक ताप पतन दर (प्रति 1000 मीटर पर 10^0 से०ग्रे०) के द्वारा ठंडी होने लगती है। ऊपर उठती वायु के ठंडी होने से वायु की सापेक्षिक आर्द्रता में वृद्धि होने लगती है और एक निश्चित उँचाई पर पहुँचकर उनके संतृप्त हो जाने पर संघनन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इसी के उपरान्त आकाश में विस्तृत बादलों के छा जा ने पर वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। संघनन की गुप्त ऊष्मा हवा में मिल जाने से वायु का ऊपर उठना जारी रहता है और हवा आर्द्र एडियावेटिक ताप पतन दर (प्रति 1000 मीटर उँचाई पर 5^0 से०ग्रे०) से ठंढ़ी होती हुई उँचाई पर भी वर्षा करती जाती हैं। एक निश्चित सीमा तक ऊँचाई के साथ वर्षा की मात्रा में वृद्धि होती जाती है। हवा पर्वत के जिस ढ़ाल से टकराती है उसे पवनमुखी ढ़ाल (WINDWARD SLOPE) कहते हैं। वस्तुतः इसी ढाल के सहारे वर्षा होती है इसलिए इसे वृष्टि ढ़ाल (RAIN SLOPE) भी कहते हैं। हवाएं पर्वत के जिस ढाल के सहारे नीचे उतरती हैं उसे पवन विमुखी ढ़ाल (LEEWARD SLOPE) कहा जाता है। नीचे उतरती हुई हवा का तापमान प्रति 1000 मीटर पर 10^0 से०ग्रे० घटने लगता है जिससे वायु की शुष्कता बढ़ जाती है तथा आर्द्रता सामर्थ्य में वृद्धि के कारण सापेक्षिक आर्द्रता कम हो जाती है। फलतः पवन विमुखी ढाल वर्षा से वंचित रह जाते हैं। इन्हें वृष्टि छाया प्रदेश भी कहा जाता है। विश्व में होने वाली अधिकाँश वर्षा पर्वतीय होती है।

पर्वतीय वर्षा के लिए निम्न दशाओं का होना आवश्यक है –

❖ उष्णार्द वायु के मार्ग में उँचे पर्वतों की स्थिति का समकोण पर होना आवश्यक है ताकि हवा उससे सीधे टकराकर ऊपर की ओर संचरित हो सके।

- ❖ पर्वतीय भाग यदि सागरों के समानान्तर एवं निकट होते हैं तो आदर्श स्थिति होती है। पर्वतों की स्थिति दूर रहने पर हवाओं की नमी का ह्रास हो जाता है।
- ❖ यदि पर्वत सागरतट के निकट होते हैं तो कम उँचाई पर भी वर्षा सम्पन्न हो जाती है परन्तु आन्तरिक भागों में वर्षा के लिए पर्वतों की उँचाई का अधिक होना आवश्यक है।
- ❖ वर्षा के लिए हवा में पर्याप्त आर्द्रता का होना आवश्यक है। यही वह कारण है कि सागरीय हवाओं से अतिशय वृष्टि हो जाया करती है परन्तु स्थलीय हवाओं से वर्षा नहीं हो पाती है।

पर्वतीय वर्षा की विशेषताएं (CHARACTERISTICS OF OROGRAPHIC RAIN) –

पर्वतीय वर्षा की विशेषताओं का विश्लेषण निम्न रूपों में किया जा सकता है।

- पवनमुखी ढ़ालों पर अधिक एवं विमुखी ढ़ालों पर कम वर्षा होती है।भारत के पश्चिमी घाट के प० ढ़ाल पर लगभग 200 से०मी० वर्षा व उसके पूर्वी भाग वृष्टि छाया प्रदेश में मात्र 50 से०मी० वर्षा होती है। चेरापूँजी व मासिनराम में सर्वाधिक वर्षा (विश्व की) होती है परन्तु उ० में स्थित गुवाहाटी में यह मात्रा कम हो जाती है। हिमालय के द० ढ़ालों पर 200 से०मी० से अधिक जबकि उ० ढ़ाल वृष्टि छाया प्रदेश होने के कारण वर्षा से वंचित (मात्र 05 से०मी० वर्षा) रह जाते हैं।
- पर्वतीय ढ़ालों के निकट सबसे अधिक वर्षा होती है। जैसे–जैसे पर्वतीय ढ़ालों से दूर हटते जाते हैं, वर्षा की मात्रा व तीव्रता दोनों में कमी आ जाती है।
- यदि पर्वतीय भाग सामान्य उँचाई वाला होता है तो अधिकतम वर्षा उसके शीर्ष चोटी से आगे दूसरे ढ़ाल की तरफ होती है।
- पर्वतीय वर्षा के समय पवनमुखी ढ़ालों पर कपासी बादल एवं विमुखी ढ़ालों पर स्तरीय बादलों की उपस्थिति होती है।
- पर्वतीय भागों में वृष्टि ढ़ालों के सहारे उँचाई के साथ वर्षा की मात्रा में वृद्धि होती जाती है। परन्तु हवा में नमी की एक निश्चित मात्रा रहने के कारण वर्षा की मात्रा में वृद्धि की एक सीमा होती है क्योंकि अधिक वर्षा के कारण वायु की अधिकांश नमी नष्ट हो जाती है। फलतः अधिकतम वृष्टि के उपरान्त उँचाई के साथ वर्षा की मात्रा में कमी होने लगती है। इसे वर्षा का प्रतिलोमन (INVERSION OF RAINFALL) कहा जाता है। प्रत्येक स्थान पर वर्षा के वृद्धि की सीमा एक जैसी नहीं रहती। पर्वतों की स्थिति, सागर से दूरी, वायु में आर्द्रता की मात्रा, पर्वतीय ढ़ाल एवं मौसम आदि का वर्षा के वृद्धि सीमा पर पर्याप्त प्रभाव रहता है। जिस सीमा के उपरान्त वर्षा में उँचाई के साथ कमी होने लगती है उसे सर्वोच्च वर्षा रेखा कहा जाता है। यह रेखाभूमध्य रेखीयक्षेत्रों में लगभग 7200 मीटर, हिमालय में 4000 मीटर, आल्पस में 7000 मीटर, पेरेनीज पर ग्रीष्काल में 6000 मीटर एवं शीतकाल में 4000 मीटर पर पायी जाती है। यह सीमा प्रत्येक स्थान पर परिवर्तनशील रहती है।
- पर्वतीय अवरोध के विद्यमान रहने की दशा में यह वर्षा किसी भी मौसम में हो जाती है। वर्षा के अन्य प्रकारों की अपेक्षा पर्वतीय वर्षा का क्षेत्र अधिक विस्तृत एवं अवधि दीर्धकालिक होती है।

पर्वतीय वर्षा, प्रचलित हवाओं के पहाड़ों से अवरुद्ध होकर ऊपर उठने के साथ–साथ संवहन एवं चक्रवातीय दशाओं के कारणों से भी सम्बन्धित है। उष्ण भागों में दिन में घाटी क्षेत्र तप्त हो जाता है फलतः हवा गर्म होकर संवहन के रूप में पहाड़ी ढालों के सहारे ऊपर उठकर ठंडी हो जाने पर वर्षा करती है। कभी–कभी चक्रवात पर्वतों से अवरुद्ध हो जाने के कारण पर्वतों के सहारे ऊपर उठकर वर्षा करते हैं। कभी–कभी सागरतटीय किनारों के सहारे सागरीय हवाएं ऊपर उठकर वर्षा करती हैं।

चक्रवातीय वर्षा (CYCLONIC RAIFALL) –

जब दो विपरीत स्वभाव वाली हवाएं विपरीत दिशाओं से आकर मिलती है तो वाताग्र का निर्माण होता है। इसी वाताग्र के सहारे गर्म हवाएं ऊपर उठती हैं और ठंडी हवाएं नीचे आ जाती हैं। इस प्रकार का चक्रवातीय वाताग्र प्रायः शीतोष्णकटिबन्धों में जनित होता है, जहाँ पर उ०पू० ध्रुवीय भारी एवं ठंडी हवाएं तथा द०प० गर्म हल्की

पछुआ हवाएं मिलती हैं। इसके विपरीत भूमध्यरेखा के निकट विपरीत दिशाओं समान स्वभाव वाली व्यापारिक हवाओं में मिलने पर भी वाताग्रों का जनन होता है। वस्तुतः चक्रवातीय हवाओं का जो क्रम है जिनके मध्य में निम्नदाब एवं परिधि की ओर उच्चदाब रहता है तथा बाहर से अन्दर की ओर हवाएं चला करती हैं। जब गर्म एवं ठंडी हवाएं आमने–सामने मिलती हैं तो गर्म व कम घनत्व वाली हल्की हवाओं को ठंडीएवं भारी हवाओं के ऊपर जाना पड़ता है। ऊपर जाने वाली हवाएं तिरछे रूप में ऊपर को उठती हैं। ऊपर की गर्म हवा अस्थिर होकर नीचे की ठंडी हवा के कारण ठंडी होने लगती है और धीरे–धीरे संघनन के पश्चात वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। चक्रवात के अगले भाग में चूँकि हवा धीमी गति से ऊपर उठती है फलतः संघनन भी मन्द गति से होता है जिससे वर्षा दीर्घकालिक एवं विस्तृत क्षेत्र में होती है। कभी–कभी विस्तृत क्षेत्र में बादलों की उपस्थिति होने के पश्चात् भी वर्षा का स्वरूप बूँदा–बाँदी तक सीमित रह जाता है। चक्रवात के पिछले भाग में शीत वायु तीव्र गति से झपटती है तथा गर्म वायु को एक–एक ऊपर ढ़केल देती है। संघनन क्रिया तीव्र होने से वर्षा भी तेज होती है। बिजली की कड़क, मेघ गर्जना, ओला वृष्टि आदि इस वर्षा की प्रमुख विशेषताएं है। यह अल्पकालिक वर्षा होती है। शीतोष्ण कटिबन्धों की अधिकांश वर्षा चक्रवातीय होती है। अयनवर्ती क्षेत्रों में ग्रीष्मकालीन चक्रवातीय वर्षा होती है। नवीन विचारधारा के आधार पर भारत की ग्रीष्मकालीन मानसूनी वर्षा को चक्रवातीय वर्षा कहा जाता है। उत्तर में शीतकाल की अवधि में प० से आने वाले चक्रवातों के द्वारा अल्प वर्षा होती है।

9.11 जल वर्षा का धरातल पर वितरण (DISTRIBUTION OF RAINFALL ON GROUND) –

जल वर्षा का तापमान एवं आर्द्रता से तथा तापमान का आर्द्रता से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। धरातल के उन भागों में अधिक वर्षा होती है जहाँ तापमान के अधिक होने के साथ–साथ वाष्पीकरण के लिए पर्याप्त मात्रा में जल शुलभ रहता है। भूमध्यरेखीय क्षेत्र इसके उपयुक्त उदाहरण हैं। उपोष्णकटिबन्धीय उच्च दाब वाले महाद्वीपीय क्षेत्रों के प० भागों में उपर्युक्त दशाओं के विद्यमान रहने के पश्चात भी हवाओं के नीचे उतरने से प्रति चक्रवातीय दशाओं के कारण न्यूनतम वर्षा होती है। मध्य अक्षाँशों में अनुकूल दशाओं के कारण पर्याप्त वर्षा हो जाती है जबकि ध्रुवीय भागों में वर्षा के स्थान पर हिमपात होता है।

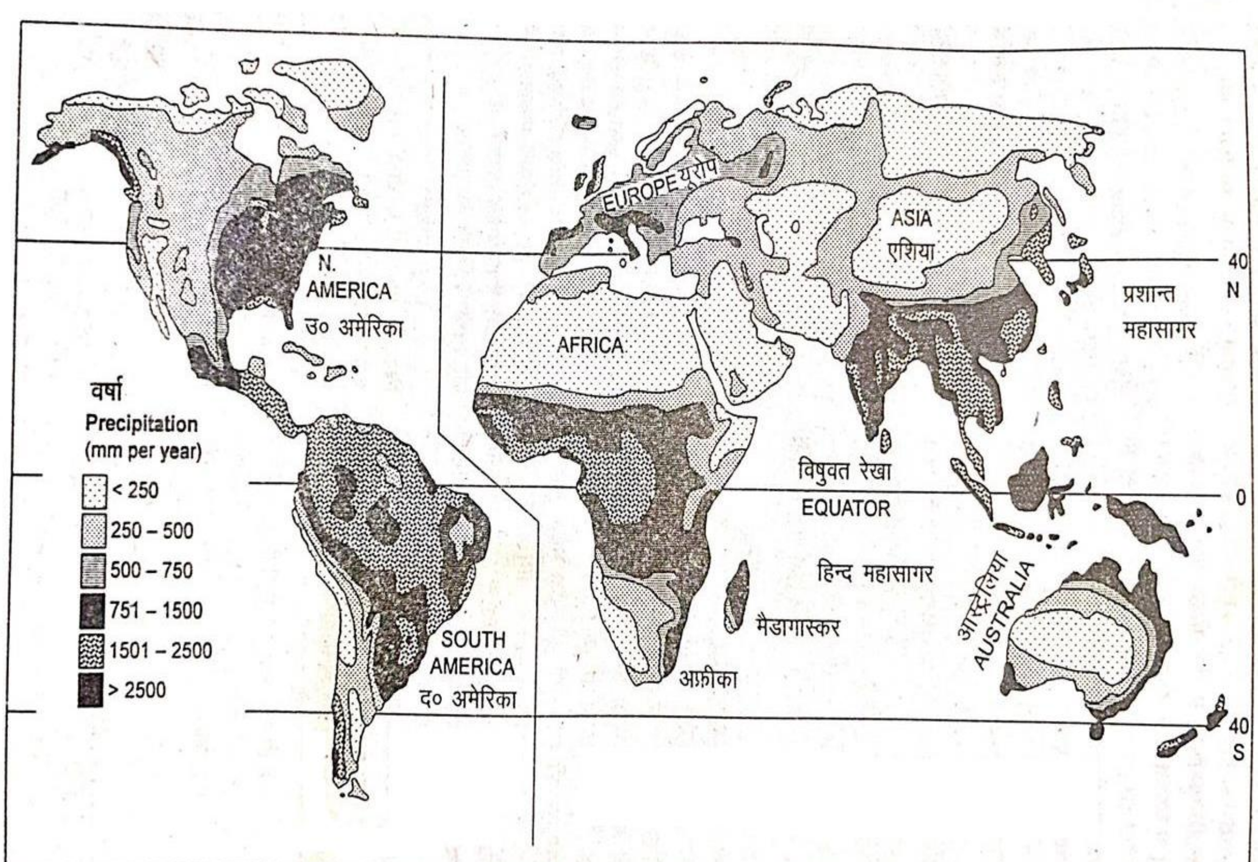

धरातल पर वर्षा के सुनिश्चित वितरण के पूर्व वर्षा से सम्बन्धित कतिपय महत्वपूर्ण तथ्यों व कारकों का विश्लेषण करना आवश्यक होगा। वार्षिक वर्षा की सम्पूर्ण मात्रा, मौसमी वितरण एवं वर्षा की अनिश्चितता आदि वर्षा के वितरण से सम्बन्धित महत्वपूर्ण कारक हैं। सम्पूर्ण ग्लोब की वार्षिक वर्षा का औसत 97 से०मी० है परन्तु यह मात्रा सर्वत्र समान नहीं रहती। उदाहरण के लिए यदि भारत को देखा जाय तो थार के मरूस्थल में मात्र 10 से०मी० जबकि मासिनराम में 1200 से०मी० वार्षिक वर्षा अंकित है। वर्षा की यह मात्रा वर्ष भर में समान रूप से प्राप्त नहीं होती है। यहाँ यह भी उल्लेनीय है कि भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में वर्षभर वर्षा होती है जबकि मध्य अक्षाँशीय क्षेत्रों में शीत एवं ग्रीष्म ऋतुओं के स्पष्ट होने पर वर्षा का वितरण मौसमी हो जाता है। यहाँ ग्रीष्म ऋतु में वर्षा होती है जबकि शीतकाल वर्षा से वंचित रहता है परन्तु भूमध्य सागरीय क्षेत्रों में वर्षा शीतकाल में होती है। किसी भी क्षेत्र में औसत वार्षिक वर्षा (न्यूनतम 35 वर्षों की वर्षा का औसत) से कम या अधिक मात्रा को वर्षा की परिवर्तनशीलता कहा जाता है। यदि किसी स्थान पर वर्षा की परिवर्तनशीलता 50 प्रतिशत है तो 50 इंच वार्षिक वर्षा होने पर शुष्कता वाले महीनों में 25 इंच वर्षा होगी एवं आर्द्र मास में यह वर्षा 75 इन्च तक हो सकती है। सामान्यतया वर्षा की औसत वार्षिक मात्रा के कम होने पर परिवर्तनशीलता का प्रतिशत बढ़ता रहता है। परिवर्तनशीलता जब औसत से कम होती है तो ऋणात्मक एवं अधिक होने पर उसे धनात्मक परिवर्तनशीलता कहा जाता है। वर्षा की यह ऋणात्मक एवं धनात्मक परिवर्तनशीलता कृषि के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण होती है।

9.12 जल वर्षा का कटिबन्धों के अनुरूप वितरण –

मूलतः वर्षा का जनन गर्म हवाओं के ऊपर उठकर ठंडे होने के कारण होता है। हवाओं का यह ऊपर उठना पवन के अभिसरित होने से संवहन के रूप में या पर्वतों के सहारे अवरूद्ध होकर ऊपर उठने के कारण होता है। अधिकाँश क्षेत्रों में हवाएं अभिसरण के द्वारा ही ऊपर उठती हैं। यह अभिसरण तापमान एवं वायुदाब से सीधा सम्बन्धित होता है। निम्नदाब के क्षेत्रों में हवाएं दो दिशाओं से आकर अभिसरित होती हैं। यह भूमध्य रेखीय एवं उच्च अक्षाँशीय निम्नदाब क्षेत्र में होता है। उपोष्णकटिबन्धीय उच्चदाब क्षेत्र में हवाएं ऊपर से नीचे की ओर बैठती हैं तथा धरातल पर विपरीत दिशाओं में उनके अभिसरित होने से प्रति चक्रवातीय दशाएं उद्भूत हो जाती हैं। यह अभिसरण विभिन्न पेटियों के रूप में होता है। हवा की आर्द्रता तापमान पर निर्भर करती है और तापमान का वितरण भी पेटियों के रूप में होता है (तापमान ध्रुवों से भूमध्य रेखा की ओर बढ़ता है) अतः वर्षा का वितरण पेटियों के रूप में करना अधिक समीचीन होगा। वायुदाब तथा हवाओं के पेटियों की भाँति वर्षा की भी पेटियों में मौसमी स्थानान्तरण होता है।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि के आधार पर ग्लोब पर वर्षा की पेटियों का निम्न रूपों में निर्धारण किया जा रहा है।

(1) भूमध्य रेखीय अधिकतम वर्षा की पेटी – दोनों गोलार्द्धो में 10^0 अक्षाँश तक इस वर्षा की पेटी का विस्तार पाया जाता है इस क्षेत्र में गर्म एवं आर्द्र वायुराशियाॅ होती हैं तथा यह प्रदेश अन्तरा उष्णकटिबन्धीय अभिसरण के अन्तर्गत आता है। यहाँ वर्षा का वार्षिक औसत 175 से 200 से०मी० मिलता है। यहाँ वर्षा संवहनीय होती हैं। मेघ गर्जन एवं विजली की चमक के साथ प्रतिदिन दोपहर के बाद मूसलाधार वृष्टि होती है। अल्पकालिक वर्षा के उपरान्त मौसम साफ हो जाता है। सूर्य के उत्तरायण व दक्षिणायन के साथ इस वर्षा की पेटी का खिसकाव भी उ० एवं द० की ओर होता रहता है। अन्तरा उष्णकटिबन्धीय अभिसरण के वर्ष भर प्रायः भूमध्यरेखा से उ० की ओर बने रहने के करण 0^0 से 10^0 उत्तरी अक्षाँश के क्षेत्र में दक्षिण की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है।

(2) व्यापारिक वायुजनित वर्षा पेटी –

इस वर्षा पेटी का विस्तार दोनों गोलार्द्धों में 10^0 से 20^0 अक्षाँशों के मध्य मिलता है। यह क्षेत्र व्यापारिक हवाओं की पेटी के अन्तर्गत आता है। व्यापारिक पवने सागरों के ऊपर से आने के कारण महाद्वीपों के पूर्वी भागों में वर्षा करती हैं जबकि महाद्वीपों के ऊपर से प्रवाहित होकर शुष्क हो जाने के कारण पश्चिमी भागों में वर्षा नहीं कर पाती हैं। फलतः मौसम सूखा रहने से रेगिस्तान पाये जाते हैं। ज्ञातव्य हो कि इन्हीं अक्षाँशों में मानसूनी प्रदेशों के अन्तर्गत गमियों में पर्याप्त से अधिकतम वर्षा होती है।

(3) उपोष्ण कटिबन्धीय न्यूनतम वर्षा की पेटी –

इस वर्षा पेटी का विस्तार दोनों गोलार्द्धों में 20^0 से 30^0 अक्षाँशों के मध्य मिलता है। यहाँ हवाएं ऊपर से नीचे उतरती हैं तथा उच्च दाब बनाने के उपरान्त विपरीत दिशाओं में प्रवाहित होती हैं। परिणामतः प्रतिचक्रवातों की

स्थिति बनने के कारण वर्षा कम हो पाती है। यहाँ वर्षा का वार्षिक औसत 100 से०मी० से कम रहता है। यहाँ वर्षा महाद्वीपों के पूर्वी भागों में सागरों के ऊपर से आने वाली आर्द्र व्यापारिक हवाओं के द्वारा ग्रीष्मकालीन अवधि में अधिक होती है। ज्ञातव्य हो कि इसी पेटी में विश्व के समस्त उष्णरेगिस्तानों की स्थिति मिलती है।

(4) भूमध्य सागरीय वर्षा पेटी –

इस वर्षा पेटी का विस्तार दोनों गोलार्द्धों में 30^0 से 40^0 अक्षाँशों के मध्य मिलता है। इस पेटी में वर्षा शीतकालीन अवधि में पछुवा हवाओं द्वारा चक्रवातों से होती है। ग्रीष्मकालीन वर्षा नहीं होती है क्योंकि इस समय ये भाग व्यापारिक पवनों के क्षेत्र में आने के कारण प्रति चक्रवातीय दशाओं से प्रभावित हो जाते हैं। यहाँ वर्षा का वार्षिक औसत 100 से०मी० रहता है।

(5) मध्य अक्षाँशीय अधिक वर्षा की पेटी –

इस पेटी का विस्तार दोनों गोलार्द्धो में 40^0 से 60^0 अक्षाँशों के मध्य मिलता है। इस पेटी में पछुआ हवाओं के कारण वर्षा होती है। वर्षा का वार्षिक औसत 100 से 125 से०मी० रहता है। महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में वर्षा अधिक होती है जबकि आन्तरिक क्षेत्रों में कम होती जाती है। इसके द० गोलार्द्ध वाले क्षेत्र में सागरीय विस्तार अधिक होने के कारण वर्षा उ० गोलार्द्ध की अपेक्षा अधिक होती है। यहाँ ध्रुवीय तथा पछुआ हवाओं के मिलने से जनित चक्रवातों के कारण शीतकालीन अवधि में अधिक वर्षा होती है। यहाँ हल्की वर्षा अधिक समय तक होती है। यह विश्व का दूसरा सर्वाधिक वर्षा का क्षेत्र है।

(6) ध्रुवीय निम्न वर्षा पेटी –

60^0 अक्षांश के उपरान्त ध्रुवों की ओर वर्षा की मात्रा कम होती जाती है। वर्षा प्रायः हिमपात के रूप में होती है। 75^0 अक्षाँश के बाद वर्षा का वार्षिक औसत 25 से०मी० रह जाता है।

ग्लोब पर वर्षा की पेटियों का निर्धारण मौसमी स्वभाव को ध्यान में रखकर पेटरसन महोदय द्वारा भी किया गया है। इन्होने वर्षा की 7 पेटियाँ उ० गोलार्द्ध एवं 7 पेटियाँ द० गोलार्द्ध में निर्धारित करते हुए भूमध्यरेखा पर भी एक अलग वर्षा की पेटी माना है। पेटरसन के अनुसार इन पेटियों का विवरण निम्न है–

(1) 7^0 उ० से 7^0 द० – सम्पूर्ण वर्ष, की वर्षा पेटी (अधिकतम वर्षा)

(2) 7^0 से 16^0 – ग्रीष्मकाल में वर्षा, शीतकाल शुष्क

(3) 16^0 से 20^0 – हल्की ग्रीष्मकालीन वर्षा

(4) 20^0 से 30^0 – सभी मौसम शुष्क, न्यूनतम वर्षा

(5) 30^0 से 35^0 – हल्कीशीतकालीन वर्षा

(6) 35^0 से 45^0 – ग्रीष्मकाल शुष्क, शीतकाल में पर्याप्त वर्षा

(7) 45^0 से 70^0 – सभी मौसम में वर्षा, ग्रीष्मकाल में अधिक वर्षा

(8) 70^0 से 90^0 – सभी मौसम में विरल वर्षा, अधिकतर हिमपात के रूप में

9.13 वर्षा की प्रवृत्ति (REGIMES OF RAINFALL) –

जब वर्ष भर की वर्षा सम्बन्धी स्वभाव का अवलोकन किया जाता है तो उसे वर्षा की प्रवृत्ति कहते हैं। इसके अन्तर्गत यह ज्ञात किया जाता है कि कौन सा मौसम सर्वाधिक वर्षा वाला है और किस मौसम में शुष्कता रहती है। इस आधार पर वर्षा को निम्न प्रकारों में बाँटा जा सकता है।

(अ) विषुवत रेखीय वर्षा (EQUATORIAL RAINFALL REGIME) – इस क्षेत्र में वर्ष भर वर्षा होती है परन्तु मार्च और सितम्बर में सर्वाधिक वर्षा होती है। यहाँ वर्षा संवहनीय होती है। मेघ गर्जन एवं बिजली की चमक के साथ दोपहर बाद प्रतिदिन मूसलाधार वर्षा होती है। वर्षा अल्पकालिक होती है।

(व) उपोष्णकटिबन्धीय वर्षा (SUB TROPICAL RAINFALL REGIME) – वर्ष में एक बार अधिकतम व एक बार न्यूनतम वर्षा होती है। न्यूनतम वर्षा का समय शुष्क रहता है। उ० गोलार्द्ध में महाद्वीपों के पूर्वी भाग

में जुलाई में अधिकतम तथा दिसम्बर में न्यूनतम वर्षा होती है। जबकि महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में स्थिति ठीक इसके विपरीत रहती है।

(स) उष्णकटिबन्धीय वर्षा (TROPICAL RAINFALL REGIME) – यह वर्षा ग्रीष्मकाल में अधिकतम व शीतकाल में न्यूनतम होती है। भूमध्यरेखा से दूर होने के साथ वर्षा की अवधि कम परन्तु शुष्कता बढ़ती जाती है।

(द) मानसूनी वर्षा (MONSOONAL RAIFALL REGIME) – जुलाई एवं अगस्त माह अधिकतम वर्षा वाले रहते हैं। यह वर्षा उ० गोलार्द्ध द०प० तथा द० मानसूनी हवाओं से होती है जो कि चक्रवातीय एवं पर्वतीय भी होती है। शीतकाल शुष्क होता है।

(य) मध्य अक्षाँशीय वर्षा (MIDDLE LATITUDE RAINFALL REGIME) – यहाँ यद्यपि वर्ष भर पछुआ हवाओं से चक्रवातीय वर्षा होती है परन्तु अधिकतम वर्षा महाद्वीपों के प० भागों में दिसम्बर में, पूर्वी भागों में जुलाई–अगस्त में तथा आन्तरिक भागों में जून–जुलाई में होती है।

(र) रूमसागरीय वर्षा (MEDITERANEAN RAINFALL REGIME) – ग्रीष्मकाल शुष्क रहता है। अधिकतम वर्षा शीतकाल में पछुआ हवाओं के द्वारा होती है।

9.14 तड़ितझंझा (THUNDERSTORM) –

वस्तुतः तड़ितझंझा वे स्थानीय तूफान होते हैं जिनमें ऊपर की ओर तीव्र हवाएं चलती है तथा बिजली की चमक एवं मेघ गर्जन के साथ अतिशय जल वृष्टि होती है। स्ट्राहलर का मानना है कि "तड़ितझंझा ऐसा स्थानीय एवं तीव्र झंझावात होता है जिसमें विस्तृत तथा घने कपासी बादल होते हैं और नीचे से ऊपर की ओर प्रबल हवाएं चलती हैं।" बिजली की चमक, मेघ गर्जन की स्थितियों के साथ कभी–कभी ओले भी गिरते हैं। तड़ितझंझा एक प्रकार से संवहन का रूप होते हैं और इनके द्वारा अल्पकाल में ही इतनी वर्षा होती है कि जैसे मेघ फूट पड़े हों। इसे वर्षा प्रस्फोट कहा जाता है।

तड़ितझंझा की रचना –

अनेक संवहनीय कोशिकाओं के द्वारा तड़ित झंझा की रचना होती है। इनमें नीचे से ऊपर की ओर हवाएं चतली है। प्रत्येक कोशिका का एक जीवन चक्र–युवा, प्रौढ़ा एवं जीर्णावस्था के रूप में होता है। किसी भी तड़ितझंझा में विभिन्न कोशिकाएं अपने विकास की विभिन्न अवस्थाओं में हो सकती हैं। प्रथम अवस्था को कपासी अवस्था कहा जाता है जिसमें गर्म हवाओं का तीव्रगति से ऊपर की ओर प्रवाह होता है। वायु किनारे से खींचकर ऊपर की ओर उठती है और धीरे–धीरे बादलों का जनन होता है। प्रौढ़ावस्था दूसरी अवस्था होती है जिसमें हवा का ऊपर व नीचे दोनों ओर को प्रवाह होता है। ऊपर उठकर हवा ठंडी होकर वर्षा करती है। इस वर्षा से नीचे से ऊपर उठती हवा में घर्षण के कारण हवा का कुछ भाग नीचे को प्रवाहित होने लगता है जो ठंड़ी हवा रहती है। तीसरी अवस्था को विलीन अवस्था कहा जाता है जिसमें ऊपर से नीचे को उतरती ठंड़ी वायु धरातल पर फैलने लगती हैं, हवाओं का उपरिगामी संचरण समाप्त हो जाता है। ऊपरी भाग में बादलों का आकार छतरी जैसे हो जाता है और उसके फैल जाने से उनका आकार पक्षाभ स्तरीय एवं उच्च स्तरीय बादलों के रूप में बदल जाता है।

जनन की दशाएं –

तड़ितझंझा के प्रारम्भ में हवाओं का ऊपर की ओर तीव्र प्रवाह का होना अपरिहार्य है। यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि तापमान अधिक हो ताकि धरातल इतना गर्म हो जाय कि हवाओं में संवहन क्रिया आरम्भ हो सके। इसी कारण से इनका जनन ग्रीष्मकाल में गर्म दिन के समय में अधिक होता है। तड़ितझंझा के लिए गर्म–आर्द्र अस्थिर हवा का होना आवश्यक होता है। ऐसा तभी सम्भव है जबकि जब वायुमण्डल की सामान्य ताप पतन दर एडियावेटिक ताप पतन

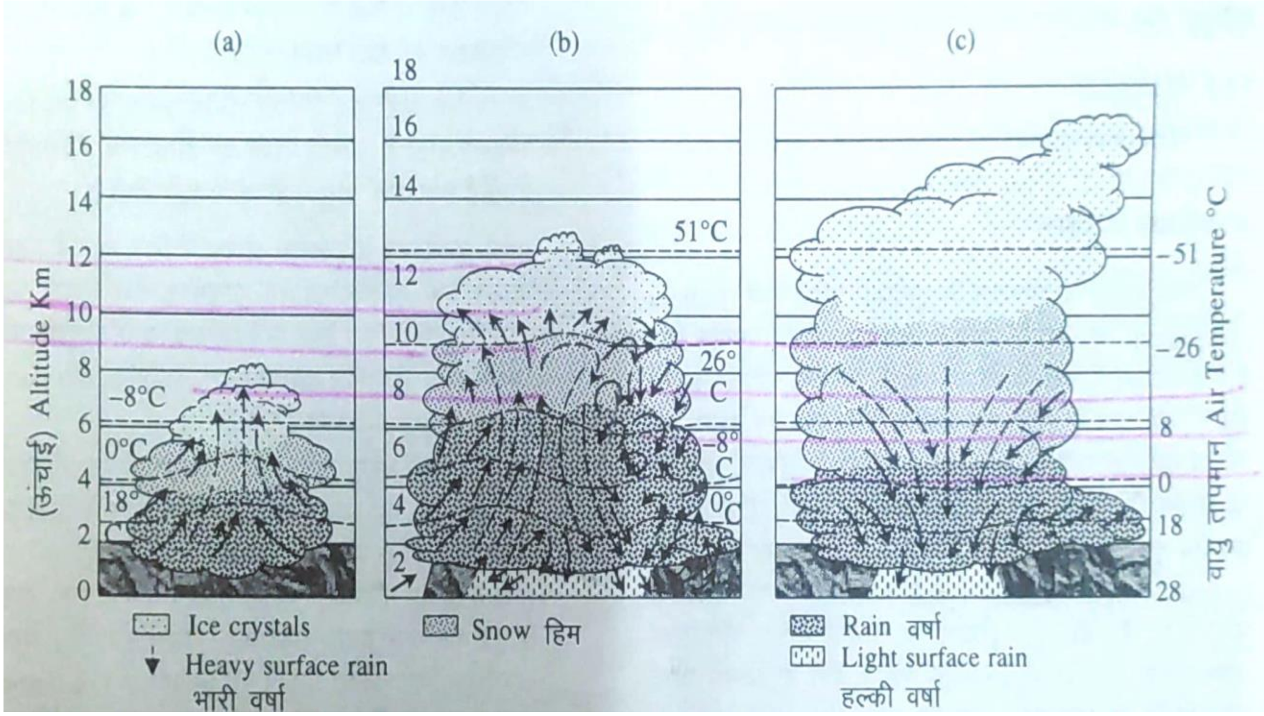

दर (शुष्क एवं आर्द्र) से ज्यादा अधिक हो। गर्म वायु तो संवहन द्वारा या पर्वतों से टकराकर ऊपर उठती हुई अस्थिर हो सकती है परन्तु नम हवाएं जितना ही अस्थिर होंगी तड़ितझंझा उतना ही तीव्र एवं अधिक स्थायी होगा।

जिस स्थिति पर संघनन प्रक्रिया प्रारम्भ होने के उपरान्त बादलों का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है उसे मेघ आधार या मेघ तल कहते हैं। जिस तल पर जल कण हिमकणों में परिवर्तित हो जाते हैं उसे हिमतल कहा जाता है। मेघतल व हिम तल के मध्य बादलों की गहराई अधिक होनी चाहिए। वस्तुतः मेघतल से जितना ही अधिक ऊपर हिमतल बादल भी उतने अधिक गहरे होगे एवं संवहन भी तीव्र होगा। उल्लेखनीय है कि निम्न अक्षाँशों में बादलों की गहराई अधिक होने व तीव्र संवहन के कारण प्रायः झंझावतों का जनन हो जाया करता है।

तड़ितझंझा की विशेषताएं – तड़ितझंझा की विशेषताओं का मूल्यांकन निम्नरूपों में किया जा सकता है –

वर्षा– तड़ितझंझा में हवाओं के अति तीव्र गति से ऊपर उठने से तीव्र संवहन होता है। गर्मियों में अधिक तापमान के कारण हवा की निरपेक्ष आर्द्रता भी हो जाती है। उपर्युक्त कारणों से तड़ितझंझा में अल्पकालिक किन्तु अतिशय वृष्टि होती है। तड़ितझंझा की हर कोशिका के केन्द्र में भारी वर्षा व किनारे की ओर कम होती है। क्षीण कोशिका का वर्षा काल कुछ मिनटों का होता है जबकि विकसित कोशिका में घण्टों वर्षा होती रहती है।

ओला– सभी तड़ितझंझा में ओला का निर्माण व उनकी वृष्टि नहीं होती। जब संघनन हिमांक के नीचे सम्पन्न होता है तो मटर के दाने से लेकर गेंद तक के आकार वाले हिमकणों का निर्माण हो जाता है। यह प्रक्रिया झंझावात की किसी–किसी कोशिका में सम्पन्न होती है। जब ऊपरिगामी संवहन हवाएं कमजोर होने लगती है तो ओलावृष्टि होने लगती है।

बिजली चमकना– बड़ी जलबूँदों के टूटने से तड़ित उत्पन्न होती है। हर बूँद में घनात्मक एवं ऋणात्मक बिजली होती है। इनकी मात्रा जब तक समान होती है यह तटस्थ रहती हैं। बूँदों के टूटने पर कहीं घनात्मक व कहीं ऋणात्मक आवेश अधिक हो जाता है। तड़ितझंझा की प्रौढ़ अवस्था में बादलों के आधार पर ऋण एवं ऊपर वाले भाग में धन बिजली का आवेश होता है। इसी आवेश अन्तर के कारण तनाव बढ़ जाता है और विसर्जन होने से प्रकाश रेखाएं चमक जाती है। इसे ही बिजली का चमकना कहते हैं।

मेघगर्जना– बिजली की चमक होते ही ऊष्मा उत्पन्न होने से तापमान अचानक बढ़ जाता है। फलतः हवाओं के तीव्र व एकाएक फैल जाने से भयंकर आवाज आती है। इसे ही मेघ गर्जना कहते हैं।

तीव्रवात– तड़ितझंझा के पूर्णतः विकसित हो जाने पर वर्षा प्रारम्भ हो जाती है और ठंडी हवाएं नीचे उतरने

लगती हैं और धरातल पर आकर दो विपरीत दशाओं मं अपसरित होने लगती हैं। इस तीव्र भयानक ठंड़ी वायु को शीतवात (SAUALL WIND) कहा जाता है। इनकी गति कभी–कभी हरीकेन से भी अधिक हो जाती है जिससे यह प्रलयंकारी हो जाती है।

तड़ितझंझा के प्रकार (TYPES OF THUNDERSTORM) – तड़ितझंझा के प्रकारों का विवेचन उनके जनन की प्रक्रिया तथा उन्हें ऊपर उठाने वाले कारकों के आधार पर निम्न प्रकारों में बाँटा जा सकता है।

(1) वायुराशि जनित तड़ितझंझा (AIRMASS TYPE) –

(अ) ताप जन्य तड़ितझंझा (HEAT ORIGINATED THUNDERS TORM) –

दिन की अवधि में सूर्यातप से तप्त होकर जब धरातल अत्यधिक गर्म हो जाता है तो गर्म संवाहन धाराओं के उठने से तड़ितझंझा का जनन होता है। यह वास्तविक तड़ितझंझा ग्रीष्मकाल में दिन में दोपहर के बाद उद्भूत होकर सायंकाल तक समाप्त हो जाते हैं। अधिक आर्द्रता, तापमान एवं हवाओं के अमिसरण के कारण तापजन्य तड़िंतझंझा डोलड्रम पेटी में सर्वाधिक उत्पन्न होते हैं। इनका समय इतना अनिश्चित होता है कि इन के सन्दर्भ में कोई भविष्यवाणी नहीं की सकती है।

(व) पर्वतीय तड़ितझंझा (OROGRAPHIC THUNDERSTORM) –

जब गर्म आर्द्र एवं अस्थिर हवाएं पर्वतों के अवरोध से तेजी के साथ ऊपर उठती हैं तो संघनन की गुप्तऊष्मा का विलय हो जाने से हवाओं के ऊपर उठने की प्रक्रिया और तीव्र हो जाती है। परिणामतः झंझावातों का उत्पन्न हो जाता है जो अत्यधिक तीव्र और सक्रिय होने के कारण अतिशय वृष्टि करते हैं। यह अधिक सक्रिय, स्थिर एवं बड़े क्षेत्र पर विस्तृत होते हैं जिससे इनकी भविष्यवाणी करना आसान हो जाता है।

(स) सम्पर्कीय तड़ितझंझा (ADVECTIONAL THUNDERSTORM) –

जब या तो ऊपर की ठंड़ी हवा के नीचे गर्म हवा आ जाती है या नीचे स्थित गर्म हवा के ऊपर ठंड़ी हवा आ जाती है तो ताप पतन दर तीव्र हो जाने से हवा अस्थिर होकर ऊपर उठती है और झंझावातों का जनन हो जाता है। जब रात्रि में आकाश बादलों से ढ़ंका रहता है तो उनकी ऊपर की परत विकिरण द्वारा ऊष्मा ह्रास होने से ठंड़ी हो जाती है जो भारी होने के कारण नीचे बैठती है। नीचे बैठने पर वहाँ की अपेक्षतया गर्मी हवा को ऊपर ढकेल देती है जिससे संवहन प्रारम्भ होने से झंझावात का निर्माण हो जाता है। इनका निर्माण अंधेरी रात में बादलों के आच्छादन से होता है।

(2) वाताग्री तड़ितझंझा (FRONTAL THUNDERSTORM) –

(द) उष्णवाताग्री तड़ितझंझा (FRONTAL THUNDERSTORM) –

यह झंझावात प्रायः कमजोर होते हैं तथा गर्म हवाओं के धीमी गति से ऊपर उठने के कारण कपासी मेघ नहीं बनते। सागरीय हवाओं के अधिक आर्द्र व अस्थिर होने से इस प्रकार के झंझावातों का निर्माण होता है।

(य) शीत वाताग्री तड़ितझंझा (COLD FRONTAL THUNDERSTORM) –

जब चक्रवातीय दशाओं में वाताग्र के सहारे गर्म आर्द्र दक्षिणी पछुआ तथा ठंढ़ी, भारी शुष्क ध्रुवीय हवा मिलती है तो ठंड़ी ध्रुवीय हवा उ०प० तथा प० की ओर से गर्म हल्की हवा की ओर झपटती है। फलतः ठंड़ी भारी हवा तीव्रता के साथ गर्म हवा को ऊपर ढ़केल देती है जिससे संवाहन प्रक्रिया के प्रारम्भ हो जाने पर झंझावातों का निर्माण होता है। इन झंझावातों का सम्बन्ध चक्रवातों के शीत वाताग्रों से होता है। अतः इनके भ्रमणपथ व समय की भविष्यवाणी आसानी के साथ की जा सकती है। इन झंझावतों में कभी–कभी जल वृष्टि के साथ ओले भी गिरते हैं।

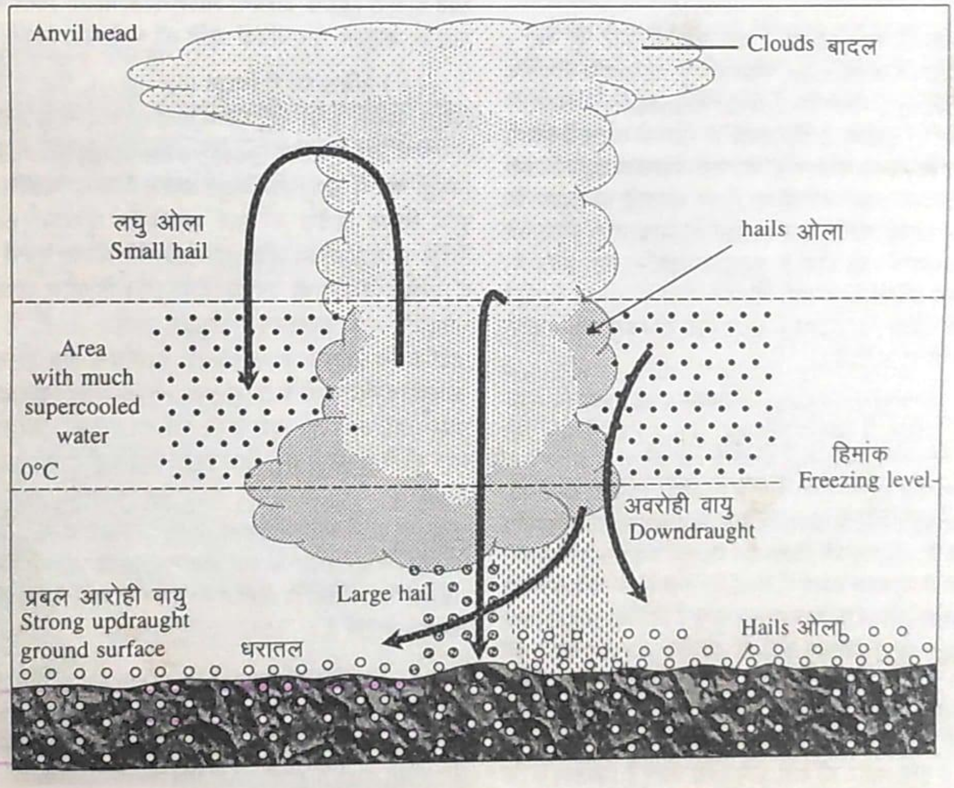

तड़ित्झंझा में ओला (hails) का निर्माण।

Source : *A.C. Donald, 1988, modified from Oliver and Hidore, 2003.*

तड़ितझंझा का वितरण क्षेत्र (DISTRIBUTIONAL AREA OF THUNDERSTORM) –

इन झंझावातों का सम्बन्ध उच्च तापमान, उच्च आर्द्रता एवं अभिसरण क्रिया के अधिक होने से है। उक्त स्थिति भूमध्यरेखीय प्रदेश में अधिक होने के कारण स्थानीय एवं तापीय झंझावात अधिक आया करते हैं। इन क्षेत्रों में 75 से 150 दिन झंझावात आते हैं। भूमध्यरेखा से ध्रुवों की ओर इन झंझावातों के आने की संख्या में कमी होती जाती है। उपोष्णकटिबन्धीय उच्चदाब वाले क्षेत्रों में इनके आने की सम्भावना वहुत कम रहती है। महाद्वीपों के पूर्वी भागों में ग्रीष्मकालीन अवधि में कतिपय झंझावात आते हैं। 45^0 से 60^0 उच्च अक्षाँशों में शीतोष्णकटिबन्धीय चक्रवातों के ये उत्पन्न होते रहते है। 60^0 से 70^0 अक्षाँशों के आगे इनके आने की स्थिति नहीं रहती है।

9.15 सारांश

इस अध्याय में, हम भारतीय मानसून की उत्पत्ति, स्थानीय हवाओं और विभिन्न प्रकार की हवाओं के बारे में विस्तार से चर्चा किये हैं। भारतीय मानसून की उत्पत्ति हिंद महासागर, बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में गर्मी के कारण होती है। गर्मियों में, इन क्षेत्रों में गर्म हवा ऊपर उठती है और उसकी जगह लेने के लिए समुद्र से ठंडी हवा आती है, जिससे मानसूनी हवाओं का निर्माण होता है। यह प्रक्रिया भारी वर्षा और जलवायु परिवर्तन का कारण बनती है, जो भारतीय उपमहाद्वीप के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।स्थानीय हवाओं में स्थल समीर और समुद्री समीर शामिल हैं। भूमि समीर रात के समय समुद्र से भूमि की ओर चलती है, जबकि समुद्री समीर दिन के समय भूमि से समुद्र की ओर चलती है। घाटी समीर और पर्वतीय समीर पहाड़ी क्षेत्रों में देखी जाती हैं। घाटी समीर दिन में घाटी से पहाड़ की ओर और पर्वतीय समीर रात में पहाड़ से घाटी की ओर चलती है।विशेष हवाओं में चिनूक और फॉन पर्वतीय क्षेत्रों में गर्म, शुष्क हवाएं होती हैं जो बर्फ को तेजी से पिघलाने में सक्षम होती हैं। सांता अना हवायें दक्षिणी कैलिफोर्निया में गर्म, शुष्क हवायें होती हैं जो जंगल की आग का कारण बन सकती हैं। लू भारतीय उपमहाद्वीप में गर्मियों में चलने वाली गर्म, शुष्क हवा है। ब्लिजर्ड ठंडी, बर्फीली हवाएं होती हैं जो उत्तरी अमेरिका और यूरोप में भारी बर्फबारी और ठंड का कारण बनती हैं। हरमट्टन पश्चिम अफ्रीका में चलने वाली शुष्क, धूलभरी हवा है। सिरोको

उत्तरी अफ्रीका से यूरोप की ओर चलने वाली गर्म, धूलभरी हवा है।इस प्रकार, इस अध्याय में भारतीय मानसून की उत्पत्ति, स्थानीय हवाओं और विभिन्न प्रकार की विशेष हवाओं के बारे में एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान किया गया है। यह अध्ययन हमें विभिन्न प्रकार की हवाओं और उनकी उत्पत्ति, उनके प्रभावों और उनके महत्व को गहराई से समझने में मदद करेगा, जिससे हम मौसम और जलवायु के विभिन्न पहलुओं को बेहतर ढंग से समझ सकेंगे।

9.16 बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1. सापेक्षिक आर्द्रता की ईकाई क्या होती हैं?

(क) ग्राम/घन मीटर **(ख)** ग्राम/किग्रा **(ग)** ग्राम/वर्गमीटर **(घ)** यह अनुपात होता है।

2. यदि ओसांक बिन्दु हिमांक के नीचे है तो क्या होगा?

(क) पाला **(ख)** ओस **(ग)** कोहरा **(घ)** धुन्ध

3. ओस बनने के लिए कौन सी आवश्यक दशा नहीं है?

(क) लम्बी रात **(ख)** मेघरहित आकाश **(ग)** तीव्र वायु **(घ)** ओसांक का हिमांक से ऊँचा होना

4. किस प्रकार की वर्षा मूसलाधार व दैनिक होती है।

(क) संवहनीय वर्षा **(ख)** पर्वतकृत वर्षा **(ग)** चक्रवाती वर्षा **(घ)** इनमें से कोई नहीं

5. वायुमण्डल में जलवाष्प की कितनी मात्रा पायी जाती है?

(क) 1% **(ख)** 5% **(ग)** 10% **(घ)** 15%

6. वायु का तापमान बढ़ने से सापेक्षिक आर्द्रता क्या होती है?

(क) बढ़ जाती है **(ख)** घट जाती है

(ग) स्थिर रहती है **(घ)** पहले बढ़ती है फिर घटती है

7. आकाश में सबसे ऊँचा बादल कोन है?

(क) पक्षाभ **(ख)** वर्षा मेघ **(ग)** स्तरी **(घ)** कपासी

8. कौन सा क्षेत्र संवहनीय वर्षा प्राप्त करता है?

(क) भूमध्य रेखीय क्षेत्रीय **(ख)** भूमध्य सागरीय क्षेत्र

(ग) पश्चिमी घाट **(घ)** उत्तरी पश्चिमी यूरोप

9. ओसांक वह तापमान है जब–

(क) वाष्पीकरण आरम्भ होता है **(ख)** मेघों की रचना शुरू होती है

(ग) जलवाष्प, जल में परिवर्तित होने लगता है **(घ)** वर्षा आरम्भ होती है

10. कौन सी वायु की उस दशा को दर्शाता है जिसमें नमी उसकी पूरी क्षमता के अनुरूप हो।

(क) सापेक्ष आर्द्रता **(ख)** विशिष्ट आर्द्रता **(ग)** निरपेक्ष आर्द्रता **(घ)** सतृप्त वायु

9.17 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. वाष्पन तथा वाष्पोत्सर्जन की दर को नियंत्रित करने वाले कारकों का वर्णन करें

2. सापेक्ष आर्द्रता व निरपेक्ष आर्द्रता में क्या अन्तर है

3. मेघ कैसे बनते हैं? औसत ऊंचाई के आधार पर मेघों की तीन प्रकार बताइए

4. वर्षा कैसे होती है? यह कितने प्रकार की होती है? स्पष्ट करें

5. संसार में वृष्टि– वितरण की मुख्य विशेषताओं की विवेचना कीजिए। इस वितरम को नियंत्रित करने वाले कारक कौन से है?

9-18 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

1.डी एस. लाल – जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज

2 प्रो0 सविद्र सिंह – जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पुस्तक भवन प्रयागराज

3. डा. वाई. आई. सिंह – जलवायु विज्ञान, एशियन ह्यूमेनटिस प्रेस (AHP)

4.डॉ चतुर्भुज मामोरिया – डा. एम. एस. सिसोदिया – जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, साहित्य भवन कानपुर

इकाई 10

वायुराशियॉ, अर्थ एवं संकल्पना, विशेषतायें, तथा वर्गीकरण, विश्व की प्रमुख वायुराशियां

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 वायुराशियाँ
10.4 परिभाषा
10.5 वायुराशियों की विशेषताएं
10.6 वायु राशियों के उत्पत्ति क्षेत्र
10.7 वायुराशियों का रूपान्तरण
10.8 वायुराशियों का वर्गीकरण
10.9 प्रमुख वायुराशियों की विशेषताएं
10.10 उ० अमेरिका की वायुराशियाँ
10.11 एशिया की वायुराशियाँ
10.12 यूरोप की वायुराशियाँ
10.13 सारांश
10.14 बहुविकल्पीय प्रश्न
10.15 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
10.16 बहुविकल्पीय प्रश्न
10.17 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

10.1 प्रस्तावना

दिवतीय सेमेस्टर के पुस्तक में हम लोग वायुराशि, और वितरण की चर्चा करेंगे एवं जलवायु विज्ञान के अध्ययनरत छात्रों के लिए ही नहीं बल्कि समूचे मानव समुदाय के लिए वायुमंडल अथवा जलवायु की समझ आवश्यक होती है हम कोई भी कार्य करें उसमें वायुराशि, की जानकारी, उसकी पूर्व सूचना, उसके संपूर्ण विश्लेषण की जानकारी आवश्यक होती है यात्रा प्रारंभ करने से पूर्व या विमान द्वारा उड़ान भरने से पूर्व, खेतों में कृषि कार्य करने से पूर्व, सड़क निर्माण से पूर्व, नहर में पानी छोड़ने से पूर्व, बिल्डिंग निर्माण के कार्य के पूर्व, संपूर्ण कार्यों के पहले हमें मौसम के बारे में जानकारी एकत्रित करनी होती है दिन प्रतिदिन निश्चित रूप से वायुमंडल की विभिन्न क्रियाकलापों से प्रभावित होते हैं इस इकाई में उसकी विशेषताएं, उसके वर्गीकरण, विद्वानों द्वारा उसके बारे में दिए गए विचार, वायुराशि के वर्गीकरण आदि का वर्णन करेंगें।विश्व में अनेक प्रकार की वायुराशियां है जो महाद्वीप स्तर पर विभाजित की गई है एशिया, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, अफ्रीका, यूरोप वायुराशि, अलग–अलग स्वभाव की होती है।वायुराशि, के वर्गीकरण में भौगोलिक वर्गीकरण वायुदाब उच्चवायुदाव के तंत्र के विकास से चक्रवात और प्रतिचक्रवात जैसे वायु भवंर का उद्भव होता है ।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित उद्देश्य की पूर्ति हो सकेगी

1 इस इकाई के अध्ययन से हम वायुराशि की विशेषताओं को समझ सकेंगे

2 हम विभिन्न प्रकार की वायुराशियां विभिन्न प्रकार के मौसम में किस प्रकार अपना योगदान देती है उसे समझ सकेंगे

10.3 वायुराशिया (AIR MASSES) –

वायुमंडलीय विज्ञान में, वायुराशि एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। वायुराशि एक बड़ा वायुमंडलीय खंड होता है जिसमें एक समान तापमान और आर्द्रता होती है। ये व्यापक भौगोलिक क्षेत्रों को आच्छादित करते हैं और अपने स्रोत क्षेत्र की विशेषताओं को लेकर चलते हैं। वायुराशियों का अध्ययन मौसम पूर्वानुमान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि ये विभिन्न प्रकार की मौसम परिस्थितियों को प्रभावित करते हैं। वायुराशियों की प्रमुख विशेषताएँ उनके तापमान और आर्द्रता होती हैं। इनकी विशेषताएँ इस पर निर्भर करती हैं कि वे किस प्रकार के स्रोत क्षेत्र से उत्पन्न हुए हैं।इस इकाइ में, हम वायुराशियों की परिभाषा, उनकी विशेषताओं और वर्गीकरण के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे। हम यह जानेंगे कि किस प्रकार विभिन्न प्रकार की वायुराशियाँ बनती हैं और कैसे ये मौसम पर प्रभाव डालती हैं। इसके अलावा, हम विश्व की प्रमुख वायुराशियों की पहचान और उनकी विशेषताओं को समझेंगे, जिससे हमें विभिन्न मौसम परिस्थितियों की भविष्यवाणी करने में सहायता मिलेगी। इन जानकारियों से हमें प्राकृतिक आपदाओं से बचाव के उपाय करने में भी मदद मिलेगी।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय नार्वे के दो प्रमुख वैज्ञानिकों पिता, पुत्र वी0 वक्रनिज एवं जे वक्र निज में वृहद स्तरीय वायुमण्डलीय परिसंचरण का क्षैतिज एवं लम्बवत अध्ययन करते हुए दोनों रूपों में (क्षैतिज एवं लम्बवत) तापमान एवं आर्द्रता की दृष्टिकोण से समान विस्तृत वायुपुंज को निर्धारित किया जिसे वायुराशि के नाम से सम्बोधित किया गया। 1940 ई० से 50 के दशक में वायुमण्डल के संदर्भ में किये गये और अधिक अध्ययनों के उपरान्त वायुराशि की इस संकल्पना की व्याख्या को व्यापक बल मिला। आगे किये गये अध्ययनों में वायुराशि का सम्बन्ध सिनाप्टक (SYNOPTIC) जलवायु विज्ञान से जोड़ दिया गया। जैसा कि **ओलिवर एवं हिडोरे** का मत है कि वायुमण्डलीय परिसंचरण के सन्दर्भ में किए गए जलवायुविक अध्ययन को सिनाप्टक (SYNOPTIC) जलवायु विज्ञान कहा जाता है इस विज्ञान के अंतर्गत हवाओं के परिसंचरण, मौसम प्रकारों एवं जलवायु सम्बन्धी प्रादेशिक तथ्यों के मध्य विद्यमान सम्बन्धों के अध्ययन पर बल दिया जाता है।

10.4 परिभाषा (DEFINITION) –

अब तक वायुराशि को अनेक विद्वानों के द्वारा परिभाशित किया गया है जिनमें निम्नलिखित परिभाषाएँ विशेषतः उल्लेखनीय है।

ट्रिवार्थ के अनुसार– वायुराशि वायुमण्डल का एक सघन एवं विस्तृत भाग है, जिसकी ताप तथा आद्रता सम्बन्धी विशेषताएं विभिन्न स्तरों पर क्षैतिज दिशा में लगभग एक समान रहती हैं। **गार्डनर के अनुसार**– वायुराशि को एक विशाल वायु समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके भौतिक दशाओं (विशेषतः तापमान एवं आर्द्रता)में विशाल भौगोलिक क्षेत्रफल पर समरूपता मिलती है।

पेटर्सन के अनुसार– वायुराशि एक ऐसा समूह है जिसकी भौतिक विशेषताएं, ताप एवं आर्द्रता क्षैतिज रूप में लगभग समान होती है।

गोल्डन रिचर्ड एवं ओर्डवे वे के अनुसार – वायुराशियाँ क्षोभमण्डल के निचले भाग का तुलनात्मक का बड़ा भाग है जो धरातल के समान्तर सैकड़ों मील तक जा सकती है। **निओवर्गर तथा स्टेशन के अनुसार** –

वायु का वृहद समूह जो धरातल के प्रत्येक स्थान पर कम या अधिक तापमान एवं आर्द्रता रखता है, वायुराशि कहलाता (A large body of air having more or less uniform temperature and humidity characteristis at each level is called an ais mass.)

उपर्युक्त परिभाषाओं के द्वारा यह स्पष्ट है कि वायु राशि वायु का एक ऐसा विस्तृत क्षेत्र है जिसमें अलग–अलग ऊंचाइयों पर तापमान व आर्द्रता से संबंधित विशेषताएं लगभग एक जैसी रहती हैं।

सविंद्र सिंह ने स्पष्ट करते हुए कहा है कि "वायुराशियों के भौतिक गुणों की समरूपता किस की प्रकृति एवं मात्रा पर निर्भर करती हैः (1) धरातलीय विशेषताएं, (2) वायुराशियों के स्रोत, क्षेत्रों के गुण तथा उनके संचलन की दिशा,

(3) स्रोत स्थल से दूर मार्ग में होने वाले ऊष्मागतिक परिवर्तन तथा (4) वायुराशि की आयु **(सविंद्र सिंह, 2005)।** इन उपर्युक्त गुणों में धरातलीय सतह पर पर्याप्त विभिन्नतायें होती हैं फलतः वायुराशियों में तापमान एवं आर्द्रता से सम्बन्धित क्षैतिज समान्तर पूर्णतः सम्भव नहीं है। इसी प्रकार ऊँचाई के साथ तापमान एवं आर्द्रता में परिवर्तन होता है। अस्तु वायुराशियों के भौतिक गुणों की समरूपता (क्षैतिज एवं लम्बवत) को मात्र सामान्य अर्थो में ही लेना चाहिए।

10.5 वायुराशियों की विशेषताएं (CHARATERISTICS OF AIRMASSES) –

वायुमंडल के उस विस्तृत तथा घने भाग को वायुराशि कहा जाता है जिसमें विभिन्न ऊंचाई पर क्षैतिज सन्दर्भ में तापमान व आर्द्रता से सम्बन्धित विशेषताएं लगभग एक जैसी होती हैं। वायुराशियों का उद्भव तब होता है जब विस्तृत समतल भूतल पर वायुमंडलीय दशाएं अपेक्षित समय तक स्थिर होती है ताकि वायु में धरातल की आर्द्रता व तापमान सम्बन्धी विशेषताएं समाहित हो सके। वायुराशियाँ अपने उद्भव के उपरान्त उद्भव स्थल पर स्थिर न होकर आगे की ओर प्रवाहित होती रहती हैं तथा अपनी संपर्कीय क्षेत्र को प्रभावित करती है। तथा उसकी तापमान व आर्द्रता सम्बन्धी दशाओं में परिमार्जन करती रहती हैं इस प्रक्रिया के समय इन में भी परिवर्तन हो जाता है। उल्लेखनीय है कि अधिक विस्तृत आकार के परिणाम स्वरुप इनके परिवर्तन की गति मन्द रहती है जिसमें वायुराशियों के सन्दर्भ में भविष्यवाणी करना आसान रहता है।

वायुराशियों की मूल विशेषताओं, जो प्रभावित क्षेत्रों के मौसम सम्बन्धी दशाओं को नियंत्रित करती है उनमें एक है वायुराशियों में तापमान का लम्बवत वितरण तथा दूसरी है हवाओं में विद्यमान आर्द्रता की मात्रा। वायुमण्डलीय स्थिरता व अस्थिरता का बोध, वायुराशियों में तापमान के लम्बवत वितरण की प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। जबकि हवाओं में आर्द्रता की मात्र के आधार पर ही संसाधन स्वरूप व गहनता की मात्रा निर्भर करती है। मौसम की शुष्कता, आर्द्रता की स्थिति भी इसी आधार पर सुनिश्चित होती है। जलवायु के सन्दर्भ में वायुराशियों का सबसे बड़ा महत्व यह है कि यह जिस स्थान पर उत्पन्न होती है वहाँ से अन्य क्षेत्रों में संचालन के द्वारा वायुमंडल की ऊर्जा का स्थानांतरण करती रहती है।

वायुराशियों की तापीय दशा का निर्धारण तापमान के आधार पर होता है जिस सतह के ऊपर वायुराशि गतिशील होती है और उसके तापमान के सापेक्ष ही उसकी तापीय दशा का निर्धारण होता है। वायुराशि का तापमान जब उसके नीचे वाली धरातलीय सतह के तापमान से कम होता है तो उसे ठंडी और जब अधिक होता है तो उसे गर्म वायुराशि करते हैं। जब दो वायुराशियों का अभिसरण होता है तो उनके मध्य की विभाजन सीमा को वाताग्र (FRONT) कहा जाता है। जिस धरातलीय सतह पर वायु राशि गतिशील होती है उसी के भौतिक गुणों की विशेषताओं से युक्त होती है। जिस मार्ग पर वायुराशियाँ गतिशील होती हैं उस क्षेत्र की उस स्थान की तापीय आर्द्रता सम्बन्धी दशाओं को न मात्र प्रभावित व परिवर्तित करती हैं वरन् स्वयं भी प्रभावित एवं परिवर्तित होती रहती हैं वायुराशियों के द्वारा तय की गयी दूरी पर उनकी रूपान्तरण की स्थिति निर्भर करती हैं। मौसम के पूर्वानुमान के दृष्टिकोण से वायुराशियों की जानकारी अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है।

10.6 वायु राशियों के उत्पत्ति क्षेत्र (SOURCE REGION OF AIRMASSES) –

धरातल जिन क्षेत्रों में वायुराशियों का जन्म होता है उसे वायुराशियों का उत्पत्ति या जनन क्षेत्र कहा जाता है। वायुराशियों का जनन कतिपय आवश्यक दशाओं पर निर्भर करता है। यह आवश्यक एवं आदर्श दशाएं निम्नांकित –

(अ) एक विस्तृत तथा समान गुणों का क्षेत्र होना चाहिए जिससे तापमान एवं आर्द्रता सम्बन्धी दशाएं एक जैसी हों।

(ब) इनकी उत्पत्ति हेतु या तो पूर्णतः स्थल भाग हो या पूर्णतः सागरीय भाग होना चाहिए क्योंकि इन दोनों भागों से युक्त क्षेत्रों में समान तापमान व आर्द्रता के लक्षण विद्यमान ही नहीं हो सकते हैं।

(स) यदि हवाओं की गति क्षैतिज हो तो वह अपसरण के योग्य होनी चाहिए। अथवा हवाओं का अभिसरण होना ही नहीं चाहिए।

(द) धरातल सम्बन्धी विशेषताओं को आत्मसात करने हेतु वायुमण्डलीय दशाएं अधिक समय तक स्थिर होनी चाहिए ताकि वायुराशियों के उद्भव हेतु आदर्श दशा बन सके। भूतल पर वायुराशियों के निम्न छः उत्पत्ति के क्षेत्र हैं

–

(1) **ध्रुवीय सागरीय क्षेत्र** (अटलांटिक व प्रशान्त महासागर के उत्तरी क्षेत्र–शीतकाल में)

(2) **ध्रुवीय तथा आर्कटिक महाद्वीपीय क्षेत्र** (उ० अमेरिका व यूरेशिया के हिमाच्छादित भाग एवं आर्कटिक प्रदेश–शीतकाल में)

(3) **उष्णकटिबन्धीय सागरीय क्षेत्र** (प्रति चक्रवातीय क्षेत्र–शीतकाल एवं ग्रीष्मकाल)

(4) **उष्णकटिबन्धीय महाद्वीपीय क्षेत्र** (संयुक्त राज्य अमेरिका की मिसीसिपी घाटी, उ० अफ्रीका एवं एशिया क्षेत्र–ग्रीष्मकाल में अधिक व्यवस्थित)

(5) **भूमध्य रेखीय क्षेत्र** (व्यापारिक हवाओं के मध्य स्थित भूमध्यरेखीय पेटी सम्पूर्ण वर्ष)

(6) मानसूनी क्षेत्र (द०पू० एशिया)

10.7 वायुराशियों का रूपान्तरण (MODIFICATIONS OF AIRMASSES) –

अपने जनन क्षेत्र पर उद्भूत होने के उपरान्त वायुराशियाँ उस क्षेत्र भौतिक गुणों (तापमान के लम्बवत वितरण, औसत तापमान, हवा में नमी की मात्रा तथा वायु की गति) को अपने में समाहित कर लेती हैं। क्षैतिज घटकों में तापमान व आर्द्रता सम्बन्धी कमोवेश समान्ताएं रहती है परन्तु इसके लम्बवत घटक तापमान व आर्द्रता की भिन्न पायी जाती है। अपने जनन क्षेत्र से उद्भूत वायुराशि आगे प्रवाहित होते हुए जहाँ भी पहुँचती है उनको मौसमी दशाओं को न मात्र प्रभावित करती है वरन् उनमें भी प्रभावित क्षेत्रों के भौतिक गुणों के अनुसार रूपान्तरण व परिवर्तन होता रहता है। वायुराशियों के भौतिक गुणों का रूपान्तरण व परिवर्तन निम्न के द्वारा सम्भव होता है –

- प्रभावित या पहुँच क्षेत्र की धरातलीय सतह का तापमान।
- पार्थिव विकिरण के कारण ऊष्मा क्षय से धरातलीय सतह के शीतल होने की मात्रा।
- सौर्यिक विकिरण के कारण धरातलीय सतह के गर्म होने की मात्रा।
- अधिक वर्षा द्वारा वायुराशि में नमी की वृद्धि या संघनन व वर्शण से नमी में ह्रास का होना
- वायु परिसंचरण का लम्बवत परिसंचरण प्रतिरूप (वायु का गर्म या यांत्रिक कारणों से ऊपर उठना एवं वायु का नीचे बैठना।

उपर्युक्त सन्दर्भ में वायुराशियों के रूपान्तरण को दो भागों में विभाजित किया जाता है।

(1) ऊष्मागतिक परिवर्तन (THERMODYNAMIC CHANGES) –

कोई भी वायुराशि अपने जनन के पश्चात जब आगे बढ़ती है तो अपने प्रभावित क्षेत्र के धरातलीय तापमान के सन्दर्भ में नीचे से शीतलन या ऊष्मन की स्थिति को जब प्राप्त कर लेती हैं तो ऊष्मागतिक परिवर्तन कहा जाता है। वस्तुतः वायुराशिया उद्भूत होने के पश्चात् उस क्षेत्र की तापीय विशेषताओं को अपने में समाहित कर लेती हैं और आगे की ओर बढ़ जाती है। यह अपने मार्ग में आने वाले क्षेत्र की मौसमी दशाओं को तो प्रभावित करती ही हैं साथ में उनके तापमान तथा आर्द्रता में परिवर्तन भी हो जाता है। यह परिवर्तन निम्न कारकों पर आधारित होता है (1) धरातलीय अथवा जलीय सतह का स्वभाव (2) जनन क्षेत्र से प्रभावित क्षेत्र तक का वायुराशियों का भ्रमण पथ (3) जनन क्षेत्र से प्रभावित क्षेत्र में वायुराशियों के पहुँचने की अवधि अर्थात दिनों की संख्या। वस्तुतः जब वायुराशि की निचली परत का तापमान उस परत से अधिक होता है जिस पर वह पहुँचती है तो वायुराशि के नीचे से ठंढ़ी होने के कारण स्थिरता आ जाने से लम्बवत गति रूक जाती है। जब वायुराशि के निचले भाग का तापमान उस सतह की अपेक्षा कम होता है जिस पर वह पहुँचती हैं तो वायुराशि का निचला भाग सतह के तापमान से गर्म होने लगता है। फलतः वायुराशि में लम्बवत गति होने के कारण वह अस्थिर हो जाती है जिससे बादलों का निर्माण व वर्षा की स्थिति का जनन होता है। धरातलीय तापमान की तुलना में जब वायुराशि गर्म होती है तो उसे गर्म वायुराशि **(W)** कहा जाता है जबकि ठंढ़ी होने पर (धरातलीय तापमान की अपेक्षा कम तापमान होने पर) उसे ठंढ़ी वायुराशि **(K)** कहा जाता है। उल्लेखनीय है कि वायुराशियों का ठंढ़ा या गर्म होना उनके नीचे स्थित सतह के तापमान पर आधारित होता है न कि उनके स्वयं के उच्च व निम्न तापमान से। जब बाहर से वायुराशियों में नमी

का प्रवेश हो जाता है तब भी उनमें ऊष्मागतिक परिवर्तन होता है।

जब वायुराशि ऐसी धरातलीय सतह पर पहुँचती है जिसका तापमान ऊपर स्थित वायुराशि के निचले स्तर से अधिक होता है तो ताप प्रवणता तेज होने के कारण वायुराशि नीचे से गर्म होकर अस्थिर हो जाती है और उनमें उपरिमुखी संचलन प्रारम्भ हो जाता है। सुनिश्चित उँचाई पर पहुँचकर वायु संतृप्त होने लगती है और संघनन प्रक्रिया तथा बादलों के निर्माण होने से वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। इसके विपरीत जब आने वाली वायुराशियों का तापमान निचले धरातलीय तापमान से अधिक होता है तो ताप प्रवणता कम होने से वह वायुराशियों नीचे से ठंढ़ी होने लगती है। फलतः वायुराशियों के स्थिर होने से मौसम शुष्क हो जाता है।

(2) यान्त्रिक परिवर्तन (MECHANICAL CHANGES) –

हवाओं के उपरिमुखी लम्बवत परिसंचरण का अधोमुखी परिसंचरण (वायु का उत्थापन या अवतलन) तथा अभिवहनीय परिसंचरण व उनसे होने वाले परिवर्तनों को वायुराशियों का यान्त्रिक परिवर्तन कहा जाता है। नीचे उतरने वाली हवाओं को स्थिर हवा तथा ऊपर उठने वाली हवाओं को अस्थिर वायु कहा जाता है। वायुराशियों में हवाओं के हवाओं के इस उपरिमुखी व अधोमुखी संचलन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों विशेषतः तापमान व आर्द्रता की मात्रा में परिवर्तन को यान्त्रिक परिवर्तन कहा जाता है। इस प्रकार के यान्त्रिक परिवर्तन का कारण चक्रवातीय व प्रतिचक्रवाती दशाएं होती है। वायु राशियों का यान्त्रिक परिवर्तन निम्न रूपों में भी देखा गया है।

- वायुराशियों के अभिसरण व उनके तापमान के ह्रास दर पर प्रभाव के द्वारा।
- भंवर व संवहन के प्रक्षुद्ध मिश्रण द्वारा।
- हवाओं के अवतलन एवं धरातलीय सतह पर अवतलित हवाओं के क्षैतिज रूप में प्रसरित होने के कारण। (प्रति चक्रवातीय दशा)
- हवाओं के उत्थापन तथा उनके धरातलीय सतह के ऊपर अभिसरित होने के कारण। (चक्रवातीय दशा)
- हवाओं के क्षैतिज परिसंचरण या अभिवहनीय परिसंचरण के कारण।

वस्तुतः ऊष्मागतिक व यान्त्रिक परिवर्तनों को आधार मानकर वायुराशियों को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

10.8 वायुराशियों का वर्गीकरण (CLASSIFICATION OF AIRMASSES) –

वायुराशियों के गुणों में परिवर्तन करने वाली मूलभूत प्रक्रियाओं (ऊष्मा गतिक परिवर्तन की प्रक्रिया, यान्त्रिक गतिक प्रक्रिया) के आधार पर वर्गरान ने वायुराशियों को दो वर्गों में विभक्त किया है।

(1) वायुराशियों का भौगोलिक वर्गीकरण –

(2) वायुराशियों का ऊष्मागतिक वर्गीकरण –

भौगोलिक वर्गीकरण (GEOGRAPHICAL CLASSIFI CATION) –

भौगोलिक वर्गीकरण में वायुराशियों के उत्पत्ति क्षेत्रों की विशेषताओं को आधार माना जाता है। वायुराशियों की भौगोलिक अवस्थितियों को आधार मानकर जी०टी० ट्रिवार्थ ने उन्हें दो वर्गों में विभाजित किया है। (1) उष्णकटिबन्धीय वायुराशियां (इसका जनन उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में होता है तथा भूमध्यरेखीय वायुराशियाँ भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं। (2) ध्रुवीय वायुराशि (इसका जनन ध्रुवीय विस्तृत क्षेत्रों में होता है। आर्कटिक वायुराशियाँ भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं)। स्थल तथा जल के आधार पर उपर्युक्त दोनों वायुराशियों को महाद्वीपीय एवं महासागरीय प्रकारों में विभाजित किया जाता है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है जब सागरों से होकर महाद्वीपीय वायुराशि गुजरती है तो उसमें नमी आ जाने से उनका सागरीय प्रकारों में रूपान्तर हो जाता है। जबकि सागरीय प्रकार की वायुराशि का आसानी से महाद्वीपीय प्रकार की वायुराशि में रूपान्तरण नहीं होता। इस प्रकार वायुराशियों को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) उष्णकटिबन्धीय (T) वायुराशि –

(अ) महाद्वीपीय कटिबन्धीय (T) वायुराशि

(व) महासागरीय उष्णकटिबन्धीय (MT) वायुराशि

(2) ध्रुवीय (P) वायुराशि

(अ) महाद्वीपी ध्रुवीय (CP) वायुराशि

(ब) सागरीय ध्रुवीय (MP) वायुराशि

उष्मागतिक वर्गीकरण (THERMODYNAMIC CLASSIFICATION) –

वायुराशियों में होने वाले उष्मागतिक एवं यान्त्रिक परिवर्तनों के आधार पर उन्हें दो प्रकारों में विभाजित किया जाता है –

(1) ठंढ़ी वायुराशि

(अ) ठंढ़ी स्थिर वायुराशि

(व) ठंढ़ी अस्थिर वायुराशि

(2) गर्म वायुराशि

(अ) गर्म स्थिर वायुराशि

(ब) गर्म अस्थिर वायुराशि

(3) संयुक्त वर्गीकरण (COMPOSITE CLASSIFICATION) –

ऊष्मागतिकी, यान्त्रिक व वायुराशियों से सम्बन्धित अनेक कारकों को सम्मिलित करते हुए उनका संयुक्त वर्गीकरण प्रस्तुत किया जाता है। इस आधार पर वायुराशियों को चार प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जाता है।

(1) महाद्वीपीय ध्रुवीय (CP) वायुराशियाँ

(2) सागरीय ध्रुवीय (MP) वायुराशियाँ

(3) महाद्वीपीय उष्णकटिबन्धीय (CT) वायुराशियाँ

(4) सागरीय उष्णकटिबन्धीय (MT) वायुराशियाँ

(वायुराशियों के अध्ययन हेतु प्रयुक्त अंग्रेजी के अक्षरों का विश्लेषण करना अपरिहार्य है। जो इस प्रकार है– महाद्वीपीय / Continental,s=स्थितर / Stable, T= उष्णकटिबन्धीय / Tropical, p=ध्रुवीय / Polar, u= अस्थिर / Unstables, M= सागरीय / Maritime, K= ठंढ़ी /Cold or yolt एवं w=गर्म / warm)

उपर्युक्त चारों वायुराशियों को चार–वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। जिसका विवरण अग्रांकित हैं –

10.9 प्रमुख वायुराशियों की विशेषताएं –

वायुराशियों की प्रमुख कोटियों की विशेषताओं का विवरण निम्नवत हैं –

वायुराशि के प्रकार	**उप प्रकार की वायुराशि**	**प्रकृति**	**गुणा विशेषता**
(अ) महाद्वीपीय mp	1– महीद्वीपीय ध्रुवीय	ठंढ़ी	स्थिर (cpks)
	2– महाद्वीपीय ध्रुवीय	ठंढ़ी	अस्थिर (cpks)
	3– महाद्वीपीय ध्रुवीय	गर्म	स्थिर (cpws)
	4– महाद्वीपीय ध्रुवीय	गर्म	अस्थिर (cpwu)
(व) सागरीय ध्रुवीय mp	5– सागरीय ध्रुवीय	ठंढ़ी	स्थिर (mpxs)
	6– सागरीय ध्रुवीय	ठंढ़ी	अस्थिर (mpka)

	7– सागरीय ध्रुवीय	गर्म	स्थिर (mpws)
	8– सागरीय ध्रुवीय	गर्म	अस्थिर (mpwu)
(स) महाद्वीपीय उष्णकटिबन्धीय ct	9– महाद्वीपीय उष्णकटिबन्धीय	ठंढ़ी	स्थिर (ctks)
	10– महाद्वीपीय उष्णकटिबन्धीय	ठंढ़ी	अस्थिर (ctku)
	11– महाद्वीपीय उष्णकटिबन्धीय	गर्म	स्थिर (ctws)
	12– महाद्वीपीय उष्णकटिबन्धीय	गर्म	अस्थिर (ctwu)
(द) सागरीय उष्णकटिबन्धीय mt	13– सागरीय उष्णकटिबन्धीय	ठंढ़ी	स्थिर (mtks)
	14– सागरीय उष्णकटिबन्धीय	ठंढ़ी	अस्थिर (mtka)
	15– सागरीय उष्णकटिबन्धीय	गर्म	स्थिर (mtws)
	16– सागरीय उष्णकटिबन्धीय	गर्म	अस्थिर (mtwu)

(अ) ध्रुवीय महाद्वीपीय वायुराशि (CP) –

यह वायुराशियाँ मध्य कनाड़ा व साइवेरिया की शीतल सतहों पर उद्‌भूत होकर मार्ग में चतुर्दिक अग्रसर होती हैं और इनमें उष्मागतिक व यान्त्रिक परिवर्तन हो जाता है। ग्रीष्म एवं शीतकाल में इन वायुराशियों की विशेषताएं अलग–अगल हो जाती हैं। वस्तुतः ध्रुवीय महाद्वीपीय वायुराशियाँ सामान्तया शीतल एवं शुष्क होती है परन्तु जब यह गर्म सतहों पर से गुजरती हैं तो नीचे की ओर से यह गर्म होने लगती है फलतः न मात्र इनमें अस्थिरता आ जाती है वरन् इनके आर्द्र होने की प्रकिया भी प्रारम्भ हो जाती है जिससे सीमित मात्रा में बादलों का निर्माण हो जाता है। इनके जनन क्षेत्र शीतकाल में वर्फ से आच्छादित रहते हैं जिससे यह वायुराशियाँ अति ठंढ़ी, शुष्क एवं स्थिर रहती है और जिन क्षेत्रों में इनका आगमन होता है तापमान हिमांक बिन्दु से नीचे चला जाता है तथा शीतकालहरों का प्रवाह होने लगता है। शीतकाल की अवधि में इन्हीं वायुराशियों के आगमन पर संयुक्त राज्य अमेरिका के मिसीसिपी मैदान में मौसम अत्यन्त शीत हो जाता है। ग्रीष्मकाल की अवधि में भी कभी–कभी सुदूरवर्ती दक्षिणी क्षेत्र में स्थित न्यूआर्लियन्स, गाल्वेस्टन एवं ह्यूस्टन प्रान्तों में तापमान हिमांक बिन्दु से नीचे चले जाने के कारण पाला की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जब भी ये महासागरीय सतहों से होकर गुजरती है तो नीचे गर्म होकर अस्थिर होने लगती हैं फलतः निचले उँचाई वाले बादलों का निर्माण हो जाने से कभी–कभी वर्षा भी अल्प मात्रा में हो जाती है।

(ब) ध्रुवीय सागरीय वायुराशि (MP) –

यह वायुराशियाँ भी मध्य कनाडा व साइवेरिया में जनित होती हैं। वस्तुतः जब महाद्वीपीय ध्रुवीय वायुराशियां अपने जनन क्षेत्र से प्रवाहित होकर महासागरीय सतहों के ऊपर पहुँचती हैं तो उच्च अक्षाँशों में स्थित अपेक्षाकृत गर्म सागरीय सतहों के कारण ये वायुराशियाँ निचले भागों से गर्म होने लगती हैं, इसी परिवर्तन के कारण अथवा पश्चात ध्रुवीय सागरीय वायुराशियों का जनन होता है। इसी प्रकार के परिवर्तन के कारण ध्रुवीय सागरीय वायुराशियों में तापीय पतनदर बढ़ जाता है और वायुराशियों के निचले भाग में संवहनीय अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है। जबकि इसके विपरीत वायुराशियों का ऊपरी भाग ठंढ़ा एवं शुष्क रहता है। इस प्रकार रूपान्तरित सागरीय ध्रुवीय वायुराशियाँ पर्वतीय अवरोध के कारण वलात् ऊपर उठकर स्थिर हो जाती है। इस प्रकार संवहनीय अस्थिरता के कारण संघनन प्रारम्भ होता है और पर्वतीय पवनमुखी ढ़ालों पर पर्याप्त वर्षा होती है परन्तु यही वायुराशियों जब पर्वतों के दूसरी ओर पवनविमुखी ढ़ालों के सहारे नीचे उतरती है तो एडियावेटिक विद्या से गर्म होकर स्थिर महाद्वीय ध्रुवीय वायुराशियाँ हो जाती है। ऐसी स्थितियां उ० अमेरिका के प० तटों पर देखने को मिलती है।

(स) महाद्वीपीय उष्णकटिबन्धीय वायुराशि (CT) –

इन वायुराशियों का जनन दोनों गोलार्द्धों में 20^0 से 30^0 अक्षाँशों के मध्य स्थित गर्म रेगिस्तानों के उपोष्ण उच्चवायुदाब के क्षेत्रों में होता है। उल्लेखनीय है कि इन क्षेत्रों में हवाओं का अवतलन होने के साथ–साथ धरातल की सतह पर हवाओं का अपसरणीय परिसंचरण होता है (अति चक्रवातीय दशाएं होती हैं)। इन वायुराशियों का तापमान 40^0 से०ग्रे० से अधिक रहता है। न्यूनतम आर्द्रता, उच्चताप पतन दर, वायुमण्डलीय स्थिरता एवं व शुष्क

मौसम इन वायुराशियों की प्रमुख विशेषता है। ये वायुराशियाँ अपने उत्पत्ति क्षेत्रों से बाहर की ओर शायद ही कभी गतिशील होती है, परन्तु जब भी यह सागरीय भागों पर पहुँचती है, परिवर्तित होकर सागरीय उष्णकटिबन्धीय वायुराशियों के रूप में बदल जाती है।

(द) सागरीय उष्णकटिबन्धीय वायुराशि (MT) –

इन वायुराशियों का जनन क्षेत्र सागरीय सतहों पर 30^0 से 30^0 द० अक्षाँशों के मध्य है। क्षेत्रीय विस्तार की दृष्टि से अत्यधिक विस्तृत यह वायुराशियां गर्म, अस्थिर एवं आर्द्र होती हैं। इनमें संवहतीय अस्थिरता व कपासी बादलों का निर्माण होता है। जब कभी इन वायुराशियों का वाताग्री क्रियाओं से सम्बन्ध होता है या पर्वतीय अवरोध के कारण वलात् ऊपर उठती हैं तो पर्याप्त वृष्टि करती है। जब ये वायुराशियाँ ध्रुवों की तरफ चलती हैं और ठंढ़ी धरातलीय सतहों या सागरों क ऊपर से गुजरती हैं तो ये रूपान्तरित होकर स्थित वायुराशियी हो जाती हैं परन्तु जब यह गर्म धरातलीय सतहों पर ऊपर संचरित होती हैं तो अस्थिर हो जाती है।

10.10 उ० अमेरिका की वायुराशियाँ

(अ) शीतकालीन वायुराशियाँ

(1) ध्रुवीय महाद्वीपीय वायुराशि (CP) – कनाड़ा के आन्तरिक हिमाच्छादित भाग, अलास्का व हिम से ढ़के आर्कटिक सागर के विस्तृत भागों पर उद्‌भूत होने वाली यह शुष्क तथा स्थिर वायुराशि अपने उद्‌भव के उपरान्त द० तथा द०पू० अमेरिका की ओर प्रवाहित होती है। इनके जनन हेतु विस्तृत स्थलीय भाग की समरूपता एवं धीमी प्रति चक्रवातीय वातीय हवाओं के संचरण की दशाएं विशेषतः उत्तदायी हैं। उच्च अक्षाँशीय क्षेत्रों में सूर्य की किरणें तिरछा पड़ने के फलस्वरूप कम सूर्यातप प्राप्त होने तथा हिम से ढके हुए सतह से ऊर्जा–परावर्तन के कारण धरातल पर्याप्त ठंढ़ा रहता है जबकि उसके ऊपर स्थित हवाएं अपेक्षतया गर्म रहती हैं, फलतः 1.6 कि०मी० की उँचाई तक प्रातःकाल होते–होते तापीय प्रतिलोमन की दशाएं बन जाती हैं। पश्चिमी भाग में राकी पर्वत की अवस्थिति के कारण यह भाग सागरीय प्रभाव से वंचित रह जाता है। अत्यधिक शुष्कता व स्थिरता के कारण बादलों का निर्माण प्रायः नहीं होता है। राकी पर्वत एवं महान झीलों के प्रदेश के मध्य से संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रवेश करने वाली यह वायुराशियाँ खाड़ी तटीय प्रान्तों तक पहुँचकर शीत लहरों का सृजन करती हैं जिससे अधिकतर क्षेत्रों का तापमान हिमाँक बिन्दु से नीचे चला जाता है। इसी समय द० से आने वाली उष्णकटिबन्धीय हवाओं के इन शीत हवाओं से मिलने पर ध्रुवीय वाताग्रों का निर्माण होता है जिससे मध्य संयुक्त अमेरिका में शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों का निर्माण होता है। महान झीलों के द० तटों पर पहुँचने के उपरान्त ध्रुवीय महाद्वीपीय ठंढ़ी वायुराशि परिवर्तित होकर आर्द्र व अस्थिर होकर हिम के रूप में भारी वृद्धि करती है जिसे लेक स्नों इफेक्ट कहा जाता है।

ध्रुवीय महाद्वीपीय वायुराशि जब मध्यवर्ती इलिनाइस प्रान्त को पारकर हिमा विहीन धरातल से गुजरती हैं नीचे से गर्म होने लगती हैं और उनमें उष्णता आने लगती है तथा **K** गुण **(KALT- ठंढ़ा)** की जगह पर **W** गुण **(WARM-गर्म)** उद्‌भूत होने लगता है और स्थिरता वस्तुतः कम होना प्रारम्भ हो जाती है। ऊपर से हवाओं का अवतलन होने के कारण वायुराशि का **S** गुण **(STABLE स्थिरता)** बना रहता है। यान्त्रिक विक्षोभ के कारण धरातलीय प्रतिलोमन समाप्त हो जाता है। इस वायुराशि के मैक्सिको खाड़ी पहुँचने पर **CPKS** वायु **MPKS** (सागरीय ध्रुवीय ठंढ़ी स्थिर) तथा MTKS (सागरीय उष्णकटिबन्धीय ठंढ़ी स्थिर वायु) में परिवर्तित हो जाती है। जब यह ध्रुवीय महाद्वीपीय ठंढ़ी स्थिर **(CPKS)** वायुराशि संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्व की ओर अग्रसर होती है तो ऊपरी भाग में वायु की स्थिरता घटने लगती है। महान झीलों तथा एल्युशियन के कारण वायुराशि में ऊष्मा के मिश्रण के फलस्वरूप उसका तापमान बढ़ने लगता है। जब यही वायुराशि एल्युशियन व उच्च भाग के प० ढ़ाल के सहारे ऊपर की ओर उठती है तो सामान्य मेंघाच्छादन एवं हिमपात की स्थिति बन जाती है। परन्तु जब यह पूर्वी ढ़ाल के सहारे नीचे उतरती है तो अवतलन के परिणामस्वरूप वायु उष्ण हो जाती है, बादल व हिमपात की स्थिति भी समाप्त हो जाती है।

(2) सागरीय ध्रुवीय प्रशान्त महासागरीय वायुराशि (MP) –

उत्तरी प्रशान्त महासागर के उत्तरी भाग में यह वायुराशि उद्‌भूत होती है जहाँ शीतकाल की अवधि में एल्यूशिया निम्न दाब का क्षेत्र निर्मित हो जाता है। मात्र दक्षिण दिशा को छोड़कर शेष चारों ओर से यह क्षेत्र महाद्वीपीय ध्रुवीय वायुराशि के क्षेत्र से घिरा हुआ है। इस भाग में सागरीय जल की सतह उस पर स्थित हवाओं की तुलना में अधिक गर्म होती है। परिणामतः जब इस क्षेत्र में ध्रुवीय महाद्वीपीय वायु प्रवेश करती है तो नीचे से गर्म

होने के कारण वह अस्थिर (U) हो जाती है और उनमें नमी की मात्रा में भी वृद्धि हो जाती है। जब यह वायुराशि (MPKU) उ० अमेरिका के प० तट के समीप पहुँचती है तो उसका तापमान हिमांक बिन्दु से ऊँचा रहता है। निम्न उँचाई के बादलों की उपस्थिति रहने के कारण प्रायः वर्षा हो जाया करती है। वस्तुतः यह वायुराशि जब तटीय पहाड़ियों के सहारे ऊपर उठती है तो निचले भागों में जल दृष्टि व ऊपरी भागों में हिमपात होता है। ग्रीष्मकालीन अवधि में यह वायुराशि स्थिर हो जाती है। जब यह वायुराशि तटीय पहाड़ियों व राकी पर्वत को पार करके आन्तरिक भागों में प्रवेश करती है तो उष्मागतिक परिवर्तनों के कारण बदल जाती है तथा इसका स्वभाव शीतल, शुष्क व स्थिर महाद्वीपीय (CPKS) हो जाता है। इसी वायुराशि के कारण मध्यवर्ती संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति चक्रवातीय दशाएं उद्भूत हो जाती हैं, मौसम साफ, हवाओं का वेग मन्द एवं तापमान सामान्य हो जाता है।

(3) सागरीय ध्रुवीय अटलांटिक वायुराशि (MP) –

ग्रीनलैण्ड, न्यूफाउडलैण्ड तथा लैब्रोडोर के मध्यवर्ती भाग में उद्भूत यह वायुराशि उ० अमेरिका के मौसम को नाम मात्र का प्रभावित करती है। जहाँ यह उद्भूत होती है वहाँ का शरदकालीन तापमान 5^0 से 40^0 फा० व ग्रीष्मकालीन तापमान 50^0 से 60^0 फा० रहता है। एल्युशियन पर्वत के पूर्व तक ही मात्र चक्रवातीय एवं प्रति चक्रवातीय दशाओं का प्रभाव अनुभव किया जाता है। दक्षिणी में हेडरस खाड़ी के आगे इसका यह प्रभाव भी शून्य हो जाता है। यह वायुराशि ऊपरी भाग में शुष्क तथा स्थिर व निचले भाग में अस्थिर तथा आर्द्र होती है।

(4) सागरीय उष्णकटिबन्धीय खाड़ी अटलांटिक वायुराशि (MT) –

मैक्सिको खाड़ी, कैरेवियन सागर तथा परिचमी अटलांटिक के उपोष्ण भागों में इन वायुराशियों का जनन होता है। राकी पर्वत के पूर्व उ० अमेरिका के आधिकाँश भाग को यह वायुराशि प्रभावित करती है। जनन क्षेत्र में इसका तापमान लगभग (21^0 से०ग्रे० से 26^0 से०ग्रे०) समान रहता है जिससे यह वायुराशि गर्म व आर्द्र होती है। मध्यवर्ती तथा दक्षिणी संयुक्त राज्य अमेरिका के ऊपर शीतकाल में महाद्वीपीय ध्रुवीय (CP) वायुराशि का विस्तार रहता है जिसके कारण खाड़ी अटलांटिक वायुराशि का संयुक्त राज्य अमेरिका में कठिनाई के साथ प्रवेश हो पाता है। जब भी यह वायुराशि संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रवेश करती है तो यह सतह से गर्म होती है फलतः नीचे से ठंढ़ी होकर शुष्क व स्थिर (MTWS) हो जाती है जिससे वर्षा नहीं हो पाती है। परन्तु जब भी यह वायुराशि ध्रुवीय वायुराशि के सम्पर्क के आती है तो उच्चवायुमण्डलीय अस्थिरता में वृद्धि होने से वायुराशि परिवतर्तित होकर MTWU हो जाती है। यह वायुराशि पर्वतीय अवरोध के सहारे जब भी ऊपर उठती है, वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। चक्रवातीय संचरण में वाताग्र के सहारे सागरीय खाड़ी वायुराशि के ऊपर उठने से शीतकाल की अवधि में हिमपात व जल दृष्टि होती है।

(5) सागरीय उष्णकटिबन्धीय प्रशान्त महासागरीय वायुराशि (MT) –

पश्चिमी संयुक्त राज्य अमेरिका तथा मैक्सिको के प० उपोष्ण कटिबन्धीय पूर्वी प्रशान्त महासागरीय भागों में इस वायुराशि का जनन होता है। यहाँ पर प्रति चक्रवातीय संचरण के कारण वायु में अवतलन से स्थिरता (S) आ जाती है। यह उष्णकटिबन्धीय सागरीय स्थिर (MTS) वायुराशि जब उ० अमेरिका के प्रशान्त तट के निकट पहुँचती हैं तो यह शुष्क ठंढ़ी तथा स्थिर होती हैं। यह वायुराशियाँ जब चक्रवातीय संचरण के सम्पक्र में आती है तो इनमें अस्थिरता (U) आ जाती है और वर्षा भी होने लगती है। राकी पर्वत के पूर्व में यह वायुराशि नहीं पहुँच पाती है।

(ब) ग्रीष्मकालीन वायुराशियाँ

(1) महाद्वीपीय ध्रुवीय वायुराशि (CP) –

कनाड़ा के आन्तरिक हिमाच्छादित भाग, अलास्का व हिमाच्छादित आर्कटिक भागों में इन वायुराशियों का जनन होता है। शीतकाल के विपरीत ग्रीष्मकाल में तापमान अधिक हो जाता है परन्तु समीप के सागरीय भाग का तापमान अपेक्षाकृत कम होता है। जब यह हवा महासागरीय भाग में प्रवेश करती है तो नीचे से गर्म होने के कारण K गुण से युक्त हो जाती हैं। प्रति चक्रवातीय दशाओं के कारण उँचाई पर CP वायुस्थिर (S) हो जाती है। जब ये हवाएं जनन स्थल से द० की ओर प्रवाहमान होती हैं तो अधिक दूरी तक प्रवेश नहीं कर पाती हैं। जबकि पूर्व की ओर यह अधिक दूर तक प्रवेश कर जाती हैं। जब चक्रवातीय संचरण में CP वायु प्रविष्ट होती है तो ऊष्मा के मिल जाने के कारण वह स्थिर हो जाती हैं।

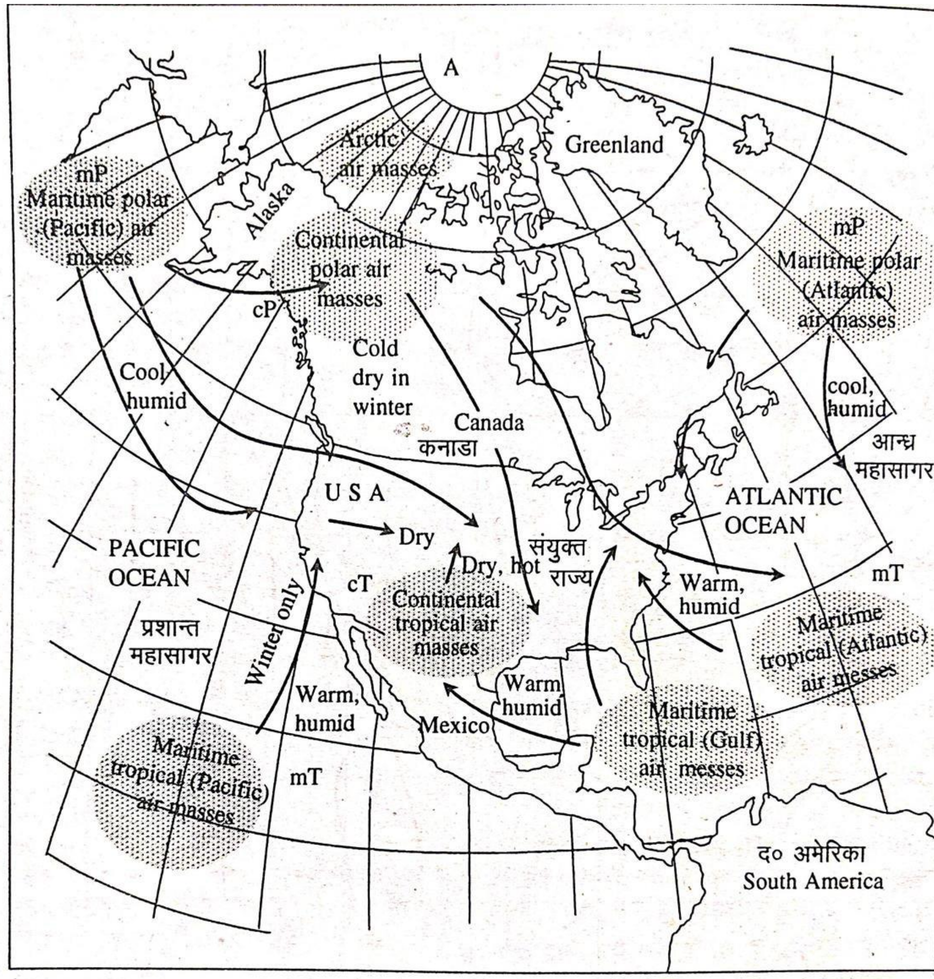

उत्तरी अमेरिका की वायुराशियां तथा उनके स्रोत क्षेत्र।

Source : based on J.M. Morgan and M.D. Morgan, in Oliver and Hidore, 2003.

(2) सागरीय ध्रुवीय वायुराशि (MP) प्रशान्त महासागरीय –

उ० प्रशान्त महासागर के अल्यूशियन द्वीप के निकट इस वायुराशि का जनन होता है। वस्तुतः ग्रीष्मकालीन अवधि में यहाँ उच्च वायुदाब बन जाने के कारण हवाएं नीचे उतरकर स्थिर हो जाती हैं जिससे यह वायु शीतल एवं स्थिर (MPXS) हो जाती हैं, बादलों का निर्माण व वर्षा नहीं होती है। इस वायुराशि के द० कैलीफोर्निया तक पहुँच जाने के कारण प्रशान्त तटीय भागों का तापमान कम हो जाता है।

(3) सागरीय ध्रुवीय (MP) अटलांटिक वायुराशि –

उ० अमेरिका के पूर्वीतट पर केप कनाडा तथा न्यूफाउन्डलैण्ड के बीच इस वायुराशि का जनन होता है। यह ठंढ़ी तथा स्थायी द० में उत्तरी फ्लोरिडा तक पहुँचती है और वहाँ का तापमान 15^0 से 25^0 फा० कम हो जाता है। इस वायुराशि के साथ निम्न तापमान, स्वच्छ मौसम तथा पूर्ण दृश्यता की विशेषताएं सम्बद्ध रहती है। शुष्कता विद्यमान रहने के कारण कुहरा नहीं पड़ता है।

(4) सागरीय उष्णकटिबन्धीय (MT) गल्फ व अटलांटिक वायुराशि –

इस वायुराशि का जनन ग्रीष्मकालीन अवधि में वरमूड़ा के निकट उच्चदाब व संयुक्त राज्य अमेरिका के ऊपर निम्न दाब के कारण होता है। इस वायुराशि से राकी पर्वत के पूर्व का सम्पूर्ण भाग प्रभावित रहता है। इस वायुराशि के प्रभाववश द० तथा द०पू० संयुक्त राज्य अमेरिका में आर्द्रता व तापमान दोनो अधिक हो जाता है जिससे मौसम असहनीय हो जाता है। यह वायुराशि जैसे ही खाड़ी तट को पार करके संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रवेश करती है धरातल का तापमान बढ़ जाता है फलतः अस्थिरता (MTKU) बढ़ जाती है। दिन ने उच्च सूर्यातप व

अस्थिरता के कारण तड़ित झंझा व चक्रवातों के साथ अति वृष्टि होने लगती है। जबकि यही वायुराशि जैसे–जैसे उ० को बढ़ती है इसकी नमी का ह्रास होने लगता है और ऊपरी मिसीसिपी घाटी प्रदेश में हवा शुष्क प्राय हो जाती है। पश्चिमी भाग में जब ये हवाएं राकी के सहारे ऊपर उठती हैं तो बादल विस्फोट के साथ मूसलाधार बारिश होती है। इसी प्रकार जब यह वायुराशि एल्युशियन को पार करती है तो तड़ित झंझा के साथ मूसलाधार वर्षा होती है।

(5) सागरीय उष्णकटिबन्धीय (MT) प्रशान्त महासागरीय वायुराशि –

ग्रीष्मकाल में उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट के सहारे ध्रुवीय सागरीय (MP) वायुराशि के सक्रिय होने के कारण यह वायुराशि (MT) सक्रिय नहीं हो पाती है।

(6) महाद्वीपीय उष्णकटिबन्धीय (CT) वायुराशि –

इस वायुराशि की उत्पत्ति मैक्सिको पश्चिमी टेक्सास तथा पूर्वी मैक्सिको के क्षेत्र में होती है। दिन की अवधि में तापमान उच्च, आर्द्रता उच्च व न्यून से अत्यधिक न्यून वर्षा होती है। अपने जनन क्षेत्र से बाहर यह वायुराशि महान मैदानी प्रदेश में अनुभव की जाती है। इन्हीं के कारण शुष्कता बढ़ जाती है। मिसीसिपी के पूर्व में इस वायुराशि का विस्तार नहीं हो पाता है।

10.11 एशिया की वायुराशियाँ

(अ) एशिया की शीतकालीन वायुराशियाँ

(1) महाद्वीपीय ध्रुवीय (CP) वायुराशि –

साइवेरिया एवं वाह्य मंगोलिया के विस्तृत क्षेत्रों में इस वायुराशि का जनन होता है। जनन क्षेत्र का तापमान 5^0 से 40^0 फा० के मध्य रहता है परिणामतः वायु ठंडी एवं शुष्क हो जाती है। निचले भाग की 1 कि०मी० की उँचाई तक तापीय प्रतिलोमन होता रहता है। अपने जनन स्थल से जब यह प्रशान्त महासागर की ओर चलती हैं तो लम्बी दूरी पार करने के कारण यान्त्रिक विक्षोभ द्वारा तापीय प्रतिलोमन समाप्त हो जाता है और हवाओं के निचले स्तर में तापमान तथा आर्द्रता बढ़ जाती है।

चीन में यह वायुराशि दो मार्गों से प्रवेश करती है : (1) स्थल मार्ग एवं (2) जल मार्ग (1) मंगोलिया तथा उ० चीन के ऊपर जब उच्च वायुदाब होता है तो CP वायु चीन में स्थल मार्ग से प्रवेश करती है। जनन स्थल की अपेक्षा यह चीन में अधिक गर्म होती है। चीन के पेकिंग तथा नानकिंग के समीप तापमान 32^0 व 45^0 फा० तथा आद्रता क्रमश 30 प्रतिशत व 55 प्रतिशत होती है। वायुराशि के साथ आकाश स्वच्छ वायु ठंडी व शुष्क हो जाती है। यही वायु तीव्र गति से चलते हुए अपने साथ लाये गये धूल कणों के द्वारा लोयस के निर्माण में सहायक होती है। शीतकाल की अवधि में CP वायु अपने परिवर्तित रूप से एशिया के अधिकाँश भाग को प्रभावित करती है। हिमालय की उपस्थिति के कारण भारत इसके प्रभाव से मुक्त रहता है।

(2) जब मंचूरिया तथा जापान सागर के ऊपर उच्चदाब की स्थिति रहती है तो CP वायुराशि सागरीय मार्ग का चयन करती है। ये हवाएं जापान पोहाई की खाड़ी पीत सागर के ऊपर से होती हुई चीन में प्रवेश करती हैं जिनसे इन में पर्याप्त परिवर्तन हो जाता है। स्थल से आने वाली CP वायु से यह वायु अपेक्षित या गर्म व आर्द्र होती है। जब तक इसका सम्बन्ध वाताग्रो से नहीं होता, मौसम अच्छी अनुभूति वाला होता है। वायु के निचले स्तर में अस्थिरता रहती है। जब यह पर्वतीय अवरोध से ऊपर उठती है तो वर्षा होना तय है। एशिया के पूर्वी तट तथा चीन के दक्षिणी भागों में जब स्थानीय तथा सागरीय CP हवाएं आपस में मिलती हैं तो वाताग्रो का जनन होने से चक्रवातीय दशाएं बन जाती है।

(2) सागरीय ध्रुवीय (CP) वायुराशि –

पूर्वी एशिया में शीतकालीन अवधि में इस वायुराशि का प्रभाव दो कारणों से नगण्य हो जाता है। (1) शरदकाल में प्रमुख वायु संचार प० से पू० को होता है फलतः MP वायुराशि का प्रवेश अवरुद्ध हो जाता है। सागर का मार्ग अंग्रीकृत करके CP वायुराशि पूर्वी तट पर MP वायुराशि के सदृश्य विशेषताऐं ग्रहण करके पहुँचती है।

(3) सागरिया उष्णकटिबन्धीय वायुराशि –

उष्णकटिबन्धीय सागरी हवाएं (MT) महादीपीय ध्रुवीय (CP) हवाओं के जोर के कारण पूर्वी एशिया में

कामयाब नहीं हो पाती है क्योंकि उन्हें प्रबल CP वायु से अवरोध के कारण सप्ताह हो जाना पड़ता है। इस वायुराशि का प्रभाव दक्षिणी चीन तक रहता है परन्तु यांटिसीक्यांग तक यह बड़ी कठिनाई के साथ पहुँच पाती है शरदकालीन वायु राशियों में यह सर्वाधिक गर्म एवं आर्द्र होती है।

(व) एशिया की ग्रीष्मकालीन वायुराशियाँ –

(1) महाद्वीपीय ध्रुवीय (CP) वायुराशि –

मध्य एशिया में ग्रीष्मकालीन अवधि में तापमान की ऊँचा हो जाने के कारण ध्रुवीय वायुराशि का स्रोत और अधिक उत्तर की ओर खिसक जाता है और हवाएं भी अपेक्षाकृत गर्म हो जाती हैं। पूर्वी एवं दक्षिणी एशिया पर इसका प्रभाव अधिक महत्वपूर्ण नहीं रहता। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस समय उष्णकटिबन्धीय सागरीय (MT) वायुराशि अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं। CP वायुराशि का चीन में प्रवेश जापान सागर व पीला सागर होकर ही हो पाता है। सागरिया उष्णकटिबन्धीय वायुराशि MT की तुलना में यह ठंडी शुष्क रहती है। जहाँ पर इनका सम्पर्क MT वायुराशियों से होता है वहाँ चक्रवाती दशाओं की स्थिति बन जाती है।

(2) सागरिया उष्णकटिबन्धीय (MT) वायुराशि –

द० व पूर्वी एशिया का मौसम ग्रीष्मकाल में MT वायुराशियों द्वारा नियमित होता है। वायु राशि को ग्रीष्मकालीन मानसून के नाम से जाना जाता है। यह हवाएं गर्म, आर्द्र एवं स्थिर होती हैं। जब कभी यह हवाएं (प्रायः चीन तट के निकट) 200 से 600 मीटर ऊपर उठ जाती है, अति वृत्ति प्रारम्भ हो जाती हैं। जब यह हवा स्थलीय भाग के ऊपर होती है तो तापमान में वृश्टि के कारण दोपहर तक भारी संवहन की स्थिति बन जाती है। द० तथा मध्य चीन में यह हवा वसन्तकाल उ० चीन एवं मंचूरिया में मध्य ग्रीष्मकाल में CP वायुराशि से मिलकर चक्रवाती दशाओं का जन्म करती है।

(3) सागरीय ध्रवीय (MP) वायुराशि –

ओखोटस्क सागर के ऊपर इस वायुराशि का जन्म होता है। अपने जनन स्थल से प्रवाह मान होकर यह वायुराशि पूर्वी एशिया के उत्तर के भाग (40 प्रतिशत उत्तरी अक्षाँश) को प्रभावित करती है। ग्रीष्मकाल की अवधि में अधिक सक्रिय रहती है। मंचूरिया तथा पूर्वी साइबेरिया में इसका प्रभाव अधिक दिखाई देता है। ग्रीष्मकाल में इसका प्रसार द० जापान तक प्रारम्भ होता है परन्तु वहाँ MT वायुराशि इसे उत्तर की ओर ढकेल देती है।

10.12 यूरोप की वायुराशियाँ

पर्वतीय अवरोध न होने के कारण (पश्चिमी तटीय भागों में) सागरीय वायुराशियाँ यूरोप महाद्वीप के सुदूर आन्तरिक भागों तक पहुँच जाती हैं। वस्तुतः इस महाद्वीप की सभी वायुराशियाँ इसकी आकृति व भौगोलिक स्वरूप का परिणाम है। इस महाद्वीप में पर्वतों का (द० यूरोप में पेरेनीज आल्पस व काकसश आदि) पश्चिम में पूर्व को विस्तार आदि भी वायुराशियों पर अवरोध व रूपान्तरण हेतु विशेष प्रभावी नहीं है। यूरोप महाद्वीपीय क्षेत्र की वायुराशियों का अध्ययन अग्रांकित है।

(अ) यूरोप की शीतकालीन वायुराशियाँ –

(1) महाद्वीपीय ध्रुवीय (CP) वायुराशियाँ –

45^0 उ० अक्षाँश तथा उ० ध्रुव के मध्य (फेनोस्कैंडियम प्रदेश, पश्चिमी रूप, आक्रटिक रूप) का क्षेत्र इस वायुराशि का जनन स्थल है। यह जनन क्षेत्र शीतकाल की अवधि में विकृत रहता है। यह वायुराशियाँ जनन क्षेत्रों में ठंड़ी स्थिर एवं कम आर्द्रता वाली होती है। वस्तुतः आर्कटिक महाद्वीपीय ध्रुवीय वायुराशि शीतकाल की सभी महाद्वीपीय वायुराशियों में सर्वाधिक ठंड़ी होती है और कम क्रियाशील हो जाने पर प्रभावित क्षेत्र अति सर्द हो जाते हैं। फनोस्कैंडियम तथा प० रूस के जनन क्षेत्रों से जनित वायुराशियाँ यद्यपि पश्चिमी एवं मध्य यूरोप को प्रभावित करती हैं परन्तु इस वायुराशि की पश्चिमी गमन को पछुआ हवाओं का सामान्य परिसंचरण अवरूद्ध करता है। आकाश खुला, मौसम साफ रहता है। प्रचंड सर्दी पड़ने के साथ हिमपात होता है।

(2) सागरीय ध्रुवीय वायुराशियाँ –

60^0 उ० अक्षाँश के उत्तर उत्तरी अटलांटिक महासागरीय सतह इस वायुराशि का जनन क्षेत्र है। इन में दो

उपजनन क्षेत्र (1) ग्रीनलैंड के पूर्व में आकार्टिक सागर, (2) आइसलैण्ड के उ० में आक्रटिक क्षेत्र) अधिक महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त अटलांटिक महासागर को पार करके उ० अमेरिका की वायुराशियाँ भी पश्चिमी यूरोप तक पहुँच जाती है परन्तु वह परिवर्तित रूप में आर्द्र व अस्थिर होती हैं। उत्तरी अटलांटिक महासागर क्षेत्र की जनित वायुराशियों अधिक आर्द्र रहती हैं और जब भी इनका सम्पक्र शीतोष्ण चक्रवातीय वाताग्रों से होता है तो ये उन्हीं के द्वारा ऊपर उठा दी जाती हैं तथा मैदानों की उच्च क्षेत्रों में अतिवृष्टि करती हैं। उल्लेखनीय है कि शीतकालीन सागरीय ध्रुवीय वायुराशियों के तापमान एवं आर्द्रता सम्बन्धी भौतिक गुण इनके द्वारा महासागरीय सतह पर तय की गयी दूरी पर निर्भर करते हैं। इनके द्वारा तय की गई दूरी इनके चयनित मार्गों पर निर्भर करती है। सामान्य तथा इनके द्वारा 03 मार्गों का अनुसरण किया जाता है।

(1) छोटा मार्ग – जब यह उत्तरी अटलांटिक महासागर के ग्रीनलैंड स्पिट्सवर्जेन क्षेत्र से उत्पन्न होकर पश्चिमी यूरोप को पहुँचती है तब यह अपने जनन क्षेत्रों के गुणों को सुरक्षित रखती हैं क्योंकि लघु मार्ग होने के कारण इनके गुणों में परिवर्तन कम होता है। फलतः यह ठंड़ी स्थिर बनी रहती हैं।

(2) बड़ा मार्ग – जब यह आर्कटिक सागर की हिमाच्छादित सतह से जनित होकर अटलांटिक महासागर के ऊपर से लम्बे मार्ग का अनुसरण करते हुए यूरोप पहुँचती हैं तो इनमें लम्बे मार्ग के कारण अधिकतम गुणों में परिर्वतन हो जाता है जिससे यह अपेक्षाकृत आर्द्र व गर्म हो जाती हैं।

(3) दक्षिण मार्ग – जब कभी यह दक्षिणी अधिक मार्ग का अनुसरण करती हैं तो तीनों मार्गो से आने वाली वायुराशियों में सर्वाधिक गर्म होती हैं। पश्चिमी यूरोप के तटवर्ती भागो (नार्वे को छोड़कर) में किसी भी पर्वतीय अवरोध न होने से यह वायुराशियाँ महाद्वीप के आन्तरिक भागों तक प्रवेश कर जाती हैं तथा पश्चिमी एवं मध्य यूरोप के मौसम को शीतकालीन महाद्वीपीय ध्रुवीय वायुराशियों की अपेक्षा अधिक प्रभावित करती है।

(3) सागरीय उष्णकटिबन्धीय (MT) वायुराशियाँ –

यह वायुराशियाँ अटलांटिक महासागर की उपोष्णकटिबन्धीय उच्च वायुदाब क्षेत्र में चयनित होकर शीतकाल में दक्षिण पश्चिमी यूरोप को प्रभावित करती है। इनके जनन क्षेत्रों में हवाओं का ऊपर से नीचे को अवतलन होता है तथा धरातलीय सतह पर हवाओं का अपहरण होता है अर्थात प्रति चक्रवर्ती दशाएं होती है। शीतकालीन महाद्वीपीय उष्णकटिबन्धीय वायुराशियों की तुलना में ये वायुराशियाँ अधिक आर्द्र होती है क्योंकि अटलांटिक महासागर के ऊपर से आने के कारण इनके तापमान व आर्द्रता जैसे भौतिक गुणों में अधिक परिवर्तन हो जाता है। सम्मान्यतः ये वायुराशियाँ पश्चिमी यूरोप के मैदानी भागों में कम वर्षा करती हैं परन्तु जहाँ इनका सम्बन्ध चक्रवतीय तंत्रों से हो जाता है वहाँ व्यापक वर्षा का होना स्वभाविक है।

(4) उष्णकटिबन्धीय महाद्वीपीय वायुराशियाँ –

उ० अफ्रीका की सहारा रेगिस्तान का पश्चिमी भाग तथा द०प० एशिया की शुष्क क्षेत्रों विशेषतः अरब रेगिस्तान में इन वायुराशियों का जनन होता है अपने जनन क्षेत्रों में यह वायुराशियाँ गर्म, शुष्क एवं ऊपरी भाग में स्थित रहती हैं जब यह उत्तर की ओर अग्रसर हो कर रूप सागर के ऊपर से गुजरती है तो इन में परिवर्तन आ जाता है। जब इन वायुराशियों का सम्पर्क शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों के उष्ण वाताग्रों से होता है। तो यह पर्याप्त वर्षा करती हैं। क्योंकि रूमसागर के ऊपर से गुजरते समय वाष्पीकरण द्वारा यह पर्याप्त नमी प्राप्त कर लेती है। शीतोष्ण चक्रवातों की प्रबलता का कारण यही वायुराशियाँ है क्योंकि यह उन्हें उष्मा उर्जा प्रदान करती हैं।

(व) यूरोप की ग्रीष्मकालीन वायुराशियाँ –

(1) महाद्वीपीय ध्रुवीय (CP) वायुराशियाँ –

वस्तुतः यह वायुराशियाँ रूपान्तरित सागरीय ध्रुवीय वायुराशियाँ होती हैं। जहाँ तक तापीय गुणों का प्रश्न है ये वायुराशियाँ उष्णकटिबन्धीय महाद्वीपीय वायुराशियों की तुलना में अधिक ठंड़ी होती हैं। इनकी तापपतन दर तीव्र नहीं होती फलतः मध्य पश्चिमी यूरोप के मौसम में समानता रहती है परन्तु पूर्वी यूरोप अत्यधिक आन्तरिक अवस्थिति के कारण तापीय विषमता अधिक रहती है।

(2) सागरीय ध्रुवीय वायुराशियाँ –

इन वायुराशियों की विभिन्न शाखाओं के भौतिक गुणों—तापमान, आर्द्रता, अस्थिरता आदि में अधिक विषमताएं होती हैं। यह विषमता दो बातों पर निर्भर करती है (1) विस्तृत अटलांटिक महासागरीय जनन क्षेत्र में इन वायुराशियों के जन्म स्थान पर (2) इनके द्वारा अनुसरिता मार्गों की लम्बाई पर। वायुराशियों के मुख्य उत्पत्ति क्षेत्र के उत्तरी भाग में उत्पन्न होने वाली सागरीय ध्रुवीय वायुराशियाँ लघु मार्ग से होकर यूरोप के प० तट पर पहुँचते हैं जिससे उनका रूपान्तरण कम होता है फलतः स्थित हो जाती है और चित्र भारतीय प्रक्रिया द्वारा ऊपर उठ जाने के कारण वर्षा करती हैं। दूसरी तरफ मुख्य जनन क्षेत्र की सबसे दक्षिणी भाग में जनित यह वायुराशियों अटलांटिक महासागर के ऊपर से लम्बे मार्ग का अनुसरण कर यूरोप के पश्चिमी तटों पर पहुँचती है। फलतः इनका आधिकाधिक परिवर्तन हो जाता है और स्थिर हो जाती हैं। जब भी यह वायुराशि शीतोष्ण चक्रवाततों के सम्पर्क में आती है तब वह अतिवृष्टि करती है। अन्यथा की स्थिति में पश्चिमी यूरोप का ग्रीष्मकालीन मौसम सुहावना बना रहता है।

(3) महाद्वीपीय उष्णकटिबन्धीय वायुराशियाँ –

इन वायुराशियों का जनन दो क्षेत्र में होता है (1) उ० अफ्रीका के सहारे रेगिस्तान तथा (2) द०प० यूरोप एशिया माइनर। वस्तुतः इनमें सहारा उत्पत्ति क्षेत्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। ये वायुराशियाँ यद्यपि अपने उत्पत्ति क्षेत्र में गर्म व शुष्क रहती हैं परन्तु रूमसागर के ऊपर से उत्तर की ओर जाने पर यह आर्द्रता से युक्त हो जाती है। यही वायुराशि सिरोको कहलाती है जो गर्मशुष्क व धूल से भरी हवा होती है। सिरोको जब रूमसागर के ऊपर से होकर गुजरती है तो पर्याप्त नमी से युक्त होकर इटली के दक्षिणी भाग में वर्षा करती है। इस दृष्टि को यहाँ रक्त दृष्टि कहा जाता है क्योंकि इनके साथ सहारा की लाल रेत रहती है जो वर्षा के साथ नीचे की ओर गिरती है। चक्रवतीय है तूफानों की उत्पत्ति के समय रूमसागर के ऊपर सिरोको प्रबल हो जाती है। सहारा के ऊपर से आने वाली यह वायुराशि दक्षिणी यूरोप व द०प० साइबेरिया की ग्रीष्मकालीन मौसम को प्रभावित करती है कभी—कभी यह वायुराशि दक्षिणी एवं पूर्वी यूरोप तथा दक्षिण—पश्चिम साइबेरिया में धुन्ध कुहासा का जनन करती है। यह वायु राशि लगभग स्थिर रहती है जिसका कारण प्रतिचक्रवात दशाएं हैं।

(4) सागरीय उष्णकटिबन्धीय वायुराशियाँ –

अटलांटिक महासागर में अजोर्स के उच्च वायुदाब क्षेत्र में यह वायुराशियाँ जनित होती हैं। यह एक स्थित वायुराशि है क्योंकि इसके जन्म क्षेत्र में वायु का अवतलन होने से प्रति चक्रवर्ती दशाएं अद्भुत होती है तथा इसका प्रवाह ठंडी सतह के ऊपर से होता है। इसी कारण यह वायुराशि सम्मान्यतः वर्षा नहीं करती है परन्तु जहाँ भी यह परवर्ती अवरोध के फलस्वरुप वाला ऊपर उठती है तो वह स्थिर हो जाती है तथा सुमन क्रियाओं द्वारा वर्षा हो जाती है। ग्रीष्मकाल में इस वायु राशि का पश्चिमी यूरोप के मौसम पर सीमित प्रभाव रहता है।

10.13 सारांश

वायुराशि मौसम विज्ञान के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। इन वायुराशियों की विशेषताएँ और उनका वर्गीकरण उनके स्रोत क्षेत्र पर निर्भर करता है। प्रमुख वायुराशियों की पहचान और उनकी विशेषताओं को समझना मौसम पूर्वानुमान में सहायता करता है।इन्हें मुख्यतः चार प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है: ध्रुवीय वायुराशि (Polar Air Masses), जो ठंडे होते हैं और उच्च अक्षांश क्षेत्रों से उत्पन्न होते हैं उष्णकटिबंधीय वायुराशि (Tropical Air Masses), जो गर्म होते हैं और निम्न अक्षांश क्षेत्रों से उत्पन्न होते हैं महासागरीय वायुराशि (Maritime Air Masses), जो नम होते हैं और महासागरों से उत्पन्न होते हैं और स्थलीय वायुराशि (Continental Air Masses), जो शुष्क होते हैं और स्थलीय क्षेत्रों से उत्पन्न होते हैं। विश्व में प्रमुख वायुराशियों में ध्रुवीय महासागरीय वायुराशि (Maritime Polar Air Mass), जो ठंडी और नम होती हैः ध्रुवीय स्थलीय वायुराशि (Continental Polar Air Mass), जो ठंडी और शुष्क होती है उष्णकटिबंधीय महासागरीय वायुराशि (Maritime Tropical Air Mass), जो गर्म और नम होती है और उष्णकटिबंधीय स्थलीय वायुराशि (Continental Tropical Air Mass), जो गर्म और शुष्क होती है, शामिल हैं। इस अध्याय में हम वायुराशियों के अध्ययन के माध्यम से विभिन्न मौसम परिस्थितियों को समझने और उनकी भविष्यवाणी करने की कला को जानेंगे, जिससे हम प्राकृतिक आपदाओं से बचाव के उपाय कर सकते हैं।

10.14 बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1. वायु राशि क्या है?

(क) समान तापमान एवं आर्द्रता की वायुपुंज **(ख)** उच्च दाब का एक क्षेत्र

(ग) वायु का उर्ध्वाधर प्रवाह **(घ)** वायु का एक संकुचित प्रवाह

2. कौन सी वायु राशि उच्च अक्षाशों पर शुष्क, ठण्डी होती है?

(क) उष्णकटिबन्धीय समुद्री (mT) **(ख)** ध्रुवीय महाद्वीपीय (cP)

(ग) समुद्री ध्रुवीय (mP) **(घ)** उष्णकटिबन्धीय महाद्वीपीय (cT)

3. उपोष्ण कटिबन्ध में गर्म व शुष्क किन वायुराशियों को कारण होता है?

(क) ध्रवीय समुद्री (mP) (ख) उष्णकटिबन्धीय महाद्वीपीय (cT)

(ग) उष्णकटिबन्धीय समुद्री (mT) (घ) ध्रुवीय महाद्वीपीय (mT)

4. किस प्रकार की वायुराशि उत्तरी ध्रुवीय क्षेत्र में बनती है।

(क) ध्रवीय महाद्वीपीय (cP) (ख) ध्रवीय समुद्री (mP)

(ग) उष्णकटिबन्धीय महाद्वीपीय (cT) (घ) उष्णकटिबन्धीय समुद्री (mT)

10.15 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :—

1. ध्रुवीय महाद्वीपीय वायुराशियों की व्याख्या करें।

2. एशिया महाद्वीप की वायुराशियों को स्पष्ट करें।

3. यूरोप की वायुराशियों का वर्णन करें?

4. वायु राशियां स्थानीय मौसम को किस प्रकार प्रभावित करती है? उदाहरण सहित समझायें।

5. वायु राशियों की उत्पत्ति में स्थल व जल के प्रभावों का वर्णन करें।

10.16 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

1.डी एस. लाल — जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज

2 प्रो0 सविद्र सिंह — जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स प्रयागराज

3. डॉ. वाई. आई. सिंह — जलवायु विज्ञान, एशियन ह्यूमेनटिस प्रेस (AHP)

4.डॉ. चतुर्भुज मामोरिया — डा. एम. एस. सिसोदिया — जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, साहित्य भवन कानपुर

इकाई 11

वाताग्र एवं उसके प्रकार, चक्रवात, अर्थ एवं परिभाषा, शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात प्रकार

एवं उत्पत्ति।

11.1 **प्रस्तावना**

11.2 उद्देश्य

11.3 वाताग्र तथा वाताग्रजनन

11.4 चक्रवात

11.5 शीतोष्ण चक्रवातों के प्रकार

11.6 शीतोष्ण चक्रवातों की विशेषताएं

11.7 शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों के जनन क्षेत्र एवं भ्रमण मार्ग

11.8 शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों से सम्बन्धित मौसम

11.9 शीतोष्ण चक्रवातों की उत्पत्ति

11.10 शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात का जीवन चक्र

11.11 सारांश

11.12 बहुविकल्पीय प्रश्न

11.13 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

11-14 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई में, हम वाताग्र तथा वाताग्र जनन और इसके विभिन्न प्रकारों के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे। हम यह समझेंगे कि कैसे वाताग्र तथा वाताग्र जनन विभिन्न मौसम परिस्थितियों को प्रभावित करते हैं और इनके विभिन्न प्रकार कौन–कौन से हैं। इसके अलावा, हम चक्रवात की परिभाषा, उनका अर्थ और उनकी उत्पत्ति के बारे में जानेंगे। विशेष रूप से, हम समशीतोष्ण चक्रवात के उत्पत्ति और प्रकारों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।वायुमंडलीय विज्ञान में, वाताग्र "(Front) और "चक्रवात" (Cyclone) महत्वपूर्ण अवधारणाएँ हैं जो मौसम की गतिशीलता को समझने में मदद करती हैं। वाताग्र वह सीमा होती है जहां दो अलग–अलग वायुराशियाँ मिलती हैं, और इनके मिलने से विभिन्न मौसम स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। वाताग्र को उनके तापमान और आर्द्रता के आधार पर विभिन्न प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है, जैसे कि ठंडा वाताग्र गर्म वाताग्र, स्थिर वाताग्र और अवरोधित वाताग्र। क्रवात एक विशाल वायुमंडलीय प्रणाली होती है जिसमें कम दबाव का क्षेत्र होता है और इसके चारों ओर हवाएँ घुमावदार होती हैं। चक्रवात मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप ...

1 वाताग्र तथा वाताग्र जनन की व्याख्या कर सकेंगें ।

2 शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात का जीवन चक्र की व्याख्या कर सकेंगें।

3 चक्रवात की व्याख्या कर सकेंगें ।

4 शीतोष्ण चक्रवातों कटिबन्धीय चक्रवात उष्णकटिबन्धीय चक्रवात की व्याख्या कर सकेंगें।

5 शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों के जनन क्षेत्र एवं भ्रमण मार्ग की व्याख्या कर सकेंगे।

6 शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों से सम्बन्धित मौसम की व्याख्या कर सकेंगें।

7 शीतोष्ण चक्रवातों की उत्पत्ति की व्याख्या कर सकेंगें।

11.3 वाताग्र तथा वाताग्रजनन (FRONTS AND FRONTOGENESIS) –

दो विपरीत गुणों वाली अभिसरणीय वायुराशियों के मौसम सम्बन्धी दशाओं के मध्य विद्यमान संक्रमण मण्डल को वाताग्र कहा जाता है। सामान्यतया तापमान, गति, दिशा, घनत्व आदि के सन्दर्भ में दो भिन्न गुणों वाली वायुराशियों के मध्य की ढ़ाल युक्त सतह को वाताग्र कहते हैं। इस प्रकार विपरीत मौसमी दशाओं की दो वायुराशियों के मध्य संक्रमणमण्डल को प्रदर्शित करने वाली सम्बद्धता रेखा को वाताग्र कहा जाता है। वाताग्र को परिभाषित करते हुए एफ०डब्लू कोल (1975 ई०) ने कहा है कि "वाताग्र विभिन्न घनत्व वाली दो वायुराशियों के मध्य अन्तरापृष्ठ (INTERFACE) अथवा संक्रमण मण्डल होते हैं। मध्य अक्षाँशीय प्रदेशों में मौसम सम्बन्धी दशाओं के अध्ययन हेतु नार्वे के तीन ऋतु वैज्ञानिकों ने वाताग्री सतह की संकल्पना को प्रतिपादित किया। इस संकल्पना का सर्वप्रथम प्रतिपादन 1918 ई० में किया गया। इस प्रकार वी०जे० वक्रनीज, एच० सोलवर्ग तथा टी वर्गरान द्वारा किये गये अध्ययनों के आधार पर मध्य अक्षाँशीय प्रदेशों के मौसम सम्बन्धी विशेषताओं भिन्नताओं का ज्ञान प्राप्त कर पाना आसान व सम्भव हो सका

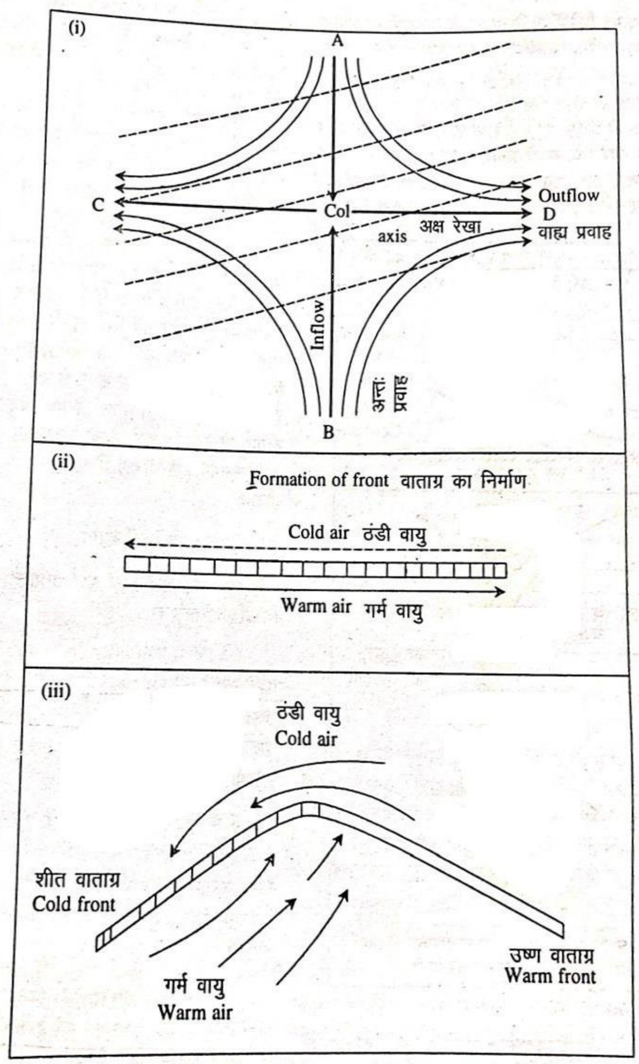

(i) वाताग्र जनन,
(ii) स्थायी वाताग्र, तथा
(iii) पूर्णतया विकसित वाताग्र।

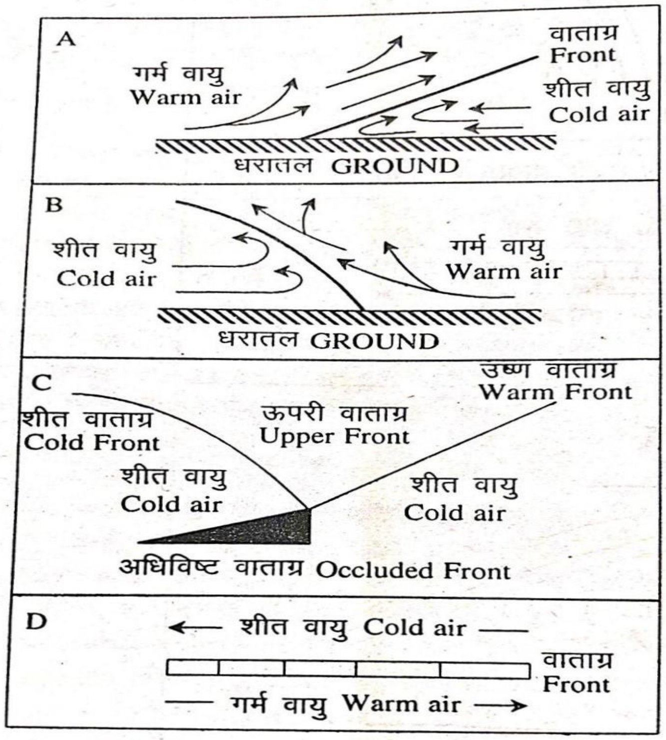

विभिन्न प्रकार के वाताग्र, A. उष्ण वाताग्र, B. शीत वाताग्र, C. अधिविष्ट (occluded) वाताग्र, तथा D. स्थायी वाताग्र।

सामान्य रूप में वाताग्र वह ढ़लुवा सीमा होती है जिसके सहारे दो भिन्न स्वभाव की हवाएं मिलती हैं। जब अभिसरण करने वाली पवनों के मध्य विस्तृत संक्रमणीय प्रदेश (TRANSITIONAL ZONE) रह जाता है तो उसे वाताग्र प्रदेश (FRONTL ZONE) कहा जाता है। वाताग्र धरातलीय सतह के समान्तर या उसके लम्बवत न होकर कतिपय कोण पर झुका होता है तथा इसका ढ़ाल पृथ्वी की अक्षीय गति पर आधारित होता है तथा ध्रुवों की ओर बढ़ता जाता है। वाताग्र की उत्पत्ति से सम्बन्धी प्रक्रिया को वाताग्रजनन (FRONTOGENESIS) कहते हैं। वर्गरान के अनुसार **"वाताग्रजनन का तात्पर्य नये वाताग्रों की उत्पत्ति से होता है।"** जी०टी० ट्रिवार्था के अनुसार **"वे क्षेत्र जहाँ परस्पर विरोधी स्वभाव वाली हवाएं अभिसरित होती हैं उन्हें वाताग्र उत्पत्ति का क्षेत्र कहा जाता है।"** पेटरसन के अनुसार **"वाताग्री व धरातलीय सतह का प्रतिच्छेदन करने वाली रेखा को वाताग्र कहते हैं, और जो प्रक्रिया वाताग्र का निर्माण करती है, उसे वाताग्रजनन कहा जाता है। कुछ निर्दिष्ट दशाओं में वाताग्र नष्ट हो जाते हैं जिसे वाताग्र की क्षय प्रक्रिया कहते हैं।"** अतः हम कह सकते हैं कि वाताग्र उत्पत्ति प्रक्रिया को वाताग्रजनन तथा उसके नष्ट होने की प्रक्रिया को वाताग्रक्षय कहा जाता है।

वस्तुतः चक्रवात के निर्माण प्रक्रिया को चक्रवातजनन (CYCLOGNESIS) कहा जाता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि वाताग्रजनन के द्वारा ही चक्रवात की उत्पत्ति होती है जबकि वाताग्रों के विनष्ट होने की प्रक्रिया को वाताग्रक्षय कहा जाता है। वाताग्रों का विनाश तब अधिक प्रभावी हो जाता है जब दो भिन्न वायुराशियाँ एक दूसरे से दूर चली जाँय अथवा इस प्रकार आपस में मिल जाय कि उनमें तापमान व घनत्व सम्बन्धी विभिन्नताएं समाप्त होकर समरूपता की स्थिति को प्राप्त कर लें।

11.4 चक्रवात (CYCLONES) –

सामान्यतया चक्रवात निम्न वायुदाब के ऐसे केन्द्र होते हैं जिसके चारों ओर संकेन्द्रीय समवायुदाब रेखाएं विस्तृत होती हैं तथा केन्द्र से बाहर की ओर क्रमशः वायुदाब में वृद्धि होती जाती है। इसके फलस्वरूप परिधि से केन्द्र की ओर हवाएं प्रवाहित होने लगती है। उ० गोलार्द्ध में इन हवाओं के प्रवाहित होने की दिशा घड़ियों के सुइयों के विपरीत तथा द० गोलार्द्ध में उनके अनुकूल रहती है। चक्रवातों का आकार विशेषतः अण्डाकार, गोलाकार

या अंग्रेजी के अक्षर V आकार की भाँति होता है। जलवायु एवं मौसम के सन्दर्भ में चक्रवातों का महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि जहाँ भी इनकी स्थिति रहती है वहाँ की वर्षा एवं तापमान दोनों इनसे प्रभावित होते हैं। इन्हे वायुमण्डलीय विक्षोभ (ATMOSPHERIC DISTURBANCES) के नाम से भी जाना जाता है। अवस्थिति के आधार पर चक्रवातों को दो प्रमुख वर्गों में विभक्त किया जा सकता है : (1) शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात (TEMPERATE OR EXTRA TROPICAL CYCLONES) (2) उष्णकटिबन्धीय चक्रवात (TROPICAL CYCONES)।

(1) शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात (TEMPERATE CYCLONES) –

मध्य अक्षाँशीय क्षेत्रों में निर्मित वायु विक्षोभ के केन्द्र में न्यूनदाब तथा बाहर की ओर उच्च वायुदाब रहता है तथा इनका आकार विशेषतः गोलाकार, अण्डाकार या वेज आकार का होता है। इन्हीं कारणों से इनको लो (LOW), गर्त (DEPRESSION) या ट्रफ (TROUGH) कहा जाता है। इन शीतोष्ण चक्रवातों को लहर चक्रवात (WAVE CYCLONES) या विक्षोभ (DEPRESSION) भी कहा जाता है। दो परस्पर विपरीत स्वभाव वाली ठंढ़ी व उष्णार्द्र हवाओं के मिलने से इनका जनन होता है। दोनों गोलार्द्ध में 35^0 से 65^0 अक्षाँशों के मध्य विस्तृत क्षेत्र के इन चक्रवातों का जनन होता है जहाँ पर यह पछुआ हवाओं के प्रभाववश पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर सक्रिय रहते हैं। मध्य अक्षाँशीय क्षेत्रों के मौसम को यह व्यापक पैमाने पर प्रभावित करते हैं।

11.5 शीतोष्ण चक्रवातों के प्रकार (TYPES OF TEMPERATE CYCLONES) –

यद्यपि इन चक्रवातों की उत्पत्ति दो परस्पर विपरीत वायुराशियों के अभिसरण के कारण ही होती है परन्तु कतिपय स्थानीय चक्रवातों की उत्पत्ति में अन्य कारकों का भी योगदान रहता है। ज्ञातव्य ही कि प्रत्येक कारक तापक्रम की भिन्नता से जनित वायुदाब की भिन्नता की ओर ही उन्मुख होता है। इसके आधार पर चक्रवातों के तीन प्रकारों (1) गतिक, (2) तापीय एवं (3) गौण या उपचक्रवातों का निर्धारण किया जा सकता है।

(1) गतिक चक्रवात (DYNAMIC CYCLONES) –

वस्तुतः इन्हें ही प्रमुख शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात कहा जाता है। इनका जनन ठंढ़ी ध्रुवीय तथा आर्द्र एवं उष्ण सागरीय वायुराशियों के वाताग्र के सहारे मिलने के फलस्वरूप होता है। इन अनेक कोट के वाताग्रों का पूर्ण विकास होता है तथा यह सर्वाधिक क्षेत्र को प्रभावित करती हैं। चूँकि इनका निर्माण गतिक प्रक्रिया के द्वारा (दो परस्पर विपरीत गुणों से युक्त वायुराशियों के एक दूसरे के क्षेत्र में वलात प्रवेश के कारण) होता है इसलिए इन्हें गतिक चक्रवात कहा जाता है।

(2) तापीय चक्रवात (THERMAL CYCLONES) –

इस चक्रवात के लिए हम्फ्रीज एवं व्रन्ट महोदय के द्वारा अलग–अगल नामावलियों को उपयोग में लाया गया है। व्रन्ट के अनुसार ग्रीष्मकालीन अवधि में शीतोष्ण कटिबन्धों में अत्यधिक ताप के कारण महाद्वीपों के आन्तरिक भागों में न्यूनदाब का केन्द्र बन जाता है जिनमें वाहय भागों से केन्द्र की तरफ हवाएं प्रवाहमान हो जाती हैं। ये चक्रवात प्रायः स्थायी रहते हैं फलतः विभिन्न वाताग्रों का विकास नहीं होता है। इस तरह के चक्रवातों को हम्फ्रीज ने सूर्यातप चक्रवात कहा है। शीतकालीन अवधि में जब उष्णसागर चारों ओर से ठण्डे स्थलीय भाग घिरे रहते हैं तो सागर के ऊपर न्यूनदाब केन्द्र बन जाने के कारण तापीय चक्रवातों का जनन होता है। वस्तुत सूर्यातप से प्रत्यक्ष सम्बन्धित रहने के कारण दोनों प्रकार के चक्रवात तापीय ही होते हैं। यह चक्रवात ग्रीष्मकाल में महाद्वीपों पर (आइवेरिया प्रायद्वीप, अलास्का, द०प० संयुक्त राज्य अमेरिका, उ०प० आस्ट्रेलिया) एवं शीतकालीन अवधि में सागरीय क्षेत्रों पर (ओखोटस्क सागर, नार्वेजियन सागर, आइसलैण्ड) अधिक जनित होते हैं।

(3) गौण या उपचक्रवात (SECONDARY CYCLONES) –

इस प्रकार के चक्रवातों का जनन प्रमुख चक्रवातों के विलीन हो जाने के पश्चात शीत वाताग्रों की ठंढ़ी हवाओं के गर्म सागरीय भागों के ऊपर चले जाने के कारण होता है। यह चक्रवात अल्प अवधि के तथा कम प्रभावशाली होते हैं।

11.6 शीतोष्ण चक्रवातों की विशेषताएं (CHARACTERISTICS OF TEMPERATE CYCLONES) –

ज्ञातव्य हो कि इन चक्रवातों का जनन कोशिकाओं द्वारा होता है तथा इनमें दो परस्पर गुणों की वायुराशिया

सम्मिलित होती हैं। फलतः इन चक्रवातों में आकृति, विस्तार, गति, तापमान तथा मौसम से सम्बन्धित अनेक **विभिन्नताएं विद्यमान रहती हैं। जिसका विश्लेषण अग्रांकित है –**

आकृति, विस्तार एवं गति –

इन चक्रवातों के मध्य में न्यूनदाब तथा इनका आकार अर्द्धगोलाकार, गोलाकार व अण्डाकार होता है। कभी–कभी यह आकार में अंग्रेजी के अक्षर V के समान भी हो जाते हैं। इनके केन्द्र तथा बाहर की ओर स्थित दाब में 10 से 20 मिलीबार व कभी–कभी 35 मिलीवार तक का अन्तर रहता है। इन चक्रवातों का आदर्श दीर्घ व्यास 1920 कि०मी० तथा लघु व्यास 1040 कि०मी० रहता है। कभी–कभी इनका विस्तार 10,00,000 वर्ग कि०मी० क्षेत्र तक हो जाता है। इनके संचरण की दिशा प्रायः प० से पू० होती है परन्तु कभी–कभी इनके संचरण की दिशा में परिवर्तन हो जाता है। यद्यपि इनकी औसत गति 32 कि०मी० प्रतिघण्टा रहती है परन्तु शीतकाल में यह 48 कि०मी० प्रति घण्टा हो जाती है। कभी–कभी इनकी गति तूफानों के समान हो जाती है।

चित्र

वायु प्रतिरूप –

शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों में केन्द्र पर निम्न वायुदाब तथा बाहर की ओर वायुदाब बढ़ता जाता है जिससे परिधि से केन्द्र की ओर हवाएं चलती हैं परन्तु यह हवाएं सीधे केन्द्र में न पहुँचकर कोरिआलिस बल तथा घर्षण बल के फलस्वरूप समदाब रेखाओं को 20^0 से 40^0 के कोण पर काटती हैं। फलतः उ० गोलार्द्ध में इनका परिसंचरण प्रतिरूप घड़ियों की सुई की दिशा के विपरीत तथा द० गोलार्द्ध में अनुकूल दिशा में रहता है।

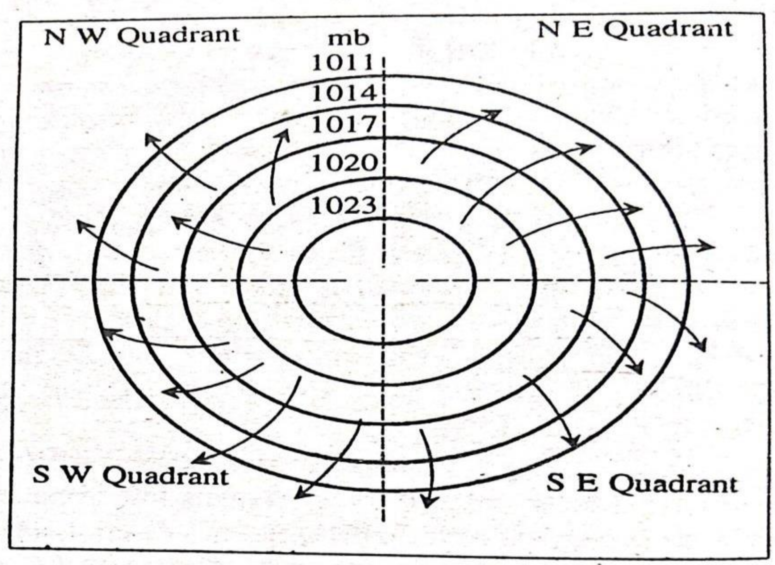

एक आदर्श प्रतिचक्रवात में वायुदाब तथा वायु प्रतिरूप।

केन्द्र की ओर हवाओं के संचरण के कारण वायु प्रतिरूप अभिसारी होता है, परन्तु केन्द्र पर हवाओं का समूहन न होकर वरन् ऊपर उठकर बाहर की ओर चलती हैं जिससे न्यूनदाब बना रहता है और चक्रवात कई दिनों तक सक्रिय रहते हैं। चूँकि इन चक्रवातों का जनन दो परस्पर विपरीत गुणों की वायुराशियों (ठंढ़ी, भारी तथा शुष्क वायुराशि एवं गर्म, हल्की तथा आर्द्र वायुराशि के अभिसरण के कारण होती है। अतः चक्रवातों के विभिन्न भागों में वायु दिशा व स्वभाव का अन्तर होना तो आवश्यक हो जाता है। उष्णकटिबन्धीय व उपोष्णकटिबन्धीय जनन वाली उष्णार्द्र हवाएं प्रायः पश्चिमी व ध्रुवीय जनन वाली हवाएं पूर्वी होती हैं। इन हवाओं के मिलने पर उष्ण वाताग्र, उष्णवृतांश तथा शीत वाताग्रों का जनन होता है। इन विभिन्न भागों में हवा का रूप भिन्न होता है। उष्ण वाताग्रों के पूर्व चक्रवातों के उग्र भागों में पूर्वी हवाएं होती हैं। उष्ण वाताग्रों के आने पर वायु उष्ण होती है तथा उसकी दिशा द० व द०प० होती है। जब शीत वाताग्र आते हैं तो हवाओं में परिवर्तन हो जाता है जिससे इन ध्रुवीय ठड़ी हवाओं की दिशा उ०प० तथा उ० को हो जाती है। उल्लेखनीय है कि उष्ण तथा शीत वाताग्रों के सहारे हवाओं की दिशा

में एकाएक परिवर्तन हो जाता है। इसे वायु दिशा परिवर्तन रेखा कहा जाता है। द० गोलार्द्ध में स्थिति ठीक इसके विपरीत रहती है।

तापमान –

दो परस्पर भिन्न तापमान वाली वायुराशियों से जनित शीतोष्णकटिबन्धीय चक्रवातों का तापमान अलग–अगल स्थानों पर भिन्न–भिन्न रहता है। चक्रवात के दक्षिणी भाग में गर्म हवाओं के होने के कारण तापमान अधिक रहता है। जबकि उ०पू०उ० तथा उ०प० भागों में ठंढ़ी हवाओं के होने से तापमान कम रहता है। सर्वाधिक न्यूनतम तापमान परिचमी भागों में होता है। चक्रवात का तापमान मुख्यतः वायुराशियों के गुण, मौसम व हवाओं में नमी की मात्रा पर निर्भर करता है। समताप रेखाएं मुख्य रूप से उ०, उ०पू० से द०प० दिशा में उत्तरी गोलार्द्ध के अन्तर्गत होती है। सामान्यतः ग्रीष्मकाल में इनका तापमान औसत से कम व शीतकाल में औसत से अधिक तापमान रहता है।

11.7 शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों के जनन क्षेत्र एवं भ्रमण मार्ग (SOURCE REGIONS AND TRACKS OF MOVEMENT) –

35^0 से 65^0 अक्षाँशों के मध्य दोनों गोलार्द्ध में (मध्य एवं उच्च अक्षाँशो) शीतोष्णकटिबन्धीय चक्रवातों के प्रमुख क्षेत्र अवस्थित हैं। सामान्यतया ये चक्रवात प० से पू० दिशा में चलते हैं परन्तु कोई निर्दिष्ट मार्ग न होने के कारण इसके मार्गों को पेटियों के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। इनके गतिशील होने वाले मार्ग को झझापथ (STORM TRACK) कहा जाता है। इन चक्रवातों के जनन क्षेत्र निम्नवत है –

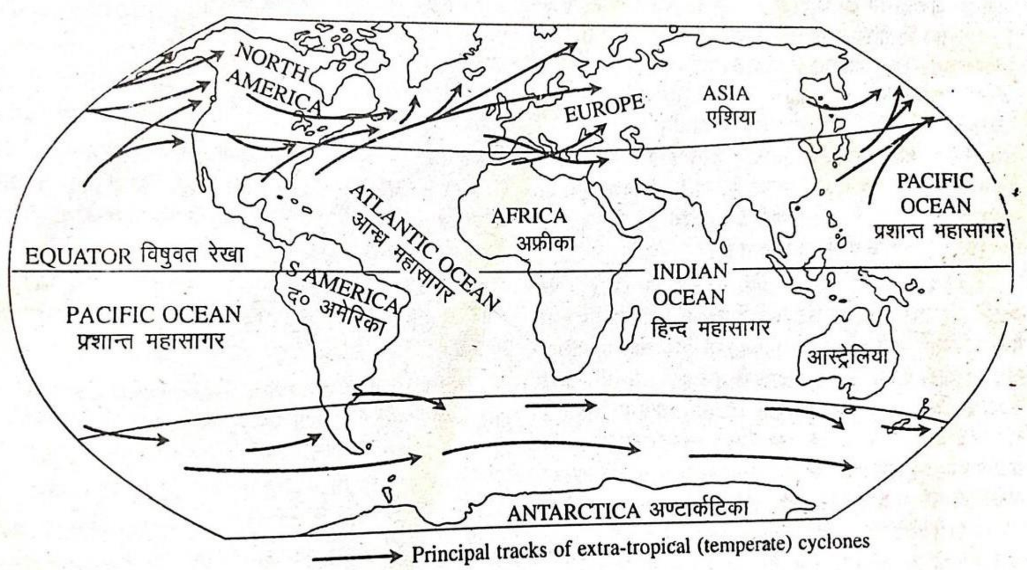

शीतोष्ण कटिबन्धी चक्रवातों के मार्ग।
Source : *after Petterson, in G.T. Trewartha, 1954.*

(1) उ० प्रशान्त महासागर में एशिया के उ०पू० व पूर्वीतटों के समीप में शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की उत्पत्ति होती है। यही से चक्रवातों का गमन उ०पू० दिशा में होता है। अलास्का की खाड़ी तक पहुँचने के पश्चात् अल्यूशियन निम्न दाब क्षेत्र से मिलकर यह दक्षिणी मार्ग का अनुसरण करते हुए यह दक्षिणी कैलीफोर्निया तक पहुँच जाते हैं। उ० अमेरिका के पश्चिमी तटीय भाग चलने वाले चक्रवात यहाँ पहुँचकर पूर्व दिशा गामी हो जाते हैं तथा आन्तरिक भागों में पहुँचने के पश्चात् राकी पर्वत के पश्चिमी ढाल पर समाप्त हो जाते हैं।

(2) वाताग्र जनन के उ० अमेरिका में प्रमुख क्षेत्र निम्नवत हैः (अ) सियरा नेवादा पर्वत श्रेणियों का पूर्वी क्षेत्र, (व) पूर्वी कोलोरैड़ो क्षेत्र (यहाँ शीतोष्ण चक्रवातों को कोलोरैडो लो कहते हैं।, (स) कनाडा के राकी पर्वतों के पूर्व का क्षेत्र (यहाँ शीतोष्ण चक्रवातों को अलवर्टा लो कहते हैं) तथा (द) वृद्ध झीलों का क्षेत्र।

(3) मैक्सिको की खाड़ी में जनित चक्रवात उत्तरी मार्ग से गमन कर अल्लेशियन पर्वत के पूर्व में गल्फस्ट्रीम मार्ग का अनुकरण करते हुए आइसलैण्ड वाताग्र जनन क्षेत्र से मिल जाते हैं।

(4) उ० अमेरिका के उ०पू० तटीय क्षेत्रों के निकट उ० अटलांटिक महासागर के उ०प० भाग में जनित होकर शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात पछुआ हवाओं से प्रभावित होकर पूर्व की ओर उन्मुख होते हैं तथा उ०पू० यूरोप के तटीय भागों पर पहुँचने के उपरान्त समाप्त हो जाते हैं।

(5) वह शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात जो आइसलैण्ड व वैरेन्ट सागर के मध्य क्षेत्र में जनित होते हैं, वे पूर्वी मार्ग का अनुसरण करते हुए उत्तरी यूरोप के मौसम को प्रभावित करते हैं।

(6) वाताग्र जनन के यूरोप महाद्वीप में दो क्षेत्र है (1) वाल्टिक सागर क्षेत्र एवं (2) रूम सागर क्षेत्र। इनमें रूप सागर क्षेत्र पर जनित होने वाले कुछ शीतोष्णचक्रवात पूर्व दिशा की ओर संचरण करते हुए पाकिस्तान तथा उत्तरी–पश्चिमी भारत तक पहुँच जाते हैं जिन्हें इन क्षेत्रों में पश्चिमी विक्षोभ (WESTERN DISTURBANCES) के नाम से जाना जाता है। रूमसागरीय क्षेत्र में जनित होने वाले अधिसंख्य चक्रवात उ०पू० दिशा में उन्मुख होते है और ये कामनवेल्थ ऑफ इण्डिपेन्डेट्स स्टेट के क्षेत्रों को प्रभावित करते हैं।

11.8 शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों से सम्बन्धित मौसम (METROLOGY RELATED TO TEMPERATE REGION CYCLONES) –

शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रकार की वायुराशियों व तापमान की दशाओं में भिन्नता के कारण मौसम से सम्बन्धित अनियमितताएं पायी जाती है। जिन क्षेत्रों में भी इन चक्रवातों का गमन होता है वहाँ मौसम सम्बन्धी दशाओं में एका–एक परिवर्तन प्रारम्भ हो जाता है। चक्रवात के गुजरते समय उसके उष्ण व शीत वाताग्रों तथा वृत्तांशों के साथ मौसम के परिवर्तन का आभास होने लगता है।

- **चक्रवात का आगमन** – चक्रवात जब पश्चिम दिशा से आता है और काफी निकट आ जाता है वायुदाब कम होने लगता है, वायु की गति भी मन्द पड़ जाती तथा सूर्य और चन्द्रमा के चारों तरफ एक प्रभामण्डल (HALO) की स्थापना दिखाई देने लगती है। वास्तव में यह दिखाई देने वाला प्रभामण्डल पश्चिम दिशा से बढ़ते हुए पक्षाभ (CIRRUS) एवं पक्षाभ स्तरीय (CIRRORSTRATUS) मेघों की झीनी चादर का मात्र प्रतिबिम्ब होता है। चक्रवात के निकट आने के साथ ही तापमान में वृद्धि व बादलों की धमस बढ़ने लगती है। वायु की दिशा पूर्वी से बदलकर दक्षिणी–पूर्वी होने लगती है। बादलों की उँचाई कम होने लगती है तथा उनका रंग भी काला होने लगता है।

- **उष्ण वाताग्र प्रदेशीय वर्षा** – इन वाताग्रों के आने पर एका–एक बादलों की धमस बढ़ जाती है और वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। इस वाताग्र में गर्म हवा धीरे–धीरे ऊपर उठती है, वाताग्र का ढ़ाल मन्द होता है, वर्षा मन्द गति से होती है परन्तु अधिक देर तक व विस्तृत होती है। इन वाताग्रों द्वारा होने वाली वर्षा, हवा में विद्यमान नमी की मात्रा व उसकी अस्थिरता पर निर्भर करती है। हवाओं के अधिक आर्द्र व अस्थिर रहने पर वर्षा अधिक होती है। सम्पूर्ण आकाश मेघाच्छन्न रहता है और सूर्य भी ढंक जाता है।

- **उष्ण वृत्तांश** – उष्ण वृतांश का आगमन उष्ण वाताग्रों की समाप्ती पर होता है। जिसके कारण पहले वाले मौसम में तीव्र एवं अचानक परिवर्तन हो जाता है और हवाओं की दिशा पूर्णतः दक्षिणी हो जाती है। आकाश बादलों से रहित होकर साफ हो जाता है। हवाओं का तापमान तीव्रता से बढ़ने लगता है। वायुदाब कम और वायु की विशिष्ट आर्द्रता बढ़ जाती है। वर्षा पूर्णतया समाप्त हो जाती है परन्तु कभी–कभी हल्की फुहार पड़ती है। मौसम साफ एवं सुहावना हो जाता है।

- **शीत वाताग्र** – उष्ण वृतांश की समाप्ति के उपरान्त शीत वाताग्रों का जाना हो जाने से तापमान कम होने लगता है और ठंढ़क बढ़ जाती है। ठंढ़ी हवाएं गर्म हवाओं को ऊपर ढकेलने लगती हैं जिससे हवाओं की दिशा में पर्याप्त अन्तर आ जाता है। आकाश में पुनः मेघाच्छादन के होने से वर्षा प्रारम्भ हो जाती है।

- **शीत वाताग्र प्रदेशीय वर्षा** – आकाश में काले कपासी वर्षा बादल छा जाने से तीव्र वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। चूँकि गर्म हवा तेजी से ऊपर उठ जाती है जिससे इस भाग की वर्षा मूसलाधार, अल्पकालिक एवं कम विस्तृत होती है क्योंकि शीत वृत्तांश पास ही होता है। इस भाग में तड़ित झंझा भी जनित होते हैं तथा

बिजली का चमक एवं बादलों की गरज के साथ के वर्षा होती है। यदि ऊपर उठने वायु गर्म वायु आर्द्र व अस्थिर होती है वर्षा की गति तीव्र रहती है।

- **शीत वृत्तांश** – शीत वातांग्र के समाप्त हो जाने पर शीघ्र ही शीत वृत्तांश जनित होते हैं। मौसम में पुनः एका–एक परिवर्तन होने लगता है तथा आकाश मेघ रहित व स्वच्छ हो जाता है। तापमान कम होने से वायुदाब में वृद्धि होने लगती है। विशिष्ट आर्द्रता का ह्रास हो जाता है तथा वायुमार्ग 45^0 से 180^0 का परिवर्तित होकर पश्चिमी हो जाता है। इस प्रकार के मौसम स्थान विशेष में तभी अनुभव किये जा सकते हैं जब वह स्थान चक्रवात शीर्ष के दक्षिण में स्थित हों। अन्यथा यदि वह उत्तर में स्थित होगा तो मौसम के कतिपय तत्व अनुपस्थित होंगे। चक्रवात के विलीन हो जाने पर उस स्थान पर चक्रवात आने से पूर्व की दशाएं पुनः स्थापित हो जाती है।

- **अति विशिष्ट वाताग्र** – शीत वाताग्र के द्वारा उष्ण वाताग्र के अभिलंघन को चक्रवातीय वाताग्र का अधिधारण (OCCLUSION) कहते हैं। वस्तुतः जब शीत वाताग्र उशण वाताग्र को समाप्त कर देता है तो चक्रवात का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। वाताग्रों का अधिधारण दो तरह का होता है– (1) शीत वाताग्र अधिधारण एवं (2) उष्ण वाताग्र अधिधारण। वाताग्रों के अधिधारण की कोटियों का निर्धारण वायुराशियों के तापमान व घनत्व के आधार पर किया जाता है। अति विशिष्ट वाताग्रों के साथ मौसम से सम्बन्धित अत्यधिक जटिलताएं रहती हैं। शीत वाताग्र के अधिधारण के पश्चात का मौसम शीत वाताग्र वाला ही मौसम रहता है। प्रतिवन्धित अस्थिरता वाली गर्म वायु के उत्थापन के कारण संवहनीय तड़ित झंझा जनित होते हैं जिनसे भारी वर्षा होती है। परन्तु शीत अधिविष्ट वाताग्र के गुजर जाने के पश्चात् शान्त मौसम उद्भूत हो जाता है। इसी प्रकार उष्णवाताग्र अधिधारण के समय लगभग उष्ण वाताग्र वाला ही मौसम रहता है। उल्लेखनीय है कि दोनों प्रकार के वाताग्र अधिधारण के समय गर्म हवा ऊपर उठती है फलतः उसका शीतलन व संघनन होने से वर्षा होती है। वर्षा की प्रकृति एवं उसकी मात्रा वास्तव में गर्म वायु के उत्थापन की प्रकृति तथा वायु की गति के ऊपर निर्भर करती हैं।

11.9 शीतोष्ण चक्रवातों की उत्पत्ति (ORIGIN OF TEMPERATE CYCLONES)

शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों को उत्पत्ति अभी भी एक अवूझ पहेली है क्योंकि अभी तक इनकी उत्पत्ति को लेकर अभी तक किसी भी सर्वमान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं हो सका है। इन चक्रवातों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में ऊपरी वायुमण्डल के परिसंचरण से सम्बन्धित अधिकाधिक विश्वसनीय सूचनाएं व उपग्रह से प्राप्त आँकड़ों की उपलब्धता से निश्चय ही सर्वमान्य सिद्धान्त के प्रतिपादन का मार्ग प्रसस्त हो चला है। मध्य अक्षाँशीय शीतोष्ण कटिबन्ध में चक्रवातों की उत्पत्ति से सम्बन्धित संकल्पनाओं के विकास क्रम का मूल्यांकन निम्न रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है।

- शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की उत्पत्ति का प्रथम विश्लेषण फिटजराय ने 1863 ई० में किया गया। उन्होने प्रतिपादित किया कि शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों का जनन दो परस्पर विरोधी गुणों (तापमान, वायुदाब, घनत्व, पवन दिशा एवं गति, नमी की मात्रा) वाली वायुराशियों के अभिसरण के कारण होता है। फिटजराय के अनुसार "उष्णकटिबन्धीय उत्पत्ति वाली गर्म एवं आर्द्र वायुराशियों एवं ध्रुवीय उत्पत्ति वाली शीतल व भारी वायुराशियों के आमने–सामने एक रेखा के सहारे वाताग्र का निर्माण होता है जो आगे चलकर चक्रवात के रूप में विकसित हो जाता है।" इस प्रकार शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों के जनन की व्याख्या का फिटजराय द्वारा किया गया यह प्रथम प्रयास निश्चय ही इस संकल्पना की व्याख्या के विकास में अहम एवं सार्थक साबित हुआ।

- 1887 ई० में अम्बर क्रोम्बी ने अपनी पुस्तक WEATHER में मध्य अक्षाँशीय चक्रवातों की उत्पत्ति से सम्बन्धित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। क्रोम्वी ने शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों के जनन से सन्दर्भित भौतिक प्रक्रियाओं के विश्लेषण का प्रयास किया। वस्तुतः गणितीय मॉडल तथा विशिष्ट शीतोष्ण चक्रवात के मॉडल डायग्राम पर आधारित इनकी यह विचारधारा परम्परावादी विचारधारा के समक्ष महत्वपूर्ण न रह सकी।

- शा तथा लेम्फर्ट ने अपने विचारों को प्रस्तुत करते हुए बताया कि "सभी दिशाओं से आने वाली हवाओं के एक केन्द्र की तरफ अभिसरण के परिणामस्वरूप शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों का जनन होता है।" वास्तव

में इनकी यह विचारधारा अम्बर क्रोम्वी की गतिक संकल्पना (1891 ई०) का विस्तरण है।

- ❖ शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों के जनन से सम्बन्धित प्रतिपादित किया संवहन तरंग सिद्वान्त आलोचना का शिकार होकर विद्वानों के द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।
- ❖ संवहन तरंग सिद्वान्त की विद्वानों द्वारा अस्वीकृत किये जाने के उपरान्त गैर उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की उत्पत्ति के लिए भँवर सिद्धान्त (EDDY THEORY) प्रतिपादित हुआ। इसके अनुसार शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की उत्पत्ति गतिशील वायुराशियों में अवरोध के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई भँवर के कारण होती है।
- ❖ 1918 ई० में नार्वे के ऋतु वैज्ञानिकों (वी० वक्रनीज एवं जे० वक्रनीज) ने शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की उत्पत्ति का ध्रुवीय वाताग्र सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इसे लहर सिद्धान्त भी कहा जाता है। स्वीडन के प्रसिद्ध विद्वान वर्जेन के नाम पर इसे वर्जेन सिद्धान्त भी कहा जाता है।
- ❖ मध्य एवं ऊपरी क्षोभमण्डल की जलवायु से सम्बन्धित अधुनातन आँकड़ों के आधार मध्य अक्षाँशीय शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की उत्पत्ति से सम्बन्धित वैरोक्लिनिक सिद्धान्त (BAROCLINIC THEORY) का प्रतिपादन किया गया है।

ध्रुवीय वाताग्र सिद्धान्त (POLAR FRONT THEORY) –

1918 ई० में ध्रवीय वाताग्र सिद्धान्त या वाताग्री सिद्धान्त या लहर सिद्धान्त या वर्जेन सिद्धान्त का प्रतिपादन वी० वक्रनीज एवं जे० वक्रनीज द्वारा किया गया। वाताग्रों की निर्माण प्रक्रियाओं पर आधारित इस सिद्धान्त के अनुसार "चक्रवातों का जनन वाताग्रों के निर्मित होने पर आधारित होता है। जब दो अलग–अलग तापमान वाली वायुराशियाँ विपरीत दिशाओं से आकर आमने–सामने मिलती हैं तो वाताग्र का जनन होता है। इनमें से एक वायुराशि ध्रुवीय होती है जो कि ठंढ़ी भारी एवं उ०पू० (उ० गोलार्द्ध में) रहती है। दूसरी वायुराशि उष्णकटिबन्धीय होती है जोकि उष्ण–आर्द्र एवं द०प० (उ० गोलार्द्ध में) रहती है। जब ये हवाएं शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में मिलती है तथा एक दूसरे के समानान्तर होती हैं तो स्थायी वाताग्रों का निर्माण होता है। इस वाताग्र से चक्रवात की उत्पत्ति नहीं होती है क्योंकि हवाएं स्थित रहती है और उनमें लम्बवत गति नहीं रहती है। इसके विपरीत जब ये वायुराशियाँ एक दूसरे से घर्षण करती हैं तो अस्थिर लहरे उद्‌भूत होती हैं जो कि चक्रवातों के जनन के लिए उत्तरदायी होती हैं। आरम्भ में दोनों वायुराशियों का पृथक्कारी तल सीधा होता है। जबकि उष्णवायु, शीत वायु प्रदेश तथा शीतल ध्रुवीय वायु, उष्ण वायु प्रदेश में जबरन प्रवेश करने का प्रयास करती है फलतः वाताग्र लहरनुमा हो जाता है जिसे ध्रुवीय वाताग्र कहतें हैं। जब द०प० के दिशा की वायु ध्रुवीय वाताग्र के सहारे ध्रुवीय ठड़ी वायु के क्षेत्र में प्रवेश करती है तो वह हल्की होने के कारण ऊपर उठ जाती है फलतः वहाँ न्यून दाब केन्द्र बन जाता है। इस न्यून दाब केन्द्र की ओर हवाएं चारो तरफ से तीव्र गति से चलती हैं जिससे चक्रवात का जनन होता है। हवाओं के एक केन्द्र की ओर प्रवाहित होने, चक्रवात का स्वरूप धारण करने में हवाओं का ढ़ाल, पृथ्वी की गति तथा घर्षण बल का संयुक्त प्रभाव रहता है। ध्रुवीय वाताग्र के पूर्वी भाग में उष्ण वाताग्र तथा परिचमी भाग में शीत वाताग्र का जनन होता है। उष्ण वाताग्र के सहारे गर्म हवा ठंढ़ी हवा के ऊपर स्वतः आरूढ़ होती है। जबकि शीत वाताग्र के सहारे ठंढ़ी वायु गर्म वायु को ऊपर ढ़ंकेलती है। चक्रवात के द०पू० भाग को उष्ण वृतांश तथा उ०प० भाग को शीत वृतांश कहते हैं। पूर्वी भाग में गर्मवायु के आगमान के साथ ही न्यूनदाब तीव्र हो जाता है जिससे आस–पास की हवाएं तेजी से झपटती है। परिणामतः शीत वाताग्र उष्ण वाताग्र की अपेक्षा तेजी से आगे बढ़ता है जिसके कारण दोनो वाताग्र समीप आने लगते हैं। जब शीत वाताग्र उष्ण वाताग्र को समाप्त कर देता है तो चक्रवात का समापन हो जाता है जिसे चक्रवात का अधिधारण कहा जाता है। किन्हीं–किन्हीं चक्रवातों के अवसान हो जाने के पश्चात भी कमजोर चक्रवातों का जनन हो जाता है जिसे उप चक्रवात कहते हैं। वस्तुतः जब शीत वाताग्र में कुछ गर्म वायु शेष रह जाती है तो पुनः न्यून दाब की स्थिति हो जाने से ऐसे क्षीण चक्रवात उद्‌भूत हो जाते हैं। चक्रवातों की उत्पत्ति शीघ्र परन्तु कई अवस्थाओं में सम्पन्न होती है। इसकी उत्पत्ति से लेकर अवसान तक की अवधि को चक्रवात का जीवन चक्र (LIFE CYCLE OF CYCLONES) कहा जाता है।

11.10 शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात का जीवन चक्र (LIFE CYCLE OF TEMERATE REGION CYCLONES) –

शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों के वाताग्र जनन से लेकर उनके अवसान तक की अवधि को चक्रवात का

जीवन चक्र कहा जाता है। चक्रवात का यह जीवन चक्र निम्न 6 क्रमिक अवस्थाओं में सम्पन्न होता है जिसका विश्लेषण निम्नवत है –

प्रथम अवस्था (I STAGE) –

सर्व प्रथम दो परस्पर विपरीत भौतिक गुणों वाली वायुराशियों का अभिसरण होता है। इस अवस्था में गर्म हल्की वायुराशियाँ तथा ठंडी एवं भारी वायुराशियाँ एक दूसरे के समानान्तर प्रवाहित होती है फलतः स्थायी वाताग्र का जनन होता है। गर्म एवं ठंडी हवाएं समदाब रेखाओं के समानान्तर प्रवाहित होना प्रारम्भ हो जाती है क्योंकि ठंडी हवा सीधी पूर्वी तथा गर्म हवा प० से पू० को प्रवाहित होती है। स्थायी वाताग्र सन्तुलित दशा में ही बना रहता है।

द्वितीय अवस्था (II STAGE) –

इस अवस्था में गर्म एवं ठंडी वायुराशियाँ जबरन एक दूसरे के क्षेत्र में प्रवेश करती हैं जिससे स्थायी वाताग्र का सन्तुलन विक्षुब्ध हो जाता है और एक अस्थिर लहर की आकृति वाले वाताग्र का निर्माण हो जाता है।

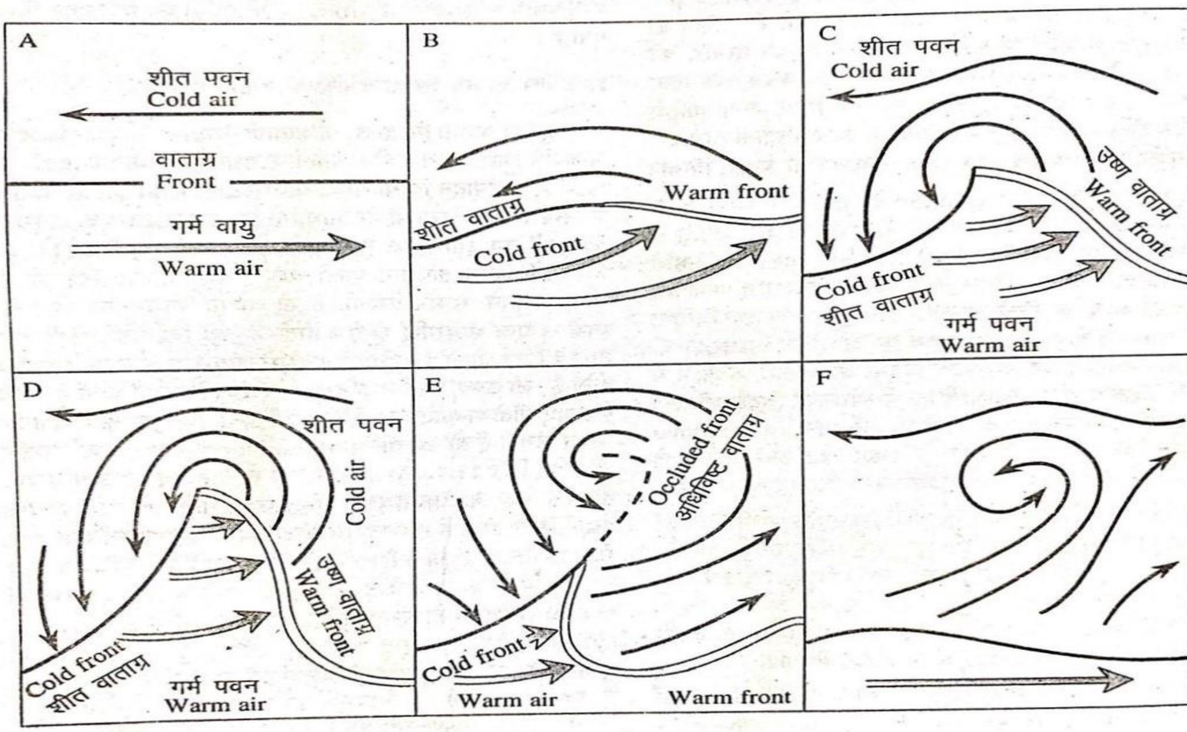

शीतोष्ण कटिबन्धी चक्रवातों के जीवन–चक्र की अवस्थायें।

तृतीय अवस्था (III STAGE) –

इस अवस्था में चक्रवात का पूर्ण विकास हो जाता है और समदाब रेखाएं लगभग गोलाकार हो जाती हैं। उष्ण व शीत वाताग्रों का पूर्ण विकास हो जाता है। दोनों वाताग्रों का पृथक्करण उष्ण वृत्तांश के द्वारा होता है। उष्ण की तुलना में शीत वाताग्र की गति तीव्र होने के कारण उष्ण वृत्तांश लगातार संकरा होता जाता है। उल्लेखनीय है कि गर्म वायु ही दोनो वाताग्रों के सहारे जबरन ऊपर उठायी जाती है। यदि इनमें पर्याप्त नमी होती है तो एडियावेटिक विधि से शीतलन व संघनन के कारण पर्याप्त वर्षा हो जाती है। उष्ण वाताग्रों की वर्षा लम्बी अवधि तक धीरे–धीरे होती है जबकि शीत वाताग्री वर्षा अल्प अवधि की परन्तु मूसलाधार होती है। स्थानीय दशाओं के अनुरूप शीत वाताग्री वर्षा के साथ हिमपात व ओलावृष्टि हो जाती है।

चतुर्थ अवस्था (IV STAGE) –

इस अवस्था में शीत वाताग्र तीव्र गति से आगे बढ़ता है फलतः उष्ण वृतांश संकुचित होने लगता है। इसका

प्रमुख कारण है उष्ण वाताग्र की अपेक्षा अधिक तीव्र गति होने के कारण शीत वाताग्र उष्ण वाताग्र के निकट आ जाता है।

पंचम अवस्था (V STAGE) –

इस अवस्था में चक्रवात का अवसान प्रारम्भ हो जाता है जबकि शीत वाताग्र उष्ण वाताग्र का अन्तिम रूप से अभिलंघन कर लेता है जिससे अधिविष्ट (OCCLUDED) वाताग्र का निर्माण हो जाता है। इसे अधिधारण अवस्था (OCCULSION STAGE) कहते हैं।

षष्ट्म अवस्था (VI STAGE) –

यह अवस्था चक्रवात के अवसान की अवस्था होती है। इस अवस्था में उष्ण वाताग्र का समापन व चक्रवात का अवसान हो जाता है।

11.11 सारांश

इस अध्याय में, हमने वायुमंडलीय विज्ञान की महत्वपूर्ण अवधारणाएँ जैसे फ्रंट और चक्रवात को समझा। हमने जाना कि फ्रंट वह सीमा होती है जहां दो अलग–अलग वायुराशियाँ मिलती हैं और ये विभिन्न मौसम स्थितियों को उत्पन्न करते हैं। फ्रंट के प्रकारों में ठंडा फ्रंट, गर्म फ्रंट, स्थिर फ्रंट और अवरोधित फ्रंट शामिल हैं। इसके अलावा, हमने चक्रवात की परिभाषा, उनका अर्थ और उनकी उत्पत्ति को समझा। हमने विशेष रूप से समशीतोष्ण चक्रवात की उत्पत्ति और प्रकारों का अध्ययन किया। इस अध्ययन से हमें वायुमंडलीय घटनाओं की बेहतर समझ और मौसम पूर्वानुमान में मदद मिली, जो कि प्राकृतिक आपदाओं से बचाव के लिए महत्वपूर्ण है।

11.12 बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1. वाताग्र क्या है?

(क) दो समान तापमान वाले क्षेत्रों को मिलाने वाली रेखा **(ख)** निम्न दाब क्षेत्र

(ग) दो भिन्न वायुराशियों के मिलन का स्थल **(घ)** जेट स्ट्रीम

2. जब गर्म वायु, ठण्डी वायु को ऊपर उठाती है तो यह किस प्रकार का वाताग्र होता है?

(क) गर्म वाताग्र **(ख)** शीत वाताग्र

(ग) स्थिर वाताग्र **(घ)** अधिविष्ट वाताग्र

3. वाताग्र जनन क्या है?

(क) वाताग्र का क्षीण होना **(ख)** एक नए वाताग्र का निर्माण

(ग) दो वायुराशियों का अभिसरण **(घ)** निम्न वायु दाब का विलोपन

4. वाताग्रजनन की प्रक्रिया में निम्न में से क्या होता है?

(क) धीमी वायु गति **(ख)** उच्च आर्द्रता

(ग) उच्च तापमान **(घ)** अभिसरित वायुराशियां

5. शीतोष्ण चक्रवात किस अक्षांश पर विकसित होते हैं?

(क) विषुवत रेखा **(ख)** ध्रुव क्षेत्र

(ग) उपोष्ण क्षेत्र **(घ)** मध्य अक्षांश

6. शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात की दिशा क्या होती है?

(क) पूर्व से पश्चिम **(ख)** पश्चिम से पूर्व

(ग) उत्तर से दक्षिण **(घ)** दक्षिण से उत्तर

7. शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात का दूसरा नाम क्या है?

(क) टाइफून **(ख)** हरिकेन

(ग) नारवेस्टर **(घ)** मानसून

11.13 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :—

2. शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों के उत्पत्ति की व्याख्या करें।

3. शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात की विशेषताओं का वर्णन करते हुए इसके क्षेत्रों की व्याख्या करें।

4. वाताग्र क्या है? इसकी उत्पत्ति के लिए आदर्श दशाओं का वर्णन करें।

5. वाताग्र जनन व इसके स्थायित्व पर जल व थल के प्रभावों का वर्णन करें।

11.14 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

1.डी एस. लाल — जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज

2 प्रो0 सविद्र सिंह — जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज

3. डॉ. वाई. आई. सिंह — जलवायु विज्ञान, एशियन ह्यूमेनटिस प्रेस (AHP)

4.डॉ. चतुर्भुज मामोरिया — डा. एम. एस. सिसोदिया — जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, साहित्य भवन कानपुर

इकाई 12

उष्ण कटिबंधीय चक्रवात–प्रकार एवं उत्पति, संरचना, प्रतिचक्रवात, अर्थ एवं विशेषताएं, प्रकार।

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 प्रति चक्रवात

12.4 प्रति चक्रवातों की सामान्य विशेषताएं

12.5 प्रति चक्रवात के प्रकार

12.6 उष्णकटिबन्धीय चक्रवात

12.7 उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की विशेषताएं

12.8 उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों के प्रकार

12.9 उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों का जनन

12.10 उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों के वितरण क्षेत्र

12.11 उष्णकटिबन्धीय चक्रवातो के मार्ग

12.12 टारनैडों

12.13 सारांश

12.14 बहुविकल्पीय प्रश्न

12.15 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

12.16 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

12.1 प्रस्तावना

वायुमंडलीय विज्ञान में, उष्णकटिबंधीय चक्रवात (Tropical Cyclone) और प्रतिचक्रवात (Anticyclone) महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं जो मौसम और जलवायु को व्यापक रूप से प्रभावित करती हैं। उष्णकटिबंधीय चक्रवात गर्म समुद्रों पर उत्पन्न होते हैं और इनमें तीव्र हवाएँ, भारी वर्षा, और उच्च ज्वार की लहरें शामिल होती हैं। ये चक्रवात अपनी उत्पत्ति, प्रकार और संरचना के आधार पर विभिन्न प्रकारों में विभाजित किए जा सकते हैं। दूसरी ओर, प्रतिचक्रवात उच्च दबाव वाली वायुमंडलीय प्रणालियाँ हैं जो शांत और शुष्क मौसम की स्थिति उत्पन्न करती हैं। प्रतिचक्रवात का अर्थ, प्रकार और उनकी विशेषताएँ समझने से हम मौसम की इन महत्वपूर्ण घटनाओं का व्यापक दृष्टिकोण प्राप्त कर सकते हैं।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी

1. प्रति चक्रवात की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे ।
2. प्रति चक्रवातों की सामान्य विशेषताएं की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे ।
3. प्रति चक्रवात के प्रकार की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे ।
4. उष्णकटिबन्धीय चक्रवात की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे ।
5. उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की विशेषताएं का शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे ।

6. उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों के प्रकार की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे ।
7. उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों का जनन की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे ।
8. उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों के वितरण क्षेत्र की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे ।
9. उष्णकटिबन्धीय चक्रवातो के मार्ग की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे ।
10. टारनैडों की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे ।

12.3 प्रति चक्रवात (ANTICYCLONES) –

चक्रवात के विपरीत दशाओं एवं विशेषताओं वाले वायु परिसंचरण के तन्त्र को प्रति चक्रवात कहा जाता है। वस्तुतः उच्चवायुदाब वाले केन्द्र से बाहर की ओर चतुर्दिक प्रवाहित होने वाली अपसारी (DIVERGENT) वायु परिसंचरण हेतु ही ANTICYCLONE शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम एफ० गैफन द्वारा 1861 ई० किया गया।

वृत्ताकार समदाब रेखाओं द्वारा घिरा हुआ वायु का ऐसा क्रम जिसके केन्द्र में उच्चतम वायुदाब तथा बाहर की ओर कम होता जाता है जिसके कारण हवाएं केन्द्र से बाहर की ओर चलती हैं उसे प्रति चक्रवात कहते हैं। उपोष्ण कटिबन्धीय उच्च वायु दाब क्षेत्रों में प्रति चक्रवात की स्थितियाँ अधिक उद्भूत होती हैं। भूमध्यरेखीय प्रदेशों में इनका अभाव पाया जाता है। शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में प्रति चक्रवात दशाओं की अवधि में मौसम साफ रहता है तथा वायुवेग मन्द रहता है। उ० गोलार्द्ध में प्रति चक्रवातीय दशाओं में हवाएं घड़ी की सुई की अनुकूल दशा में चलती हैं जबकि द० गोलार्द्ध में यह प्रतिकूल दशा में प्रवाहित होती हैं। प्रति चक्रवात की दशाओं में मौसम साफ एवं शुष्क रहता है। इसीलिए प्रति चक्रवातों को मौसम रहित परिघटना (WEATHERLESS PHENOMENA) के नाम से जाना जाता है।

12.4 प्रति चक्रवातों की सामान्य विशेषताएं (GENRAL CHARACTERISTICS OF ANTICYCLONE) –

प्रति चक्रवातों की विशेषताओं का उल्लेख निम्न रूपों में किया जा सकता है –

- सामान्यतया प्रति चक्रवातों का आकार गोलाकार किन्तु कभी–कभी V आकार का होता है। केन्द्र में उच्च वायुदाब तथा परिधि की ओर निम्न वायुदाब रहता है। केन्द्र व परिधि के मध्य वायुदाब का अन्तर 10 से 20 मिलीवार किन्तु कभी–कभी 35 मिलीबार हो जाता है। दाब की प्रवणता कम रहती है। केन्द्र से बाहर की ओर वायुदाब का जो परिवर्तन होता है, वह सामान्य ही रहता है।
- प्रति चक्रवात, चक्रवातों की अपेक्षा आकार में अधिक विस्तृत रहते हैं। इनका व्यास चक्रवातों से लगभग 75 प्रतिशत अधिक रहता है।
- सामान्यतया चक्रवातों के पीछे चलने वाले प्रति चक्रवातों के मार्ग एवं दिशा में निश्चितता नहीं रहती है। इनकी गति लगभग 30 से 50 कि०मी० प्रति घण्टा रहती है। कभी–कभी यह प्रति चक्रवात कई दिनों तक एक ही स्थान पर स्थिर रह जाते हैं।
- केन्द्र में हवाएं ऊपर से नीचे की ओर उतरती हैं जिससे केन्द्र का मौसम साफ हो जाता है तथा वर्षा की सम्भावना नहीं रहती है।
- प्रति चक्रवातों क तापमान, वायुराशि के स्वभाव, मौसम व आर्द्रता पर निर्भर करता है। ग्रीष्मकाल की अवधि में उष्ण वायुराशि बनने के कारण तापमान उच्च एवं शीतकाल में ध्रुवीय हवाओं के कारण तापमान निम्न हो जाता है।
- प्रति चक्रवात में वाताग्र नहीं बनते हैं परन्तु कभी–कभी दो प्रति चक्रवातों की सम्मिलन रेखा के सहारे निम्न दाब के गर्त में वाताग्र का निर्माण हो जाता है। इस प्रकार दो प्रति चक्रवातों के प्रतिच्छेदन के सहारे उत्पन्न वाताग्र की दिशा उत्तर–दक्षिण होती है। अतः इसे देशान्तरीय वाताग्र कहा जाता है।

प्रति चक्रवात में वायु प्रणाली –

प्रति चक्रवात में वायु प्रणाली का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है क्योंकि दाब प्रवणता क्षीण रहती है। इनमें वायु की सामान्य प्रणाली अपसारी होती है जिसके अन्तर्गत हवाएं केन्द्र से परिधि की ओर प्रवाहित होती है। पूर्वी दिशा को प्रवाहमान प्रति चक्रवात के अग्रभाग में हवा की दिशा पश्चिमी और गति अपेक्षाकृत कुछ अधिक होती है। प्रति चक्रवातों के पृष्ठभाग में हवाओं की दिशा पूर्वी एवं वेग धीमा रहता है। केन्द्र में हल्की हवाएं चलती हैं। ऐसी वायु प्रणाली शीतल प्रति चक्रवातों की रहती है। गर्म प्रति चक्रवातों की वायु प्रणाली अविकसित होती है।

आकार –

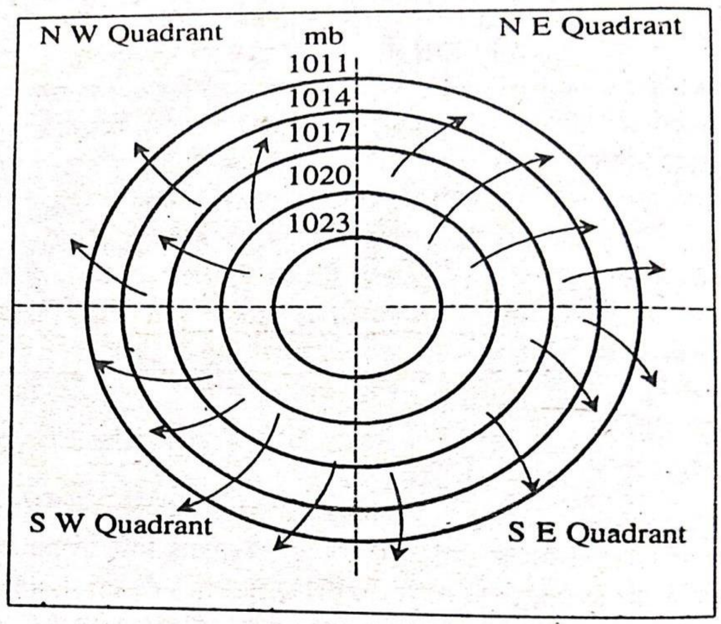

चित्र 11.13: एक आदर्श प्रतिचक्रवात में वायुदाब तथा वायु प्रतिरूप।

प्रति चक्रवातों का आकार प्रायः वृत्ताकार, गोलाकार या फनाकार होता है। आकार में यह इतने विशाल होते हैं कि इनका व्यास कभी–कभी कमी 9000 कि०मी० तक विस्तृत हो जाता है। इनकी लम्बाई तथा चौड़ाई में पर्याप्त अन्तर नहीं रहता है। शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रति चक्रवात इतने विशाल आकार के होते हैं कि संयुक्त राज्य अमेरिका के लगभग आधे भाग को घेर लेते हैं। इसी प्रकार यूरेशिया में कृष्ण सागर से बेरिगं तक प्रति चक्रवातों का विस्तार हो जाता है।

प्रति चक्रवात का तापमान –

प्रति चक्रवातों की उत्पत्ति ठंढ़ी ध्रुवीय हवाओं अथवा गर्म उष्ण कटिबन्धीय हवाओं के कारण होती है। शीतल प्रति चक्रवातों के साथ प्रभावित क्षेत्रों में तापमान सामान्य से अधिक कम हो जाता है। शीतकाल में इनके द्वारा लहरे जनित हो जाती हैं। ग्रीष्मकाल में इनके द्वारा मौसम सुहावना हो जाता है। ग्रीष्मकाल की अवधि में गर्म प्रति चक्रवातों के कारण तापमान इतना बढ़ जाता है कि ताप लहरों का जनन हो जाता है।

प्रति चक्रवातों में वर्षा का मौसम –

सामान्यतया प्रति चक्रवात वर्षा तथा मेघ रहित होते हैं। इसका प्रमुख कारण है कि इनके केन्द्र में वायु ऊपर से नीचे को उतरती है जिससे तापमान बढ़ जाता है और सामान्य ताप पतन दर कम हो जाती है, वायु की स्थिरता बढ़ने लगती है जिसके कारण हवा शुष्क हो जाती है। केन्द्र से हवाओं के अपसरण के कारण वाताग्र का जनन नहीं हो पाता है। फलतः उष्णार्द्र तथा शीतल वायुराशियों के न मिल पाने के कारण वर्षा की सम्भावना नहीं रह जाती है। परन्तु यही स्थिति सदैव नहीं रहती है। जब भी गर्म प्रति चक्रवात महासागरों के ऊपर से लम्बी दूरी तय करके आते हैं तो अपने साथ नमी धारण कर लेते हैं तथा सामान्य बादलों के साथ हल्की वर्षा हो जाया करती

है।

प्रति चक्रवातों के नजकीक आने के साथ ही बादल हटने लगते हैं, आकाश साफ हो जाता है और हवा का प्रवाह धीमा पड़ जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाड़ा व यूरेशिया का मौसम प्रति चक्रवातों से अधिक प्रभावित होता है। कनाड़ा के उत्तर हिमाच्छादित भाग पर उत्पन्न होकर शीतल प्रति चक्रवात जब दक्षिण दिशा में अग्रसर होते हैं तो ध्रुवीय ठंडी हवाओं के कारण प्रभावित क्षेत्र का तापमान हिमांक बिन्दु से भी नीचे ला देते हैं। हवाएं उ०पू० होती हैं और बर्फीली आँधियाँ चलती हैं जिन्हें शीत लहरी कहा जाता है। प्रभावित क्षेत्र पर प्रति चक्रवात का चक्षु होने से तापमान अत्यन्त कम हो जाता है। वायु शान्त एवं मौसम साफ हो जाता है। प्रति चक्रवात का जब पृष्ठ भाग आता है तो तापमान एकाएक कम हो जाता है और हवाओं की गति तीव्र हो जाती है। जबकि उष्ण प्रति चक्रवातों के आने पर तापमान में अचानक वृद्धि होने से गर्म लहरे प्रवाह मान हो जाती है।

12.5 प्रति चक्रवात के प्रकार (TYPES OF ANTI-CYCLONE) –

प्रति चक्रवातों का वर्गीकरण अनेक विद्वानों के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। हेल्जिक महोदय ने 1909 ई० में प्रतिचक्रवातों को दो वर्गों में **(शीतल तथा उष्ण)** विभक्त किया था जिसे आज भी मान्यता प्राप्त है। हम्फ्रीज ने प्रति चक्रवातों को तीन वर्गो में **(1–यान्त्रिक या गतिक प्रतिचक्रवात (2) तापीय प्रति चक्रवात (3) विकिरण प्रति चक्रवात)** विभाजित किया है। मिडीज महोदय ने भी चक्रवातों को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभक्त किया हैः

(1) वृद्ध प्रतिचक्रवात – यह इतने आकार में बड़े होते हैं कि पूरे महाद्वीप को अपने प्रभाव से आच्छादित कर लेते हैं।

(2) अस्थायी प्रतिचक्रवात – इनका व्यास लगभग 250 से 300 कि०मी० तक रहता है। इनका प्रभाव महाद्वीपों के किनारे वाले भागों तक ही सीमित रहता है।

(3) चक्रवात जनित प्रतिचक्रवात – यह दो शीतोष्ण चक्रवातों के मध्य जनित होते हैं। इनके जनन का प्रमुख कारण उच्चदाब रहता है।

सामान्यतः प्रति चक्रवातों को तीन कोटियों में विभाजित किया जाता है।

(अ) शीत प्रतिचक्रवात (COLO ANTI-CYCLONE) –

इनका जनन आर्कटिक क्षेत्रों में होता है, जहाँ से यह पूर्व तथा दक्षिण–पूर्व दिशा में चलते हैं। इनका आकार उष्ण प्रतिचक्रवातों से कम होता है परन्तु अपेक्षाकृत यह तेजी के साथ आगे बढ़ते हैं। इनकी गहराई भी कम रहती है। कभी–कभी ही इन प्रतिचक्रवातों की उँचाई 3000 मीटर से अधिक रहती है अन्यथा यह इससे कम उँचाई के ही रहते हैं। इसका प्रमुख कारण है अधिक उँचाई पर कम दाब विकसित होने लगता है। इन प्रतिचक्रवातों को भी दो उप प्रकारों में विभाजित किया जाता है– **(1) अस्थायी या क्षणिक प्रति चक्रवात** इनमें कुछ चक्रवात ही उष्ण प्रदेशों तक पहुँच पाते हैं अन्यथा वह मार्ग में ही विलीन हो जाते हैं।

(2) अर्द्ध स्थायी प्रति चक्रवात –

इनका मार्ग लम्बा होता है तथा यह अधिक सक्रिय रहते हैं। इनकी उत्पत्ति तापीय होती है क्योंकि इनका जनन तापीय कारणों से होता है। आर्कटिक क्षेत्रों में शीतकालीन अवधि में विकिरण द्वारा अत्यधिक ताप ह्रास होने से तथा कम सूर्यातप प्राप्त होने के कारण उच्चदाब की स्थिति बन जाने से प्रतिचक्रवातों का जनन होता है। शीतल प्रतिचक्रवातों का जनन होता है। शीतल प्रतिचक्रवातों के दो मार्ग होते हैंः (1) कनाड़ा के उ० में जनित प्रतिचक्रवात कनाड़ा एवं संयुक्त राज्य अमेरिका को प्रभावित करता है इनकी दिशा पूर्व एवं द०पू० होती है। (2) साइबेरिया के उत्तर में जनित प्रति चक्रवात चीन, जापान एवं अलास्का की तरफ गमन करते हैं। उल्लेखनीय है कि उ०पू० यूरोप में आने वाले प्रतिचक्रवात शीतोष्ण चक्रवातों के साथ उत्पन्न होते हैं (इनके पृष्ठ भाग में) यह शीत प्रति चक्रवात जैसे ही दक्षिण की ओर गमन कर उष्णकटिबन्ध में आगमन करते हैं अधिक ताप के फलस्वरूप समाप्त हो जाते हैं।

(ब) गर्म प्रतिचक्रवात (WARMANTI-CYCLONE) –

उपोष्ण उच्च वायुदाब की पेटी में हवाओं का अपसरण होता है। यही पर गतिक व यान्त्रिक कारको से गर्म प्रतिचक्रवातों की उत्पत्ति होती है। यह आकार में कम बड़े, कम सक्रिय और जनन स्थल से बाहर निकलने का भी

कम प्रयास करते हैं। इनकी आगे बढ़ने की गति इतनी कम होती है कि इनको कभी–कभी एक ही स्थान पर हप्तों महसूस किये जाते हैं। इनमें हवाऐं मन्द, मौसम साफ आकाश में बादलरहित हो जाता है। यह प्रति चक्रवात द०पू० संयुक्त राज्य अमेरिका तथा प० यूरोप को अधिक प्रभावित करता है।

(स) अवरोधी प्रतिचक्रवात (BLOCKING ANTI-CYCONE) –

वर्तमान समय के कतिपय जलवायुविदों द्वारा इस नवीन अवरोधी प्रति चक्रवात की खोज की गयी है। इनका यह मानना है कि क्षोभ मण्डल के ऊपरी भाग में वायु संचार में अवरोध के कारण अवरोधी प्रतिचक्रवातों का जनन होता है। इनकी वायु प्रणाली, वायुदाब व मौसम सम्बन्धी विशेषताएं गर्म प्रतिचक्रवातों के ही लगभग समान होती है। इनका आकार छोटा व गति मन्द होती है। इनका जनन क्षेत्र उ०प० यूरोप तथा समीपी अटलांटिक महासागर (0^0 से 30^0 प० देशान्तर के मध्य) एवं 140^0 से 170^0 प० देशान्तर के मध्य उ० प्रशान्त महासागर का प० क्षेत्र है। अभी तक इन प्रतिचक्रवातों के विषय में अधिक जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी है।

12.6 उष्णकटिबन्धीय चक्रवात (TROPICAL CYCLONES) –

30^0 उ० से 30^0 द० अक्षाँशों के मध्य अयनवर्ती क्षेत्रों में जनित चक्रवातों को उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात कहा जाता है। इनका औसत व्यास 640 कि०मी० होता है। यह निम्न वायु दाब के अभिसरणीय परिसंचरण तन्त्र होते हैं जिनकी दिशा उ० गोलार्द्ध में घड़ी की सुइयों की प्रतिकूल तथा द० गोलार्द्ध में अनुकूल रहती है। यह चक्रवात इतने शक्तिशाली होते हैं कि द्वितीय विश्व युद्ध में जापान के नागासाकी पर गिराये गये परमाणु बम के समान 10000 परमाणु बमों की ऊर्जा के बराबर होती है। यह चक्रवात वास्तव में प्रलयंकारी वायुमण्डलीय तूफान होते हैं जिन्हें उ० अटलांटिक महासागर के कैरोबियन में द०पू० संयुक्त राज्य अमेरिका में हरिकेन, उ० प्रशान्त महासागर के चीन सागर, चीन के पूर्वी–दक्षिणी तटीय प्रदेशों फिलीपीन्स तथा द०पू० एशिया में टाईफून, बांग्लादेश तथा भारत के पूर्वी तटीय प्रदेशों में चक्रवात और आस्ट्रेलिया में विली–विली कहा जाता है।

उष्णकटिबन्धीय चक्रवात अपने अति तीव्र पवन वेग, (180 से 400 कि०मी० प्रति घण्टा) उच्च ज्वारीय तरंगों, विश्व की सर्वाधिक वर्षा गहनता (फिलीपीन्स में 2007 मिलीमीटर एक दिन में) के सन्दर्भ में पूरे विश्व में जाने जाते हैं। अतिन्यून वायुमण्डलीय दाब तद्जनित सागर तल में अस्वाभाविक उभार, एक ही क्षेत्र में कई दिनों तक स्थिर रहने के कारण ये चक्रवात अति प्रलयंकारी वायुमण्डलीय प्रकोप तथा आपदा के रूप में जाने जाते है। इनके उच्च वायु वेग, उच्च ज्वारीय, मूसलाधार वृष्टि तथा स्थल तटीय भागों में प्रवेश का संचयी प्रभाव ऐसा होता कि प्रभावित क्षेत्रों में जल प्रलय व व्यापक धन–जन की तबाही (तटीय क्षेत्रों) होती है। अतिन्यूनदाब व तीव्रगामी हवाओं के कारण उद्भूत होने वाले सागरीय सतह के अस्वाभाविक उभर को तूफान या ज्वारीय महा लहर (STORM OR TIDAL SURGE) कहते हैं। जब इन लहरों का सम्पर्क ज्वार वाली लहरों के साथ हो जाता है तो यह प्रचण्ड रूप धारण कर तटीय भागों में जल प्लावन का दृश्य उपस्थित कर देती है।

12.7 उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की विशेषताएं (CHARACTERISTICS OF TROPICAL CYCLONES) –

कर्क तथा मकर रेखाओं के मध्य जनित इस चक्रवातों में शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवाततों की भाँति समरूपता नहीं रहती। इन चक्रवातो कई रूप होते हैं। इनकी गति, आकार तथा मौसम सन्बम्धी तथा तत्वों में पर्याप्त भिन्नता होती है। वर्षा के ऊपर विशेषतः इन चक्रवातों का प्रभाव होता है। यद्यपि इन चक्रवातों की अभी तक सर्वमान्य विचारधारा नहीं बन पायी है और न ही व्यवस्थित अध्ययन किया जा सकता है फिर भी इनके उद्भूत होने पर प्रकट होने वाले लक्षणों के आधार पर इनकी निम्न विशेषताओं का विश्लेषण किया जा सकता है–

- ❖ सामान्यतया इन चक्रवातों का व्यास 80 से 300 कि०मी० तक होता है परन्तु कभी–कभी यह इतने लघु होते हैं कि इनका व्यास 50 कि०मी० से भी कम रहता है। अतः इनके आकार में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है।
- ❖ ये चक्रवात विभिन्न गति से आगे बढ़ते हैं। चक्रवात 32 कि०मी०, हरिकेन 120 कि०मी० और सुपर चक्रवात 200 कि०मी० प्रति घण्टा की दर से आगे बढ़ते हैं। अतः इनकी गति साधारण से प्रचण्ड तक होती है।
- ❖ इन चक्रवातों की गति सागर की ऊपर तीव्र होती है जबकि स्थलों पर पहुँचने की पश्चात इनकी गति कमजोर एवं आन्तरिक भागों में पहुचने से पहले ही समाप्त हो जाती है। अतः यह महाद्वीपों के तटीय भागों

को विशेषता प्रभावित करते हैं।

- ❖ इन चक्रवातों के केन्द्र में वायुदाब अति न्यून हो जाता है। कभी–कभी यह 650 मिलीबार से भी कम हो जाता है। समदाब रेखाएं प्रायः वृत्ताकार होती हैं परन्तु इनकी संख्या कम होती है। इसलिए यह मानचित्र पर आसानी से परिलक्षित नहीं हो पाती है। हरिकेन में केन्द्र से बाहर की ओर वायुदाब तीव्रता से बढ़ता है। हवाएं तेजी से केन्द्र की ओर जाती हैं तथा तूफान के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं।
- ❖ इनमें शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की भाँति तापमान सम्बन्धी विभिन्नता नहीं होती क्योंकि उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों में विभिन्न वाताग्रों का निर्माण नहीं हो पाता है।
- ❖ इन चक्रवातों में वर्षा की विभिन्न कोशिकाएं नहीं होती हैं। इनके प्रत्येक भाग में वर्षा होती है।
- ❖ उष्णकटिबन्धीय चक्रवात गतिशील नहीं रहते कभी–कभी एक ही स्थान पर कई दिनों तक स्थायी होकर तीव्र वर्षा करते रहते हैं।
- ❖ इनका भ्रमण पथ भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग रहता है। सामान्ययतया यह व्यापारिक हवाओं के साथ पू० से प० दिशा को गतिशील रहते हैं। इनकी भ्रमण दिशा भूमध्यरेखा से 15^0 अक्षाँशों तक परिश्चमी, 15^0 से 30^0 अक्षाँशों तक ध्रुवों की तरफ तथा उसके बाद फिर से पश्चिम को हो जाती है। यह चक्रवात उपोष्ण कटिबन्धों में प्रवेश करने के पश्चात समाप्त हो जाते है।
- ❖ इनका जनन विशेषतः ग्रीष्मकाल में होता है। शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की अपेक्षा इनकी संख्या व प्रभावित क्षेत्र भी कम ही रहता है।
- ❖ यह चक्रवात गति व अपने स्वभाव के कारण अति प्रलयंकारी होते हैं। एक ही स्थान पर स्थिर होकर कई दिनों तक भीषण वर्षा करने के कारण बाढ़े आ जाती हैं। तटीय भागों में यह अधिक विनाशकारी होते हैं। 1970 के बांग्लादेश टाईफून से लाखों का नर संहार व अपार धन तथा पशु सम्पदा का विनाश हुआ था।

12.8 उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों के प्रकार (TYPES OF TROPICAL CYCLONE)

उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों को कतिपय निर्दिष्ट आधारों पर विभाजित करना आसान नहीं है क्योंकि इनको मौसम तथा स्वभाव में अत्यधिक भिन्नता देखने को मिलती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में इन चक्रवातों को चार प्रमुख वर्गो में विभक्त किया गया है।

1– उष्णकटिबन्धीय विक्षोभ (TROPICAL DISTURBANCE)

2– उष्णकटिबन्धीय अवदाब (TROPICAL DEPRESSIONS)

3– उष्णकटिबन्धीय तूफान (TROPICAL STORMS)

4– हरिकेन या टाइफून (HURRICANE OR TYPHOON)

उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की तीव्रता के आधार पर इन्हें निम्नलिखित वर्गो में विभक्त किया जा सकता है –

1– कमजोर चक्रवात (WEAK CYCLONE)

(अ) उष्णकटिबन्धीय विक्षोभ

(ब) उष्णकटिबन्धीय अवदाब

2– प्रचण्ड चक्रवात (STORM CYCLONE)

(अ) हरिकेन या टाइफून

(ब) टारनैड़ो

(1) उष्णकटिबन्धीय विक्षोभ (TRDIJICAL DISTURBANCE) –

इस चक्रवाती में हवाएं क्षीण गति से केन्द्र की ओर प्रवाहित होती हैं तथा यह चक्रवात मन्द गति से आगे बढ़ता है। इस चक्रवात में एक या दो घिरी समदाब रेखाएं होती हैं। इनका वेग इतना कम होता है कि कभी–कभी एक ही स्थान पर कई दिनों तक टिके रहते हैं। यह उष्ण एवं उपोषण दोनों कटिबन्धों को प्रभावित करता है। पूर्वी तरंग को भी इसी कोटि के अन्तर्गत रखा जाता है। यह तरंगे पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर गतिशील होती हैं जिससे कहीं–कहीं पर हल्की वर्षा भी हो जाती है।

2 उष्णकटिबंधीय अवदाब (TROPICAL DEPRESSION) –

आकार में लघु तथा एक से अधिक समदाब रेखाओं वाले उष्णकटिबन्धीय चक्रवात को अवदाव कहा जाता है। इनमें हवाएं 40 से 50 कि०मी० प्रति घण्टे की दर से प्रवाहित होती हैं। इनके प्रवाह की दिशा और गति अनियमित तथा अनियन्त्रित रहती हैं। इन का जनन उष्णकटिबन्धीय अपहरण के साथ होता है। कभी–कभी यह चक्रवात भी एक ही स्थान पर कई दिनों तक स्थिर रहता है यह ग्रीष्मकालीन अवधि में भारत तथा उ० आस्ट्रेलिया को प्रभावित करते हैं। बंगाल की खाड़ी के उत्तरी भाग में जनित होने वाले यह चक्रवात भारत में उ०प० तथा पश्चिमी दिशा में अग्रसर होते हैं और आस्ट्रेलिया में इनके गति की दिशा पश्चिमी होती है। इन चक्रवातों से प्रभावित क्षेत्रों में भारी वर्षा होने के कारण बाढ़े आ जाती हैं। चीन एवं जापान के द० भाग भी इन्हीं चक्रवातों के द्वारा प्रभावित होते हैं।

(3) उष्णकटिबन्धीय तूफान (TROPICAL STORMS) –

यह तूफान समदाब रेखाओं से घिरे न्यून दाब के केन्द्र होते हैं। 40 से 120 कि०मी० प्रति घण्टा की दर से बाहर से केन्द्र की ओर हवाएं प्रवाहित होती हैं। ये चक्रवात ग्रीष्मकाल में अरब सागर और बंगाल की खाड़ी में तथा कैरेवियन सागर फिलीपीन्स के आस–पास जनित होते हैं। कभी–कभी यह चक्रवात अपने प्रभावित क्षेत्रों में (बांग्लादेश के निम्न भाग, प० बंगाल के डेल्टाई भाग, आन्ध्र प्रदेश व उड़ीसा के तटीय भाग) अति वृष्टि से जलवाष्पन के द्वारा वायुमण्डलीय प्रकोप तथा आपदा का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। भारत पूर्वी तटीय भाग इन तूफानी चक्रवातों से प्रायः प्रभावित होता रहता है। इन तूफानी चक्रवातों से बांग्लादेश में (12 दि० 1970) 300000 लोगों की मृत्यु प० बंगाल के तटवर्ती भागों में (1737 ई०) 300000 लोगों की मृत्यु हुई, आन्ध्र प्रदेश के तटीय क्षेत्रों में (1977 ई०) 55000 लोगों की मृत्यु हुई। इसी प्रकार उड़ीसा के सुपर चक्रवात ने (1919 ई०) 100000 लोगों को कॉल कवलित कर दिया। इन चक्रवर्ती तूफानों ने भूमि व वन विनाश करने के साथ असंख्य पशुओं व जन्तुओं को भी मृत्यु की नींद सुला दिया था।

(4) हरिकेन या टाईफून (HURRICANE OR TYPHOON) –

अनेक समदाब रेखाओं से घिरे हुए विस्तृत उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों को संयुक्त राज्य अमेरिका में हरिकेन तथा चीन में टाईफून कहा जाता है। आकार में अति विशालकाय हरिकेन चक्रवातों का तत्कालिक प्रभाव तो प्रलयंकारी होता है परन्तु जलवायु प्रभाव नगण्य होता है क्योंकि इनकी संख्या बहुत कम होती है। हरिकेन की गति 120 कि०मी० प्रति घण्टे होती है। यद्यपि यह अपने वायुप्रणाली, आकार तथा वर्षा के सन्दर्भ में यह शीतोष्ण चक्रवातों जैसे ही दिखाई देते हैं परन्तु इनकी निम्न आधारभूत स्थितियाँ इन्हें अलग करती है–

- हरिकेन की समदाब रेखाएं में अधिक वृत्ताकार एवं सुड़ौल होती हैं। इनमें दाब प्रवणता अधिक होती है क्योंकि केन्द्र से बाहर की ओर वायुदाब में तीव्रता के साथ वृद्धि होती है।
- शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की वर्षा उसे एवं शीत वाताग्रो में ही होती है, उष्ण व शीत वृत्तांशों में नहीं। जबकि हरिकेन में मूसलाधार वर्षा होती है तथा उसका वितरण प्रभाव क्षेत्र में समान रहता है।
- शीतोष्ण चक्रवातों की भाँति हरिकेन में न तो तापमान का अन्तर रहता है, न ही विपरीत स्वभाव वाली वायुराशियाँ होती हैं और न ही विभिन्न प्रकार के वाताग्र ही होते हैं।
- हरिकेन के साथ प्रतिचक्रवातों की स्थितियाँ नहीं रहती हैं। इनकी दिशा शीतोष्णचक्रवातों के विपरीत पूर्व से पश्चिम को होती हैं।

हरिकेन का व्यास 160 से 140 कि०मी० तक होता है। भूमध्यरेखा के समीप जनित हरिकेन का आकार छोटा रहता है परन्तु उससे दूरी बढ़ने के साथ ही आकार भी बड़ा हो जाता है। केन्द्र का दाब 900 से 950

मिलीबार रहता है तथा केन्द्र व परिधि की समदाब रेखाओं की मान में 10 से 55 मिलीबार का अन्तर होने के कारण दाब प्रवणता अधिक हो जाती है फलतः परिधि से केन्द्र की ओर हवाएं तीव्र गति से झटपटी हैं। हरिकेन के केन्द्र में एक ऐसा क्षेत्र (6 से 48 कि०मी० तक) रहता है जो शान्त एवं वर्षा रहित होता है। इसे हरिकेन का चक्षु (EYE OF STORM) कहा जाता है। हरिकेन के कारण सागरों में तरंगे उठती हैं जिन्हें हरिकेन लहर (HURRICANE WAVES) कहा जाता है। ये लहरें हरिकेन के प्रभाववश 3–6 मीटर तक ऊपर उठती हैं जिनके कारण सागरीय जल तटीय भागों में अन्दर तक प्रवेश कर जाता है फलतः वहाँ की निवासियों को आवास व फसल विनाश की हानि उठानी होती है। 12000 मीटर व जीवन काल एक सप्ताह तक रहता है।

12.9 उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों का जनन (ORIGEN OF TROPICAL CYCLONES) –

इन चक्रवतों के जनन के सन्दर्भ में अभी भी मतान्तर है। वाताग्र सिद्धान्त समर्थ को मतानुसार वाताग्रों के कारण ही सभी प्रकार के चक्रवातों की उत्पत्ति होती है। भूमध्य रेखीय प्रदेशों में दो विपरीत भौतिक गुणों की वायुराशियों के अभाव में भी स्थल तथा सागरीय हवाओं के मिलने के कारण वाताग्रों का निर्माण होता है। प्रारम्भ में विभिन्न प्रकार की वाताग्र होते हैं परन्तु यह आगे चलकर यह विलीन हो जाते हैं। यह सर्वमान्य नहीं है क्योंकि उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों का सम्बन्ध किसी भी दशा में वाताग्र से नहीं है। उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की उत्पत्ति हेतु निम्न तथ्यों पर विचार करना आवश्यक होगा (1) यह ग्रीष्मकालीन अवधि में जनित होते हैं जब तापमान 72^0 से०ग्रे० से अधिक होता है। (2) इन चक्रवातों का विकास मात्र गर्म सागरों के ऊपर होता है। (3) भूमध्यरेखा पर यह चक्रवात नहीं पाये जाते हैं। गर्मियों में इनका जनन अन्तरा उष्णकटिबन्धीय अभिसरण के साथ होती है, जबकि यह खिसककर 5^0 से 30^0 उ० अक्षाँश तक चली जाती है। भूमध्यरेखा पर कोरिआलिस बल न होने के कारण ही वहाँ चक्रवातों का जनन नहीं होता है। भूमध्यरेखा की उ० कोरियाआलिस बल पृथ्वी की अक्षीय है गति के कारण हवाओं की व्यवस्था चक्रिय हो जाया करती है।

उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की उत्पत्ति तथा उनका विकास निम्नांकित अनुकूल दशाओं के ऊपर निर्भर करता है।

❖ इन चक्रवातों के जनन हेतु गर्म एवं आर्द्र हवाओं की आपूर्ति लगातार होती रहनी चाहिए।

❖ उच्च मान कोरिआलिस बल का रहना आवश्यक है क्योंकि इनके–प्रभाववश हवा की दिशाओं में विक्षभे होने से ही सक्रिय चक्रवर्ती परिसंचरण प्रणाली का जनन होता है। महासागरों के प० भागों में 5^0 से 30^0 चौड़ी पट्टी के मध्य अधिकांश उष्णकटिबन्धीय चक्रवातो का जनन होता है।

❖ अन्तरा उष्णकटिबन्धीय अभिसरण की पेटी 5^0 से 30^0 उ० अक्षाँशें के मध्य विस्तृत है। यह स्थिति उ० गोलार्द्ध में ग्रीष्मकालीन अवधि में रहती है। यह चक्रवातों इसी पेटी से ही सम्बन्धित हैं। सूर्य के दक्षिणीयन होने पर अन्तरा उष्णकटिबन्धीय अभिसरण (ITC) का दक्षिणी की ओर स्थानान्तरण हो जाता है जिससे उ० गोलार्द्ध के अन्तर्गत शीतकालीन अवधि में चक्रवात प्रायः नहीं जनित होते हैं।

❖ इन चक्रवातों के पूर्व उष्णकटिबन्धीय विक्षोभों की स्थिति रहने से यह विक्षोभ और तीव्र होकर प्रलयंकारी तूफानी चक्रवात में बदल जाते हैं और इनका प्रभाव अति भयानक हो जाता है।

❖ धरातलीय चक्रवातों के ऊपर 9000 से 15000 मीटर की ऊँचाई पर प्रति चक्रवातीय परिसंचरण रहना चाहिए। इसी चक्रवातीय परिसंचरण के कारण धरातल के सतह की हवाएं ऊपर खींचती हैं फलतः धरातलीय सतह का न्यूनदाब के केन्द्र और अधिक प्रबल हो जाता है।

❖ इन चक्रवातों का जनन अन्तरा उष्णकटिबन्धीय अभिसरण की पेटी में छोटी–छोटी वायुमण्डलीय भँवरो (VORTICES) के निकट ही जनित होते हैं।

❖ वस्तुतः उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की उत्पत्ति के लिए शक्तिशाली ट्रिगर क्रिया विधि जो चक्रवात की प्रणाली को सक्रिय करने की प्रणाली में समर्थ है। यह कार्य ऊपरी क्षोभमण्डल में निम्न वायुदाब प्रणाली के पहुँचने पर सम्पन्न होता है।

❖ सागरीय जल का तापमान 60 से 70 मीटर की गहराई तक न्यूनतम 27^0 से०ग्रे० का होना आवश्यक है।

उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों से सम्बन्धित मौसम

इन चक्रवातों के आने से पहले हवाएं धीमी, तापमान में अचानक वृद्धि और वायुदाब कम होने लगता है। आकाश में पक्षाभ बादलों के दर्शन होने लगते हैं। सागर में उच्च तरंगे उठने लगती हैं। चक्रवात के नजदीक आने पर हवाएं तूफान का रूप धारण कर लेती हैं आकाश काले कपासी बादलों से भर जाता है और अतिशय वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है। वर्षा सामान्यतया 10 से 25 से०मी० होती है पर मार्ग में अवरोध आ जाने के कारण यह वर्षा 75 से 100 से०मी० होती है। मौसम की स्थितियाँ कुछ अवधि तक रहती हैं इसके पश्चात मौसम स्वच्छ एवं वर्षा कर जाती है। यह लक्षण चक्रवात चक्षु अर्थात केन्द्र का परिचायक होता है। वायुदाब न्यूनतम हो जाता है। यह स्थिति एक घण्टे से कम रहती है। इस स्थिति के पश्चात तत्काल चक्रवात के पृष्ठ प्रदेश के आ जाने से मूसलाधार वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है। यह स्थिति लम्बे समय तक रहती है। जैसे–जैसे चक्रवात आगे बढ़ता जाता है वायुदाब बढ़ता है परन्तु वायु की गति मन्द हो जाती है बादलों की स्थिति हल्की होने लगती है वर्षा कम होने लगती है। चक्रवात के आगे निकल जाने पर आकाश से बादल साफ हो जाते हैं जिससे मौसम भी साफ हो जाता है।

12.10 उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों के वितरण क्षेत्र

दोनों गोलार्द्धो में 5^0 से 15^0 अक्षाँशों के मध्य सागरों के ऊपर प्रमुख रूप से उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों का वितरण मिलता है। महाद्वीपीय तटीय क्षेत्रों को प्रभावित करने के उपरान्त यह चक्रवात समाप्त हो जाते हैं। यह चक्रवात उष्णकटिबन्धों में कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में बने रहते हैं परन्तु हरिकेन द० अटलांटिक महासागर, दक्षिण पूर्व प्रान्त महासागर तथा भूमध्य रेखा के दोनों ओर 5^0 अक्षाँशों के मध्य नहीं मिलते हैं। उष्णकटिबन्धों में जनित चक्रवात के निम्नलिखित 6 वितरण क्षेत्र हैं।

(1) उत्तरी अटलांटिक महासागर क्षेत्र – उत्तरी अटलांटिक महासागर के दक्षिणी तथा द०प० भाग में उ० अक्षांशों तक प्रति वर्ष 07 चक्रवात आते हैं जिनमें आधे तो हरिकेन के रूप में परिवर्तित हो जाते है। अगस्त तथा सितम्बर में के अमेरिका के अटलांटिक तटीय दक्षिणी भाग तक, मई से नवम्बर में उत्तरी कैरीबियन सागर में, जून से अक्टूबर तक द० कैरोवियन सागर में तथा जून से अक्टूबर तक मैक्सिको की खाड़ी हरिकेन के सक्रिय होने की घटनाएं घटित होती हैं।

(2) उत्तरीय प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र – उष्णकटिबन्धीय चक्रवात मैक्सिको के पश्चिम तट के सहारे उद्भुत होकर उ०प० दिशा में चलते हुए नाममात्र कैलिफोर्निया के तटीय भागों को प्रभावित करते हैं परन्तु कभी–कभी यह हवाई द्वीपिय क्षेत्र तक पहुँच जाते हैं। इस क्षेत्र में प्रत्येक वर्ष जून से नवम्बर माह के मध्य लगभग 6 की संख्या में चक्रवात आते हैं। इनमें दो चक्रवात निश्चय ही हरिकेन के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।

(3) दक्षिणी–पश्चिमी उत्तरी प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र – विशेषतः चीन सागर, फिलीपीन्स व द० जापान के निकटवर्ती भागों में मई से दिसम्बर के मध्य जनित चक्रवात इन्हीं क्षेत्रों को प्रभावित करते हैं। चीन के पूर्वी तट को यह प्रलयंकारी रूप में प्रभावित करते हैं। इन प्रलयंकारी चक्रवातों को यहाँ टाईफून कहा जिनकी वार्षिक आने की आवृत्ति लगभग 21 की होती है।

(4) दक्षिणी प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र – ऑस्ट्रेलिया के पूर्वी भाग में 140^0 प० देशान्तर के निकट सोसाइटी द्वीप के पूर्वी भाग में उद्भुत होने वाले यह चक्रवात (दिसम्बर से अप्रैल के मध्य) आस्ट्रेलिया के उ०प० तटों को प्रभावित करते हैं।

(5) उत्तरीय हिन्द महासागरीय क्षेत्र – बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर क्षेत्र में जनित होने वाले यह चक्रवात भारत को व्यापक पैमाने पर प्रभावित करते हैं। बंगाल की खाड़ी में चक्रवातों के आने की अवधि अप्रैल से दिसम्बर होती है। जबकि अरब सागर में यह चक्रवात अप्रैल से जून तथा सितम्बर से दिसम्बर के मध्य आते हैं यहाँ पर इन्हे चक्रवात या अवदाब के रूप में जाना जाता है।

(6) दक्षिणी हिन्द महासागरीय क्षेत्र – नवम्बर से अप्रैल के मध्य महासागरीय क्षेत्र में मेडागास्कर, यूनियन तथा मारीशश द्वीपों के निकटवर्ती भागों में यह चक्रवात आते हैं।

12.11 उष्णकटिबन्धीय चक्रवातो के मार्ग (TRACKS OF TROPICAL CYCONES)

उष्णकटिबन्धीय महासागरों की उष्ण सतहों पर जनित होने के उपरान्त यह चक्रवात दोनों गोलार्द्धो में 5^0 से

20⁰ अक्षाँशों की पेटी में पूर्वी व्यापारिक हवाओं के प्रभाव में पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर अग्रसर होते हैं। महासागरों के पश्चिम क्षेत्र पर पहुँचने के उपरान्त महाद्वीपों के पूर्वी तटवर्ती भागों से टकराने के उपरान्त उ०प० दिशा में मुड़ जाते हैं। भूमध्यरेखीय गर्म महासागरीय धाराएं भी चक्रवातों को प० दिशा के गमन में सहायता करती हैं। दोनों गोलार्द्धों में 20⁰ से 30⁰ अक्षाँशों के मध्य पहुँचने के उपरान्त यदि उष्णकटिबन्धीय चक्रवात अब भी समाप्त नहीं हुए तो पछुआ हवाओं के प्रभाव में मुड़कर पूर्व की ओर चलते हैं। उल्लेखनीय है कि जैसे ही यह चक्रवात तटवर्ती स्थानीय भागों से टकराते हैं, उनकी ऊर्जा का क्षय होने लगता है और ये क्षीण होने लगता है क्योंकि इनकी ऊर्जा के प्रमुख स्रोत धरातलीय गर्म सतहों से इनका सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। कभी–कभी यह चक्रवात कई दिनों तक स्थायी हो जाते हैं।

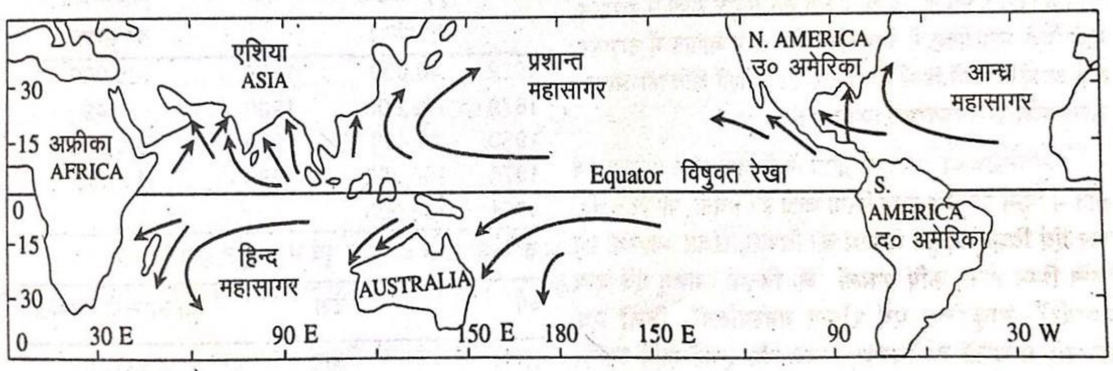

उष्णकटिबन्धी चक्रवातों के मार्ग (tracks)।

इन चक्रवातों मार्गों में क्षेत्रीय भिन्नताएं भी विद्यमान होती हैं परन्तु सामान्यतया ये पूर्वी व्यापारिक हवाओं व विषुवतरेखीय महासागरीय धाराओं के प्रभाववश पू० से प० को गतिशील होते हैं। दोनों गोलार्द्धों में विषुवत रेखा से 15⁰ अक्षाँशों तक सामान्यतया पू० से प० एवं 15⁰ से 30⁰ अक्षाँशों के मध्य ध्रुवों की ओर तद्उपरान्त पूर्व की ओर इन चक्रवातों के गमन मार्ग की दिशा रहती है।

12.12 टारनैडों (TORNADO) –

टारनैड़ो एक प्रचंड तूफान होते हैं, जिनका ऊपरी भाग छतरीनुमा तथा मध्यवर्ती एवं निचला भाग पाइप की तरह होता है और यह धरती की सतह को स्पर्श करते रहते हैं। छलनी की आकृति वाले टारनैड़ो यद्यपि चक्रवातों की तुलना में छोटे होते हैं परन्तु अत्यन्त विस्फोटक, भयानक एवं प्रलयंकारी होते हैं। यह समस्त प्रकार की वायुमण्डलीय तूफानों में प्रबलतम विध्वंसकारी होते हैं। यदि उपयुक्त समय पर इनके बारे में चेतावनी न दी जाय तो जीवन पर धन–जन की हानि का सामना करना पड़ता है। टारनैड़ो अतिभयावह रूप में घूर्णन करती वायु के स्तम्भ होते हैं। उनका ऊपरी भाग वर्षा वाले कपासी बादलों द्वारा घिरा रहता है। ये बादल छलनी की आकृति में विस्तृत होते हैं और धरातलीय सतह से हवा के पाइपनुमा स्तम्भ से सम्बन्धित होते हैं। इनकी उत्पत्ति मुख्य रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका व आस्ट्रेलिया मे होती है। आकार में लघु व प्रभाव में विध्वंसकारी, अति प्रलयंकारी इन प्रचण्ड तूफानों की कतिपय विशेषताएं होती है।

विशेषताएं (CHARACTERISTICS) – टारनैड़ो की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत होती हैं –

- यह प्रचंड रूप से घूर्णन करती वायु की वह प्रणाली होते हैं जिसमें ऊपर की हवा धरातलीय सतह की हवा को तीव्र गति से ऊपर की ओर खींचती है जिससे उत्थापित हो रही हवा के कारण संवहनीय अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है।

- प्रचंड वायु वेग के कारण यद्यपि इनके वायुदाब का वास्तविक मापन करना अति दुष्कर है परन्तु 1904 ई० में संयुक्त राज्य अमेरिका के मिनीसोटा प्रान्त में एक बार टारनैड़ो का न्यूनतम वायुदाब 813 मिलीबार माप किया गया था। इनके केन्द्र में अति कम वायुदाब रहता है। इनके बाएँ भाग तथा केन्द्र के वायुदाब में

लगभग 100 मिलीबार का अन्तर रहता है।

- टारनैडो की छलनी का व्यास धरातलीय सतह पर लगभग 90 मीटर एवं ऊपरी भाग में लगभग 5 गुना (460 मीटर) अधिक होता है।
- टारनैड़ो में वाह्य एवं केन्द्रीय भागों के मध्य अति वायुदाब प्रवणता होने के कारण वायु वाह्य भाग से केन्द्र की ओर बड़ी तेजी से बढ़ती है। वायु की गति 400 से 800 कि०मी० प्रति घण्टा तक हो सकती है। इस प्रकार केन्द्र की ओर तीव्र गति से बढती वायु तूफान में एक फँसकर तेजी से ऊपर को उठा दी जाती है फलतः एडियावेटिक विधि से ठंडी होकर तड़िझंझा (THUNDERSTORM) का निर्माण कर देती है। अतः टारनैडो सदैव प्रबल तड़ितझंझा से भी सम्बन्धित रहते हैं।
- टारनैड़ो की दिशा एवं मार्ग दोनों सुनिश्चित नहीं रहते और कभी–कभी तो यह एक ही स्थान पर स्थिर हो जाते हैं। स्थिर होने पर इनके आगे बढ़ने की गति शून्य हो जाती है। सामान्यतया इनकी गति 40 से 60 कि०मी० प्रति घण्टे आगे बढ़ने की है परन्तु विशेष परिस्थिति में यह 100 कि०मी० प्रति घण्टे से भी अधिक गति से आगे बढ़ते हैं।
- टारनैड़ो के आगे बढ़ने का मार्ग बहुत संकरा (कुछ मीटर से लेकर लगभग 2000 मीटर) होता है। सामान्यतया इनकी यात्रा का मार्ग 40 से 50 कि०मी० तक ही रहता है परन्तु कभी–कभी या अधिक लम्बी दूरी भी (1970 में संयुक्त राज्य अमेरिका के इलिनाइस एवं इण्डियाना प्रान्तों में अब तक की सर्वाधिक लम्बी दूरी 570 कि०मी० इनके द्वारा सम्पन्न की गयी है) तय करते हैं।
- विशेष परिस्थितियों को छोड़कर (विशेष परिस्थिति में इनका जीवनकाल कुछ घण्टो तक रहता है) इनका जीवनकाल 15 से 20 मिनट का (औसतन) रहता है।
- टारनैड़ो के साथ चूँकी धूल, रेत, राख एवं मलवा आदि की भारी मात्रा मिली रहती है इसलिए यह अत्यन्त भूरे एवं काले रंग के दिखाई देते हैं।
- इनके आने की पूर्व आकाश मोटे काले रंग के बादलों से ढक जाता है फलतः दिन में ही अंधेरा हो जाता है। अतः दृश्यता न्यून होने के साथ–साथ वायुदाब भी न्यून हो जाता है।
- टारनैड़ो या तो अकेले गतिशील होते हैं या तो यह औसतन 7 से 8 के समूह में चलते हैं। इनकी समूह को इनका परिवार कहा जाता है। जब किसी क्षेत्र में टारनैड़ो अपने समूह में आते हैं तो उस स्थिति को टारनैड़ो विल्लव (TORNADO OUTBREAK) कहा जाता है।

टारनैड़ो की उत्पत्ति (ORIGIN OF TORNADO) –

वस्तुतः टारनैड़ो की प्रचंडता एवं गति की प्रबलता के कारण इनकी उत्पत्ति एवं विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझा नहीं जा सका है। इस सन्दर्भ में निर्माण के लिए निम्न दशाओं का होना आवश्यक है।

- धरातलीय सतह के निकट हवाओं का प्रबल अभिसरण एवं सतह के ऊपर हवाओं का व्यापक स्तर पर अपहरण।
- ऊपर की ओर उठकर अधिक समय तक स्थिर रहने वाली वायुराशि।
- एक ही दिशा में हवाओं की दिशा में परिवर्तन की दर।
- निचली परत में वायु राशि की स्थिति का होना।
- ट्रिमर क्रिया विधि की स्थिति।
- ऊँचाई के साथ तापमान में तीव्र गति से परिवर्तन।
- हवाओं के धूर्णन हेतु पहले से स्थापित क्रिया विधि।
- धरातलीय सतह पक्ष चक्रवातों के जनन की स्थिति।

कतिपय विद्वानों ने टारनैड़ो को वाताग्रों के साथ सम्बन्धित माना है। शीतोष्णकटिबन्धीय वाताग्रों के सहारे शीतल ध्रुवीय वायुराशियों द्वारा गर्म व आर्द्र उपोष्णकटिबन्धीय वायुराशि के तीव्र गति से बलपूर्वक ऊपर ढकेल दिये जाने के कारण टारनैड़ो के उद्‌भव की सभावनाएं बनती है। कभी–कभी अत्यधिक सूर्याताप प्राप्त होने से धरातलीय सतह अति गर्म हो जाने के कारण संवहनीय धाराएं उत्पन्न हो जाती हैं जिनसे टारनैड़ो की उत्पत्ति एवं विकास हो जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के वैज्ञानिक वी०जे० ऐसाव का यह मानना है कि **"दो मेघ राशियों के आपसी आकर्षण के कारण से भी टारनैडो का जनन होता है।"** यद्यपि टारनैड़ो कभी भी जनित हो सकते हैं परन्तु यह प्रायः वसन्त एवं ग्रीष्मकालीन अवधि में जनित होते हैं।

ध्रुवीय वाताग्र के क्षेत्रों में टारनैड़ो का जनन उष्ण एवं उपोष्ण कटिबन्धीय गर्म एवं आर्द्र वायुराशि तथा ठड़ी एवं भारी ध्रुवीय वायुराशि की तीव्र टकराहट के कारण गर्म एवं आर्द्र वायु के तेजी से ऊपर ढकेले जाने के फलस्वरूप होता है। परस्पर विरोधी भौतिक गुणों वाली वायुराशियों के तीव्र टकराहट के कारण उसी टकराव सीमा के सहारे प्रबल विक्षोभ के उद्‌भूत होने से कई भंवर वन जाते हैं जो शीघ्र घूर्णन करती हवा के अतिशक्तिशाली विस्तृत भंवर (WHIRL) के रूप में विकसित हो जाती है। इसी शक्तिशाली वायुभंवर के कारण के कारण गर्म एवं आर्द्र वायु चिमनियों के धुँए की भाँति ऊपर उठ जाती है। विरोधी गुणों वाली वायु के विस्फोटक आदान–प्रदान की प्रक्रिया को सक्रिय करने के लिए ऊष्मा ट्रिगर क्रियाविधि का कार्य करती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सौर्यिक ऊर्जा की उष्मा द्वारा धरातल की सतह जब एकाएक गर्म होती है तो गर्म–आर्द्र वायु ऊपर की ओर उठ जाती है। वस्तुतः सूर्यताप से अति गर्म धरातल की सतह जब ऊष्मा का वायुमण्डल की ओर विकिरण करती है तो यही उसमें ऊष्मा ऊपर की ओर उठती हुई गर्म वायु को उर्जा प्रदान करती है इस स्थिति के प्रभाव और धरातल की सतह पर अति न्यूनतम बन जाता है और प्रबल संवहनीय क्रियाएं प्रारम्भ हो जाती है। धरातल पर बने न्यून वायुदाब के कारण हवाऐं अधिक तीव्रता के साथ इसी न्यून वायुदाब केन्द्र की ओर जाती हैं और चक्कर काटते हुए ऊपर उठती हैं और यह चक्कर काटती हुई वायु का ऊपर उठना स्तम्भन बन जाता है और टारनैड़ो तूफान का जनन हो जाता है। इस प्रकार के प्रबल तूफान में सुपर कोशिकाएं होती हैं। जब यह तीव्र चक्कर काटती गर्म व आर्द्र हवाएं अधिक ऊपर उठती हैं तो कई सुपर कोशिकाओं से युक्त बड़े आकार वाले तंडितझंझा का निर्माण हो जाता है। इन सुपर कोशिकाओं के द्वारा मूसलाधार वृष्टि होती है तथा स्थानीय दशाओं के अनुरूप उपलवृष्टि भी हो जाया करती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि तारनैडों में हवाओं का चक्करदार प्रवाह प्रतिरूप पवन अपरूपण (वायु की दिशा गति का बार–बार परिवर्तन होना) के कारण निर्मित होता है। जैसे ही किसी तारनैड़ो का तंड़ितझंझा के रूप में विकास होता है धरातलीय सतह के समीप मैमन्टस बादलों का निर्माण हो जाता है। तडितझंझा के ऊपरी भाग में छलनी आकार वाले बादलों का निर्माण हो जाता है। कीप के आकार वाले बादल नीचे की तरफ बढ़ने लगते हैं और बादलों की दीवार से टारनैड़ो का विकास हो जाता है।

चित्र

टारनैडो का वितरण क्षेत्र (DISTRIBUTIONAL AREA OF TORNADO)

विद्वानों का यह मानना है कि ध्रुवीय क्षेत्रों के अतिरिक्त टारनैड़ो का जनन विश्व में कहीं भी है परन्तु इनसे सम्बन्धित अध्ययनों से यह तथ्य प्रकाश में आया है कि इनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्पत्ति संयुक्त राज्य अमेरिका में होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका के 40^0 अक्षाँश के दक्षिण एवं राकी पर्वत के पूर्व में विस्तृत क्षेत्र के अन्तर्गत अप्रैल से सितम्बर माह में टारनैड़ो विकसित होते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के वृद्ध मैदानी प्रदेश में शीत वाताग्रों के सहारे अनुकूल दशाएं होने के कारण टारनैड़ो का जनन व विकास होता है।

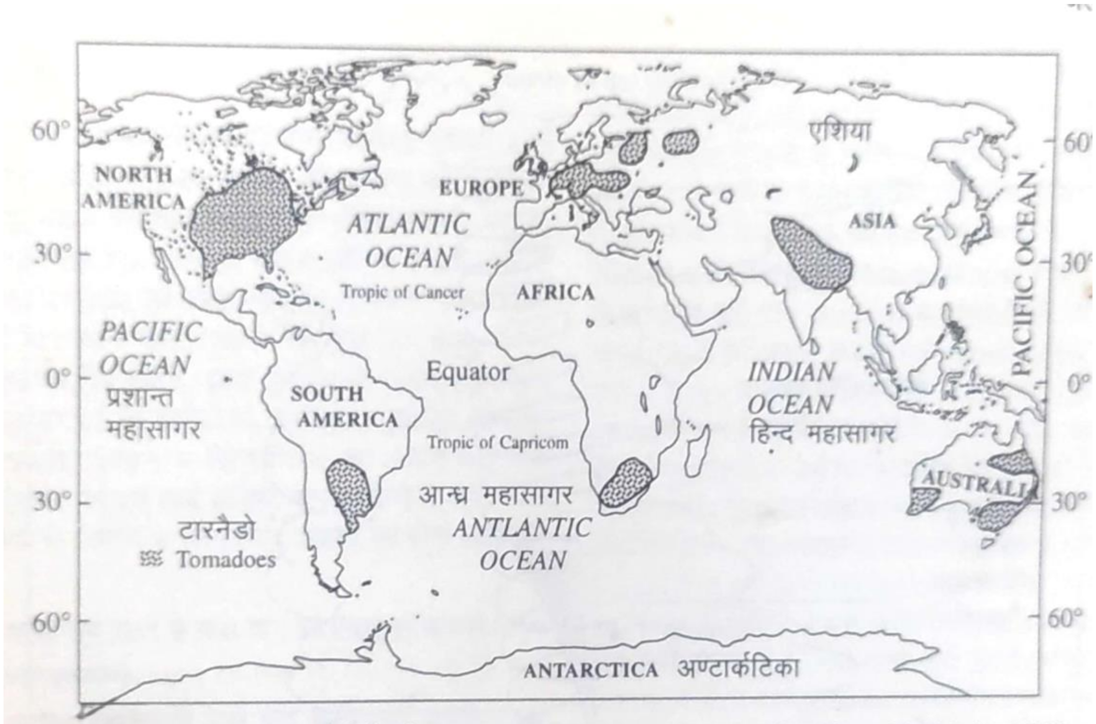

विश्व में टारनैडो के क्षेत्र / **Source** : *based on and modified from McKnight, 1996.*

अधिकतम टारनैड़ो जनन के कारण इस क्षेत्र को **टारनैड़ो वीथिका (TORNADO ALLEY)** कहा जाता है। टेक्सास, मिसीसिपी, अलाबामा, की सौरी अरकन्सास, ओक्लाहामा, कराकान्स तथा अयोवा प्रान्त में सर्वाधिक टारनैड़ो आते है। उल्लेखनीय है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में तड़ितझंझा व टारनैड़ो की घटनाएं अप्रैल से सितम्बर के मध्य दिन की अवधि में एक ही समय पर घटित होती है। यहाँ जब कई टारनैड़ो समूह में विकसित होते हैं तो उसे टारनैड़ो परिवार और घटित होने को टारनैड़ो बिप्लव कहते है। 9 फरवरी 1884 के टारनैड़ो विप्लव में 60 टारनैड़ो के परिवार ने प्रातः 10 बजे रात्रि के 12 बजे तक यू०एस०ए० के वर्जिनियाँ, उ० कैरोलाइना, जार्जिया, अलबामा, मिसीसिपी, टेनेसी तथा केन्चुकी प्रान्तों में प्रलयंकारी तबाही का दृश्य उपस्थिति कर दिया था। इसी प्रकार 23 अप्रैल 1974 के टारनैड़ो विल्लव ने यू०एस०ए० के 12 प्रान्तों में भयंकर तबाही मचायी थी।

संयुक्त राज्य अमेरिका में किसी भी समय टारनैड़ो का जनन हो सकता है परन्तु यहाँ आने वाले पिछले लगभग 70 वर्षों के टारनैड़ो की सबसे अधिक आवृत्ति अप्रैल से जून माह में देखी गयी है। संयुक्त राज्य अमेरिका में आवश्यक रूप से प्रतिवर्ष लगभग 800 टारनैड़ो विकसित होते हैं।

टारनैड़ो की सीमित संख्या में घटनाएं फ्रान्स, यू०के०, जर्मनी, अर्जेन्टीना, दक्षिण अफ्रीका, चीन, भारत व आस्ट्रेलिया में भी घटित होती है। भारत देश में इसे बवण्डर के नाम से जाना जाता है।

12.13 सारांश

इस अध्याय में, हमने उष्णकटिबंधीय चक्रवात और प्रतिचक्रवात की महत्वपूर्ण अवधारणाओं का अध्ययन किया। हमने जाना कि उष्णकटिबंधीय चक्रवात गर्म समुद्रों पर उत्पन्न होते हैं और इनकी उत्पत्ति, प्रकार और संरचना के विभिन्न पहलू होते हैं। इनके कारण तीव्र हवाएँ, भारी वर्षा और उच्च ज्वार की लहरें उत्पन्न होती हैं, जो व्यापक विनाश का कारण बन सकती हैं। वहीं, प्रतिचक्रवात उच्च दबाव वाली प्रणालियाँ होती हैं जो शांत और शुष्क मौसम की स्थिति उत्पन्न करती हैं। प्रतिचक्रवात के प्रकार और उनकी विशेषताओं को समझने से हम वायुमंडलीय घटनाओं की विस्तृत समझ प्राप्त कर सकते हैं। इस अध्याय ने हमें उष्णकटिबंधीय चक्रवात और प्रतिचक्रवात के विभिन्न पहलुओं की गहन जानकारी दी, जिससे हम मौसम की इन महत्वपूर्ण घटनाओं के प्रभाव और उनसे निपटने के उपायों को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

12.14 बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1. चक्रवात क्या है?

(क) एक उच्च दाब क्षेत्र **(ख)** एक निम्न दाब क्षेत्र **(ग)** एक तापीय प्रतिलोमन **(घ)** एक टारनेडो

2. किस गोलार्द्ध में उष्णकटिबन्धीय चक्रवात 'वामार्त' में घूमता है।

(क) उत्तरी गोलार्द्ध **(ख)** दक्षिणी गोलार्द्ध

(ग) दोनों गोलार्द्ध में **(घ)** यह चक्रवात की तीव्रता पर निर्भर करता है

3. चीन के तट को प्रभावित करने वाले चक्रवात क्या कहलाते हैं?

(क) हरीकेन **(ख)** टाइफून **(ग)** टारनेडो **(घ)** विली–विली

4. उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात के आंख का विशेष लक्षण है।

(क) तेज हवाएं **(ख)** भारी वर्षा **(ग)** शांत क्षेत्र **(घ)** पूर्ण मेघान्छन

5. उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात का नाम हैं 'हरीकेन' कहां है?

(क) चीन **(ख)** भारत **(ग)** आस्ट्रेलिया **(घ)** कैरीबियन सागर

6. उष्णकटिबन्धीय चक्रवात की स्केल किसने बनाया?

(क) व्यूफोर्ट स्केल **(ख)** रिक्टर मापक **(ग)** सिफर–सिम्पसन मापक **(घ)** फुजिटा मापक

7. चक्रवात विकसित होने में प्राथमिक ऊर्जा स्त्रोत क्या है?

(क) सौर्य विकिरण **(ख)** समुद्र ताप **(ग)** भू तापीय ऊर्जा **(घ)** वायु अभिसरण

12.15 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. उष्णकटिबन्धीय चक्रवात के उत्पत्ति की व्याख्या करें।

2. उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात की विशेषताओं को उदाहरण सहित समझाएं।

3. उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात के विश्व–वितरण को समाझाएं।

4. प्रति चक्रवात के उत्पत्ति , विशेषताओं की व्याख्या करें।

5. टारनैड़ो की उत्पत्ति , विशेषताओं की व्याख्या करें।

12.16 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

1.डी एस. लाल – जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज

2. प्रो0 सविद्र सिंह – जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स प्रयागराज

3. डॉ. वाई. आई. सिंह – जलवायु विज्ञान, एशियन ह्यूमेनटिस प्रेस (AHP)

4.डॉ. चतुर्भुज मामोरिया – डा. एम. एस. सिसोदिया – जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, साहित्य भवन कानपुर

इकाई–13

विश्व जलवायु का प्रादेशीकरण, कोपेन एवम थार्नथ्वेट की जलवायु के प्रादेशीकरण योजना

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 कोपेन का जलवायु वर्गीकरण

13.4 थार्नथ्वेट का जलवायु वर्गीकरण

13.5 निष्कर्ष

13.6 परीक्षा उपयोगी प्रश्न

13.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.1 प्रस्तावना :–

विश्व स्तर पर जलवायु का प्रादेशीकरण एक महत्वपूर्ण और विशिष्ट विज्ञान है, जो मानव और पृथ्वी के परिवर्तनशील सम्बन्धों के विषय में महत्वपूर्ण सूचनाओं को प्रदान करता है। इस प्रक्रिया के माध्यम से विश्व को विभिन्न क्षेत्रों को जलवायु व वनस्पति विशेशताओं के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। ताकि समान जलवायु क्षेत्रों को वर्गीकरण किया जा सके।

जलवायु के प्रादेशीकरण के माध्यम से पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों को उनकी जलवायु विशेशताओं के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। जलवायु वर्गीकरण से उनके बीच समानताएं और अन्तर पहचाने जा सके। इस प्रक्रिया से न केवल जलवायु परिवर्तन की समस्या में सुधार होता है, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्धन में भी बेहतरी होती है।

जलवायु प्रादेशीकरण से विश्व स्तर पर नई नीतियों और योजनाओं के विकास में मदद मिलती है। यह नक्शे, डेटा और अनुसंधान के आधार पर काम करता है, जो नागरिकों, निर्माताओं और निर्णयकर्ताओं की जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक संवेदनशील बनाता है।

विश्व स्तर पर जलवायु का प्रादेशीकरण न केवल वैज्ञानिक समुदाय के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक निर्णयों को प्रभावित करने में सहायक है। इसके माध्यम से हम समग्र ग्रामीण और 'ाहरी विकास की दिशा में जलवायु के प्रति अधिक समझ और सजगता विकसित कर सकते हैं। इस प्रकार जलवायु प्रदेशीकरण एक सुदृढ़ और स्वस्थ सम्बन्ध का निर्माण करता है। जो हमें जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के प्रति तैयार कर सकता है।

कोपेन की जलवायु वर्गीकरण प्रणाली, जिसे ब्लादिमीर कोपेन विकसित किया गया था। यह विश्व के जलवायु क्षेत्रों को वर्गीकृत करने के लिए सबसे व्यापक एवं स्वीकृत प्रणालियों में से एक है। कोपेन के इस वर्गीकरण का आधार कैण्डोल द्वारा प्रस्तावित (सन् 1874) में विश्व का वनस्पति कटिबन्ध था। कोपेन, जो एक जर्मनी–रूसी एक वनस्पति विज्ञानी और जलवायु विज्ञानी थे। कोपेन ने सन 1900 में इस प्रणाली की नीव रखी थी और इसके बाद 1918, 1931 व 1936 जिसमें संशोधन, परिवर्धन व परिश्करण किया गया। कोपेन का वर्गीकरण विश्व के विभिन्न हिस्सों की जलवायु को समझने और अध्ययन करने के लिए एक महत्वपूर्ण कार्य साबित हुआ।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी

1 कोपेन का जलवायु वर्गीकरण की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे

2. थार्नथ्वेट का जलवायु वर्गीकरण की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे

13.3 कोपेन का जलवायु वर्गीकरण

कोपेन का यह अध्ययन जलवायु का अनुभाविक वर्गीकरण है। कोपेन की जलवायु वर्गीकरण की मूल अवधारणा तापमान और वर्षा के आंकड़ो पर आधारित है। इस प्रणाली के तहत विभिन्न जलवायु प्रकारों को उनके औसत मासिक और वार्षिक तापमान और वर्षा के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। कोपेन ने जलवायु के वर्गीकरण के लिए अंग्रेजी के छोटे व बड़े अक्षरों का इस्तेमाल किया है। कोपेन ने कैण्डोल के वनस्पति कटिबन्धों को अपने अध्ययन का आधार बनाया। ये पांच वनस्पति मण्डल निम्नलिखित है।

1. **मेगाथर्मल मण्डल** – इस मण्डल में तापमान उच्च होता है व अत्यधिक वर्षा होती है। यह क्षेत्र उष्ण कटिबन्धीय या उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में स्थित होता है। यहां पर वर्ष भर औसत मासिक तापमान 18°C से अधिक रहता है। तापमान में मौसमी परिवर्तन बहुत कम व वार्षिक तापमान में थोड़ी बहुत स्थिरता होती है। जिससे दिन व रात के तापमान में न्यूनतम अन्तर रहता है। इस मण्डल में घने सदाबहार वर्षा वन पाये जाते है। यहां की वनस्थितियों की लम्बवत् संरचना में पांच स्तरों का विकास पाया जाता है। इस क्षेत्र की वनस्पति और जैव विविधता उच्च होती है। जो विश्व के शीर्ष जैव विविधिता वाले क्षेत्रों में से एक है। इस क्षेत्र की मिट्‌टी में लगातार भारी वर्षा के कारण पोषक तत्वों का निक्षालन हो जाता है। जिससे यहां मृदा निर्माण कार्य मंद गति से होता है। यह मण्डल भूमध्य रेखा के पास स्थित होता है। इसमें दक्षिण अमेरिका का अमेजन बेसिन, अफ्रीका का कागो बेसिन और दक्षिण पूर्व एशिया के कुछ भाग शामिल है।
2. **जेरोफाइटिक (मरूद्भिद) मण्डल** :– जेरोफाइटिक मण्डल जिसे शुष्क या अर्द्ध शुष्क जलवायु क्षेत्र भी कहा जाता है। यह उन स्थानों को दर्शाता है जहां पानी की कमी होती है और जीव जन्तु वनस्पतियों को सूखे और अत्यधिक गर्मी का सामना करना पड़ता है। इस मण्डल में गर्मियों में अत्यधिक उच्च तापमान पाया जाता है। जो दिन के समय 40°C से भी अधिक हो जाता है। रात के समय रेगिस्तानी भागों में तापमान काफी गिर जाता है। इस मण्डल में वर्षा की मात्रा काफी कम होती है। जो 25 सेमी/वर्ष से भी कम होती है। वर्षा के असंगत व अनियमित वितरण के कारण सूखे की संभावना वर्ष भर बनी रहती है। वा''पीकरण की दर उच्च होने से वायु में आर्द्रता अत्यन्त कम होती है। इस मण्डल में पायी जाने वाली वनस्पति की पत्तियां मोटी मॉसल अथवा काँटेदार होती है। जिससे वाष्पोत्सर्जन को न्यूनतम रखा जा सके। इन पौधों की जड़े गहरी होती है। जिससे ये भूमिगत जल को सोख सकें।
3. **मेसोथर्मल मण्डल** – मेसोथर्मल मण्डल को मध्य तापीय जलवायु क्षेत्र भी कहा जाता है। यह उन स्थानों को दर्शाता है, जहां पर वर्षा का वितरण वर्ष भर समानता संतुलित रहता है। इस मण्डल की प्रमुख विशेषता मौसम में स्पष्ट परिवर्तन और मध्यम तापमान है। इस मण्डल में सबसे सर्द महीने का तापमान 3°C से अधिक और 18°C से कम होता है। जबकि सबसे गर्म महीने का औसत तापमान 22°C होता है। तापमान में स्पष्ट मौसमी परिवर्तन होते हैं। जिनसे गर्मियां और सर्दियां दोनों अनुभव की जा सकती है। वर्षा का वितरण वर्ष भर समानता संतुलित रहता है। हलांकि कुछ क्षेत्रों में मौसमी वर्षा में भिन्नता होती है। कुछ क्षेत्रों में गर्मियों में अधिक वर्षा होती है। जबकि कुछ क्षेत्रों में सर्दियों में अधिक वर्षा होती है। हवा में आर्द्रता समानतया मध्यम होती है। जिससे वनस्पति को पर्याप्त नमी मिलती रहती है।
4. **माइक्रोथर्मल मण्डल** – यह मण्डल उन स्थानों को दर्शाता है तापमान में मौसमी बदलाव अत्यन्त स्पष्ट होते हैं, इस क्षेत्र में सर्दियों में अत्यधिक ठंड और गर्मियों में मध्यम से गर्म तापमान पाया जाता है। सर्दियों का औसत मासिक तापमान 0°C से नीचे जा सकता हैं और गर्मियों का औसत मासिक तापमान 10°C से ऊपर होता है। लेकिन अत्यधिक गर्मी नहीं पड़ती है। वर्षा का वितरण वर्ष भर सन्तुलित होता है। जिसमें गर्मियों में थोड़ी अधिक वर्षा हो सकती है। हवा की आर्द्रता सामान्यतः मध्यम होती है। जिससे वनस्पति को पर्याप्त नयी मिलती रहती है। इस मण्डल में प्रमुखतया पाइन, स्प्रूस, फर और हेमलॉक जैसे शंकुधारी वृक्ष लगते है। जो ठण्डी सर्दियों और वर्फबारी को सहन कर सकते है।
5. **हेकिस्टोथर्मल मण्डल** – हेकिस्टोथर्मल मण्डन उन स्थानों को दर्शाता है जहां वर्षभर तापमान बेहद कम

होता है। यह मण्डल उच्च अक्षांशों और ऊँचाई वाले पर्वतीय भागों में पाया जाता है। यहां की जलवायु अत्यधिक ठण्डी होती है। जिससे वनस्पति और वन्यजीवों को कठोर सर्दियों और कम गर्मियों का सामना करना पड़ता है। यहां वर्ष भर औसत तापमान अत्यन्त कम होता है। गर्मियों का तापमान शायद ही कभी 10°C से अधिक होता है। सर्दियों का समय लम्बा और अत्यधिक ठण्डा होता है, गर्मियों का समय छोटा और आपेक्षाकृत ठण्डा होता है। यहां वर्षा की मात्रा बहुत कम होती है और अधिकतर वर्षा वर्फ के रूप में होती है। सर्दियों में भारी वर्फबारी होती है, जो पूरे वर्ष जमीन पर बनी रहती है। वायु की आर्द्रता अत्यन्त कम होती है। जिससे नमी की कमी सतत बनी रहती है।

इस मण्डल की लिसोथॉल मिटि्टयों में काई, मॉस व लाइकेन ही विकसित हो पाते है। इन पौधों का जीवन काल अत्यन्त कम होता है। आमतौर पर कुछ ही हफ्तों का। ये पौधे कठोर ठण्ड और बर्फबारी को सहन कर सकते है। इस मण्डल के वन्य जीवों में रेनडियर, कैरिन प्रमुख है।

उल्लेखनीय है कोपेन, कैण्डोल के इस निष्कर्ष से पूर्णतया सहमत थे कि वनस्पतियां जलवायु के प्रभाव से प्रभावित होती है। कोपेन ने इन पांच वनस्पति मण्डलों के लिए अंग्रेजी के पांच अक्षरों A, B, C, D व F का प्रयोग किया, जिसका विवरण निम्नलिखित है :–

1. **A जलवायु** :– इस जलवायु में शीत ऋतु नहीं पायी जाती है। उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र जलवायु पायी जाती है। वर्ष भर आर्द्र एवं गर्म दशाएं पायी जाती है। यहां का औसत मासिक तापमान 18°C से अधिक पाया जाता है।
2. **B जलवायु** :– यह गर्म व शुष्क जलवायु क्षेत्र को दर्शाता है यहां पर वर्षण की तुलना में विभव वाष्पीकरण अधिक होता है। यहां पर दिन और रात के तापमान में अन्तर अधिक पाया जाता है।
3. **C जलवायु** :– यह जलवायु सामान्य शीतऋतु वाली मध्य अक्षांशीय आर्द्र जलवायु है। यहां पर सर्वाधिक ठण्डे महीने का औसत तापमान 3°C से अधिक व 18°C से कम पाया जाता है।
4. **D जलवायु** :– यह जलवायु मध्य अक्षांशीय शीत जलवायु का क्षेत्र है। यहां पर सबसे ठण्डे महीने का औसत तापमान 0°C से – 3°C तक पाया जाता है तथा सबसे गर्म महीने का औसत तापमान 10°C से अधिक व 22°C से कम पाया जाता है।
5. **E जलवायु** :– यह जलवायु ध्रुवीय जलवायु होती है जिसमें ग्रीष्म ऋतु अनुपस्थित होता है। सभी महीनों का औसत तापमान 10°C से कम पाया जाता है।
6. **F जलवायु** :– जहां ऊँचाई के कारण शीत होती है वहां पर इस प्रकार की जलवायु पायी जाती है।

कोपेन द्वारा जलवायु के वर्गीकरण में अंग्रेजी के कैपिटल लेटर्स के अलावा स्माल लेटर्स का भी इस्तेमाल किया गया। जिनका विवरण इस प्रकार है:–

a = उष्ण ग्रीष्मकाल होता है। सबसे उष्णतम महीने का औसत तापमान 22°C से अधिक होता है।

b = सर्द ग्रीष्मकाल होता है। इसके उष्णतम महीने का औसत तापमान 22°C से कम होता है।

c = सर्द लघु ग्रीष्मकाल होता है। चार महीने से कम समय में तापमान 10°C से ऊपर होता है।

f = वर्ष भर वर्षा होती है। सबसे ठण्डे महीने का औसत तापमान 18°C से अधिक रहता है। वर्ष के प्रत्येक महीने में न्यूनतम 6 सेमी वर्षा होती है।

w = शुष्क शीत काल होता है।

s = ग्रीष्म काल शुष्क होता है।

m = मानसूनी जलवायु, लघु शुष्क मौसम, सबसे शुष्क महीने में 6 सेमी वर्षा

k = शीत औसत वार्षिक तापमान 18°C से कम होता है।

h = औसत वार्षिक तापमान 18°C से अधिक होता है।

t = टुंड्रा

कोपेन के जलवायु समूहों व प्रकारों का वितरण इस प्रकार है।

A उष्ण कटिबन्धीय जलवायु :– इस प्रकार की जलवायु कर्क रेखा और मकर रेखा के बीच वाले मार्गों में पायी जाती है। यहां पर सूर्य की किरणें वर्ष भर लम्बवत पड़ती है और पर्याप्त वर्षा होती है। इस कारण यहां पर जलवायु उष्ण और आर्द्र रहती है। इस जलवायु को तीन समूहों में बांटा गया है। जिसका विवरण इस प्रकार है :–

1. **Af उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र जलवायु** :– इस प्रकार की जलवायु भूमध्य रेखा के निकटवर्ती क्षेत्रों में पायी जाती है। इस जलवायु के अन्तर्गत दक्षिण अमेरिका का अमेजन बेसिन, दक्षिण पूर्व एशिया के द्वीप व अफ्रीका का जायरे बेसिन शामिल है। इस क्षेत्र में पूरे वर्ष पर्याप्त वर्षा होती है और सबसे शुष्कतम महीने में 6 सेमी से अधिक वर्षा होती है। वर्षा प्रतिदिन दोपहर को बौछार और गरम के साथ होती है। वार्षिक तापान्तर नगण्य होता है और कई स्थानों पर वार्षिक तापान्तर, दैनिक तापान्तर से कम पाया जाता है। अधिकतम तापमान दिन के समय लगभग 30°C तथा न्यूनतम तापमान रात के समय 20°C पाया जाता है।
2. **Am उष्ण कटिबन्धीय मानसूनी जलवायु** :– यह जलवायु क्षेत्र मानसूनी पवनों से प्रभावित होता है। यह जलवायु भारतीय उपमहाद्वीप, उत्तर आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अमेरिका के उत्तरी पूर्वी भाग में पायी जाती है। इस जलवायु में पवनें ग्रीष्म ऋतु में भारी वर्षा करती है तथा शीत ऋतु प्रायः शुष्क रहता है। वाष्पोत्सर्जन को रोकने के लिए वनस्पति या अपने पत्ते गिरा देती है।
3. **Aw उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र एवं शुष्क जलवायु** :– इस प्रकार की जलवायु में शीतकाल शुष्क होता है। इसमें वार्षिक वर्षा **Af** तथा **Am** जलवायु प्रकारों की तुलना में कम व विवरणशील होती है।

आर्द्र ऋतु शुष्क ऋतु की अपेक्षा छोटी अवधि वाली होती है। इन क्षेत्रों में शुष्क ऋतु में प्रायः अकाल पड़ता रहता है व वर्ष भर तापमान ऊँचा रहता है। यह जलवायु क्षेत्र अफ्रीका के सूडान व कागों के दक्षिणी हिस्सों में तथा दक्षिण अमेरिका में ब्राजील के वनों के उत्तर एवं बोलिविया और पराग्वे के निकटवर्ती भागों में पायी जाती है।

B शुष्क जलवायु :– जैसा कि इनके नाम स्पष्ट है कि यहां वर्षा की अपेक्षा वाष्पीकरण अधिक होता है इस प्रकार की जलवायु विस्तृत क्षेत्रों में पायी जाती है। जो 15° से 16° अक्षांश तक फैले हुए है इन्हें निम्न चार भागों में बांटा गया है।

1. **Bsh उपोष्ण कटिबन्धीय स्टेपी** :– यह एक निम्न अक्षांशीय उप–मरूस्थलीय जलवायु है। यहां का औसत वार्षिक तापमान 18°C से अधिक होता है, जो विरल घास के उगने के लिए पर्याप्त होती है। वर्षा की विचरणशीलता और अन्त काल प्रायः पड़ते रहते है।
2. **Bwh उपोष्ण कटिबन्धीय मरूस्थलीय जलवायु** :– यह एक निम्न अक्षांशीय मरूस्थलीय जलवायु है जिसका औसत वार्षिक तापमान 18°C से अधिक पाया जाता है। इन मरूस्थलीय भागों में वर्षा कम परन्तु गरज के साथ तेज बौछारों के रूप में होती है।

   इस जलवायु क्षेत्र में वर्षा उपोष्ण कटिबन्धीय स्टेपी जलवायु की अपेक्षा कम होती है।
3. **Bsk मध्य अक्षांशोय अर्द्ध मरूस्थलीय जलवायु** :– इस जलवायु क्षेत्र का औसत वार्षिक तापमान 18°C से कम होता है। यह मध्य अक्षांशी शीत स्टेपी जलवायु है। जिसमें वर्षा कम होती है।
4. **Bwk मध्य अक्षांशोय मरूस्थलीय जलवायु** :– इस जलवायु क्षेत्र में मध्य अक्षांशीय अर्द्ध मरूस्थलीय क्षेत्र की अपेक्षा वर्षा कम होती है और यहां का औसत वार्षिक तापमान 18°C से नीचे रहता है।

C कोष्ण शीतोष्ण जलवायु :– इस प्रकार की जलवायु 30° से 50° अक्षांशों के मध्य महाद्वीपों के पूर्वी और पश्चिमी सीमान्तों पर पायी जाती है। इस जलवायु में शीत ऋतु मृदु व ग्रीष्म ऋतु कोष्ण होती है।

1. **Cfa आर्द्र उपोष्ण जलवायु** :— इस प्रकार की जलवायु में वायुराशियां प्रायः अस्थिर रहती है और पूरे वर्ष वर्षा होती रहती है। वर्षा 75 से 150 सेमी0 के बीच होती है। यहां पर शीत ऋतु में वाताग्री वर्षा और ग्रीष्म ऋतु में तडितझंझा से वर्षा होती है। सर्दियों में तापमान 5° से 12°C के बीच रहता है तथा ग्रीष्म काल का औसत तापमान 27°C होता है।

2. **Csa भूमध्य सागरीय जलवायु** :— यह जलवायु भूमध्य सागर के चारों ओर तथा उपोष्ण कटिबन्ध से 30° से 40° अक्षांशों के मध्य महाद्वीपों के पश्चिमी तट के साथ पाए जाते है। इस जलवायु में सर्दियां मृदु व वर्षायुक्त व गर्मियां उष्ण व शुष्क होती है। इस जलवायु क्षेत्र में तापमान शीत ऋतु में 10°C से कम रहता है और ग्रीम ऋतु का औसत मासिक तापमान 25°C के आस पास रहता है। भूमध्य सागरीय जलवायु मध्य कैलिफोर्निया, मध्य चिली, दक्षिण अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया के दक्षिणी पूर्वी और दक्षिणी पश्चिमी तट पर पायी जाती है।

3. **Cfb समुद्री पश्चिमी तटीय जलवायु** :— यहां पर सर्दियों का औसत तापमान 4° से 10°C के बीच और गर्मियों के महीने का औसत तापमान 15° से 20°C के बीच पाया जाता है। यहां पर वार्षिक ओर दैनिक तापान्तर कम पाया जाता है। वर्षा वर्ष भर होती है लेकिन सर्दियों में अधिक होती है। वर्षा 50 सेमी से 250 सेमी0 के बीच घटती बढ़ती रहती है। इस प्रकार की जलवायु उत्तरी—पश्चिमी यूरोप, उत्तरी कैलिफोर्निया, उत्तरी अमेरिका का पश्चिमी तट, दक्षिणी चिली, दक्षिणी पूर्वी आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैण्ड में पायी जाती है।

D शीतल हिम वन जलवायु :— यहां पर सबसे ठण्डे महीने का औसत तापमान —3°C से कम पाया जाता है। उष्णतम महीने का तापमान 10°C से कम होता है।

1. **Df आर्द्र जाडों से युक्त ठण्डी जलवायु** :— इस जलवायु में शीत ऋतु ठण्डी और बर्फीली होती है। यह जलवायु मध्य अक्षांशीय स्टेपी जलवायु और पश्चिमी तटीय जलवायु से ध्रुवों की ओर पायी जाती है। यहां पर वार्षिक तापान्तर अधिक होता है। मौसमी परिवर्तन आकस्मिक और अल्पकालिक होते है।

2. **Dw शुष्क जाडों से युक्त ठण्डी जलवायु** :— इस प्रकार की जलवायु मुख्य रूप से उत्तरी—पूर्वी एशिया में पायी जाती है। ध्रुवों की ओर जाने पर ग्रीष्म ऋतु का तापमान कम हो जाता है और शीत ऋतु का तापमान अति न्यून हो जाता है। यहां पर शीत ऋतु में प्रतिचक्रवातों का विकास होता है, जो ग्रीश्म ऋतु में कमजोर हो जाता है। कुछ स्थानों पर वर्ष के सात महीनों में तापमान हिमांक से कम रहता है। यहां पर वार्षिक वर्षा 12 से 15 सेमी होती है।

E ध्रुवीय जलवायु :— यह जलवायु 70° अक्षांश से ध्रुवों की ओर पायी जाती है। यह निम्न दो प्रकार की होती है।

1. **ET टुण्ड्रा जलवायु** :— इस प्रकार की जलवायु में स्थायी तुशार पाया जाता है। जलाक्रान्ति और लघुवर्धन काल के कारण छोटी वनस्पति ही पनप पाती है। जिसमें लाइकेन, काई व पुष्पी पादप प्रमुख है। ग्रीष्म ऋतु में दिन की अवधि बहुत लम्बी होती है।

2. **EF हिमटोपी जलवायु** :— इस प्रकार की जलवायु में ग्रीष्म ऋतु का तापमान भी हिमांक से कम रहता है। यह जलवायु ग्रीनलैण्ड और अण्टार्कटिका के आन्तरिक भागों में पायी जाती है। यहां पर हिमाच्छान सतत रूप से पाया जाता है।

13.4 थार्नथ्वेट का जलवायु वर्गीकरण :—

सुप्रसिद्ध अमेरिका के जलवायु वैज्ञानिक सी0डब्लू0 थार्नथ्वेट ने विश्व का जलवायु विभाजन 1931 में किये और पुनः 1933, 1948 तथा 1955 में इसमें संशोधन परिवर्द्धन व परिष्करण किया। इस विभाजन में प्राकृतिक वनस्पति को ध्यान में रखा गया। कोपेन की भांति थार्नथ्वेट ने यह स्वीकार किया कि वनस्पति, वर्षा की मात्रा तथा तापमान का प्रभाव जलवायु के सूचक के रूप में पड़ता है। इन्होंने जलवायु का विभाजन निम्न आधारों पर किया।

1. वर्षण प्रभाविता

2. तापीय दक्षता

3. वर्षा का मौसमी वितरण

1. **वर्षण प्रभाविता का अनुपात** :– सम्पूर्ण वार्षिक वर्षा का वह भाग जो वनस्पति की उत्पत्ति व उसके विकास को प्रभावित करता है। वर्षण प्रभाविता कहलाता है। इसका परिकलन कुल मासिक वर्षा को कुल मासिक वाश्पीकरण से भाग देकर प्राप्त किया जाता है और बारह महीने के अनुपात का योग करके वर्षण प्रभाविता सूची तैयार की जाती है इसका सूत्र निम्न है :–

(i) P/E अनुपात = $11.5 \left(\frac{r}{t-10}\right)^{10/9}$

(ii) P/E सूची = $\sum_{i=1}^{12} 11.5 \left(\frac{r}{t-10}\right)^{10/9}$

थार्नथ्वेट के वाश्पन सूत्र P/E द्वारा 5 आर्द्र प्रदेशों में बांटा है, जिसमें प्रत्येक प्रदेश में विशिश्ट प्रकार की वनस्पति पायी जाती है। इनका नामकरण अग्रेजी के कैपिटल लेटर्स द्वारा प्रदर्शित है।

आर्द्रता प्रदेश	**वनस्पति**	**P/E सूची**
अधिक आर्द्र	अधिक वर्षा वाले वन	128 या अधिक
आर्द्र	वन	64—127
कम आर्द्र	घास के मैदान	32—63
अर्द्ध शुष्क	स्टेपी वन	16—31
शुष्क	मरूस्थल	16 से कम

मौसमी वर्षा के वितरण के आधार पर आर्द्र विभाजनों को ऋतु सम्बन्धी चिन्हों के आधार पर पांच उपविभागों में बांटा गया है।

r = साल भर अधिक वर्षा

s = ग्रीष्म ऋतु में कम वर्षा

w = शीत ऋतु में कम वर्षा

w = बसंत ऋतु में कम वर्षा

d = साल के प्रत्येक मौसम में न्यूनवर्षा

मौसमी वर्षा के आधार पर उपर्युक्त आर्द्रता प्रदेशों को निम्न भागों में विभक्त किया गया है।

1. Ar	5. Br	9. Cr	13. Dr	17. Er
2. As	6. Bs	10. Cs	14. Ds	18. Es
3. Aw	7. Bw	11. Cw	15. Dw	19. Ew
4. Ad	8.Bd	12. Cd	16. Dd	20. Ed

2. **तापीय दक्षता** :– वनस्पति की उत्पत्ति तथा विकास में तापमान का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। थार्नथ्वेट के तापीय दक्षता अनुपात निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है।

(i) तापीय दक्षता अनुपात T/E = $(\frac{T-32}{4})$

(ii) तापीय दक्षता सूची $\sum_{i=1}^{12} = (\frac{T-32}{4})$

T = औसत मासिक तापमान (°F)

तापीय दक्षता सूची के आधार 6 तापमान प्रदेशों में विभक्त किया गया है जिसका नामकरण निम्नवत् है :–

क्र0सं0	**तापमान प्रदेश**	T/E **सूचकांक**
1.	A' उष्ण कटिबन्धीय	127 से ऊपर
2.	B' मध्य तापीय	64 – 127
3.	C' सूक्ष्म तापीय	32 – 63
4.	D' टैगा	16 – 31
5.	E' टुण्ड्रा	1 – 15
6.	F' हिमाच्छादित	0

इस प्रकार यदि वर्षण प्रभाविता, वर्षा के मौसमी वितरण तथा तापीय दक्षता को देखा जाय, तो 120 उप प्रकार बन सकते है, परन्तु भूपटल पर थार्नथ्वेट ने केवल 32 जलवायु प्रकार ही स्वीकार किए जो इस प्रकार है :–

1. AA'r = उष्ण कटिबन्धीय तट जलवायु, सभी मौसम में पर्याप्त वर्षा
2. AB'r = मध्य तापीय तट जलवायु, सभी महीनों में पर्याप्त वर्षा
3. AC'r = सूक्ष्म तापीय तट जलवायु, सभी महीनों में पर्याप्त वर्षा
4. BA'r = उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र जलवायु, सभी मौसम में पर्याप्त वर्षा
5. BA'w = उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र जलवायु, शीतकाल में कम वर्षा
6. BB'r = मध्य तापीय आर्द्र जलवायु, सभी मौसम में पर्याप्त वर्षा
7. BB'w = मध्य तापीय आर्द्र जलवायु, शीतकाल में कम वर्षा
8. BB's = मध्य तापीय आर्द्र जलवायु, ग्रीष्मकाल में कम वर्षा
9. BC'r = सूक्ष्म तापीय आर्द्र जलवायु, सभी मौसम में पर्याप्त वर्षा
10. BC's = सूक्ष्म तापीय आर्द्र जलवायु, ग्रीष्मकाल में कम वर्षा
11. CA'r = उष्ण कटिबन्धीय उपार्द्र जलवायु, सभी मौसम में पर्याप्त वर्षा
12. CA'w = उष्ण कटिबन्धीय उपार्द्र जलवायु, शीतकाल में कम वर्षा
13. CA'd = उष्ण कटिबन्धीय उपार्द्र जलवायु, सभी मौसम में कम वर्षा
14. CB'r = मध्य तापीय उपार्द्र जलवायु, सभी मौसम में पर्याप्त वर्षा
15. CB 'w = मध्य तापीय उपार्द्र जलवायु, शीत काल में कम वर्षा
16. CB 's = मध्य तापीय उपार्द्र जलवायु, ग्रीष्म काल में कम वर्षा
17. CB 'd = मध्य तापीय उपार्द्र जलवायु, सभी मौसम में वर्षा

18. CC'r = सूक्ष्म तापीय उपार्द्र जलवायु, सभी मौसम में कम वर्षा

19. CC's = सूक्ष्म तापीय उपार्द्र जलवायु, ग्रीष्मकाल में कम वर्षा

20. CC'd = सूक्ष्म तापीय उपार्द्र जलवायु, सभी मौसम में कम वर्षा

21. DA'w = उष्ण कटिबन्धीय अर्द्ध शुष्क जलवायु, शीतकाल में कम वर्षा

22. DA'd = उष्ण कटिबन्धीय अर्द्ध शुष्क जलवायु, सभी मौसम में कम वर्षा

23. DB'w = मध्य तापीय अर्द्ध शुष्क जलवायु, शीतकाल में कम वर्षा

24. DB's = मध्य तापीय अर्द्ध शुष्क जलवायु, ग्रीष्मकाल में कम वर्षा

25. DB'd = मध्य तापीय अर्द्ध शुष्क जलवायु, सभी मौसम में कम वर्षा

26. DC'd = सूक्ष्म तापीय अर्द्ध शुष्क जलवायु, सभी मौसम में कम वर्षा

27. EA'd = उष्ण कटिबन्धीय शुष्क जलवायु, सभी मौसम में कम वर्षा

28. EB'd= मध्य तापीय शुष्क जलवायु, सभी मौसम में कम वर्षा

29. EC'd = सूक्ष्म तापीय शुष्क जलवायु, सभी मौसम में कम वर्षा

30. D' = टैगा तुल्य जलवायु

31. E' = टुण्ड्रा तुल्य जलवायु

32. F' = सतत हिमाच्छित जलवायु, ध्रुवीय जलवायु

1948 का वर्गीकरण

विद्वान थार्नथ्वेट महोदय ने 1948 में अपने पूर्व के वर्गीकरण वर्श 1931 में संशोधन किया । सन 1948 के वर्गीकरण में इन्होंने वर्षण प्रभाविता, वर्षा का मौसम वितरण, तापीय दक्षता जैसे तीन सूचियों का प्रयोग किया । संशोधित वर्गीकरण में विद्वान ने वनस्पतियों के आधार पर जलवायु प्रदेश की सीमा का निर्धारण नहीं किया है बल्कि संभाव्य वाष्पीकरण वाश्पोत्सर्जन तथा वर्षा को अधिक महत्व दिया है औसत मासिक तापमान के आधार पर संभाव्य वाष्पीकरण वाश्पोत्सर्जन को ज्ञात किया गया है संभाव्य वाष्पीकरण वाश्पोत्सर्जन का प्रत्यक्ष रुप से अंकन या उसका मापन नहीं किया गया है सूर्य के प्रकाश की अवधि अर्थात 12 घंटे को दिन की लंबाई के रूप में इन्होंने स्वीकार किया विद्वान थार्नथ्वेट ने संभाव्य वाश्पोत्सर्जन (PE) को सेंटीमीटर में ज्ञात किया है ।

$1.6(10t/I)^a$

जबकि संभाव्य वाष्पोत्सर्जन (PE)

i = 12 महीने के का योग (t/5)t.514

a =i कारक

t = तापमान

विद्वान थार्नथ्वेट ने चार सूचकांकों के आधार पर जलवायु प्रदेश की सीमाओं के निर्धारण का प्रयास किया है । .

(A). आर्द्रता सूचकांक

(B). तापीय दक्षता सूचकांक अथवा संभाव्य वाष्पोत्सर्जन सूचकांक

(C). आर्द्रता सूचकांक एवं शुश्कता सूचकांक

(D). संभाव्य वाश्पोत्सर्जन सान्द्रण सूचकांक अथवा तापीय दक्षता सूचकांक

विद्वान प्रथम आर्द्रता सूचकांक का अर्थ बताया है कि यह आर्द्रता की अधिकता अथवा आर्द्रता की कमी से संबंधित है इसका गणितीय परिकलन निम्न सूत्र के द्वारा किया जा सकता है

im = (100S-60D)/PE

जबकि im = मासिक आर्द्रता सूचकांक

D = मासिक आर्द्रता की कमी

S = मासिक आर्द्रता की अधिकता

इस सूत्र के द्वारा इन्होंने 12 महीनों के प्राप्त आकडो के आधार पर वार्षिक आर्द्रता सूचकांक की गणना किया है ।

वार्षिक आर्द्रता सूचकांक (im)= $\sum_{i=1}^{12}(100S-60D)/PE$

तापीय दक्षता सूचकांक

इसी सूचकांक को दूसरे शब्दों में संभाव्य वाष्पोत्सर्जन का सूचक माना जाता है इसको मेट्रिक प्रणाली में सेंटीमीटर में पर अंकित किया जाता है इसके आकलन का सूत्र वही है जो ऊपर व्यक्त किया गया इसके आकलन का सूत्र संभाव्य वाष्पोत्सर्जन का सूत्र ही है ।

आर्द्रता सूचकांक एवं शुष्कता सूचकांक

आर्द्रता सूचकांक एवं शुष्कता सूचकांक के आधार पर आर्द्रता की उपलब्धता को मौसम के अनुसार उसके वितरण की व्याख्या की जाती है आर्द्र जलवायु में पूरे साल भर में जल की होने वाली कमी को वार्षिक संभाव्य वाष्पोत्सर्जन के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है । जबकि आर्द्रता सूचकांक को शुष्क जलवायु वाले क्षेत्र में जल की अधिकता को वार्षिक संभाव्य वाष्पोत्सर्जन के प्रतिंशत के रूप में प्रदर्शित किया जाता है ।

तापीय दक्षता का सांद्रण

तापीय दक्षता सांद्रण का अर्थ है कि गर्मी के 3 महीने में वार्षिक संभाव्य वाश्पोत्सर्जन का कितना प्रतिशत सम्भाव्य वाष्पोत्सर्जन हुआ है ।

थार्नथ्वेट ने आर्द्रता सूचकांक के आधार पर पूरे विश्व को 9 आर्द्रता मंडल में विभक्त किया है

क्र.सं.	आर्द्रता सूचकांक	आर्द्रता मंडल
1	114 से अधिक	A' वृहदतापीय (मेगाथर्मल)
2	99.7 से 114	B'4 मध्यतापीय (मेगाथर्मल)
3	85.5 से 99.7	B'3 मध्यतापीय
4	71.2 से 85.5	B'2 मध्यतापीय
5	57.0 से 71.2	B'1 मध्यतापीय
6	42.7 से 57.0	C'2 सूक्ष्मतापीय (माइकोथर्मल)
7	28.5 से 42.7	C'1 सूक्ष्मतापीय
8	14.2 से 28.5	D' टुण्ड्रा
9	14.2 से कम	E' पाला (फ्रास्ट)

थार्नथ्वेट नें तापीय दक्षता सूचकांक के आधार पर विश्व को 9 तापीय मंडल मे बाटा है ।

क्र.स.	तपीय दक्षता सूचकांक	मंडल प्रकार

1	114 से उससे अधिक	A बृहद तापीय
2	99.7 से 114	B मध्य तापीय
3	85.5 से 99.7	B मध्य तापीय
4	71.2 से 85.5	B मध्य तापीय
5	57.0 से 71.2	B मध्य तापीय
6	42.7 से 57	C सूक्ष्म तापीय
7	28.5 से 42.7	C सूक्ष्म तापीय
8	14.2 से 28.5	D टुण्डा
9	14.2 से कम	E पाला

विद्वान थार्नथ्वेट ने तापीय दक्षता के ग्रीष्मकालीन सांद्रण के आधार पर भूमंडल को 8 भागों में बाटा है

क्र. स.	तापीय दक्षता के ग्रीष्मकालीन सांद्रण	मंडल के प्रकार
1	48.0	a ′
2	48.0 से 51.9	b
3	51.9 से 56.3	b3
4	56.3 से 61.6	b-2
5	61.6 से 68.0	b-1
6	68.0 से 76.3	c-2
7	76.3 से 88.0	c-1
8	88.0 से अधिक	d

थार्नथ्वेट ने आर्द्रता के मौसमी उपस्थिति और उसके परिवर्तन के आधार पर इन्होंने दो मुख्य और दस उप प्रकार के अंतर्गत जलवायु को निर्धारित करने का प्रयास किया है।

क. तर जलवायु A ,B, C 2 शुष्कता सूचकांक

1. r जल का अभाव नहीं 0–10
2. s ग्रीष्म काल में सामान्य जल का अभाव 10–20
3. w शीतकाल में जल का सामान्य अभाव 10–20
4. s2 ग्रीष्म काल में जल का अधिक अभाव 20 <

5. w2 शीतकाल में जल का अधिक अभाव 20<

ख. शुष्क जलवायु C 1, D, E आर्द्रता सूचकांक

1. d जल की अधिकता नहीं 0–16.7
2. s शीतकाल में सामान जल की अधिकता 16.7–33.3
3 w.ग्रीष्म काल में सामान्य जल की अधिकता 16.7–33.3
4 s2 शीतकाल में अधिक जल की अधिकता 33.3 <
5. w2 ग्रीष्म काल में अधिक जल की अधिकता 33.3 <

विद्वान थार्नथ्वेट के जलवायु वर्गीकरण की इस योजना के आधार पर किसी भी स्थान या क्षेत्र की जलवायु को जलवायु के सूचकांकों एवम जलवायु के तत्वों के आधार पर व्यक्त किया जा सकता है इनके जलवायु वर्गीकरण की योजना के आधार पर किसी प्रदेश की जलवायु का वर्णन 4 वर्णाक्षरों से व्यक्त किया जा सकता है जैसे आर्द्र A, मध्य तापीय B जिसमें तापीय दक्षता का ग्रीष्मकालीन सांद्रता 48.0 से 51.9 b, एवम ग्रीष्म ग्रीष्मकालीन जल का सामान्य अभाव s है । विद्वान थार्नथ्वेट के जलवायु वर्गीकरण की योजना 4 वर्णाक्षरों के प्रयोग के कारण से अत्यंत दुरुह और जटिल हो जाता है जटिलता के कारण वैश्विक स्तर पर इनका मानचित्र बनाया जाना संभव नहीं है । जलवायु के प्रकार का वर्णन व्यवहारिक रुप से अत्यधिक कठिन है ।

मूल्यांकन

विद्वान थार्नथ्वेट के जलवायु वर्गीकरण की योजना 2 वर्षों 1931 एवम 1948 में प्रस्तुत की गई इनका प्रथम वर्गीकरण जो वर्ष 1931 में सामने आया वह जर्मन विद्वान कापेन के जलवायु वर्गीकरण से कुछ समानता रखता है दोनों विद्वानों की जलवायु वर्गीकरण की योजना आनुभविक थी मात्राकरण का प्रयोग किया गया है । वर्षा, तापमान को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया है । वनस्पतियों को प्रमुख आधार माना गया है । विश्व में जलवायु वर्गीकरण को प्रदर्शित करने के लिए अनेकोंनेक वर्णाक्षरों का प्रयोग किया है । इतनी समानता के बावजूद दोनों के वर्गीकरण में अनेक विषमता भी देखने को पाई जाती है विद्वान थार्नथ्वेट ने सन 1948 के जलवायु वर्गीकरण में सूचकांकों का प्रयोग किया है । इन सूचकांकों के आधार पर जलवायु का वर्गीकरण करना, जलवायु की सीमा का निर्धारण करना, जलवायु का मानचित्र बनाना अत्यंत कठिन हो जाता है । विद्वान थार्नथ्वेट नें कोपेन के जलवायु वर्गीकरण की योजना से कई गुना विस्तृत अपने जलवायु वर्गीकरण की योजना को प्रस्तुत किया है । इनकी योजना विद्वानों के अनुसंधान के लिए महत्वपूर्ण है। जलवायु विज्ञानियो, मौसम विज्ञानियों ने इस जलवायु वर्गीकरण की योजना को हृदय से स्वीकार नहीं किया । जलवायु वर्गीकरण की इनकी योजना में जिन आंकड़ों का वर्णन है वे आंकड़े पिछड़े, विकासशील पिछड़े राष्ट्रों में प्राप्त होना संभव नहीं है । आर्द्रता सूचकांक, तापीय दक्षता सूचकांक जैसे आंकड़ों के आधार पर बनाया गया जलवायु वर्गीकरण का मानचित्र बनाया जाना असंभव है इसी कठिनाई के कारण थार्नथ्वेट का जलवायु वर्गीकरण की वृहद योजना को लोकप्रियता उतनी प्राप्त नहीं कर पाई जितनी कोपेन के वर्गीकरण योजना को मिला । इनकी योजना कठिन एवं असहज है ।

13.5 निष्कर्ष :–

कोपेन और थार्नथ्वेट द्वारा जलवायु की योजनाएं जलवायु विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान करती है। इन योजनाओं का संयुक्त अध्ययन न केवल जलवायु की विविधता को समझने में सहायक है बल्कि इसके प्रभावों का मूल्यांकन करने में भी महत्वपूर्ण है। कोपेन की जलवायु वर्गीकरण योजना मुख्यतः तापमान और वर्षा पर आधारित हैं और इसे इसकी सरलता व उपयोगिता के कारण मापक रूप से स्वीकार किया गया है। थार्नथ्वेट की जलवायु वर्गीकरण योजना अधिक जटिल और विस्तृत है जो जलवायु को ऊर्जा बजट, वाष्पीकरणा और पौधों की आवश्यकता के आधार पर विभाजित करती है। थार्नथ्वेट की योजना जल संसाधन प्रबन्धन, कृषि खनिज और पारिस्थितिकी के अमयन में सहायक है। इस वर्गीकरण के माध्यम से नीति निर्माण, संसाधन प्रबन्धन और सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता होगी।

13.6 परीक्षा उपयोगी प्रश्न :–

दीर्घ प्रश्न :–

1. कोपेन और थार्नथ्वेट की जलवायु प्रणालियों की तुलनात्मक समीक्षा कीजिए तथा दोनों प्रणालियों के बीच प्रमुख अन्तर और समानताओं का उल्लेख कीजिए।
2. थार्नथ्वेट के जलवायु वर्गीकरण के सिद्धान्त और इसके वर्गीकरण के प्रमुख मानदण्डों की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
3. कोपेन के जलवायु वर्गीकरण में 'B' प्रकार की शुष्क जलवायु का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए तथा इसकी प्रमुख विशेषताएं, तापमान और वर्षा का वितरण की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।
4. थार्नथ्वेट की जलवायु वर्गीकरण प्रणाली के सिद्धान्त और इसके वर्गीकरण के प्रमुख मानदण्डों पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

13.7 लघु प्रश्न :–

1. कोपेन के जलवायु वर्गीकरण की प्रमुख विशेषताएं क्या है?
2. थार्नथ्वेट ने जलवायु वर्गीकरण के लिए कौन से प्रमुख मानदण्डों का उपयोग किया?
3. थार्नथ्वेट के जलवायु वर्गीकरण में वाष्पोत्सर्जन की क्या भूमिका है?
4. कोपन और थार्नथ्वेट के वर्गीकरण में मुख्य अन्तर क्या है?

13.8 बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1. थार्नथ्वेट के वर्गीकरण में कौन–सा मुख्य कारक है?

   (A) मासिक तापमान और वर्षा **(B)** वार्षिक तापमान

   (C) मासिक वाश्पोत्सर्जन **(D)** वार्षिक वायु दबाव

2. कोपेन के जलवायु वर्गीकरण में 'B' प्रकार की जलवायु किस क्षेत्र के लिए प्रासंगिक है?

   (A) अमेजन वर्षा वन **(B)** सहारा मरूस्थल

   (C) उत्तरी यूरोप **(D)** अटांक्रटिका

3. थार्नथ्वेट के वर्गीकरण में evapotram spiration क्या मापता है?

   (A) वायु का तापमान **(B)** भूमि की आर्द्रता

   (C) पौधों और भूमि से पानी का वाष्पीकरण **(D)** सौर विकिरण

4. कोपेन के वर्गीकरण में 'E' प्रकार की जलवायु का क्या अर्थ है?

   (A) उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र जलवायु **(B)** शीतोष्ण जलवायु

   (C) शुल्क जलवायु **(D)** ध्रुवीय जलवायु

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1.डी एस. लाल – जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज

2 प्रो0 सविद्र सिंह – जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स प्रयागराज

3. डॉ. वाई. आई. सिंह – जलवायु विज्ञान, एशियन ह्यूमेनटिस प्रेस (AHP)

4.डॉ. चतुर्भुज मामोरिया – डा. एम. एस. सिसोदिया – जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, साहित्य भवन कानपुर

इकाई–14

जलवायु के प्रकार एवं उनका वितरण, उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन जलवायु, उष्ण कटिबन्धीय मानसूनी जलवायु, भूमध्य सागरीय जलवायु, पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन जलवायु

14.4 उष्ण कटिबन्धीय मानसूनी जलवायु

14.5 भूमध्य सागरीय जलवायु

14.6 पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु

14.7 सारांश

14.8 उपयोगी प्रश्न

14.9 संदर्भ पुस्तकें

14.1 प्रस्तावना :–

इस इकाई में जलवायु के प्रमुख प्रकारों का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा, जैसे कि उष्णकटिबंधीय वर्षा वन जलवायु, उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु, भूमध्य सागरीय जलवायु, और पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु। उष्णकटिबंधीय वर्षा वन जलवायु की विशेषताओं और इसके विविध वनस्पति जीवन पर प्रभावों की चर्चा की जाएगी। सामान्यतः विश्व के जलवायु को 3 भागों में विभाजित किया जाता है। ये जलवायु प्रकार (i) उष्ण कटिबन्धी जलवायु (ii) मध्य अक्षांशीय जलवायु (iii) ध्रुवीय जलवायु में विभाजित किया जा सकता है। जलवायु प्रदेशों का विभाजन उनकी अवस्थिति, वायुदाब, तापमान, पवन वर्षण (वर्षा की मात्रा, मेघाच्छादन, वर्षा की प्रवृत्ति, वितरण व परिवर्तनशीलता) के आधार पर किया जाता है। जलवायु का वितरण निम्नलिखित प्रमुख कारकों पर निर्भर करता हैं। किसी भी स्थान की भूमध्य रेखा से दूरी के अनुसार उसकी जलवायु विशेषताएं पायी जाती है। भौगोलिक स्थिति के आधार पर ही वर्षा व तापमान की मात्रा भिन्न होती है। भूमध्य रेखा के नजदीक भूमध्य रेखीय उष्ण व आर्द्र जलवायु पायी जाती है। समुद्र तल से ऊँचाई के अनुसार तापमान में गिरावट दर्ज की जाती है। समुद्र तल से ऊँचाई वाले भागों में टुण्ड्रा व टैगा जलवायु पायी जाती है। समुद्र के निकट स्थित क्षेत्रों में महासागरीय जलवायु पायी जाती है। जबकि दूर के क्षेत्रों में शुष्क जलवायु पायी जाती हैं, सागर के निकट वाले क्षेत्रों में मौसम में कम उतार–चढ़ाव होता है और वर्षा की मात्रा अधिक प्राप्त होती है। इसके विपरीत समुद्र से दूर शुष्क क्षेत्रों में मौसम में अधिक उतार–चढ़ाव होता है तथा वर्षा में परिवर्तनशीलता अधिक होती है। किसी भी स्थान की वायुमण्डलीय परिसंचरण और पवन प्रणालियां जलवायु को प्रभावित करती है, विभिन्न वायुमण्डलीय प्रणालियां वर्षा एवं तापमान की मात्रा को निर्धारित करती है।नगरीकरण, औद्योगीकरण जैसी गतिविधियों से जलवायु बदल रही है। मानवीय हस्तक्षेप से जलवायु में परिवर्तन हो रहा है।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य विभिन्न जलवायु प्रकारों और उनके वितरण की गहन समझ प्रदान करना है। **इस** इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी

1. उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन जलवायु की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे।
2. उष्ण कटिबन्धीय मानसूनी जलवायु की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे।
3. भूमध्य सागरीय जलवायु की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे।
4. पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे।

14.3 उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन जलवायु :–

स्थिति :–

भूमध्य रेखा के 5° से 10° अक्षांश उत्तर व दक्षिण तक विस्तृत जलवायु वाले भाग को उष्णकटिबन्धीय वर्षा वन जलवायु कहा जाता है। कभी–कभी इसका विस्तार विषुवत रेखा के दोनों ओर 15° से 25° अक्षांश तक भी पाया जाता है। इस प्रकार वायु दाब के पेटियों के खिसकाव के द्वारा इस जलवायु प्रदेश के विस्तार में संकुचन व प्रसार होता रहता है। उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन जलवायु की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार है। (i) वर्ष भर समान उच्च वर्षा (ii) वर्ष भर समान उच्च तापमान। इस जलवायु के अन्तर्गत अफ्रीका के कागो बेसिन, गिनी तट, दक्षिणी अमेरिका का अमेजन बेसिन, पूर्वी द्वीप समूह तथा पूर्वी मध्य अमेरिका (कोस्टारिका, निकारागुआ, पनामा, हाण्डुरास, ग्वाटेमाल आदि के भाग) को सम्मिलित किया जाता है। पूर्वी द्वीप समूह में उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन जलवायु में कुछ परिमार्जन आ जाता है।

तापमान :–

भूमध्य रेखा पर सूर्य वर्ष भर लम्बवत चमकता है तथा पूरे वर्ष दिन व रात की अवधि में अन्तर बहुत कम है तथा पूरे वर्ष दिन व रात की अवधि में अन्तर बहुत कम रहता है। अतः विषुवत रेखा पर अधिकतम सूर्यातप प्राप्त होता है। जिस कारण पूरे वर्ष तापमान उच्च बना रहता है। औसत वार्षिक तापमान 20°C रहता है, परन्तु अधिकतम तापमान 30°C तक से अधिक हो जाता है। यहां पर सूर्य की किरणें कभी भी 43° से कम कोण पर नहीं पड़ती है। अमेजन बेसिन में इक्वीटोस व बेलम में वार्षिक तापान्तर क्रमशः 3°C से 2°C, सिंगापुर में 3°C, मध्य अफ्रीका के काकिल हैटविली में 2°C रहता है। द्वीपीय क्षेत्रों में वार्षिक तापान्तर 0.5°C से 1°C के बीच रहता है। महासागरों का वार्षिक तापान्तर महाद्वीपों की अपेक्षा एक तिहाई से कम पाया जाता है। उदाहरण स्वरूप प्रशान्त महासागर में स्थित जन्यूट का वार्षिक तापान्तर 0.4°C पाया जाता है। इस तरह भूमध्य रेखीय वर्षावन जलवायु का तापमान उष्ण रेगिस्तानी जलवायु की आपेक्षा कम ही पाया जाता है, परन्तु वर्ष भर वर्षा व मेघाच्छन्नता के कारण आर्द्रता अधिक ही रहती है, जो मानव के लिए नीरस व कष्ट प्रद हो जाती है।

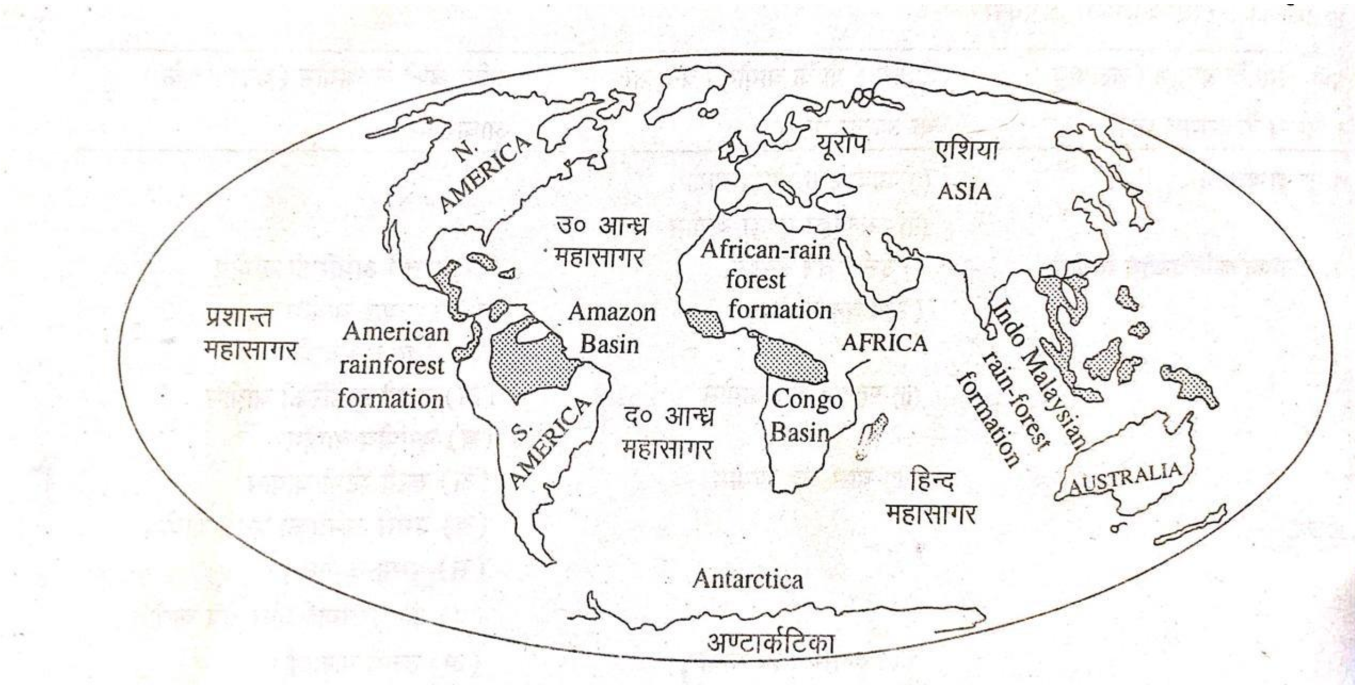

विषुवतरेखीय वर्षावन (Af) जलवायु का विश्व वितरण।

यहां पर दैनिक तापान्तर वार्षिक तापान्तर से अधिक पाया जाता है। इस जलवायु में दोपहर के बाद का तापमान 29°C से 34°C तक पहुँच जाता है तथा रात्रि के समय तापमान 21°C से 24°C तक गिर जाता है। कागों में स्थित वोलोवो का वार्षिक तापान्तर 1°C है जबकि दैनिक तापान्तर 9°C तक पाया जाता है। अमेजन बेसिन के सातारेस का दिन का अधिकतम तापमान 35.5°C तथा न्यूनतम तापमान 19.5°C रहता है। तापमान के आंकड़ों से स्पष्ट है कि यद्यपि दिन में तापमान बहुत नहीं रहता है, परन्तु मन्द वायु संरचरण, अधिक उष्मा, प्रकाश की दीर्घ अवधि, उच्च सापेक्षिक व निरपेक्ष आर्द्रता के कारण मौसम उमस भरा व नीरस हो जाता है। यहां के निवासी उच्च तापमान के इतने अभ्यस्थ हो गए है कि रात में थोड़ा भी तापमान में गिरावट होने पर लकड़ी जलानी पड़ती है। रात में तापमान में कमी से मौसम आरामदायक हो जाता है।

वायुदाब एवं हवाएंः–

उष्णकटिबंधीय वर्षा वन जलवायु, मुख्य रूप से भूमध्य रेखा के निकट स्थित होता है और दुनिया के विभिन्न हिस्सों में पाया जाता है, जैसे कि अमेजन बेसिन, कांगो बेसिन, दक्षिण–पूर्व एशिया, और कुछ भाग उत्तरी ऑस्ट्रेलिया में। इस जलवायु क्षेत्र में तापमान स्थिर रहता है, औसत वार्षिक तापमान 25–30 डिग्री सेल्सियस के बीच होता है और वर्षभर में उच्च स्तर की वर्षा होती है, जो लगभग 2000 मिमी से अधिक होती है। इस जलवायु की विशेषताएँ वायु दाब और हवाओं के प्रणाली पर निर्भर करती हैं, जो क्षेत्र की मौसमीय स्थितियों और पारिस्थितिकी को प्रभावित करते हैं।

वायु दाब

उष्णकटिबंधीय वर्षा वन जलवायु क्षेत्र में वायु दाब की स्थिति मुख्य रूप से इंटरट्रॉपिकल कन्वर्जेंस जोन (ITCZ) और उप–उष्णकटिबंधीय उच्च दाब प्रणालियों से प्रभावित होती है।

1. **इंटरट्रॉपिकल कन्फर्जेंस जोन** (ITCZ): ITCZ एक निम्न दाब क्षेत्र है, जो भूमध्य रेखा के निकट स्थित होता है। यह क्षेत्र गर्म और नमीयुक्त हवाओं के मिलने का स्थान है, जिससे भारी वर्षा होती है। ITCZ की स्थिति वर्ष भर बदलती रहती है और इसके कारण उष्णकटिबंधीय वर्षा वन क्षेत्रों में वर्षा का वितरण प्रभावित होता है। ग्रीष्म ऋतु में, ITCZ उत्तरी गोलार्ध की ओर स्थानांतरित होता है, जबकि शीत ऋतु में यह दक्षिणी गोलार्द्ध की ओर स्थानांतरित होता है।
2. **उप–उष्णकटिबंधीय उच्च दाब प्रणालियाँ** (Subtropical High Pressure Systems): यह उच्च दाब प्रणालियाँ उष्णकटिबंधीय वर्षा वन जलवायु क्षेत्र के किनारों पर स्थित होती हैं और हवाओं के प्रवाह को नियंत्रित करती हैं।

ये प्रणालियाँ उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में हवाओं की दिशा और गति को प्रभावित करती हैं, जिससे मौसम की स्थिरता और वर्षा की मात्रा में परिवर्तन होता है। उप–उष्णकटिबंधीय उच्च दाब प्रणालियाँ क्षेत्र में सूखे और शुष्कता को भी प्रभावित कर सकती हैं।

हवाएं

उष्णकटिबंधीय वर्षा वन जलवायु क्षेत्र में हवाएं मुख्य रूप से व्यापारिक हवाओं (trade winds), मॉनसून हवाओं, और समुद्री हवाओं (sea breezes) के पैटर्न पर निर्भर करती हैं। ये हवाएं क्षेत्र की मौसमीय स्थितियों और वर्षा के वितरण को प्रभावित करती हैं।

1. **व्यापारिक हवाएं** (Trade Winds): व्यापारिक हवाएं उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पूर्व से पश्चिम दिशा में चलती हैं और भूमध्य रेखा के निकट ITCZ के साथ मिलती हैं। ये हवाएं गर्म और नमीयुक्त होती हैं, जिससे क्षेत्र में भारी वर्षा होती है। व्यापारिक हवाएं क्षेत्र की मौसमीय स्थिरता और वर्षा के वितरण को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।
2. **मॉनसून हवाएं** (Monsoon Winds): मॉनसून हवाएं उष्णकटिबंधीय वर्षा वन जलवायु क्षेत्र में मौसमी परिवर्तन के कारण उत्पन्न होती हैं। ये हवाएं ग्रीष्म और शीत ऋतु में दिशा बदलती हैं और वर्षा के पैटर्न को प्रभावित करती हैं। ग्रीष्म ऋतु में, मॉनसून हवाएं समुद्र से भूमि की ओर चलती हैं, जिससे भारी वर्षा होती है। शीत ऋतु में, ये हवाएं भूमि से समुद्र की ओर चलती हैं, जिससे शुष्कता बढ़ती है।
3. **समुद्री हवाएं** (Sea Breezes): समुद्री हवाएं समुद्र और भूमि के बीच तापमान के अंतर के कारण उत्पन्न होती हैं। दिन के समय, समुद्री हवाएं समुद्र से भूमि की ओर चलती हैं, जिससे क्षेत्र में ठंडक और नमी बढ़ती है। रात के समय, भूमि से समुद्र की ओर चलती हवाएं शुष्क और ठंडी होती हैं। समुद्री हवाएं उष्णकटिबंधीय वर्षा वन जलवायु क्षेत्र में मौसमीय स्थितियों को संतुलित रखने में महत्वपूर्ण होती हैं।

मौसमीय परिवर्तन

उष्णकटिबंधीय वर्षा वन जलवायु क्षेत्र में मौसमीय परिवर्तन मुख्य रूप से वायु दाब और हवाओं के पैटर्न के अनुसार होते हैं। यहाँ की मौसमीय स्थितियाँ स्थिर होती हैं, लेकिन वर्षा की मात्रा और वितरण में मामूली परिवर्तन होते हैं।

1. **ग्रीष्म ऋतु :** ग्रीष्म ऋतु में, ITCZ उत्तरी गोलार्द्ध की ओर स्थानांतरित होता है, जिससे व्यापारिक हवाएं और मॉनसून हवाएं समुद्र से भूमि की ओर चलती हैं। इस दौरान, क्षेत्र में भारी वर्षा होती है और तापमान उच्च रहता है। ग्रीष्म ऋतु में क्षेत्र की वनस्पति और वन्यजीवों की गतिविधियाँ बढ़ जाती हैं।
2. **शीत ऋतु :** शीत ऋतु में, ITCZ दक्षिणी गोलार्द्ध की ओर स्थानांतरित होता है, जिससे व्यापारिक हवाएं और मॉनसून हवाएं भूमि से समुद्र की ओर चलती हैं। इस दौरान, क्षेत्र में वर्षा की मात्रा कम हो जाती है और तापमान मामूली रूप से कम हो जाता है। शीत ऋतु में क्षेत्र की वनस्पति और वन्यजीवों की गतिविधियाँ कम हो जाती हैं।
3. **संक्रमणकालीन मौसम :** वसंत और शरद ऋतु के दौरान, वायु दाब और हवाओं के पैटर्न में परिवर्तन होता है, जिससे मौसम की स्थितियों में अस्थिरता होती है। इस दौरान, हवाओं की दिशा और गति में परिवर्तन होता है, जिससे वर्षा और तापमान में अस्थिरता आ सकती है। संक्रमणकालीन मौसम में क्षेत्र की वनस्पति और वन्यजीवों की गतिविधियाँ भी बदलती रहती हैं।

वर्षा :–

भूमध्य रेखीय भाग में वर्षा वर्ष भर होती है। यहां पर औसत वार्षिक वर्षा 200 सेमी0 होती है। यहां पर कोई शुष्क मौसम नहीं पाया जाता है। सबसे शुष्कतम महीने में भी 6 सेमी0 से अधिक वर्षा प्राप्त होती है। यद्यपि विषुवतीय प्रदेश में अधिकतम वर्षा संवहनीय ही होती है, परन्तु जहां भी पर्वतीय अवरोध मिल जाता है। वहां पर वर्षा और अधिक हो जाती है। डोलड्रम तथा उसके नजदीकी भाग में वर्षा 250 सेमी0 से अधिक होती है। नाइजीरिया के केमरून चोटी की तलहटी में वार्षिक वर्षा 1000 सेमी0 तक हो जाती है।

वर्षा का वितरण :–

वर्ष भर उच्च वर्षा के बावजूद यहां पर वर्षा का वितरण असमान पाया जाता है। कुछ महीनों में वर्षा बहुत अधिक तथा अन्य कुछ महीनों में वर्षा बहुत कम प्राप्त होती है, यद्यपि कोई भी महीना शुष्क नहीं होता है। इस आधार पर कुछ महीनों को 'तर' तथा कम वर्षा वाले महीनों को 'कम तर' की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। यदि विषुवत रेखा के वर्षा मानचित्र पर दृष्टि डाले तो हमें दो माह अधिकतम वर्षा वाले व दो माह न्यूनतम वर्षा वाले दृष्टिगोचर होगे। सामान्यतः अप्रैल तथा नवम्बर में अधिकतम वर्षा होती है। स्थान–स्थान पर इसमें अन्तर भी मिलता है।

वर्षा के दिन :–

भूमध्य रेखीय प्रदेश में ऐसा महीना नहीं होता है जिसमें वर्षा के दिन न हो परन्तु प्रत्येक मौसम तथा महीने के दिनों में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। शुष्क महीनों की अपेक्षा आर्द्र महीनों में वर्षा के दिनों की संख्या बहुत अधिक होती है। उदाहरण – स्वरूप बेलम नगर में मार्च का महीना सबसे आर्द्र होता है तथा नवम्बर सबसे शुष्क होता है, नवम्बर महीने में 10 दिन वर्षा के होते है जिसमें वर्षा की मात्रा 5 सेमी0 के लगभग होती है तथा मार्च महीने में 28 दिन वर्षा के होते है। जिसमें वर्षा 35 सेमी0 होती है। इस तरह सबसे आर्द्र महीने में 97 प्रतिशत दिन वर्षा के होते है, जबकि शुष्कतम महीने में मात्र 35 प्रतिशत दिन वर्षा के होते है।

मेघाच्छन्नता :–

भूमध्य रेखीय प्रदेश में प्रायः मेघाच्छन्नता पायी जाती है। यहां पर लगभग 60 प्रतिशत तक मेघाच्छन्नता पायी जाती है और बादल कपासी होते है। रात्रि तथा प्रातः काल के समय आकाश मेघरहित होता है। जबकि दिन में अधिक तापमान वाले समय में मेघाच्छन्नता अधिक रहती है क्योंकि भूमध्य रेखीय भागों में वर्षा सवंहनीय होने के कारण, वर्षा के बादल छंट जाते है और आकाश स्वच्छ हो जाता है।

वर्षा की प्रकृति :–

इस जलवायु क्षेत्र में सवंहनीय वर्षा होती है। जिसमें प्रतिदिन दोपहर के बाद कपासी वर्षा बादलों के साथ मूसलाधार वर्षा होती है। प्रातः काल के समय सूर्य जब क्षितिज से उच्च उठने लगता है तथा तापमान बढ़ने लगता है। हवाओं में संवाहनीय गति उत्पन्न हो जाती है तथा आकाश में कपासी मेघ दिखने लगते है। जैसे ही दोपहर हो जाती है। बादलों में घमस बढ़ने लगती है, उमस बढ़ जाती है। बादल घने होने लगते है पूरा आकाश काले मेघों से घिर जाता है। बिजली की चमक व बादलों में गड़गड़ाहट होने लगती है तथा मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। जैसे ही सूर्यास्त होने वाला होता है। वर्षा धीमी हो जाती है तथा सायंकाल तक वर्षा रूक जाती है तथा मौसम सुहावना हो जाता है।

अत्यधिक वार्षिक वर्षा के होते हुए भी वार्षिक वर्षा की परिवर्तनशीलता देखने को मिलती है और यह परिवर्तनशीलता तापमान की तुलना में अधिक होती है।

14.5 उष्ण कटिबन्धीय मानसूनी जलवायु :–

मानसूनी जलवायु का विस्तार विषुवत रेखा के दोनों ओर 5° से 30° अक्षांशों के बीच पाया जाता है। वस्तुतः मानसूनी जलवायु प्रादेशीय हवाओं की पेटी में पाये जाते है जिसमें ऋतुओं के अनुसार उत्तर व दक्षिण दिशा में खिसकाव होता रहता है। मानसूनी जलवायु में हवाओं की दिशा में आवधिक परिवर्तन होता रहता है। जिसमें छः महीने तक हवाऐं सागर से स्थल की ओर व शेष छः महीने तक हवाऐं स्थल से सागर की ओर प्रवाहित होता है। मानसूनी जलवायु के अन्तर्गत भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान, थाईलैण्ड, म्यामार, लाओस, कम्बोडिया, वियतनाम, पू0द्वीप समूह, संयुक्त राज्य अमेरिका का दक्षिणपूर्वी तटीय भाग, आस्ट्रेलिया का उत्तरी भाग, अफ्रीका का पूर्वी तटीय भाग को शामिल किया जाता है।

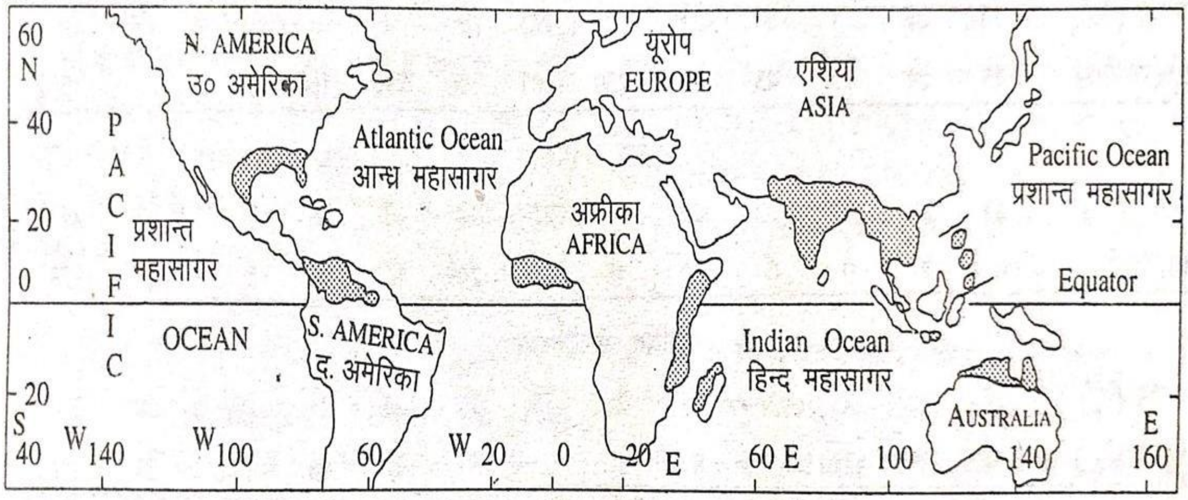

मानसूनी जलवायु का विश्ववितरण।

प्रादेशिक स्तर पर मानसून को तीन भागों में विभाजित किया जाता है। (i) एशियाई मानसून (ii) अमेरिकी मानसून (iii) अफ्रीकी मानसून। भारत एशियाई मानसून में स्थित है। सुविधा की दृष्टि से एशियाई मानसून को पुनः दो भागों में विभाजित करते है। (i) दक्षिण पूर्वी एशियाई मानसूनी (ii) दक्षिणी एशियाई मानसून। इस विभाजन के अलावा मानसून को दो प्रमुख प्रकारों में विभाजित किया जाता है। (i) प्रच्छन्न मानसून (ii) परम्परागत मानसून।

मानसून के तीसरे वर्गीकरण में इसे चार भागों में विभाजित किया गया है जो इस प्रकार है :–

(i) वास्तविक या परम्परागत मानसूनी क्षेत्र :–

इन क्षेत्रों के अन्तर्गत भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान, थाईलैण्ड, म्यांमार, लाओस, दक्षिणी चीन, फिलीपीन्स, उत्तरी व दक्षिणी वियतनाम तथा आस्ट्रेयिला के उत्तरी तटीय भाग को शामिल किया जाता है।

(ii) प्रच्छन्न मानसून वाले क्षेत्र :–

इन क्षेत्र के अन्तर्गत अफ्रीका के दक्षिणी पश्चिमी तटीय प्रदेश (सियरालिओन, गुयना, आइवरी कोस्ट व लाइलेटिय के तटीय भाग) पश्चिमी मेडागास्कर व पूर्वी अफ्रीका के भागों को शामिल किया गया है।

(iii) मानसूनी प्रभाव के क्षेत्र :–

इन क्षेत्रों के अन्तर्गत गयाना, सुरीनाम, फ्रेचगायना, पूर्वी वेनजुएला, उ0पू0 ब्राजील, प्योर्टिरिको तथा डोमिनकन रिपब्लिक को शामिल किया जाता है।

(iv) परिवर्तित मानसूनी क्षेत्र :–

इन क्षेत्रों के अन्तर्गत दक्षिणी पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका तथा मध्य अमेरिकी देशों को शामिल किया जाता है।

तापमान :–

मानसूनी जलवायु में तापमान पूरे वर्ष ऊँचा बना रहता है, परन्तु सूर्य के कक्र रेखा व मकर रेखा की स्थितियों के कारण शीतकाल और ग्रीष्मकाल स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। सामान्यतः यहां पर तीन प्रकार के मौसम पाए जाते है :– (i) ग्रीष्म काल (ii) शीतकाल (iii) वर्षाकाल। भारत में ग्रीष्मकाल चार महीने का मार्च से जून तक, वर्षाकाल जुलाई से अक्टूबर व शीतकाल नवम्बर से फरवरी तक रहता है। प्रत्येक मौसम चार महीने का होता है। ग्रीष्मकाल का औसत तापमान 27°C से 32°C तक रहता है, परन्तु मई व जून के महीने में कई स्थानों पर तापमान 45°C से 48°C तक हो जाता है। मई–जून के महीने में उत्तर भारत में लू (गर्म हवाएं) चलने लगती है। जिससे तापमान में वृद्धि स्थिर रहती है। सूर्य की स्थिति दक्षिणायन होने पर उत्तरी गोलार्द्ध के मानसूनी क्षेत्रों में शीतकाल

का अनुभव किया जाता है। यहां पर शीतकाल का औसत तापमान 10°C से 27°C के बीच रहता है। इस जलवायु में ग्रीष्मकाल और शीतकाल स्पष्ट होने के कारण वार्षिक तापान्तर अधिक पाया जाता है। वार्षिक तापान्तर पर वर्षा की मात्रा व समुद्र से दूरी का प्रभाव स्पष्ट पड़ता है। तटीय भागों से दूर वार्षिक तापान्तर बढ़ता जाता है। तापान्तर का यह प्रभाव समुद्र से दूरी, समुद्र तल से ऊँचाई, पठार व पर्वतों की स्थिति द्वारा भी प्रभावित होता है। वर्षाकाल में तापान्तर ग्रीष्म काल की अपेक्षा कुछ कम पाया जाता है। मानसूनी जलवायु के तीन प्रतिनिधि नगर कोलकाता, डकार तथा डार्विन के औसत मासिक तापमान को तालिका में दर्शाया गया है।

वायु दाब तथा हवाएं :–

उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु, मुख्य रूप से दक्षिण और दक्षिण–पूर्व एशिया, पश्चिम अफ्रीका, और उत्तरी ऑस्ट्रेलिया के कुछ हिस्सों में पाई जाती है। इस जलवायु की विशेषताएँ—गर्म और शुष्क ग्रीष्म ऋतु, और ठंडी और नमीयुक्त शीत ऋतु—वायु दाब और हवाओं के प्रणाली से प्रभावित होती हैं। उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु का प्रभाव मुख्य रूप से भारतीय उपमहाद्वीप, दक्षिण–पूर्व एशिया के देश, और उत्तरी ऑस्ट्रेलिया में देखा जाता है। इस क्षेत्र में वायुमंडलीय परिस्थितियाँ मुख्य रूप से इंटरट्रॉपिकल कन्वर्जेंस जोन (ITCZ), उप–उष्णकटिबंधीय उच्च दाब प्रणाली, और मौसमी हवाओं के कारण निर्धारित होती हैं।

वायु दाब

उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु क्षेत्र में वायु दाब की विभिन्न प्रणालियाँ प्रमुख भूमिका निभाती हैं। इनमें मुख्य रूप से इंटरट्रॉपिकल कन्वर्जेंस जोन, उप–उष्णकटिबंधीय उच्च दाब प्रणाली, और साइबेरियन उच्च दाब प्रणाली शामिल हैं।

1. **इंटरट्रॉपिकल कन्वर्जेंस जोन :** ITCZ एक निम्न दाब क्षेत्र होता है, जो भूमध्य रेखा के निकट स्थित होता है और गर्मियों में उत्तर की ओर और सर्दियों में दक्षिण की ओर स्थानांतरित होता है। यह क्षेत्र दोहरे व्यापारिक हवाओं (trade winds) के मिलने का स्थान है, जो गर्म और नमीयुक्त हवाएं होती हैं। ITCZ की स्थिति मानसूनी हवाओं के पैटर्न को निर्धारित करती है और वर्षा के वितरण को प्रभावित करती है।
2. **उप–उष्णकटिबंधीय उच्च दाब प्रणाली** (Subtropical High Pressure System): यह उच्च दाब प्रणाली उष्णकटिबंधीय और उप–उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में स्थित होती है और ग्रीष्म ऋतु में प्रभावी होती है। इस प्रणाली के कारण हवाएं भूमध्य रेखा से दूर चलती हैं, जो शुष्कता और गर्मी को बढ़ावा देती हैं। उप–उष्णकटिबंधीय उच्च दाब प्रणाली मानसून के आगमन और वापसी को प्रभावित करती है।
3. **साइबेरियन उच्च दाब प्रणाली** (Siberian High): यह उच्च दाब प्रणाली सर्दियों से अधिक प्रभावी होती है और उत्तरी एशिया में स्थित होती है। साइबेरियन उच्च दाब प्रणाली के कारण उत्तर–पूर्वी हवाएं चलती हैं, जो ठंडक और शुष्कता लाती हैं। इस प्रणाली का प्रभाव भारतीय उपमहाद्वीप और दक्षिण–पूर्व एशिया के मौसम पर महत्वपूर्ण होता है।

हवाएं

उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु क्षेत्र में हवाएं मुख्य रूप से मौसमी परिवर्तन और वायुमंडलीय परिसंचरण के अनुसार चलती हैं। यहाँ की हवाओं का प्रणाली विभिन्न वायुमंडलीय प्रणालियों के प्रभाव से निर्धारित होता है।

1. **दक्षिण–पश्चिमी मानसून** (Southwest Monsoon): यह हवाओं का प्रमुख प्रणाली है, जो ग्रीष्म ऋतु में उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु क्षेत्र में प्रभावी होता है। दक्षिण–पश्चिमी मानसून हवाएं अटलांटिक महासागर, हिंद महासागर और बंगाल की खाड़ी से नमी लाती हैं और भारतीय उपमहाद्वीप, दक्षिण–पूर्व एशिया, और पश्चिम अफ्रीका में भारी वर्षा लाती हैं। यह मानसून हवाएं जून से सितंबर के बीच सक्रिय रहती हैं और क्षेत्र में भारी वर्षा का मुख्य स्रोत होती हैं।
2. **उत्तर–पूर्वी मानसून** (Northeast Monsoon): यह हवाएं सर्दियों में प्रभावी होती हैं और साइबेरियन उच्च दाब प्रणाली के प्रभाव से चलती हैं। उत्तर–पूर्वी मानसून हवाएं उत्तर–पूर्व दिशा से चलती हैं और क्षेत्र में ठंडक और शुष्कता लाती हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में, ये हवाएं मुख्य रूप से अक्टूबर से दिसंबर के बीच सक्रिय रहती हैं और तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश में वर्षा का कारण बनती हैं।

3. **व्यापारिक हवाएं** (Trade Winds): व्यापारिक हवाएं भूमध्य रेखा के निकट चलती हैं और ITCZ के मिलने का कारण होती हैं। ये हवाएं उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम की दिशा में और दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण–पूर्व से उत्तर–पश्चिम की दिशा में चलती हैं। व्यापारिक हवाएं उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु क्षेत्र में मौसम के पैटर्न को प्रभावित करती हैं।

मौसमी परिवर्तन

उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु क्षेत्र में मौसमी परिवर्तन वायु दाब और हवाओं के पैटर्न के अनुसार होते हैं।

1. **ग्रीष्म ऋतु** : ग्रीष्म ऋतु में, ITCZ उत्तर की ओर स्थानांतरित हो जाता है, जो दक्षिण–पश्चिमी मानसून हवाओं के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। इस दौरान, दक्षिण–पश्चिमी मानसून हवाएं अटलांटिक महासागर, हिंद महासागर, और बंगाल की खाड़ी से नमी लाती हैं और भारतीय उपमहाद्वीप, दक्षिण–पूर्व एशिया, और पश्चिम अफ्रीका में भारी वर्षा लाती हैं। ग्रीष्म ऋतु में तापमान उच्च रहता है और वर्षा की मात्रा अधिक होती है, जिससे कृषि और वनस्पति की वृद्धि को बढ़ावा मिलता है।

2. **शीत ऋतु** : शीत ऋतु में, ITCZ दक्षिण की ओर स्थानांतरित हो जाता है और साइबेरियन उच्च दाब प्रणाली प्रभावी हो जाती है। इस दौरान, उत्तर–पूर्वी मानसून हवाएं उत्तर–पूर्व दिशा से चलती हैं और क्षेत्र में ठंडक और शुष्कता लाती हैं। सर्दियों में तापमान कम रहता है और वर्षा की मात्रा कम होती है। भारतीय उपमहाद्वीप में, उत्तर–पूर्वी मानसून हवाएं मुख्य रूप से तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश में वर्षा का कारण बनती हैं।

3. **संक्रमणकालीन मौसम** : वसंत और शरद ऋतु के मौसम संक्रमणकालीन होते हैं, जिसमें वायु दाब और हवाओं के पैटर्न में परिवर्तन होता है। इस दौरान मौसम अस्थिर हो सकता है और तापमान और वर्षा में अस्थिरता देखी जा सकती है। संक्रमणकालीन मौसम में हवाओं की दिशा और गति में परिवर्तन होता है, जो मौसम की भविष्यवाणी को चुनौतीपूर्ण बना सकता है।

वर्षा :–

उष्णकटिबन्धीय मानसूनी जलवायु में वर्षा प्रायः चक्रवातीय तथा पर्वतीय प्रकार की होती है। आर्द्र संतृप्त हवाऐं जब पर्वतीय अवरोध का सामना करती है तो ऊपर उठते समय पर्याप्त वर्षा करती है। इन हवाओं द्वारा वर्षा की मात्रा पर्वतीय अवरोध व समुद्र से दूरी बढ़ने के साथ कम होती जाती है क्योंकि दूरी बढ़ने के साथ नमी की मात्रा कम हो जाती है। अधिकांश वर्षा जून से अक्टूबर के मध्य दक्षिणी–पश्चिमी मानसून के द्वारा होती है। कुल वर्षा का 80 प्रतिशत भाग मात्र चार महीनों में ही प्राप्त हो जाती है। यह वर्षा भी लगातार नहीं प्राप्त होती है। बीच–बीच में कुछ समय शुष्क दिन भी होते है। वर्षा के प्रादेशिक वितरण में भी पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। भारत के मासिनराम में 1100 सेमी0 वार्षिक वर्षा प्राप्त होती है। वहीं राजस्थान के थार मरूस्थल में 25 सेमी0 से भी कम वर्षा प्राप्त होती है।

वनस्पति समुदाय :–

उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु एक महत्वपूर्ण और विशिष्ट जलवायु प्रणाली है जो दक्षिण और दक्षिण–पूर्व एशिया, पश्चिम अफ्रीका, और उत्तरी ऑस्ट्रेलिया के कुछ हिस्सों में पाई जाती है। इस जलवायु की मुख्य विशेषताएँ हैं गर्म और शुष्क ग्रीष्म ऋतु और ठंडी और नमीयुक्त शीत ऋतु। उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु में वायु दाब और हवाओं के प्रणाली से निर्धारित होती हैं, जो इस क्षेत्र की वनस्पति समुदाय पर गहरा प्रभाव डालती हैं। इस जलवायु में वनस्पति की विविधता और वितरण व्यापक रूप से विविधतापूर्ण होता है, जो जलवायु की मौसमी और वायुमंडलीय विशेषताओं के अनुसार बदलता रहता है।

उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु क्षेत्र में वनस्पति की प्रमुख विशेषताएँ मौसमी वर्षा, तापमान, और मिट्टी की गुणवत्ता पर निर्भर करती हैं। यहाँ की वनस्पति समुदाय मुख्य रूप से सदाबहार वन, पर्णपाती वन, और घास के मैदानों में विभाजित होती है। इन समुदायों में पौधों की विविधता और संरचना मानसूनी जलवायु के अनुसार बदलती रहती है।

1. **सदाबहार वन (Evergreen Forests):** सदाबहार वन मुख्य रूप से उन क्षेत्रों में पाए जाते हैं जहाँ वार्षिक वर्षा की मात्रा अधिक होती है और मौसम की स्थिति स्थिर रहती है। इन वनों में वृक्ष सदाबहार होते हैं, अर्थात् वे पूरे वर्ष हरे बने रहते हैं। सदाबहार वनों में प्रमुख पौधों की प्रजातियाँ जैसे कि टीक, साल, और महोगनी पाई

जाती हैं। ये वन उच्च जैव विविधता और संरचना के लिए प्रसिद्ध हैं, जिसमें विभिन्न प्रकार के पौधों, जानवरों, और सूक्ष्मजीवों का समावेश होता है। सदाबहार वन मुख्य रूप से दक्षिण–पूर्व एशिया के देशों, जैसे कि मलेशिया, इंडोनेशिया, और फिलीपींस में पाए जाते हैं।

2. **पर्णपाती वन (Deciduous Forests):** पर्णपाती वन उन क्षेत्रों में पाए जाते हैं जहाँ मौसम के अनुसार वर्षा और शुष्कता में परिवर्तन होता है। इन वनों में वृक्ष अपने पत्तों को शुष्क ऋतु में गिरा देते हैं और मानसूनी वर्षा के दौरान नए पत्ते उत्पन्न करते हैं। पर्णपाती वनों में प्रमुख पौधों की प्रजातियाँ जैसे कि टीक, साल, और बांस शामिल हैं। ये वन मुख्य रूप से भारतीय उपमहाद्वीप और पश्चिम अफ्रीका के कुछ हिस्सों में पाए जाते हैं। पर्णपाती वनों में पौधों की विविधता और संरचना मौसम के अनुसार बदलती रहती है, जो इन वनों की पारिस्थितिकी को प्रभावित करती है।

3. **घास के मैदान (Grassland):** घास के मैदान मुख्य रूप से उन क्षेत्रों में पाए जाते हैं जहाँ वर्षा की मात्रा कम होती है और शुष्कता अधिक होती है। इन मैदानों में मुख्य रूप से घास और छोटी झाड़ियाँ पाई जाती हैं। घास के मैदानों में प्रमुख पौधों की प्रजातियाँ जैसे कि लेमनग्रास, ब्लूग्रास, और विभिन्न प्रकार की झाड़ियाँ शामिल हैं। ये मैदान मुख्य रूप से भारत, पाकिस्तान, और अफ्रीका के कुछ हिस्सों में पाए जाते हैं। घास के मैदानों में वनस्पति की विविधता और संरचना शुष्कता और मिट्टी की गुणवत्ता पर निर्भर करती है।

वनस्पति समुदाय का वितरण

उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु क्षेत्र में वनस्पति का वितरण मुख्य रूप से मौसमी वर्षा, तापमान, और मिट्टी की गुणवत्ता पर निर्भर करता है। इस क्षेत्र में वनस्पति समुदाय का वितरण विविधतापूर्ण होता है, जो विभिन्न वायुमंडलीय और जलवायु परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है।

1. **दक्षिण और दक्षिण–पूर्व एशिया:** इस क्षेत्र में वनस्पति का वितरण मुख्य रूप से मानसूनी वर्षा के अनुसार होता है। भारत, बांग्लादेश, म्यांमार, थाईलैंड, वियतनाम, लाओस, कंबोडिया, और मलेशिया जैसे देशों में सदाबहार वन, पर्णपाती वन, और घास के मैदान पाये जाते हैं। मानसूनी वर्षा के कारण इन क्षेत्रों में वनस्पति की विविधता उच्च होती है। यहाँ की प्रमुख वनस्पतियाँ टीक, साल, बांस, महोगनी, और विभिन्न प्रकार की घास और झाड़ियाँ हैं।

2. **पश्चिम अफ्रीका:** पश्चिम अफ्रीका के देशों, जैसे कि नाइजीरिया, घाना, और आइवरी कोस्ट में पर्णपाती वन और घास के मैदान प्रमुख रूप से पाये जाते हैं। इन क्षेत्रों में मानसूनी वर्षा के कारण वनस्पति की विविधता और वितरण प्रभावित होता है। यहाँ की प्रमुख वनस्पतियाँ टीक, साल, और विभिन्न प्रकार की घास और झाड़ियाँ हैं। पश्चिम अफ्रीका के पर्णपाती वन और घास के मैदान स्थानीय जलवायु और मिट्टी की गुणवत्ता के अनुसार बदलते रहते हैं।

3. **उत्तरी ऑस्ट्रेलिया:** उत्तरी ऑस्ट्रेलिया में भी उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु पाई जाती है, जहाँ सदाबहार वन, पर्णपाती वन, और घास के मैदान प्रमुख वनस्पति समुदाय होते हैं। यहाँ की वनस्पतियाँ जैसे कि यूकेलिप्टस, बाओबाब, और विभिन्न प्रकार की घास और झाड़ियाँ शामिल हैं। उत्तरी ऑस्ट्रेलिया के वनस्पति समुदाय मानसूनी वर्षा और स्थानीय जलवायु के अनुसार बदलते रहते हैं।

उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु क्षेत्र में वनस्पति समुदाय का पारिस्थितिकी, कृषि, और आर्थिक महत्व होता है। इन वनस्पति समुदायों की संरचना और विविधता न केवल स्थानीय पर्यावरण को प्रभावित करती है, बल्कि वैश्विक पर्यावरण और जैव विविधता में भी महत्वपूर्ण योगदान देती है।

उष्णकटिबंधीय मानसूनी वनस्पति समुदाय पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये वनस्पतियाँ मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार करती हैं, जलधारण क्षमता बढ़ाती हैं, और जलवायु को नियंत्रित करती हैं। सदाबहार और पर्णपाती वनों की विविधता स्थानीय जीव जंतुओं के लिए आवास प्रदान करती है और पारिस्थितिक तंत्र को संतुलित बनाए रखती है।उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु क्षेत्र में कृषि मुख्य रूप से वनस्पति की विविधता और मौसमी वर्षा पर निर्भर करती है। इन क्षेत्रों में चावल, गन्ना, कपास, तिलहन, और विभिन्न प्रकार की सब्जियों की खेती की जाती है। मानसूनी वर्षा से कृषि भूमि में नमी बढ़ जाती है, जिससे फसल की पैदावार में वृद्धि होती है। पर्णपाती और सदाबहार वनों के पास की मिट्टी में खेती के लिए आवश्यक पोषक तत्व होते हैं, जो फसल की

गुणवत्ता को बढ़ाते हैं।उष्णकटिबंधीय मानसूनी वनस्पति समुदाय स्थानीय और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वनस्पति संसाधनों, जैसे कि लकड़ी, बांस, रेजिन, और औषधीय पौधों का व्यापार स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाता है। सदाबहार और पर्णपाती वनों से प्राप्त लकड़ी और अन्य वन उत्पादों का उपयोग निर्माण, कागज, फर्नीचर, और अन्य उद्योगों में किया जाता है। इसके अलावा, पर्यटन भी वनस्पति की जैव विविधता के कारण एक महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि है।

14.6 भूमध्य सागरीय जलवायु :–

भूमध्य सागर के समीप विस्तृत होने के कारण इस प्रकार की जलवायु को भूमध्य सागरीय जलवायु कहा जाता है। यद्यपि की सम्पूर्ण विश्व के क्षेत्रफल के मात्र 1.7 प्रतिशत भाग पर ही इस प्रकार की जलवायु पायी जाती है, परन्तु यह सर्वाधिक स्पष्ट जलवायु है जिसे अन्य जलवायु प्रदेशों से आसानी से अलग किया जा सकता है। इस जलवायु की कुछ मुख्य विशेषताएं इस प्रकार है।

(i) ग्रीश्मकाल गर्म एवं उष्ण होता है जबकि शीतकाल साधारण होता है।

(ii) शीतकाल में वार्षिक वर्षा का अधिकतम भाग प्राप्त होता है जबकि ग्रीष्मकाल शुष्क रहता है।

(iii) वर्ष भर पर्याप्त मात्रा में धूप की प्राप्ति होती रहती है।

भूमध्य सागरीय जलवायु का विस्तार विषुवत रेखा के दोनों ओर 30° से 40° अक्षांशो के बीच महाद्वीपों के पश्चिमी हिस्सों में पाया जाता है। इस जलवायु के अर्न्तगत भूमध्य सागर के चारों ओर फैले क्षेत्रों यथा दक्षिणी इटली, यूनान, सीरिया, पश्चिमी टर्की, पश्चिमी इजराइल, उत्तरी पश्चिमी, अफ्रीका का अल्जीरिया, फ्रान्स की रोन घाटी, उत्तरी अमेरिका में दक्षिणी कैलिफोर्निया, दक्षिणी अमेरिका में मध्य चिली, दक्षिणी अफ्रीका का दक्षिणी पश्चिमी भागों को सम्मिलित किया जाता है। भूमध्य सागरीय जलवायु की उत्पत्ति का प्रमुख कारण सूर्य के उत्तरायण व दक्षिणायन के कारण वायुदाब पेटियों में खिसकाव है।

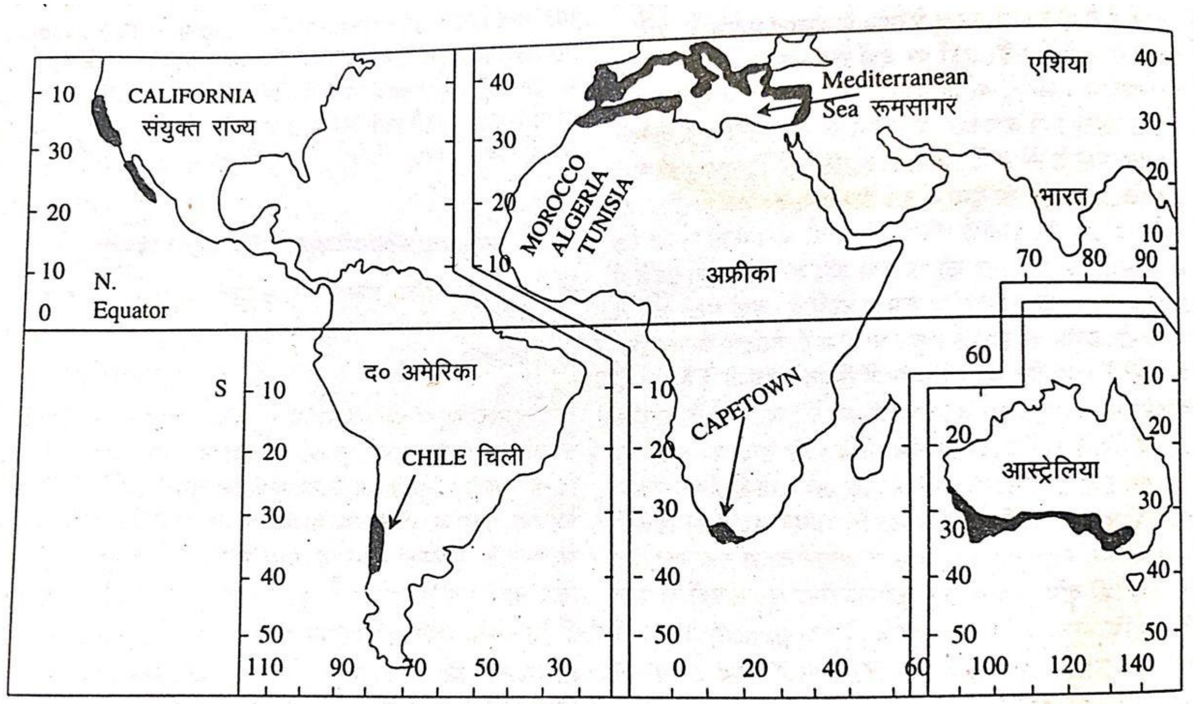

रूमसागरीय जलवायु का वितरण।

वायुदाब पेटियों के खिसकाव के कारण ये प्रदेश शीत ऋतु में पछुआ पवनों की पेटी में आ जाते है। जिससे चक्रवातों का निर्माण होता है और वर्षा होने लगती है। ग्रीश्मकाल में यहां पर उच्च वायुदाब का निर्माण हो जाता

है। जिससे प्रति चक्रवात का निर्माण होता है और वर्षा नहीं हो पाती है।

तापमान :–

भूमध्य सागरीय जलवायु में शीतकाल का औसत तापमान 5°C से 10°C तक होता है। जबकि यहां पर ग्रीष्मकाल का औसत तापमान 20°C से 27°C तक होता है। इस तरह यहां का वार्षिक तापान्तर 15°C से 17°C या उससे भी ज्यादा हो जाता है। भूमध्य सागरीय प्रदेशों में तटीय या आन्तरिक प्रत्येक स्थान पर तापमान हिमांक से ऊपर अवश्य रहता है। भूमध्य सागरीय जलवायु अपने आनन्ददायक व स्वास्थ्यवर्द्धक जलवायु के लिए प्रसिद्ध है। इस जलवायु में शीतकाल साधारण होता है। सबसे सर्द महीने का औसत तापमान 44°C से 10°C के बीच होता है। माशिंलीज का तापमान (जनवरी) 6.1°C, पर्थ का 12.8°C, रोम का 6.6°C, सैक्रोमेन्टो का 7.7°C होता है। कदाचित ही रात का तापमान कभी इतना गिरता है कि पाला पड़ जाए। सैक्रोमेन्टा, लासएजिल्स तथा नेपल्स का न्यूनतम तापमान क्रमशः –8°C, – 2.2°C, व –1°C तक दर्ज किया गया है। कभी भी तापमान का हिमांक के नीचे गिरना पूरे दिन नहीं रहता यह कुछ ही घन्टों में सामान्य हो जाता है। ग्रीश्मकाल के समय तापमान थोड़ा अधिक हो जाता है। जो अधिकतर भागों में 26°C से अधिक हो जाता है। यूरोप के भूमध्य सागरीय भाग में औसत तापमान 24°C तथा उत्तरी पश्चिमी अफ्रीका में 26.5°C तक हो जाता है। सैक्रामेन्टों में 45.5° तथा रेडब्लफ में 46°C तक का उच्चतम तापमान दर्ज किया गया है। कैलिफोर्निया की महान घाटी में औसत दैनिक उच्चतम तापमान 30°C से 32°C तक हो जाता है। इस जलवायु क्षेत्र में रात का तापमान 15.5°C तक पहुँच जाता है। जिससे दैनिक तापान्तर 30°C से अधिक हो जाता है।

तापमान में अन्तर के आधार पर भूमध्य सागरीय जलवायु को दो भागों में विभाजित किया गया है। (i) Csa जलवायु तथा (ii) Csb जलवायु। Csa जलवायु की स्थिति समुद्री तट से दूर आन्तरिक भागों में होती है जहां पर गर्मियों में तापमान बहुत अधिक हो जाता है और दैनिक तापान्तर अधिक होता है। Csb जलवायु समुद्र तटीय भागों में पायी जाती है जहां पर गर्मियों सामान्य होती है।

वायु दाब तथा हवाएं :–

भूमध्य सागरीय जलवायु का अविर्भाव वायुदाब के मौसमी स्थानान्तरण के कारण ही होता है। उत्तरी गोलार्द्ध में सूर्य के उत्तरायण होने से तापमान अधिक हो जाता है। जिससे यहां पर उपोष्ण कटिबन्धीय उच्च वायुदाब का क्षेत्र विकसित हो जाता है जहां पर प्रतिचक्रवातीय दशाओं के अविर्भाव से शुष्क आपारिक हवायें प्राप्त हो जाती है। इसी समय सहारा मरूस्थल से उत्पन्न सिराको हवाएं उत्तर दिशा की ओर चलती है तथा अपने साथ लाल रेत उड़ाकर इटली व स्पेन तक पहुँचती है। शीतकाल में जब सूर्य दक्षिणायन हो जाता है तो भूमध्य सागरीय क्षेत्र पछुओं हवाओं के क्षेत्र में आ जाता है। जिससे यहां पर चक्रवातीय दशाओं का निर्माण हो जाता है। चूंकि पछुआ पवन समुद्र के ऊपर से होकर आती है जिससे इनमें पर्याप्त आर्द्रता होती है। जिससे ये पश्चिमी तटीय भागों में पर्याप्त वर्षा करती है। शीतकाल में कुछ स्थानीय हवाएं यथा मिस्ट्रल बोरा आदि चलती है। जिससे शीतकाल का तापमान कभी–कभी हिमांक के नीचे चला जाता है।

वषा :–

भूमध्य सागरीय भाग में वर्षा का अधिकांश भाग शीतकाल में प्राप्त होता है। यहां पर औसत वार्षिक वर्षा 37 से 75 सेमी0 के बीच होती है। शीतकालीन वर्षा पछुआ पवनों के आगमन से निर्मित होने वाले चक्रवातों द्वारा होती है। जहां पर भी पर्वतीय अवरोध होता है वहां पर पर्वतीय वर्षा भी प्राप्त होती है। इस जलवायु में ग्रीष्मकाल प्रायः शुष्क रहता है। यद्यपि शीतकाल में अधिकतम वर्षा होती है पर आकाश दीर्घ समय तक स्वच्छ रहता है तथा धूप बराबर प्राप्त होती रहती है। उदाहरण के लिए सन बनरिडिनो, लास एंजिलेस में जनवरी में सबसे अधिक वर्षा का समय होता है, परन्तु वर्षा केवल सात दि नही होती है। रेड ब्लफ में वर्षा के दिन दिसम्बर में 11, जनवरी में 12, फरवरी में 10 तथा मार्च में 10 होते है। ग्रीष्मकाल में आकाश मेघरहित होता है। तथा चिलचिलाती धूप रहती है, सैक्रोमैन्टो में जुलाई–अगस्त में कोई वर्षा नहीं होती है तथा धूप 95–97 प्रतिशत समय में होती है।

वनस्पति :–

भूमध्य सागरीय जलवायु में ग्रीष्म काल के लम्बे सूखे तथा शीतकाल में वर्षा की सघनता के कारण विशिश्ट

प्रकार की वनस्पति पायी जाती है, जो ग्रीष्मकाल की चिलचिलाती धूप को सहन कर सके और शीतकालीन वर्षा पर निर्भर रह सके। इन वृक्षों की छाले मोटी, पत्तियां कम तथा छोटी होती है, वृक्षों की जड़े काफी लम्बी होती है। जिससे गहरायी तक पहुंच कर नमी प्राप्त कर सकें, इन वृक्षों की टहनियों व तनों में काँटे होते है। इन वृक्षों की ऊँचाई कम होती है व शाखाओं का विस्तार अधिक होता है। साधारणतयः ये वृक्ष दूर–दूर पाये जाते है, परन्तु जहां पर वर्षा अधिक पायी जाती है, वहां पर ये समूह में पाये जाते है। इन वृक्षों में ओक, वालनर, सिडार, चेस्टनट साइप्रस आदि वृक्ष पाए जाते है। कहीं–कहीं ये वृक्ष आडियो के झुण्ड में मिलते हे जिन्हें भूमध्य सागरीय तटीय भागों में माकी व कैलिफोर्निया में चैपरल कहा जाता है। उक्त वृक्षों के अलावा यहां पर जैतून, शहतूत, अंगूर, खूबानी, संतरा, नींबू, अंजीर आदि के वृक्ष पाए जाते है।

14.7 पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु :–

पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु की अवस्थिति दोनों गोलार्द्धों में 40° से 65° अक्षांशों के बीच महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में पायी जाती है। पश्चिमी यूरोपीय तुल्य जलवायु के उत्तर में अर्द्ध आंर्कटिक जलवायु, पूर्व में महाद्वीपीय अथवा शुष्क जलवायु तथा दक्षिण दिशा में भूमध्य सागरीय जलवायु पायी जाती है। इस जलवायु में आन्तरिक भागों के विस्तार पर धरातलीय बनावट का प्रभाव अधिक पड़ता है। जहां कहीं पर भी समुद्र तट के समान्तर पर्वतीय या पठारी अवरोध होता है। वहां पर यह जलवायु एक संकरी पट्टी के रूप में ही मिलता है। उदाहरण – स्वरूप उत्तरी अमेरिका में शकी पर्वतों के अवरोध व दक्षिणी अमेरिका के एण्डीज पर्वतों के अवरोध के कारण क्रमशः कैलिफोर्निया व दक्षिणी चिली में इस जलवायु का संकुचित विस्तार ही पाया जाता है। इसके विपरीत जहां पर मैदानी भाग या अवरोध न्यूनतम रहते है। वहां पर समुद्री हवाएं अधिक अन्दर तक प्रविष्ट हो जाती है। जिससे इस जलवायु का विस्तार महाद्वीप के आन्तरिक भागों तक हो जाता है। इस जलवायु का विस्तार पश्चिमी नार्वे, डेनमाक्र, उत्तरी पश्चिमी, जर्मनी, पश्चिमी फ्रान्स, ब्रिटिश द्वीप समूह, संयुक्त राज्य अमेरिका के वाशिंगटन तथा औरेगन, कनाडा के ब्रिटिश कोलम्बिया, न्यूजीलैण्ड, तस्मानिया व चिली को सम्मिलित किया जाता है।

तापमान :–

पश्चिमी यूरोपीय तुल्य जलवायु के तापमान पर प्रचलित वायु और समुद्री जलधाराओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। सागरीय पवनों के समकारी प्रभाव से ग्रीष्मकालीन व शीतकालीन तापमान का अन्तर कम हो जाता है। गर्मियों का औसत तापमान 15°C से 21°C के बीच रहता है। गर्मी का मौसम अधिक गर्म नहीं हो पाता है। इस प्रकार गर्मियों सामान्य सर्द रहती है। इस जलवायु में ग्रीष्मकाल में तापमान में ऋणात्मक विसंगति उत्पन्न हो जाती है। जिससे इन प्रदेशों के अक्षांशों का औसत तापमान जितना होना चाहिए। उससे कम दर्ज किया जाता है। मेघाच्छन्नता और आर्द्रता के कारण रात के तापमान में अधिक गिरावट नहीं आ पाती है। सियटल में जुलाई का औसत तापमान 17°C रहता है तथा वेल्स का औसत तापमान 10.6°C होता है। जबकि उन्हीं स्थानों का औसत उच्चतम तापमान क्रमशः 22.8°C तथा 21.7°C रहता है। जिससे दैनिक तापान्तर 10°C तथा 11.1°C रहता है। कभी–कभी दिन का तापमान 32°C से 38°C तक हो जाता है, परन्तु यह स्थिति कम समय तक ही रहती है।

पश्चिमी यूरोपीय तुल्य जलवायु में गर्म जल धाराओं के कारण सर्दियां सामान्य तथा तापमान में धनात्मक विसंगति पायी जाती है अर्थात् जिन अक्षांशों का तापमान जितना कम होना चाहिए। उससे अधिक रहता है। गर्म अटलांटिक डिफ्ट के कारण पश्चिमी यूरोप के तटीय भागों में तापमान 11°C से 17°C तक हो जाता है।

परिणामतः समताप रेखाएं अक्षांशों का अनुगमन न करके तट के समान्तर हो जाती है। इस जलवायु में शीतकाल के तापमान में क्षेत्रीय भिन्नता पायी जाती है और यह भिन्नता तट के अन्दर की ओर बढ़ता जाता है। शीतकाल में प्रायः रात का तापमान हिमांक के नीचे चला जाता है। सिएटल का अब तक का न्यूनतम तापमान –16°C तक गिर गया था व लन्दन का न्यूनतम तापमान 15.5°C तक अंकित किया गया है। सर्दियों में प्रायः पाला पड़ जाता है।

वायु दाब तथा हवाएं :–

पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु ,समुद्री प्रभाव के कारण विशेष वायुमंडलीय परिस्थितियों को प्रदर्शित करता है। इस जलवायु क्षेत्र में वायु दाब और हवाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि वे तापमान, वर्षा और मौसम के

अन्य पैटर्न को नियंत्रित करती हैं। इस क्षेत्र की विशेषताएँ मुख्य रूप से उत्तरी अटलांटिक महासागर से प्रभावित होती हैं, जो वायुमंडलीय परिसंचरण और जलवायु तंत्र का निर्धारण करता है।

वायु दाब

पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु क्षेत्र में वायु दाब में बदलाव प्रमुख रूप से उत्तरी अटलांटिक महासागर से प्रभावित होता है। यहाँ पर वायु दाब की दो प्रमुख प्रणालियाँ पाई जाती हैं: अजोरेस उच्च दाब प्रणाली (Azores High Pressure System) और आइसलैंड निम्न दाब प्रणाली (Icelandic Low Pressure System)।

1. **ओजोर्स उच्च दाब प्रणाली :** यह उच्च दाब प्रणाली अटलांटिक महासागर के उप–उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में स्थित होती है और गर्मियों में अधिक प्रभावी होती है। यह प्रणाली पश्चिमी यूरोप में गर्मियों के दौरान शुष्क और स्थिर मौसम को बनाए रखने में मदद करती है। उच्च दाब प्रणाली के कारण हवाएं दक्षिण–पश्चिम दिशा से चलती हैं, जो क्षेत्र में स्थिरता और सूखेपन को बनाए रखती हैं।
2. **आइसलैंड निम्न दाब प्रणाली :** यह निम्न दाब प्रणाली आइसलैंड के निकट स्थित होती है और सर्दियों में अधिक प्रभावी होती है। इस प्रणाली के कारण पश्चिमी यूरोप में सर्दियों के दौरान तूफानी और गीला मौसम होता है। निम्न दाब प्रणाली के प्रभाव से हवाएं दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व की दिशा में चलती हैं, जो नमी और वर्षा लाती हैं।

हवाएं

पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु क्षेत्र में हवाएं प्रमुख रूप से पश्चिम से पूर्व दिशा में चलती हैं, जो पश्चिमी पवन (Westerlies) के प्रभाव को दर्शाती हैं। ये हवाएं अटलांटिक महासागर से नमी लाती हैं और इस क्षेत्र में नियमित वर्षा और मध्यम तापमान को बनाए रखती हैं।

1. **पश्चिमी पवन :** यह हवाओं का प्रमुख पैटर्न है, जो पश्चिमी यूरोप में मौसम को नियंत्रित करता है। पश्चिमी पवन पट्टी के कारण हवाएं लगातार पश्चिम से पूर्व की दिशा में चलती हैं, जो अटलांटिक महासागर से नमी और गर्मी लाती हैं। ये हवाएं वर्ष भर सक्रिय रहती हैं और मौसम में स्थिरता बनाए रखने में मदद करती हैं।
2. **जेट स्ट्रीम** : जेट स्ट्रीम एक उच्च गति की हवा होती है, जो ट्रोपोस्फियर की ऊपरी परत में चलती है। पश्चिमी यूरोप में, उत्तरी अटलांटिक जेट स्ट्रीम विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यह जेट स्ट्रीम मौसम प्रणालियों को नियंत्रित करती है और तेज हवाओं और तूफानों को प्रभावित करती है। जेट स्ट्रीम की स्थिति और गति में बदलाव से मौसम की परिस्थितियों में तेजी से परिवर्तन हो सकता है।

पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु क्षेत्र में मौसमी परिवर्तन वायु दाब और हवाओं के पैटर्न के अनुसार होते हैं।

गर्मियों में, अजोर्स उच्च दाब प्रणाली प्रभावी होती है, जो क्षेत्र में शुष्क और स्थिर मौसम लाती है। इस दौरान, हवाएं दक्षिण–पश्चिम से चलती हैं और तापमान मध्यम रहता है। गर्मियों में वर्षा की मात्रा कम होती है और धूप अधिक होती है। सर्दियों में, आइसलैंड निम्न दाब प्रणाली प्रभावी होती है, जो तूफानी और गीला मौसम लाती है। इस दौरान, हवाएं पश्चिमी पवन पट्टी के कारण पश्चिम से पूर्व की दिशा में चलती हैं और नमी और ठंडक लाती हैं। सर्दियों में वर्षा की मात्रा अधिक होती है और तापमान कम रहता है। वसंत और शरद ऋतु के मौसम संक्रमणकालीन होते हैं, जिसमें वायु दाब और हवाओं के पैटर्न में परिवर्तन होता है। इस दौरान मौसम अस्थिर हो सकता है और तापमान और वर्षा में अस्थिरता देखी जा सकती है।

वर्षा :–

पश्चिमी यूरोपीय तुल्य जलवायु में वर्षा वर्ष भर समान रूप से होती है तथा शीतकाल में ग्रीष्मकाल की अपेक्षा अधिक वर्षा प्राप्त होती है तथा कोई भी महीना शुष्क नहीं होता है, परन्तु इस प्रकार की स्थिति तटीय भागों में ही पायी जाती है। आन्तरिक भागों में जाने पर गर्मियों में सर्दियों की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है। वर्षा के वितरण पर उच्चावत का प्रभाव अधिक होता है। जहां पर उच्चावच कम होती है वहां पर वर्षा भी कम होती है।

उदाहरण स्वरूप पश्चिमी यूरोप में बिना किसी पर्वतीय अवरोध के वार्षिक वर्षा 50 से 75 सेमी0 ही प्राप्त होती है, इसके विपरीत उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका के राकी व एण्डीस पर्वतों की स्थिति से क्रमशः 250 से 375 सेमी0 वार्षिक वर्षा प्राप्त होती है। पर्वतों के दूसरी ओर पवन विमुखी ढाल के कारण वर्षा न्यूनतम होती है।

पश्चिमी यूरोपीय तुल्य जलवायु की प्रमुख विशेषता यह है कि यहां पर कम वार्षिक वर्षा अधिक दिनों में प्राप्त होती है। जिससे वर्षा के दिन अधिक होते है। लन्दन में 164 वर्षा के दिनों में 71.3 सेमी0 वर्षा, पेरिस के 188 वर्षा के दिनों में 56.5 सेमी0 वर्षा तथा शटलैण्ड द्वीप के 260 वर्षा के दिनों में 91.7 सेमी0 वर्षा प्राप्त होती है। कभी – कभी शीतकाल में हिमपात भी हो जाता है पर ऐसे दिनों की संख्या कम ही है।

वनस्पति व कृषि

पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु, जिसे "वेस्टर्न यूरोपियन मैरीटाइम क्लाइमेट" भी कहा जाता है, अपने विशेष तापमान और वर्षा के पैटर्न के कारण विविध वनस्पति और कृषि गतिविधियों को प्रोत्साहित करता है। इस जलवायु की मुख्य विशेषताएँ—मध्यम तापमान, नियमित वर्षा, और उच्च आर्द्रता—इस क्षेत्र की पारिस्थितिकी और कृषि पर गहरा प्रभाव डालती हैं। ब्रिटेन, आयरलैंड, नॉर्वे और पश्चिमी फ्रांस के तटीय क्षेत्रों में देखी जाने वाली इस जलवायु ने यहाँ की वनस्पति और कृषि प्रथाओं को विशेष रूप से प्रभावित किया है। पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु की वनस्पति विविध और समृद्ध है। यहाँ की उच्च आर्द्रता और नियमित वर्षा ने हरे–भरे वन और घास के मैदानों की वृद्धि को बढ़ावा दिया है। इस जलवायु क्षेत्र में मुख्य रूप से शीतोष्ण वन, सागवान, और घास के मैदान पाये जाते हैं।

इस क्षेत्र में शीतोष्ण वन सबसे प्रमुख वनस्पति प्रकार हैं। ये वन मुख्यतः मिश्रित प्रकार के होते हैं, जिसमें पर्णपाती (deciduous) और सदाबहार (evergreen) पेड़ दोनों शामिल होते हैं। पर्णपाती पेड़ों में ओक, एश, और मेपल जैसी प्रजातियाँ शामिल हैं, जबकि सदाबहार पेड़ों में पाइन और स्प्रूस जैसी प्रजातियाँ पाई जाती हैं। शीतोष्ण वन में ढेर सारी वनस्पतियों और जीवों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जो इस क्षेत्र की जैव विविधता को बढ़ाती हैं। सागवान की संरचना भी पश्चिमी यूरोप की वनस्पति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। ये प्राकृतिक बाधाएँ और सीमा निर्धारण के रूप में काम करती हैं, जिनमें झाड़ियाँ और छोटी–छोटी पेड़ की प्रजातियाँ होती हैं। सागवान भूमि की कटाव को रोकने में मदद करती हैं और जीवों को शरण देती हैं। इस जलवायु क्षेत्र में घास के मैदान भी व्यापक रूप से फैलते हैं। ये क्षेत्रों में खेती की भूमि और प्राकृतिक घास के मैदान शामिल होते हैं। घास के मैदानों में विभिन्न प्रकार की घास की प्रजातियाँ उगती हैं, जो स्थानीय वनस्पति और पशु जीवन के लिए महत्वपूर्ण हैं।

कृषि

पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु ने इस क्षेत्र में कृषि प्रथाओं को भी विशेष रूप से प्रभावित किया है। इस जलवायु की नियमित वर्षा और मध्यम तापमान ने कृषि को अनुकूल बनाया है, जिससे यहाँ की फसलों की विविधता और गुणवत्ता में सुधार हुआ है। इस जलवायु क्षेत्र में गेहूँ, जौ, और ओट्स जैसे अनाज की फसलों की खेती की जाती है। विशेष रूप से गेहूँ और जौ इस क्षेत्र के प्रमुख अनाज हैं, जो कृषि की मुख्य फसलें बनाते हैं। नियमित वर्षा और उपजाऊ मिट्टी इन फसलों के लिए आदर्श परिस्थितियाँ प्रदान करती हैं। पश्चिमी यूरोप की जलवायु फलों और सब्जियों की विविधता के लिए भी अनुकूल है। यहाँ पर सेब, नाशपाती, अंगूर, और बेर जैसी फलों की फसलें उगाई जाती हैं। सब्जियों में आलू, गाजर, और गोभी प्रमुख हैं। कृषि में इन फसलों की विविधता और गुणवत्ता इस जलवायु की स्थिरता और तापमान की संतुलित स्थिति पर निर्भर करती है। पश्चिमी यूरोप के कुछ हिस्सों, जैसे कि फ्रांस और जर्मनी, वाइन उत्पादन के लिए प्रसिद्ध हैं। इस जलवायु की विशेषता, जिसमें गर्मी और ठंडक के बीच संतुलन होता है, अंगूर की खेती के लिए आदर्श होती है। यहाँ पर विभिन्न प्रकार की वाइन की किस्में उगाई जाती हैं, जो विश्व प्रसिद्ध हैं। इस जलवायु की उपजाऊ मिट्टी और चरागाहों ने डेयरी और मांस उत्पादन को भी बढ़ावा दिया है। यहाँ पर गाय, भेड़, और सूअर के पालन के लिए अच्छी परिस्थितियाँ उपलब्ध हैं, जो दूध, पनीर, और मांस के उत्पादन के लिए उपयुक्त हैं। पश्चिमी यूरोप की जलवायु बागवानी के लिए भी अनुकूल है। फूलों और सजावटी पौधों की विभिन्न प्रजातियाँ यहाँ उगाई जाती हैं। हरे–भरे वातावरण और नियमित वर्षा ने बागवानी को एक महत्वपूर्ण कृषि गतिविधि बना दिया है।

पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु ने इस क्षेत्र की वनस्पति और कृषि प्रथाओं को गहराई से प्रभावित किया है। मध्यम तापमान, नियमित वर्षा, और उच्च आर्द्रता ने यहाँ की वनस्पति को समृद्ध बनाया है और कृषि के विविध प्रकार को बढ़ावा दिया है। शीतोष्ण वन, सागवान, और घास के मैदान इस क्षेत्र की पारिस्थितिकीय विशेषताओं को दर्शाते हैं, जबकि अनाज, फल, सब्जियाँ, अंगूर, और डेयरी उत्पादन यहाँ की प्रमुख कृषि गतिविधियाँ हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के बावजूद, इस जलवायु क्षेत्र की कृषि और वनस्पति को संतुलित रखने के लिए सतत प्रबंधन और अनुकूलन उपाय आवश्यक हैं।

14.8 सारांश :–

जलवायु के प्रकार और उनका वितरण पृथ्वी के विभिन्न हिस्सों में मौसम और पर्यावरण की विविधता को दर्शाते हैं। जलवायु की प्रमुख श्रेणियाँ उष्णकटिबंधीय वर्षावन जलवायु, उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु, भूमध्यसागरीय जलवायु, और पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु हैं। प्रत्येक प्रकार की जलवायु अपने विशेष गुण और स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर विशिष्ट होती है, जो पृथ्वी की भौगोलिक विविधता को दर्शाती हैं। उष्णकटिबंधीय वर्षावन जलवायु, जिसे आमतौर पर "ट्रॉपिकल रेनफॉरेस्ट क्लाइमेट" कहा जाता है, गर्म और आर्द्र मौसम की विशेषता है। यह जलवायु क्षेत्र भूमध्य रेखा के आसपास स्थित होता है, उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु, जिसे "ट्रॉपिकल मॉन्सून क्लाइमेट" कहा जाता है, उष्णकटिबंधीय वर्षावन जलवायु के समान ही गर्म होती है, लेकिन इसमें बारिश के पैटर्न में महत्वपूर्ण अंतर होता है।भूमध्यसागरीय जलवायु, जिसे "मेडिटेरेनियन क्लाइमेट" कहा जाता है, भूमध्य सागर के तटीय क्षेत्रों में पाई जाती है,। पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु, जिसे "वेस्टर्न यूरोपियन मैरीटाइम क्लाइमेट" भी कहा जाता है, इस जलवायु की विशेषता समशीतोष्ण तापमान और नियमित वर्षा है। यहाँ पर सर्दियों में तापमान हल्का रहता है और गर्मियों में भी तापमान बहुत अधिक नहीं बढ़ता। जलवायु के विभिन्न प्रकार और उनका वितरण पृथ्वी के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में मौसम की विविधता को समझने में सहायक होते हैं। उष्णकटिबंधीय वर्षावन जलवायु और उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु में तापमान की ऊँचाई और वर्षा के पैटर्न में भिन्नता होती है, जबकि भूमध्यसागरीय जलवायु और पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु में मौसम के सामान्यीकरण और वर्षा के पैटर्न में स्पष्ट अंतर देखा जाता है। प्रत्येक जलवायु प्रकार की विशेषताएँ और उनके प्रभाव प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र, कृषि, और मानव जीवन की विभिन्न गतिविधियों को प्रभावित करते हैं, और जलवायु के अध्ययन से हम इन प्रभावों को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

14.9 परीक्षा उपयोगी प्रश्न :–

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. भूमध्य सागरीय जलवायु की विशेषताओं इसके वैश्विक वितरण का वर्णन कीजिए।
2. पश्चिमी यूरोपीय तुल्य जलवायु की विशेषताओं और वितरण का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
3. जलवायु के प्रकार एवं उनके वैश्विक वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों की व्याख्या कीजिए।
4. उष्ण कटिबन्धीय मानसूनी जलवायु के प्रमुख क्षेत्रों, वर्षा का वितरण को स्पष्ट करें।
5. उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन जलवायु की विशेषताओं सहित इस क्षेत्र में पाए जाने वाले वनस्पति एवं जीव–जन्तुओं के अनूकूलन का उदाहरण?

14.10 बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1.पश्चिमी यूरोपीय तुल्य जलवायु किस देश में पायी जाती है?

(A) रूस **(B)** जर्मनी

(C) इटली **(D)** स्पेन

2.किस प्रकार की जलवायु में शीतकाल में वर्षा होती है?

(A) भूमध्यरेखीय जलवायु **(B)** भूमध्य सागरीय जलवायु

(C) मानसूनी जलवायु **(D)** पश्चिमी यूरोपीय तुल्य जलवायु

3.किस प्रकार की जलवायु में हवाओं मे सामयिक दिशा परिवर्तन होता रहता है?

(A) मानसूनी जलवायु **(B)** पश्चिमी यूरोपीय जलवायु

(C) भूमध्य सागरीय जलवायु (D) भूमध्य रेखीय जलवायु

14.11 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

1.डी एस. लाल – जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज

2 प्रो0 सविद्र सिंह – जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स प्रयागराज

3. डॉ. वाई. आई. सिंह – जलवायु विज्ञान, एशियन ह्यूमेनटिस प्रेस (AHP)

4.डॉ. चतुर्भुज मामोरिया – डा. एम. एस. सिसोदिया – जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, साहित्य भवन कानपुर

इकाई—15

जलवायु परिवर्तन, अर्थ, संकल्पना, कारक एवम प्रभाव

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्देश्य

15.2 जलवायु परिवर्तन अर्थ

15.3 जलवायु परिवर्तन के संकेतक

15.3.1 रेडियोकार्बन डेटिंग

15.3.2 आइसोटोप विश्लेषण

15.3.3 भौमिकीय संकेतक

15.3.4 विवर्तनिक संकेतक

15.4 जलवाुय परिवर्तन के कारक एवं सिद्धान्त

15.4.1 सौरकिर्णित ऊर्जा सिद्धान्त

15.4.2 सौर कलंक सिद्धान्त

15.4.3 वायुमण्डलीय धूलि परिकल्पना

15.4.4 कार्बन—डाई ऑक्साइड सिद्धान्त

15.4.5 महाद्वीपीय प्रवाह एवं ध्रुव पलायन

15.4.6 समुद्र जल स्तर वृद्धि

15.4.7 जैवविविधता पर प्रभाव

15.4.8 मिट्टी पर प्रभाव

15.5 जलवायु परिवर्तन के प्रभाव :—

15.5.1 मौसमी परिवर्तन पर प्रभाव

15.5.2 जैव विविधता पर प्रभाव

15.5.3 कृषि और खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव

15.5.4 स्वास्थ्य पर प्रभाव

15.5.5 समुद्री पर्यावरण का प्रभाव

15.6 निष्कर्ष

15.7 परीक्षा उपयोगी प्रश्न

15.8. सन्दर्भ पुस्तकें

15.1 प्रस्तावना :—

इस इकाई के अन्तर्गत जलवायु परिवर्तन की मूल अवधारणा और इसके विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट किया जायेगा है। इसमें जलवायु परिवर्तन के अर्थ और संकल्पना की व्याख्या की जाएगी, साथ ही इसके मुख्य कारकों और प्रभावों पर भी चर्चा की जाएगी। जलवाय़ु परिवर्तन के कारक जैसे कि ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन, वनस्पति की कमी, और औद्योगिक गतिविधियाँ प्रमुख रूप से शामिल होंगे। इसके प्रभावों में वैश्विक तापमान वृद्धि, समुद्र स्तर

में वृद्धि, और जलवायु असंतुलन जैसे मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा। यह अध्याय पाठकों को जलवायु परिवर्तन के प्रति जागरूक बनाने और इसके समाधान के लिए आवश्यक कदम उठाने की प्रेरणा देगा।

15.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य विभिन्न जलवायु परिवर्तनं और उनके पक्षों की गहन समझ प्रदान करना है। **इस** इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी

1. जलवायु परिवर्तन के संकेतक की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे।

2 जलवुाय परिवर्तन के कारक एवं सिद्धान्त की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे।

3 जलवायु परिवर्तन के प्रभाव की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे।

15.2 जलवायु परिवर्तन अर्थ

किसी भी स्थान की मौसम एवं जलवायु में दीर्घकालिक स्थायी परिवर्तन को जलवायु परिवर्तन कहा जाता है। जलवायु परिवर्तन एक ऐतिहासिक घटना है विगत कालों में जलवायु परिवर्तन हुआ है। जलवायु परिवर्तन का सम्बन्ध वर्षा, आर्द्रता, उष्मा संतुलन तथा मेघाच्छन्नता में अल्पकालिक या दीर्घकालिक परिवर्तन से होता है जलवायु में इस तरह का परिवर्तन बाह्य व आन्तरिक दोनों कारकों द्वारा संभव है वाह्य कारकों के अन्तर्गत सौर परिवर्तनशीलता, सूर्य के प्रकाश मण्डल में उतार–चढ़ाव, ज्वालामुखी क्रिया, पृथ्वी की अक्षीय दिशाओं में परिवर्तन आदि को शामिल किया जाता है। आन्तरिक कारको में जलमण्डल, वायुमण्डल, स्थलमण्डल के मध्य ऊर्जा का गमन तथा विनयम महत्वपूर्ण होता है। जलवायु परिवर्तन एक वास्तविकता है क्योंकि किसी भी क्षेत्र की जलवायु स्थायी एवं स्थिर नहीं बल्कि गतिशील है।

इसी आधार पर J.E. हॉव्स ने बताया है कि विश्व की जलवायु में भूतकाल में परिवर्तन हुए है, वर्तमान में भी परिवर्तन हो रहे है और भविष्य में भी परिवर्तन होंगे।

सामान्य तौर पर यह माना जाता हैं कि जलवायु परिवर्तन आकस्मिक एवं क्षणिक होता है। परन्तु यह सदा सत्य नहीं होता क्योंकि जलवायु परिवर्तन त्वरित हो सकता है। आंशिक रूप में पूर्णरूप में हो सकता ह। अल्पकालिक या दीर्घकालिक हो सकता है। जुरेसिक काल में जलवायु परिवर्तन तुरन्त एवं तात्कालिक होता है। जिस कारण डायनाशोर का सामूहिक विलोपन हो गया। हिमकाल की घटनाएं जलवायु परिवर्तन की चक्रीय प्रवृत्ति को भली–भांति प्रमाणित करती है।

क्र0सं0	**थ्हमकाल**	**आगमनकाल (आज से मिलियन वर्ष पहले)**
1.	पूर्व–कैम्ब्रियन हिमकाल	850–600
2.	आर्डोविसियन हिमकाल	450–420
3.	कार्बोनीफेरस हिमकाल	300
4.	इरिस्टोसीन हिमकाल	2–3

यह कहा जा सकता है हिमकालों की चार बार आवृत्ति जलवायु परिवर्तन के अटल सत्य होने की तुष्टि करता है। पिछली सदी में 1991–2000 के बीच विश्व का अधिकतम ताप वाला दशक रहा। वर्ष 2004 में इतिहास का सर्वाधिक गर्म वर्ष घोषित किया गया है।

जलवायु में सम्भावित परिवर्तन मंद गति से क्रमशः हो सकता है या त्वरित गति से हो सकता है। यह आसामयिक, सामायिक, अर्द्ध सामायिक हो सकता है। यह दीर्घकालिक या अल्प कालिक हो सकता है। यह प्रादेशिक स्थानीय या भूमण्डलीय स्तर पर हो सकता है। यह प्राकृतिक कारकों या मानव जनित या दोनों प्रकार के कारकों द्वारा हो सकता है।

15.3 जलवायु परिवर्तन के संकेतक :—

जलवायु परिवर्तन के साक्ष्यों को जलवायु परिवर्तन के संकेतक या सूचक कहा जाता है। जलवायु परिवर्तन के संकेतकों के आधार पर पुराजलवायु के इतिहास की रचना की जाती है तथा जलवायु के परिवर्तनों के अनुक्रम को जलवायु कालानुक्रम कहते है। पृथ्वी के पुरा जलवायु की रचना जेम्स हटन के एकरूपतावाद के संकल्पना के आधार पर की जाती है। एकरूपतावाद की संकल्पना दो तथ्यों पर आधारित है।

1. वर्तमान भूत कुंजी है न तो आदि का पता है न ही आदि की संभावना है। हटन के एकरूपता वाद के नियम के अनुसार वे सभी भौतिक प्रक्रम तथा नियम जो आज कार्यरत है। पृथ्वी के विगत भूगार्भिक कालों में क्रियाशील है यद्यपि उनके तीव्रता में अन्तर है।

2. भौतिक जैविक संकेतकों के अन्तर्गत जन्तुओं एवं पौधों के जैविक अवशेष द्वारा तत्कालीप जलवायु सम्बन्धित दशाओं खासकर तापमान आर्द्रता के विषय में साक्ष्य प्रदान करते है। जैविक पदार्थों कार्बन डेटिंग के माध्यम से उनकी आय का आकलन किया जाता है। पादप संकेतकों के अन्तर्गत ऑक्सीजन आइसोटोप, विश्लेषण, पराग विश्लेषण व पेड़ों के वलयों के द्वारा पुरा जलवायु के दशाओं के विषय में महत्वपूर्ण सुराग मिलते हैं। कार्बोनीफेरस युग में कोयले में जीवाश्मित वनस्पतिक अवशेष हार्सटेल एवं क्लब मॉस से सम्बन्धित पाये जाते है।

पुरा जलवायु पनर्रचना के लिए अवसादी शैलों में सुरक्षित जीवाश्मित परागकणों का विभिन्न विधियों से विश्लेषण किया जाता है तथा उसके आधार पर तत्कालिक जलवायु का अनुमान लगाया जाता है। पौधो के परागकण बहुत अधिक टिकाऊ जैविक तत्व होते है। जो प्रकृति द्वारा संरक्षित होते है। पौधों के परागकण जलीय भागों की तली में तलछट के साथ निक्षेपित रहते हैं। पराग विश्लेषण के लिए निम्न साराणियों का अनुपालन किया जाता है।

1. इस कार्य के लिए विभिन्न परतों से पंख कोड निकाला जाता है।
2. अवसादों के प्रत्येक परत से परागकणों के आधार पर वनस्पति प्रकारों का निर्धारण किया जाता है।

मडकोड की विभिन्न परतो से प्राप्त परागकणों का तिथिकरण किया जाता है।

जीवाश्मित परागकणों के आधार पर पौधों का अनुक्रम बनाया जाता है जिसमें सबसे ऊपरी परत में कोप, स्प्रूस तथा लीच प्रजातियों के अवशेष, मध्यवर्ती परत में स्प्रूस व पाइन प्रजातियों के अवशेष तथा निचली परत में अधिकांश पाइन प्रजातियों के अवशेष पाये जाते है। स्थलीय भागों में निक्षेपित परागकण कुछ समय पश्चात वे नष्ट हो जाते है, परन्तु जलीय सतहों वाले परागकण नीचे बैठते है और अवसादी परतों में निक्षेपित हो जाते है पौधों के परागकण हवा द्वारा उड़ाकर दूर स्थानों तक ले जाये जाते है। इस प्रकार सरोवरी अवसादी परतों में जीवाशों परागकणों का निर्धारण करके उनके पादप प्रजातियों का अभिनिर्धारण किया जाता है। जिसके आधार पर उस समय की जलवायु का अनुमान लगाया जाता हैं

पुरा जलवायु के ऐतिहासिक क्रम के निर्धारण में वृक्षों के वार्षिक वलयों के अध्ययन के आधार पर तिथि निर्धारण किया जाता है। किसी भी वृक्ष के वर्धन काल के दौरान उसकी वार्षिक वलय वृद्धि से जलवायु की मौसमिक प्रवृत्ति के विषय में महत्वपूर्ण सुराग मिलते है।

उदाहरण स्वरूप यदि किसी वृक्ष के वर्धन वलय मोटे और दूर—दूर है तो इससे गर्म एवं आर्द्र जलवायु का बोध होता है। इसके विपरीत यदि वृक्षों के वलय पतले—पतले तथा पास—पास होते हैं, तो उनसे ऐसी शुष्क जलवायु का बोध होता है जिसमें आर्द्रता के अभाव में वृक्षों का विकास अवरूद्ध रहता है। जीवित वृक्षों को वर्धन वलयों के आधार पर विद्वानों ने विगत 3000 वर्षों में पर्यावरणीय परिवर्तन एवं जलवायु दशाओं की पुनर्रचना करने में सफलता प्राप्त हुई है। इन विद्वानों ने मौसम के तत्वों (आर्द्रता, तापमान, वर्षा, वायुदाब, वायुमण्डलीय परिसंचरण प्रतिरूप) तथा वृक्ष वलयों को मोटाई व अन्तराल के मध्य उपयोगी निष्कर्ष निकालने से सफलता प्राप्त की है। वृक्ष कालानुक्रमकी के आधार पर ही वैज्ञानिकों ने हिमनदों के आगे बढ़ने एवं निवर्तन की घटनाओं की पुनर्रचना की है। उल्लेखनीय है कि जब वृक्ष सतह पर सीधे खड़े रहते है तो उनके वार्षिक वलय संकेन्द्रीय रहते है, परन्तु जब वृक्ष झुक जाते है तो उनके वलय असममित हो जाते है।

जीवाश्मित अवशेषों के अवसादी निक्षेपों में रीढ़रहित जन्तओं को शारीरिक विशेषताओं व उनकी रासायनिक संरचना सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। जन्तुओं के जीवाश्मों को तिथिकरण को दो विधियों प्रचलित है।

1. **रेडियोकार्बन डेटिंग :–**

रेडियोकार्बन डेटिंग, जिसे कार्बन–14 डेटिंग भी कहा जाता है, एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक विधि है जिसका उपयोग पुरातात्विक, भूवैज्ञानिक और पेलियोक्लाइमेटिक अनुसंधानों में जैविक नमूनों की आयु निर्धारण के लिए किया जाता है। इस विधि की खोज 1940 के दशक में अमेरिकी रसायनज्ञ विलार्ड लिब्बी ने की थी, और इसके लिए उन्हें 1960 में रसायन विज्ञान में नोबेल पुरस्कार भी मिला। रेडियोकार्बन डेटिंग की प्रक्रिया रेडियोधर्मी आइसोटोप कार्बन–14 (C–14) के प्राकृतिक क्षय पर आधारित है।कार्बन–14 एक रेडियोधर्मी आइसोटोप है जो वायुमंडल में प्राकृतिक रूप से बनता है। जब ब्रह्मांडीय किरणें वायुमंडल में नाइट्रोजन–14 (N–14) से टकराती हैं, तो वे इसे कार्बन–14 में परिवर्तित कर देती हैं। इस प्रकार उत्पन्न कार्बन–14 वायुमंडल में मौजूद कार्बन डाइऑक्साइड के साथ मिलकर पौधों द्वारा अवशोषित हो जाता है। इसके बाद, पौधों को खाने वाले जानवर और वे जीव जो इन जानवरों को खाते हैं, उनके शरीर में भी कार्बन–14 का समावेश हो जाता है। इस प्रकार सभी जीवित जीवों में एक निश्चित मात्रा में कार्बन–14 होता है, जो उनकी मृत्यु के बाद धीरे–धीरे क्षय होने लगता है।

जब कोई जीव मर जाता है, तो उसमें कार्बन–14 का अवशोषण बंद हो जाता है और उसमें मौजूद कार्बन–14 का रेडियोधर्मी क्षय (decay) शुरू हो जाता है। कार्बन–14 का नाइट्रोजन–14 में क्षय होने की अर्ध–आयु (halflife) लगभग 5730 वर्ष होती है, जिसका मतलब है कि हर 5730 वर्षों में कार्बन–14 की आधी मात्रा क्षय हो जाती है। इस अर्ध–आयु के सिद्धांत का उपयोग करके, वैज्ञानिक किसी भी जैविक नमूने की आयु का अनुमान लगा सकते हैं।रेडियोकार्बन डेटिंग की प्रक्रिया में सबसे पहले नमूने में बची हुई कार्बन–14 की मात्रा का सटीक मापन किया जाता है। इसके लिए विभिन्न तकनीकों का उपयोग किया जाता है, जिनमें से तीन प्रमुख तकनीकें हैं। गैस काउंटर, लिक्विड सीन्टिलेशन काउंटर, और एक्सेलरेटेड मास स्पेक्ट्रोमेट्री (AMS)। गैस काउंटर और लिक्विड सीन्टिलेशन काउंटर विधियों में, नमूने को जलाकर या किसी अन्य तरीके से गैस में परिवर्तित किया जाता है और फिर उसमें मौजूद कार्बन–14 की मात्रा को मापा जाता है। AMS विधि में, नमूने को सीधे आयन बीम में परिवर्तित किया जाता है और फिर उसमें मौजूद कार्बन–14 की मात्रा को मापा जाता है। AMS विधि विशेष रूप से छोटी मात्राओं के लिए उपयोगी होती है और अधिक सटीक परिणाम प्रदान करती है।

रेडियोकार्बन डेटिंग की सटीकता और विश्वसनीयता कई कारकों पर निर्भर करती है। सबसे पहले, नमूने की आयु का सटीक निर्धारण करने के लिए उसमें पर्याप्त मात्रा में कार्बन–14 होना आवश्यक है। बहुत पुराने नमूनों में, कार्बन–14 की मात्रा इतनी कम हो जाती है कि उसका मापन कठिन हो जाता है। सामान्यतः, रेडियोकार्बन डेटिंग का उपयोग 50,000 वर्ष तक पुराने नमूनों की आयु निर्धारण के लिए किया जाता है। इसके अलावा, नमूने का संरक्षण भी महत्वपूर्ण है। यदि नमूना पर्यावरणीय कारकों के संपर्क में आकर प्रदूषित हो जाता है, तो इससे डेटिंग के परिणाम प्रभावित हो सकते हैं। रेडियोकार्बन डेटिंग का उपयोग विभिन्न प्रकार के जैविक नमूनों की आयु निर्धारण के लिए किया जाता है, जिनमें पुरातात्विक अवशेष, प्राचीन वस्त्र, लकड़ी, हड्डियाँ, कोयला, और अन्य जैविक पदार्थ शामिल हैं। उदाहरण के लिए, पुरातत्वविद इस विधि का उपयोग प्राचीन स्थलों से प्राप्त वस्तुओं की आयु निर्धारण के लिए करते हैं, जिससे उन्हें मानव इतिहास और सभ्यताओं के विकास को समझने में मदद मिलती है। पेलियोक्लाइमेटोलॉजिस्ट इसका उपयोग जलवायु परिवर्तन के अध्ययन में करते हैं, जैसे कि झीलों और समुद्रों के तलहटी से लिए गए मिट्टी के नमूनों की आयु निर्धारण करके प्राचीन जलवायु परिस्थितियों का पता लगाना।

रेडियोकार्बन डेटिंग के कुछ सीमाएँ भी हैं। यह विधि केवल जैविक नमूनों के लिए उपयोगी है, और इसे अकार्बनिक नमूनों के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, बहुत पुराने या बहुत नए नमूनों के लिए इसकी सटीकता कम हो जाती है। इसके बावजूद, रेडियोकार्बन डेटिंग वैज्ञानिक अनुसंधान में एक महत्वपूर्ण उपकरण है, जिसने पुरातत्व, भूविज्ञान, और पर्यावरण विज्ञान के क्षेत्र में क्रांतिकारी योगदान दिया है। इसके माध्यम से हमें पृथ्वी के प्राचीन इतिहास, जलवायु परिवर्तन और मानव सभ्यताओं के विकास के बारे में महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त हुई हैं।

2. **आइसोटोप विश्लेषण :–**

मृत जन्तुओं को शारीरिक रसायन के आधार पर उनके जीवनकाल में आर्द्रता एवं तापमान सम्बन्धी दशाओं

का अनुमान लगाया जाता है। ऑक्सीजन के 3 रेडियो एक्टिव आइसोटोप होते है। ऑक्सीजन–16, आक्सीजन–17, आक्सीजन–18 ये आइसोटोप विभिन्न दरों से क्रिस्टलित होते है। आक्सीजन 18 आइसोटोप, आक्सीजन 16 आइसोटोप की तुलना में तेजी से नीचे निक्षेपित होता है। ज्ञातव्य है कि सागरीय जल के तापमान वृद्धि में से आक्सीजन–18 आइसोटोप की संख्या कम हो जाती है। इस प्रकार मृत जीवों की खोलो पर स्थित आक्सीजन आइसोटोप की संख्या के आधार पर उन जन्तुओं के अस्तित्व काल में तापमान का निर्धारण किया जाता है।

3. **भौमिकीय संकेतक :–**

ऐसे क्षेत्र जहां की झीलों एवं जलाशयों की तलियों में निक्षेपित बारीक क्ले एवं सिल्क की परतों के एकान्तर क्रम से परिहिमानी जलवायु का बोध होता है। ज्ञातव्य है कि शीतकाल में जब जलाशयों की सतह जम जाती है। जलाशयों में बारीक निलम्बित मृतका के कणों का निक्षेप होता जाता है, परन्तु ग्रीष्मकाल में जम सतह के पिघलने से हिमद्रवित जल के साथ सिल्ट का निक्षेप होता है। इस तरह मृतका तथा सिल्ट के एकान्तर परतें परिहिमानी जलवायु में ही निक्षेपित होती है।

यदि वर्तमान समय को शीत जलवायु में कहीं चूना–पत्थर मिलता है तो इससे यह स्पष्ट होता है कि वह प्रदेश चूना पत्थर निक्षेप के समय उष्ण कटिंबधीय जलवायु के अन्तर्गत रहा होगा।

4.विवर्तनिक संकेतक :–

जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में विवर्तनिकी (टेक्टोनिक्स) महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और विभिन्न संकेतकों के माध्यम से इसके प्रभाव को समझा जा सकता है। विवर्तनिक प्रक्रियाएँ, जैसे कि प्लेट विवर्तनिकी, महाद्वीपीय ड्रिफ्ट, पर्वतों का निर्माण, और महासागरीय धाराओं का परिवर्तन, पृथ्वी की जलवायु पर दीर्घकालिक प्रभाव डालती हैं। ये प्रक्रियाएँ समय के साथ जलवायु में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला सकती हैं, जिससे पृथ्वी के पर्यावरण और जीवमंडल पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।विवर्तनिकी और जलवायु परिवर्तन के बीच के संबंध को समझने के लिए हमें पृथ्वी की भूवैज्ञानिक इतिहास को देखना होता है। पृथ्वी की सतह पर मौजूद टेक्टोनिक प्लेटें निरंतर गति में रहती हैं और उनके आपसी संपर्क से विभिन्न भूवैज्ञानिक संरचनाएँ बनती हैं। इन संरचनाओं का जलवायु पर प्रभाव व्यापक और दीर्घकालिक हो सकता है।

1. महाद्वीपीय ड्रिफ्ट

महाद्वीपीय ड्रिफ्ट सिद्धांत के अनुसार, महाद्वीप लगातार धीरे–धीरे अपनी स्थिति बदलते रहते हैं। जब महाद्वीपों की स्थिति बदलती है, तो वे समुद्री धाराओं और वायुमंडलीय धाराओं पर प्रभाव डालते हैं, जो वैश्विक जलवायु को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, लगभग 300 मिलियन वर्ष पहले पैंजिया नामक एक विशाल महाद्वीप का अस्तित्व था। जब यह महाद्वीप विभाजित हुआ और वर्तमान महाद्वीपों का निर्माण हुआ, तो समुद्र की धाराओं और जलवायु पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। महाद्वीपों की स्थिति और उनके बीच महासागरीय धाराओं का मार्ग बदलने से जलवायु में परिवर्तन आया, जो जीवाश्म रिकॉर्ड में देखा जा सकता है।

2. पर्वत निर्माण

पर्वत निर्माण का जलवायु पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जब टेक्टोनिक प्लेटें टकराती हैं और पर्वत श्रृंखलाओं का निर्माण करती हैं, तो वे वायुमंडलीय धाराओं को प्रभावित करती हैं और वर्षा के वितरण को बदल देती हैं। उदाहरण के लिए, हिमालय पर्वत श्रृंखला के निर्माण ने एशिया की जलवायु को नाटकीय रूप से बदल दिया। इसने मानसून पैटर्न को प्रभावित किया और भारतीय उपमहाद्वीप में वर्षा की मात्रा को बढ़ाया। पर्वत श्रृंखलाएँ हवाओं को अवरुद्ध करती हैं और उन्हें ऊपर की ओर उठने के लिए मजबूर करती हैं, जिससे वर्षा होती है। इस प्रकार, पर्वत श्रृंखलाओं का निर्माण क्षेत्रीय जलवायु को बदल सकता है और दीर्घकालिक जलवायु पैटर्न को प्रभावित कर सकता है।

3. महासागरीय धाराएँ

महासागरीय धाराएँ पृथ्वी की जलवायु प्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं और उनका संचालन टेक्टोनिक गतिविधियों द्वारा प्रभावित होता है। टेक्टोनिक प्लेटों के विस्थापन से समुद्र की गहराई और तल का आकार बदल सकता है, जो महासागरीय धाराओं के मार्ग को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, उत्तरी अटलांटिक में गल्फ स्ट्रीम एक महत्वपूर्ण महासागरीय धारा है जो यूरोप के मौसम को गर्म और आर्द्र बनाती है। यदि टेक्टोनिक

गतिविधियों के कारण महासागरीय धाराओं का मार्ग बदलता है, तो यह वैश्विक जलवायु पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकता है।

4. ज्वालामुखी गतिविधियाँ

टेक्टोनिक प्लेटों के किनारों पर ज्वालामुखी गतिविधियाँ होती हैं, जो जलवायु परिवर्तन के महत्वपूर्ण संकेतक हो सकते हैं। जब ज्वालामुखी विस्फोट होता है, तो बड़ी मात्रा में राख, धूल और सल्फर डाइऑक्साइड वायुमंडल में प्रवेश करते हैं। ये पदार्थ सौर विकिरण को अवरुद्ध कर सकते हैं, जिससे वैश्विक तापमान में कमी आ सकती है। उदाहरण के लिए, 1815 में इंडोनेशिया के माउंट तंबोरा के विस्फोट ने वैश्विक तापमान को घटा दिया और 1816 का वर्ष बिना ग्रीष्मकाल के रूप में जाना गया। इस तरह के विस्फोट जलवायु परिवर्तन के अल्पकालिक और दीर्घकालिक प्रभाव दोनों का संकेत दे सकते हैं।

5. टेक्टोनिक सीमाएँ और समुद्र तल का उत्थान

टेक्टोनिक सीमाएँ, जहां प्लेटें टकराती हैं, खिसकती हैं या अलग होती हैं, समुद्र तल में परिवर्तन ला सकती हैं। जब प्लेटें टकराती हैं और महासागरीय क्रस्ट का निर्माण होता है, तो समुद्र तल में उत्थान होता है। इसके विपरीत, जब प्लेटें खिसकती हैं और महासागरीय क्रस्ट का विनाश होता है, तो समुद्र तल गिर सकता है। समुद्र तल में इन परिवर्तनों का वैश्विक जलवायु पर महत्वपूर्ण प्रभाव हो सकता है, जैसे कि तटीय क्षेत्रों में बाढ़ और जलमग्नता, और महासागरीय धाराओं में परिवर्तन।

6. भूवैज्ञानिक रिकॉर्ड

विवर्तनिकी के अध्ययन के माध्यम से भूवैज्ञानिक रिकॉर्ड में प्राचीन जलवायु परिवर्तन के संकेत पाए जाते हैं। तलछटों की परतें, आइस कोर, और चट्टानों के विभिन्न प्रकार इस बात का प्रमाण होते हैं कि समय के साथ जलवायु कैसे बदली है। उदाहरण के लिए, तलछटी परतों में पाए जाने वाले माइक्रोफॉसिल और अन्य अवशेष प्राचीन जलवायु स्थितियों का संकेत देते हैं। चट्टानों में पाए जाने वाले आइसोटोपिक बदलाव भी जलवायु परिवर्तन के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं।

7. पेलियोक्लाइमेटिक मॉडलिंग

पेलियोक्लाइमेटिक मॉडलिंग के माध्यम से वैज्ञानिक विवर्तनिक गतिविधियों के प्रभाव का अनुकरण कर सकते हैं और प्राचीन जलवायु को समझ सकते हैं। ये मॉडल भूवैज्ञानिक और जलवायु डेटा का उपयोग करके यह दर्शाते हैं कि कैसे टेक्टोनिक घटनाएँ जलवायु परिवर्तन को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, मॉडल यह दिखा सकते हैं कि पैंजिया के टूटने और महाद्वीपों के अलग होने से महासागरीय धाराएँ और जलवायु कैसे बदली।

विवर्तनिकी के संकेतक जलवायु परिवर्तन के अध्ययन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे हमें यह समझने में मदद करते हैं कि कैसे टेक्टोनिक प्रक्रियाएँ समय के साथ जलवायु को प्रभावित करती हैं और पृथ्वी के पर्यावरण और जीवमंडल पर व्यापक प्रभाव डालती हैं। महाद्वीपीय ड्रिफ्ट, पर्वत निर्माण, महासागरीय धाराएँ, ज्वालामुखी गतिविधियाँ, टेक्टोनिक सीमाएँ, समुद्र तल का उत्थान, भूवैज्ञानिक रिकॉर्ड, और पेलियोक्लाइमेटिक मॉडलिंग जैसे संकेतक हमें जलवायु परिवर्तन के व्यापक और जटिल दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। इन संकेतकों के माध्यम से, वैज्ञानिक जलवायु परिवर्तन के दीर्घकालिक प्रभावों को समझ सकते हैं और भविष्य की जलवायु परिस्थितियों का पूर्वानुमान लगा सकते हैं। विवर्तनिकी और जलवायु परिवर्तन के बीच का यह संबंध न केवल भूवैज्ञानिक और पर्यावरणीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह मानव सभ्यता और उसके अस्तित्व के लिए भी महत्वपूर्ण है।

15.4 जलवायु परिवर्तन के कारक एवं सिद्धान्त

पृथ्वी पर प्राप्त सौर्यिक ऊर्जा के वितरण, अवशोशण व पनुर्वितरण के सन्दर्भ में होने वाले अन्तर क्रियाओं में होने वाले परिवर्तन को जलवायु परिवर्तन कहते है। जलवायु परिवर्तन के अन्तरक्रियाओं के कारकों के दो मुख्य स्रोत है।

1. बाह्य स्रोत
2. आन्तरिक स्रोत

जलवायु परिवर्तन की अवर्तिका के संबंध में यह दो प्रकार का होता है।

1. अल्पकालिक जलवायु परिवर्तन
2. दीर्घकालिक जलवायु परिवर्तन

औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् मनुष्य के आर्थिक क्रियाकलापों में वृद्धि हुई। जिससे मनुष्य की भूमिका जलवायु परिवर्तन के रूप में बढ़ी है। जलवायु परिवर्तन के महत्वपूर्ण कारकों का वर्णन निम्नलिखित हैं।

1. सौरकिर्णित ऊर्जा सिद्धान्त :–

सूर्य के प्रकाश मण्डल से विकिर्ण ऊर्जा की मात्रा में उतार–चढ़ाव होता रहता है। सौर ऊर्जा धरातलीय सतह पर ऊर्जा मात्रा विनिमय के प्रतिरूप वायुमण्डलीय परिसंचरण को निश्चित करता है।

धरातलीय सतह पर प्राप्त होने वाले सौर्यिक ऊर्जा की मात्रा में स्थानिक एवं कालिक परिवर्तन होते रहते है। इस परिवर्तन के निम्न कारण है :–

1. पृथ्वी एवं सूर्य के बीच सापेक्षिक दूरी में परिवर्तन।
2. प्रवेशीय सौर्यिक विकिरण के लिए वायुमण्डल की सतह से विकिरित ऊर्जा की मात्रा।
3. पृथ्वी सतह में परिवर्तन (नगरीयकरण, वनों, की कटाई अन्य प्रकार के भूमि)

सौर्यिक ऊर्जा की मात्रा में दीर्घकालिक वृद्धि होने से वायुमण्डल का उष्मन होने लगता है। जिसके कारण गर्म जलवायु का आगमन होता है तथा हिमनद व हिम चादरे पिघलने लगती है। यह विश्वास किया जाता है कि लगातार एक दशक तक सौर विकिरण में 0.1 प्रतिशत ह्रास होने से तापमान और वर्षा में परिवर्तन होने से जलवायु में परिवर्तन हो सकता है।

2. सौर कलंक सिद्धान्त :–

सूर्य के प्रकाश मण्डल में ठण्डे और अंधेरे स्थानों को सौर कलंक कहा जाता है। सौर कलंक की सक्रियता में 11 वर्षीय चक्र होता है। सौर कलंको की अधिकतम सक्रियता काल में न्यूनतम सौर कलंक सक्रियता काल की तुलना में सूर्य के प्रकाश मण्डल में पराबैंगनी विकिरण 20 प्रतिशत अधिक प्राप्त होता है। जब न्यूनतम सौर कलंक सक्रियता की अवधि दीर्घ समय तक रहती है तो उसे मान्डर न्यूनतम कहते है। मान्डर न्यूनतम के समय धरातलीय सतह तथा उसके वायुमण्डल का शीतलन प्रारम्भ हो जाता है। इसके विपरीत अधिकतम सौर कलंक सक्रियता के दौरान धरातलीय सतह व उसके वायुमण्डल का उश्मन होने लगता है और यह उष्मन या शीतलन की प्रक्रिया जब दीर्घकाल तक चलती है। तो इससे जलवायु परिवर्तन होता है।

3. वायुमण्डलीय धूलि परिकल्पना :–

वायुमण्डल में विभिन्न प्रकार के ठोस कणकीय पदार्थ पाये जाते है। ठोस कणिकीय पदार्थों के अन्तर्गत धुंआ, कालिख, ज्वालामुखी, धूप, राख, नमक के कण, पराग कणों को शामिल किया जाता है।

जो वर्षा के साथ धरातलीय सतह पर 7 लाख वर्ग किमी क्षे0 पर वितरित हो गये। इस घटना के कारण सौर्यिक ऊर्जा में 10–20 प्रतिशत कमी आ गयी। जिस कारण तापमान में 0.5°C की गिरावट हो गई। ज्ञातव्य है कि वर्ष काफी शर्तपूर्ण थे। वृहद ज्वालामुखी उद्भेदन से वायुमण्डलीय दाब में गिरावट धनात्मक सर संबंध के सिद्धान्त के विपरीत संयुक्त राज्य अमेरिका में 1980 में सेंट थेलम ज्वालामुखी उद्भेदन, मैक्सिको में 1982 एल चिन्कोंग ज्वालामुखी उद्भेदन के आधार पर उपर्युक्त सन संबंधों का खण्डन हो जाता है अर्थात् इन अध्ययनों से जो परिणाम सामने आये उनसे यह सत्यापित नहीं होता है कि ज्वालामुखी उद्भेदन से धरातलीय सतह व वायुमण्डल के तापमान में गिरावट होती है।

4. कार्बन–डाई ऑक्साइड सिद्धान्त :–

धरातलीय सतह पर प्राप्त होने वाले सौर्यिक ऊर्जा का वायुमण्डल में अवशोषण कार्बन–डाई आक्साइड के माध्यम से होता है। वायुमण्डल में हरित गृह गैसों के सापेक्षिक अनुपात में वृद्धि होने से भूमण्डलीय उष्मन होता है।

अधिकांश ठोस कणकीय पदार्थ वायु में निलम्बित रहते है। सौर्यिक विकिरण के कुछ भाग का अवशोशण प्रत्यावर्तन व प्रकीर्णन द्वारा क्षय करते है। जिससे धरातलीय सतह पर आने वाली सौर्यिक ऊर्जा कुछ कम हो जाती है। सौर्यिक विकिरण के कुल ऊर्जा का 23 प्रतिशत भाग वायुमण्डल में धूल–कणों व धुंध द्वारा प्रकीर्णित हो जाता है। जिसमें 6 प्रतिशत से ऊर्जा अन्तरिक्ष में वापस चली जाती है और 17 प्रतिशत ऊर्जा विसरित दिशा प्रकाश के रूप में धरातलीय सतह पर पहुंचती है।

जब ज्वालामुखी विस्फोट होता है तो धरातलीय सतह एवं निचले वायुमण्डल के तापमान में कमी आ जाती है वृहद ज्वालामुखी सक्रियता से समताप मण्डल के तापमान में वृद्धि हो जाती है क्योंकि अधिकांश प्रत्यावर्वित प्रकीर्ण एवं अवशोशित ऊर्जा इसी मण्डल में रहती है, परन्तु निचले क्षोभमण्डल का तापमान कम हो जाता है, क्योंकि सौर्यिक ऊर्जा की मात्रा कम पहुंच पाती है। उदाहरणस्वरूप 1883 को क्राकाताओं ज्वालामुखी विस्फोट से विखण्डित पदार्थ राख एवं धूल वायुमण्डल के 32 किलोमीटर ऊँचाई पर पहुंच गये एवं गर्मजलवायु का सूत्रपात होता है। जब इन हरित गृह गैसों पर वायुमण्डल में सापेक्षिक अनुपातों में भारी कमी होने से भूमण्डलीय शीतलन होने से शीत जलवायु का अविर्भाव होता है। धरातलीय सतह पर पार्थिव बहिर्गामी अवरक्त विकिरण का कुछ वायुमण्डलीय गैसों विशेषकर कार्बन–डाई–आक्साइड व जलवाष्प द्वारा अवशोषण होने से धरातलीय सतह के तापमान में वृद्धि होती है। इसे ही हरित गृह प्रभाव कहते है। पृथ्वी के सन्दर्भ में जलवाष्प एवं कार्बन–डाई–आक्साइड हरित गृह की तरह व्यवहार करते है क्योंकि ये गैसे सौर्यिक विकिरण को धरातल पर पहुंचने के लिए कोई बाधा नहीं डालती है, परन्तु बहिर्गामी दीर्घ तरंग विकिरण के लिए ये एक सीसे के तरीके से काम करती है और उन्हें प्रत्यावर्तित कर देती है।

औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व वायुमण्डल में कार्बन–डाई–आक्साइड 280–290 PPMV था। 1998 तक यह मात्रा बढ़कर 350–360 PPMV हो गया। इस प्रकार कार्बन–डाई–आक्साइड की मात्रा पूर्व औद्योगिक क्रान्ति से 25 प्रतिशत बढ़ गई IPCC के आकलन के अनुसार सन् 2100 तक यह मात्रा 540–970 PPMV हो जायेगा। जिससे 21वीं सदी के अन्त तक 1990 के स्तर से भूमण्डलीय तापमान में 1.4–5.8°C तक वृद्धि हो जायेगी।

5. महाद्वीपीय प्रवाह एवं ध्रुव पलायन :–

प्लेट विवर्तनिक सिद्धान्त द्वारा सागर नितल प्रसरण व महाद्वीपीय विस्थापन एवं प्रवाह को सत्यापित किया गया है। आज से लगभग 350–250 मिलियन वर्ष पूर्व अर्थात् कार्बनी फेरस परमियन युग में सभी महाद्वीप पैंजिया के रूप में आपस में सम्बन्धित है। गोण्डवानालैण्ड के अधिकांश स्थलीय भाग (भारत, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, दक्षिण, अमेरिका तथा अंटाक्रटिका) दक्षिणी ध्रुव के चारों ओर समूहित थे। पैंजिया के विभंजन से महाद्वीप दक्षिणी ध्रुव से अलग होकर वर्तमान स्थिति तक पहुंच गये।

6. समुद्र जल स्तर वृद्धि :–

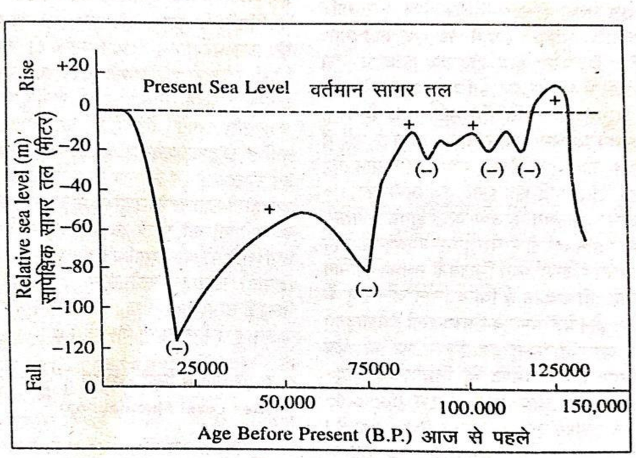

विगत 150,000 वर्षों में सागर तल में उतार-चढ़ाव (fluctuations) का आरेखीय प्रदर्शन। Source : after K.K. Turekian, 1966, in Oliver and Hidore, 2005.

20वीं सदी के दौरान से समुद्र के जलस्तर में वृद्धि हो रही है और हाल के दशकों में इस प्रवृत्ति में तेजी

आयी है। यह वृद्धि मुख्यतः सागरों के गर्म होने से तापीय विस्तार है। लेकिन ग्लेशियरों और अटांर्कटिक बर्फ की चादर के पिघलने में भी योगदान है। यह अनुमान लगाया गया है कि इस सदी के अन्त तक औसत समुद्र के स्तर में 60 से 80 सेमी0 की वृद्धि होगी यह मुख्य रूप से अंटार्कटिक बर्फ की चादर के पिघलने पर निर्भर करेगा।

विश्व की लगभग 40 प्रतिशत आबादी समुद्र तट के 100 किमी के अन्दर निवास करती है। जलवायु परिवर्तन के अन्य प्रभावों के साथ–साथ समुद्र के जल स्तर वृद्धि से तटों के आसपास बाढ़ और कटाव का खतरा बढ़ जायेगा। जिससे इन क्षेत्र के लोगों की व्यवसाय, कृषि, बुनियादी ढांचा प्रभावित होगा। इसके अलावा समुद्र के जलस्तर में वृद्धि से उपलब्ध ताजे जल की मात्रा में कमी आने का अनुपात है क्योंकि समुद्री जल भूमिगत जलस्तर को आगे बढायेगा। इससे ताजे जल के स्रोतों में नमकीन जल के प्रवेश होने की संभावना है। जिससे कृषि और पीने के पानी की आपूर्ति प्रभावित होगी। समुद्र जल स्तर वृद्धि से तटीय क्षेत्रों की जैव विविधता और उसके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवायें और वस्तुएं प्रभावित होगी। कई आर्द्रभूमियां नश्ट हो जायेगी। जिससे अद्वितीय प्रजातियां खतरे में पड़ जायेगी।

7. जैवविविधता पर प्रभाव :–

जलवायु परिवर्तन के तीव्र घटित होने से कई पौधों और जानवरों को इनसे निपटने के लिए संघर्ष करना होगा। इस बात के स्पष्ट प्रमाण है कि जैव विविधता पहले से ही जलवायु परिवर्तन पर प्रतिक्रिया दे रही है। प्रत्यक्ष प्रभावों में फेनोलाजी (जानवरों और पौधों की प्रजातियों का व्यवहार और जीवन चक्र) प्रजातियों की उपलब्धता और वितरण, सामुदायिक संरचना, आवास संरचना और पारिस्थितिक तंत्र की प्रक्रियाओं में परिवर्तन शामिल है।

जलवायु परिवर्तन के कारण जैव विविधता पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ रहा है और यह भूमि ओर अन्य संसाधनों के द्वारा हो रहा है। जिससे ये प्रत्यक्ष प्रभावों से अधिक हानिकारक है। अप्रत्यक्ष प्रभावों में आवास का विखण्डन और हानि, प्रदूषित वायु, जल व मिट्टी, संसाधनों का अतिदोहन और आक्रामक प्रजातियों का प्रसार शामिल है। यह जलवायु परिवर्तन के प्रति परिस्थितिकी तन्त्र के लचीलापन को कम रहा है।

8. मिट्टी पर प्रभाव :–

जलवायु परिवर्तन के कारण मिट्टी में कटाव, भूस्खलन, लवणीकरण, जैव विविधता में कमी और कार्बनिक पदार्थों में गिरावट हो सकती है। वायुमण्डल में कार्बन डाई आक्साडइ की सांद्रता में परिवर्तन से मृदा की कार्बन ग्रहण करने की क्षमता भी प्रभावित होगी। अत्यधिक वर्षा, वर्फ का बादल फटने की घटनाओं के बढ़ने से उपलब्ध ताजे पानी की गुणवत्ता और मात्रा पर भी असर पड़ने की संभावन है, क्योंकि वर्षा जल के कारण सीवेज जल सतही जल में प्रवेश कर सकता है।

विश्व की ज्यादातर नदियां आमतौर पर पहाड़ी क्षेत्रों से निकलती है, वर्फ और ग्लेशियर के पिघलने से अल्प समय के लिए नदियों में बाढ़ व दीर्घकाल के लिए सूखा होगा। नदियों के प्रवाह में परिवर्तन के कारण जलकृषि, अर्न्तदेशीय शिपिंग और जलविद्युत ऊर्जा का परिवर्तन भी प्रभावित होगा।

9. बाढ़ :–

जलवायु परिवर्तन से कई क्षेत्रों में वर्षा में वृद्धि होने की सम्भावना है। लम्बी अवधि में अधिक वर्षा होने से नदी में बाढ़ आयेगी। लम्बी अवधि में अधिक वर्षा होने से नदी में बाढ़ आयेगी। नदियों में बाढ़ भारत जैसे देशों के लिए एक आम प्राकृतिक आपदा है। जिसके परिणाम स्वरूप पिछले कई दशकों में हजारों लोगों की मृत्यु हो गयी है और लाखों लोग प्रतिवर्ष प्रभावित होते है।

उच्च्च तापमान के कारण भारी वर्षा की अधिक बारम्बारता और अधिक तीव्र होने की संभावना है। पूरे भारत में अचानक बाढ़ आने की संभावना अधिक है। कुछ क्षेत्रों में प्री मानसून के तीव्र होने से सामान्य मानसून प्रभावित होगा।

अकेले यूरोप में प्रतिवर्ष सूखे के कारण लगभग 9 बिलियन यूरों की क्षति होती है। जिसमें कृषि, ऊर्जा और जल आपूर्ति प्रभावित होती है। यूरोप में तीव्र सूखा आम होता जा रहा है और इससे होने वाली क्षति भी बढ़ रही है।

औसत वैश्विक तापमान में 3°C की वृद्धि के साथ यह अनुमान लगाया गया है कि सूखे की दर दोगुना होगी और यूरोप में ही यह वार्षिक हानि 40 बिलियन यूरो प्रतिवर्ष हो जायेगी।

लगातार और अधिक गम्भीर सूखे से जंगल के आग की तीव्रता व इसकी अवधि बढ़ जायेगी विशेषकर उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में वे क्षेत्र जो अभी आग की चपेट में नहीं ये उन पर भी आग का आसन्न खतरा रहेगा।

11. स्वच्छ जल की उपलब्धता में कमी :–

जैसे–जैसे जलवायु गर्म होती जायेगी, वर्षा का प्रतिरूप व वितरण में बदलाव आयेगा, वाष्पीकरण बढ़ेगा, ग्लेशियर पिघलने से समुद्र का जलस्तर बढ़ेगा। ये सभी कारक स्वच्छ जल की उपलब्धता व गुणवत्ता में कमी लायेंगी।

अधिक सामान्य और गम्भीर सूखे से पानी के तापमान में वृद्धि होने से जल की गुणवत्ता में कमी आने की आशंका है। ऐसी स्थितियां विशैलो शैवाल और जीवाणुओं के विकास को बढ़ावा देती है। जिससे पानी की कमी की समस्या मानव गतिविधि के कारण और गम्भीर हो जायेगी।

तापमान से वृद्धि से जानवरों और पौधों की प्रजातियों के व्यवहार और जीवनचक्र पर प्रभाव पड़ने की संभावना है। इसके परिणाम स्वरूप कीटों और आक्रामक प्रजातियों की संख्या में वृद्धि हो सकती है और कुछ मानव रोगों की घटना भी बढ़ सकती है। इसी बीच कृषि और पशुधन की व्यहार्यता में कमी हो सकती है। पारिस्थितिकी तंत्र की मौलिक क्षमता कम हो सकती है। उच्च तापमान पानी के तापमान को बढ़ाता है जो वर्षा की कमी के कारण गम्भीर सूखे के खतरे को बढ़ाता है।

11. सूखा एवं वन विनाश :–

बदलते जलवायु के कारण विश्व के कई देश पहले से ही अधिक बार लम्बे और गम्भीर सूखे का सामना कर रहे है। सूखा पानी की उपलब्धता में एक असामान्य और अस्थायी कमी है जो वर्षा की कमी और अधिक वाष्पीकरण के कारण होता है। यह पानी की कमी से भिन्न है जो जल के अत्यधिक प्रयोग से वर्ष भर शुद्ध जल की कमी होती है।

सूखे का अक्सर विनाशकारी प्रभावी पड़ता है उदाहरण के लिए बुनियादी ढ़ांचा, परिवहन, कृषि, वानिकी और जैव विविधता पर। यह नदियों और भूजल के स्तर को कम करता है, पौधों और फसलों की वृद्धि को रोकता है। सूखे कीटों के हमलों को बढ़ाता है और जंगल की आग को बढ़ावा देता है।

15.5. जलवायु परिवर्तन के प्रभाव :–

जलवायु परिवर्तन हमारे ग्रह के अस्तित्व के लिए सबसे बड़ा संकट है। यदि हम जीवाश्म ईंधन के सीमित प्रयोग द्वारा ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को नहीं रोकते है तो बड़े पैमाने पर वनस्पति व वन्य जीव प्रजातियों पर खतरा रहेगा। जलवायु परिवर्तन दुनिया भर के सभी क्षेत्रों को प्रभावित कर रहा है। ध्रुवीय बर्फ पिघल रही है, समुद्री जल स्तर बढ़ रहा है। कुछ क्षेत्रों में चरम मौसमी घटनाएं जैसे अधिक वर्षा आम होती जा रही है। जबकि अन्य क्षेत्रों में अत्यधिक गर्मी और सूखा पड़ रहा है। हमें जलवायु परिवर्तन रोकने के लिए कार्यवाही की आवश्यकता है अन्यथा ये प्रभाव और भी तीव्र होंगे। जलवायु परिवर्तन एक बहुत ही गम्भीर खतरा है और इसके परिणाम हमारे जीवन के अलग–अलग पहलुओं को प्रभावित कर रहे है। जलवायु परिवर्तन के मुख्य प्रभाव निम्नलिखित है :–

1. मौसमी परिवर्तन पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के कारण मौसमी परिवर्तन ने वैश्विक जलवायु प्रणाली को व्यापक और गहरे तरीके से प्रभावित किया है। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप मौसम के पैटर्न में असामान्यता, चरम मौसमी घटनाएँ, और मौसमी चरित्र में व्यापक परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। वैश्विक तापमान में वृद्धि, बदलते वर्षा पैटर्न, और वायुमंडलीय स्थिति के परिवर्तन ने मौसम की गंभीरता और नियमितता को बदल दिया है, जो सभी क्षेत्रों में जलवायु और मौसम की स्थिति को प्रभावित कर रहा है।

ग्लोबल वार्मिंग, यानी वैश्विक तापमान में वृद्धि, मौसम के मौसमी पैटर्न को प्रभावित कर रही है। उच्च तापमान के कारण गर्मियों का मौसम लंबे समय तक बना रह सकता है, जबकि सर्दियाँ कम और हल्की हो सकती हैं। यह बदलाव केवल तात्कालिक मौसम की चरित्र को ही प्रभावित नहीं करता, बल्कि पूरे वर्ष के मौसम चक्र को भी बदलता है। गर्मियों के दिनों की लंबाई बढ़ जाती है और ठंडे महीनों में तापमान सामान्य से नीचे नहीं गिरता। इस प्रकार, मौसमी सामान्यीकरण की स्थिति में असामान्यता उत्पन्न होती है, जो कृषि, जलस्रोत, और पारिस्थितिकी

तंत्र पर नकारात्मक प्रभाव डालती है।

जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा के पैटर्न में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। कुछ क्षेत्रों में अत्यधिक वर्षा और बाढ़ की घटनाएँ बढ़ रही हैं, जबकि अन्य क्षेत्रों में सूखा और पानी की कमी की समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। बदलती तापमान की स्थिति और समुद्री प्रवाह के बदलाव के कारण वर्षा की आवृत्ति और तीव्रता में भी बदलाव आ रहा है। इन परिवर्तनों से फसलों की बुवाई और सिंचाई के समय में असमानता उत्पन्न होती है, जिससे कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल असर पड़ता है। इसके अतिरिक्त, बाढ़ और सूखा दोनों ही पारिस्थितिकीय असंतुलन उत्पन्न करते हैं, जिससे प्राकृतिक संसाधनों और मानव जीवन पर प्रभाव पड़ता है।

जलवायु परिवर्तन चरम मौसम की घटनाओं की आवृत्ति और तीव्रता को बढ़ा रहा है। तूफान, बाढ़, और हीटवेव जैसी चरम मौसम की घटनाएँ अधिक सामान्य हो गई हैं और ये तेजी से गंभीर रूप ले रही हैं। उच्च तापमान और असमान वर्षा के कारण मौसम की चरम स्थितियाँ अधिक तीव्र हो रही हैं, जो प्राकृतिक आपदाओं के जोखिम को बढ़ा रही हैं। उदाहरण के लिए, उष्णकटिबंधीय तूफान और चक्रवात अधिक शक्तिशाली हो गए हैं, और इनकी अवधि भी बढ़ गई है। इन घटनाओं के परिणामस्वरूप मानव जीवन, कृषि, और इन्फ्रास्ट्रक्चर पर गंभीर प्रभाव पड़ता है।

मौसमी परिवर्तन पारिस्थितिक तंत्र में भी बदलाव ला रहे हैं। तापमान वृद्धि और बदलते वर्षा पैटर्न से पारिस्थितिक तंत्र में असंतुलन उत्पन्न होता है, जिससे प्रजातियों की विविधता और उनकी वितरण पर असर पड़ता है। कुछ प्रजातियाँ अपने पारंपरिक निवास स्थान को छोड़ कर नए क्षेत्रों में स्थानांतरित हो रही हैं, जबकि अन्य प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं। इस प्रकार, पारिस्थितिक तंत्र की संरचना और कार्यप्रणाली प्रभावित होती है, जो पूरी पारिस्थितिकीय प्रणाली की स्थिरता को खतरे में डालती है।

मौसमी परिवर्तन का फसल उत्पादन पर भी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। बदलते मौसम की परिस्थितियाँ फसलों की वृद्धि और उत्पादन की अवधि को प्रभावित करती हैं। उच्च तापमान, बदलते वर्षा पैटर्न, और चरम मौसम की घटनाएँ फसल के विकास को प्रभावित कर सकती हैं। गर्मियों के लंबे दिनों और ठंडे महीनों की कमी से फसलों की गुणवत्ता और मात्रा में कमी हो सकती है। इसके अतिरिक्त, अनियमित वर्षा के कारण सूखा या बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो सकती है, जो कृषि उत्पादन को प्रभावित करती है। इन समस्याओं से खाद्य सुरक्षा पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

जलवायु परिवर्तन समुद्री मौसम के पैटर्न को भी प्रभावित कर रहा है। समुद्री सतह का तापमान बढ़ने से समुद्री धारा और मौसम के पैटर्न में बदलाव हो रहा है। समुद्री जीवन की मौसमी गतिविधियाँ, जैसे कि मछलियों की प्रजनन और प्रवास, इन परिवर्तनों से प्रभावित हो रही हैं। गर्मी के कारण समुद्र की सतह पर और नीचे की धाराएँ बदल रही हैं, जिससे समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र पर असर पड़ रहा है। समुद्री मौसमी परिवर्तन का प्रभाव तटीय क्षेत्रों में भी देखा जा रहा है, जहाँ समुद्र स्तर में वृद्धि और तटीय उथल–पुथल उत्पन्न हो रही है।

मौसमी परिवर्तन का स्वास्थ्य पर भी प्रभाव पड़ता है। उच्च तापमान और चरम मौसम की घटनाएँ, जैसे कि हीटवेव और ठंडे हवाएँ, स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बन सकती हैं। गर्मियों में अत्यधिक गर्मी से हीट स्ट्रोक और डिहाइड्रेशन की घटनाएँ बढ़ सकती हैं, जबकि ठंडे मौसम में हाइपोथर्मिया और अन्य ठंडे रोगों का खतरा बढ़ सकता है। बदलते मौसम की परिस्थितियाँ वायु प्रदूषण और जलवायु–संक्रमण रोगों की आवृत्ति को भी प्रभावित करती हैं, जिससे स्वास्थ्य समस्याएँ और गंभीर हो सकती हैं।

मौसमी परिवर्तन सामाजिक और आर्थिक प्रभाव भी उत्पन्न करता है। फसल उत्पादन में बदलाव, चरम मौसम की घटनाएँ, और प्राकृतिक आपदाएँ सामाजिक और आर्थिक अस्थिरता को बढ़ा सकती हैं। खाद्य सुरक्षा, जल आपूर्ति, और आवास की समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं, जिससे समाज के कमजोर वर्गों पर प्रतिकूल असर पड़ता है। आर्थिक गतिविधियाँ, जैसे कि कृषि, पर्यटन, और परिवहन, मौसमी परिवर्तन से प्रभावित हो सकती हैं, जो स्थानीय और वैश्विक अर्थव्यवस्था पर असर डालती हैं।

जलवायु परिवर्तन के कारण मौसमी परिवर्तन ने मौसम के पैटर्न, पारिस्थितिक तंत्र, फसल उत्पादन, स्वास्थ्य, और सामाजिक–आर्थिक स्थितियों को व्यापक और गहरे तरीके से प्रभावित किया है। उच्च तापमान, बदलते वर्षा पैटर्न, चरम मौसम की घटनाएँ, और समुद्री मौसमी परिवर्तन सभी इस प्रक्रिया का हिस्सा हैं, जो वैश्विक और स्थानीय स्तर पर असर डालते हैं। इन प्रभावों से निपटने और स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी नीतियाँ और

अनुकूलन उपाय आवश्यक हैं, ताकि भविष्य में इन समस्याओं का सामना किया जा सके और मानव जीवन और पारिस्थितिक तंत्र को सुरक्षित रखा जा सके।

जल संकट जल संकट, जो कि विश्व के कई हिस्सों में एक गंभीर समस्या बन चुकी है, एक व्यापक और जटिल मुद्दा है जिसका प्रभाव पर्यावरण, समाज और अर्थव्यवस्था पर गहरा पड़ता है। जल संकट की परिभाषा में मुख्य रूप से पानी की कमी, जल प्रदूषण, और जल प्रबंधन की समस्याएँ शामिल होती हैं। यह समस्या केवल प्राकृतिक संसाधनों की कमी के कारण नहीं, बल्कि मानवीय गतिविधियों और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के संयोजन के कारण भी होती है।

जल संकट का सबसे महत्वपूर्ण पहलू पानी की कमी है, जो कि मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है: शारीरिक और आर्थिक। शारीरिक पानी की कमी तब होती है जब किसी क्षेत्र में प्राकृतिक रूप से पानी की उपलब्धता बहुत कम हो। यह समस्या मुख्यतः सूखा, शुष्क जलवायु, और अत्यधिक जल उपयोग के कारण उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए, मध्य पूर्व और उत्तरी अफ्रीका के कई देश शारीरिक पानी की कमी से ग्रस्त हैं, जहां की जलवायु अत्यधिक शुष्क है और जलस्रोतों की कमी है।

आर्थिक पानी की कमी तब होती है जब, भले ही पानी का स्रोत उपलब्ध हो, लेकिन पानी तक पहुँच और वितरण की प्रणाली पर्याप्त नहीं होती है। यह समस्या विकासशील देशों और गरीब समुदायों में अधिक प्रचलित होती है, जहां पानी की उचित आपूर्ति और स्वच्छ जल की पहुँच के लिए आवश्यक इंफ्रास्ट्रक्चर की कमी होती है। इस प्रकार, आर्थिक पानी की कमी का असर व्यापक जनसंख्या पर पड़ता है, जो स्वस्थ जीवन जीने के लिए स्वच्छ पानी की कमी का सामना करती है।

जल प्रदूषण जल संकट का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू है, जिसमें जल स्रोतों की गुणवत्ता में गिरावट शामिल होती है। जल प्रदूषण विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न हो सकता है, जैसे कि औद्योगिक अपशिष्ट, कृषि रसायन, और घरेलू सीवेज। औद्योगिक प्रक्रियाएँ अक्सर जहरीले रसायनों और भारी धातुओं को जल स्रोतों में छोड़ देती हैं, जो न केवल पानी की गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं, बल्कि जलीय जीवन और मानव स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं।

कृषि क्षेत्र में उपयोग किए जाने वाले रसायन, जैसे कीटनाशक और उर्वरक, बारिश के पानी के साथ बहकर जल स्रोतों में मिल जाते हैं, जिससे नाइट्रेट और फास्फेट का अत्यधिक स्तर बढ़ जाता है। यह समस्या "ईट्रोफिकेशन" का कारण बनती है, जिसमें जल स्रोतों में अधिक पौधों की वृद्धि और ऑक्सीजन की कमी होती है, जिससे जलीय जीवन को नुकसान होता है। घरेलू सीवेज और अपशिष्ट भी जल प्रदूषण में योगदान करते हैं, विशेष रूप से जब उचित अपशिष्ट प्रबंधन की व्यवस्था न हो।

जलवायु परिवर्तन जल संकट को और भी गंभीर बना रहा है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण तापमान में वृद्धि हो रही है, जो जलवायु पैटर्न को बदल रही है और सूखा, अत्यधिक वर्षा, और बर्फ के पिघलने जैसे चरम मौसम की घटनाओं को बढ़ावा दे रही है। उच्च तापमान और परिवर्तित मौसम पैटर्न जल स्रोतों की आपूर्ति को प्रभावित करते हैं, जिससे सूखा और बाढ़ जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

बर्फ और ग्लेशियर्स के पिघलने से समुद्र का स्तर बढ़ रहा है, जो तटीय क्षेत्रों में जलमग्नता और भूमि क्षति का कारण बनता है। इसके अलावा, बर्फ के पिघलने से बहते हुए पानी की मात्रा में परिवर्तन होता है, जो उन क्षेत्रों में जल आपूर्ति को प्रभावित करता है जो ग्लेशियरों और बर्फ के स्रोतों पर निर्भर हैं।

जल संकट का एक महत्वपूर्ण पहलू जल प्रबंधन की समस्याएँ हैं। जल प्रबंधन में अत्यधिक जल उपयोग, जल का अव्यवस्थित वितरण, और जल संरक्षण की कमी शामिल होती है। पानी के अत्यधिक उपयोग से स्रोतों का अत्यधिक दोहन होता है, जिससे जल स्तर गिर जाता है और जल संकट बढ़ जाता है। कृषि, उद्योग, और घरेलू उपयोग के लिए पानी की अधिक मांग होने पर जल स्रोतों पर दबाव बढ़ जाता है।जल वितरण प्रणाली की खराब स्थिति और अवसंरचना की कमी भी जल संकट को बढ़ावा देती है। उचित जल आपूर्ति और स्वच्छता सुविधाओं की कमी के कारण, पानी का सही तरीके से वितरण और उपयोग नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त, जल पुनर्चक्रण और संरक्षण की कमी भी इस समस्या को बढ़ाती है, क्योंकि बहुत से क्षेत्रों में पानी को पुनः उपयोग करने की व्यवस्था नहीं होती।

जल संकट के सामाजिक और आर्थिक प्रभाव भी गंभीर होते हैं। पानी की कमी और जल प्रदूषण के कारण

स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, जैसे कि जल–संक्रमण रोग, दस्त, और अन्य जल जनित बीमारियाँ। इन स्वास्थ्य समस्याओं का प्रभाव विशेषकर गरीब और ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक होता है, जहां स्वास्थ्य देखभाल सुविधाएँ सीमित होती हैं।जल संकट आर्थिक विकास को भी प्रभावित करता है। कृषि, जो कई देशों की अर्थव्यवस्था की रीढ़ होती है, पानी की कमी से प्रभावित होती है, जिससे फसलों की पैदावार में कमी और खाद्य सुरक्षा पर असर पड़ता है। जल संकट के कारण उद्योगों की कार्यक्षमता में भी कमी आ सकती है, जिससे रोजगार के अवसर और आर्थिक विकास प्रभावित होते हैं।

जल संकट एक जटिल और बहुपरकारी समस्या है जो कि पानी की कमी, जल प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, और जल प्रबंधन की समस्याओं के संयोजन से उत्पन्न होती है। इसके प्रभाव न केवल पर्यावरण और जीवन की गुणवत्ता पर होते हैं, बल्कि यह समाज और अर्थव्यवस्था को भी प्रभावित करता है। इस संकट का समाधान जल संरक्षण, उचित जल प्रबंधन, और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है। विश्व भर में जल संकट की इस गंभीर समस्या को समझकर और उचित कदम उठाकर ही हम इसके प्रभावों को कम कर सकते हैं और पानी की उपलब्धता को सुनिश्चित कर सकते हैं।

2. जैव विविधता पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन का जैव विविधता पर प्रभाव गहरा और व्यापक है, जो न केवल प्रजातियों के अस्तित्व को प्रभावित करता है, बल्कि संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना और कार्यप्रणाली को भी बदलता है। जैव विविधता, जिसमें विभिन्न प्रकार के जीव, पौधे, और उनके पारिस्थितिक तंत्र शामिल हैं, पृथ्वी के स्वास्थ्य और स्थिरता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। जलवायु परिवर्तन, जो कि वैश्विक तापमान में वृद्धि, मौसम पैटर्न में बदलाव, और अन्य पर्यावरणीय परिवर्तनों के रूप में होता है, जैव विविधता को कई प्रकार से प्रभावित करता है।

जलवायु परिवर्तन के कारण पृथ्वी की जलवायु में बदलाव आ रहा है, जिससे प्रजातियों की वितरण सीमा और निवास स्थान पर प्रभाव पड़ रहा है। जैसे–जैसे तापमान बढ़ रहा है, प्रजातियाँ अपने पारंपरिक निवास स्थान की ओर उत्तरी या ऊँचाई वाले क्षेत्रों की ओर प्रवास कर रही हैं। उदाहरण के लिए, आर्कटिक क्षेत्रों में पिघलती बर्फ के कारण, बर्फ के शिकारियों, जैसे कि ध्रुवीय भालू और आक्रटिक लोमड़ी, को अपने निवास स्थान के लिए अधिक संघर्ष करना पड़ रहा है। इसी प्रकार, ऊँचाई वाले क्षेत्रों में भी पौधों और जानवरों की प्रजातियाँ ऊँचाई की ओर शिफ्ट हो रही हैं, जिससे उनके निवास स्थान का आकार घट रहा है।

जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के आवासों, जैसे कि वनों, मैंग्रोवों, और कोरल रीफ्स, पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। वनों की कटाई और सूखा इन क्षेत्रों के पारिस्थितिकी तंत्र को कमजोर कर रहे हैं, जिससे वन्य जीवों को पर्याप्त भोजन और आश्रय मिलना कठिन हो गया है। मैंग्रोव और कोरल रीफ्स समुद्र के तापमान में वृद्धि और अम्लीकरण के कारण क्षतिग्रस्त हो रहे हैं, जो समुद्री जीवन के लिए महत्वपूर्ण आवास प्रदान करते हैं। इन आवासों के नुकसान के कारण कई प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं या उनकी जनसंख्या में भारी कमी आ रही है।

जलवायु परिवर्तन प्रजातियों के प्रजनन और जीवन चक्र पर भी प्रभाव डालता है। तापमान में वृद्धि से प्रजनन के मौसम और जीवन चक्र के अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं में परिवर्तन हो सकता है। उदाहरण के लिए, कुछ पक्षियों की प्रजनन गतिविधियाँ समय पर होती हैं, लेकिन तापमान में बदलाव के कारण उनके प्रजनन मौसम में परिवर्तन हो सकता है। इसके अलावा, समुद्री कछुए के अंडों का तापमान उनकी लिंग निर्धारण पर प्रभाव डालता है, जिससे लिंग अनुपात में असंतुलन हो सकता है।

जलवायु परिवर्तन पारिस्थितिकी तंत्र में असंतुलन पैदा कर रहा है। जब एक प्रजाति के आवास या खाद्य स्रोत बदलते हैं, तो यह अन्य प्रजातियों पर प्रभाव डालता है जो उस प्रजाति के साथ पारिस्थितिकीय संबंध में होती हैं। उदाहरण के लिए, कीटों की प्रजातियाँ, जो विशेष पौधों पर निर्भर होती हैं, जलवायु परिवर्तन के कारण बदलती परिस्थितियों के प्रति संवेदनशील होती हैं। इसके परिणामस्वरूप, इन कीटों का अत्यधिक या न्यूनतम प्रकोप पौधों की वृद्धि और अन्य प्रजातियों की जीवनशैली पर प्रभाव डालता है।

जलवायु परिवर्तन के कारण विलुप्त होने की दर में वृद्धि हो रही है। जब प्रजातियाँ अपने पर्यावरणीय परिवर्तनों के अनुकूल नहीं हो पातीं, तो उनकी अस्तित्व की संभावना कम हो जाती है। अत्यधिक तापमान, पर्यावरणीय परिवर्तन, और आवासों की कमी के कारण कई प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं। अंतर्राष्ट्रीय प्राकृतिक

संरक्षण संघ (IUCN) के अनुसार, जलवायु परिवर्तन कई प्रजातियों के विलुप्त होने के मुख्य कारणों में से एक है। विशेषकर उन प्रजातियों के लिए जो अत्यधिक विशिष्ट आवास या खाद्य स्रोतों पर निर्भर होती हैं, विलुप्त होने का खतरा अधिक होता है।

जलवायु परिवर्तन से वृक्षों और पौधों की प्रजातियाँ भी प्रभावित हो रही हैं। तापमान में वृद्धि और बदलते वर्षा पैटर्न पौधों की वृद्धि, विकास, और प्रजनन पर प्रभाव डालते हैं। कुछ पौधे, जो विशेष तापमान और जलवायु परिस्थितियों के लिए अनुकूलित हैं, उन परिस्थितियों में नहीं रह सकते और उनकी वृद्धि रुक सकती है। इसके परिणामस्वरूप, उनकी आबादी में कमी हो सकती है और वे विलुप्त हो सकते हैं।

कुछ प्रजातियाँ जलवायु परिवर्तन के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील होती हैं। इनमें पोलर बियर, कोरल, और ऊँचाई पर रहने वाली पौधों की प्रजातियाँ शामिल हैं। ये प्रजातियाँ अपनी विशेष पारिस्थितिकीय परिस्थितियों के लिए अनुकूलित होती हैं और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का सामना करने में कठिनाई होती है। उदाहरण के लिए, कोरल रीफ्स का अम्लीकरण और गर्मी के कारण कोरल्स की मृत्यु हो रही है, जो समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र के लिए एक गंभीर खतरा है।

जलवायु परिवर्तन का जैव विविधता पर प्रभाव गहरा और व्यापक है। प्रजातियों की वितरण सीमा, आवास, प्रजनन और जीवन चक्र में बदलाव, पारिस्थितिकी तंत्र की असंतुलन, और विलुप्त होने की दर में वृद्धि जैसी समस्याएँ जैव विविधता को गंभीर रूप से प्रभावित करती हैं। इस स्थिति से निपटने के लिए आवश्यक है कि हम जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को समझें और उनकी रोकथाम और अनुकूलन के उपायों को अपनाएं। यह न केवल जीवों और पारिस्थितिक तंत्र की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि पृथ्वी के स्वास्थ्य और मानव जीवन के लिए भी अत्यंत आवश्यक है। जैव विविधता के संरक्षण के लिए सामूहिक प्रयास और प्रभावी नीतियाँ अपनाना हमारी जिम्मेदारी है ताकि पृथ्वी की पारिस्थितिकी प्रणाली को स्थिर और स्वस्थ बनाए रखा जा सके।

3. कृषि और खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन का कृषि और खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव अत्यंत व्यापक और गहरा है। यह न केवल फसल उत्पादन और कृषि उत्पादकता को प्रभावित करता है, बल्कि खाद्य प्रणाली के प्रत्येक पहलू को भी चुनौती देता है, जिसमें खाद्य वितरण, गुणवत्ता, और उपलब्धता शामिल हैं। वैश्विक तापमान में वृद्धि, बदलते मौसम पैटर्न, और चरम मौसम की घटनाएँ कृषि क्षेत्र में कई समस्याओं को जन्म देती हैं, जो अंततः खाद्य सुरक्षा को खतरे में डालती हैं।

जलवायु परिवर्तन का सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव फसल उत्पादन पर पड़ता है। तापमान में वृद्धि से फसलों की वृद्धि और विकास की अवधि में परिवर्तन होता है। गर्म मौसम के कारण फसलें जल्दी पकती हैं, जिससे उनकी गुणवत्ता और उपज पर नकारात्मक असर पड़ सकता है। उच्च तापमान फसल के फूलने और फलने की प्रक्रिया को प्रभावित करता है, जिससे उत्पादकता में कमी आती है। इसके अलावा, बढ़ते तापमान से फसलों की जल की आवश्यकता बढ़ जाती है, और सूखे की स्थिति में फसलें अच्छी तरह से विकसित नहीं हो पातीं।

जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा पैटर्न में बदलाव आ रहा है, जिससे कृषि क्षेत्र में अनिश्चितता और समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। बदलती वर्षा की मात्रा और समय का असर फसल की बुवाई और सिंचाई पर पड़ता है। अत्यधिक वर्षा और बाढ़ से खेतों में पानी भर जाता है, जिससे फसलों की वृद्धि प्रभावित होती है और फसलें खराब हो जाती हैं। दूसरी ओर, सूखा और कम वर्षा के कारण फसलें सही ढंग से विकसित नहीं हो पातीं और उनकी उत्पादकता में कमी आती है। इस प्रकार, वर्षा पैटर्न में अनिश्चितता खाद्य उत्पादन को प्रभावित करती है और खाद्य सुरक्षा को खतरे में डालती है।

जलवायु परिवर्तन के कारण पारिस्थितिकीय असंतुलन उत्पन्न होता है, जो कृषि उत्पादन को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, कीट और रोगों की गतिविधियाँ बदल रही हैं, जिससे फसलों पर अधिक प्रभाव पड़ रहा है। उच्च तापमान और बदलते मौसम की वजह से कीटों और रोगों का प्रसार तेजी से हो रहा है, जिससे फसलों की गुणवत्ता और मात्रा प्रभावित हो रही है। इसके अलावा, पारिस्थितिकीय असंतुलन से नए कीट और रोग उत्पन्न हो सकते हैं, जिनका मुकाबला करना किसानों के लिए कठिन हो सकता है।

जलवायु परिवर्तन के कारण पानी की उपलब्धता में बदलाव आ रहा है, जो कि कृषि के लिए एक प्रमुख चिंता का विषय है। पानी की कमी के कारण सिंचाई के लिए आवश्यक जल की मात्रा घट जाती है, जिससे फसलों

की उत्पादकता पर नकारात्मक असर पड़ता है। सूखा की स्थिति में, किसानों को अपनी फसलों को बचाने के लिए अधिक प्रयास करने पड़ते हैं, जो कि उनकी आर्थिक स्थिति पर भी प्रभाव डालता है। इसके विपरीत, अत्यधिक वर्षा और बाढ़ से जल की मात्रा अधिक हो जाती है, जो फसलों को नुकसान पहुँचाता है और उनकी वृद्धि को प्रभावित करता है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से भूमि की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है। उच्च तापमान और बदलते मौसम की परिस्थितियों से भूमि का कटाव और क्षति होती है, जिससे भूमि की उर्वरता कम हो जाती है। इसके अलावा, पानी की कमी और सूखा भूमि को सूखा बना देते हैं, जिससे भूमि की उत्पादकता में कमी आती है। भूमि की गुणवत्ता में कमी से फसलों की वृद्धि और उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिससे खाद्य सुरक्षा की स्थिति और भी खराब होती है।

जलवायु परिवर्तन खाद्य प्रणाली और आपूर्ति श्रृंखला को भी प्रभावित करता है। फसलों की उत्पादन में कमी और अस्थिरता के कारण खाद्य आपूर्ति में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। परिवहन, वितरण, और भंडारण की समस्याएँ भी खाद्य आपूर्ति को प्रभावित करती हैं, खासकर जब चरम मौसम की घटनाएँ, जैसे कि बाढ़ और तूफान, इंफ्रास्ट्रक्चर को नुकसान पहुँचाती हैं। इसके परिणामस्वरूप, खाद्य वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाती हैं और गरीब और कमजोर वर्गों के लिए खाद्य पहुंच कठिन हो जाती है।

कृषि और खाद्य सुरक्षा पर जलवायु परिवर्तन के आर्थिक प्रभाव भी महत्वपूर्ण हैं। फसलों की उत्पादकता में कमी और भूमि की गुणवत्ता में गिरावट से किसानों की आय पर नकारात्मक असर पड़ता है। अतिरिक्त खर्च, जैसे कि पानी की आपूर्ति, कीट नियंत्रण, और अन्य प्रबंधन उपायों, किसानों के आर्थिक बोझ को बढ़ाते हैं। इसके अलावा, खाद्य कीमतों में वृद्धि और आपूर्ति की अस्थिरता से उपभोक्ताओं को भी आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

जलवायु परिवर्तन केवल फसलों की मात्रा को ही नहीं, बल्कि उनकी गुणवत्ता को भी प्रभावित करता है। उच्च तापमान और बदलते मौसम के कारण पोषक तत्वों की सांद्रता में कमी हो सकती है, जो कि खाद्य पदार्थों की पोषणमूलक गुणवत्ता को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, उच्च तापमान से गेहूं में प्रोटीन की मात्रा कम हो सकती है, जिससे आहार की गुणवत्ता पर असर पड़ता है।

जलवायु परिवर्तन का कृषि और खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव अत्यंत गहरा और व्यापक है। फसल उत्पादन, वर्षा पैटर्न, पारिस्थितिकीय असंतुलन, पानी की उपलब्धता, भूमि की गुणवत्ता, खाद्य प्रणाली और आपूर्ति श्रृंखला, आर्थिक प्रभाव, और भोजन की गुणवत्ता सभी पर जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं। इस स्थिति से निपटने के लिए, यह आवश्यक है कि हम जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को समझें और प्रभावी नीतियाँ अपनाएं जो कृषि क्षेत्र को स्थिर और खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित कर सकें। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने और अनुकूलन के उपायों को अपनाने के लिए समन्वित प्रयास और तकनीकी नवाचार आवश्यक हैं, ताकि खाद्य उत्पादन और आपूर्ति को स्थिर रखा जा सके और सभी लोगों के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके।

4.स्वास्थ्य पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन का स्वास्थ्य पर प्रभाव गहरा और व्यापक है, जो मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करता है। तापमान में वृद्धि, बदलते मौसम पैटर्न, और चरम मौसम की घटनाएँ स्वास्थ्य पर सीधे और परोक्ष रूप से असर डालती हैं, जिससे विभिन्न स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इन प्रभावों को समझना और उनसे निपटना, सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती बन गया है।

जलवायु परिवर्तन के कारण वैश्विक तापमान में वृद्धि हो रही है, जिससे गर्मियों में अत्यधिक गर्मी का खतरा बढ़ गया है। उच्च तापमान से हीट स्ट्रोक, डिहाइड्रेशन, और हृदय संबंधी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। विशेष रूप से वृद्ध लोगों, बच्चों, और पुराने बीमारियों से ग्रस्त लोगों के लिए अत्यधिक गर्मी खतरनाक हो सकती है। उच्च तापमान से शारीरिक तनाव बढ़ता है, जिससे स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ जैसे कि दिल का दौरा और श्वास संबंधी समस्याएँ हो सकती हैं।

जलवायु परिवर्तन वायु प्रदूषण को भी प्रभावित करता है। उच्च तापमान से ओजोन स्तर में वृद्धि होती है, जिससे वायु प्रदूषण बढ़ जाता है। ओजोन का उच्च स्तर अस्थमा, फेफड़ों की बीमारियाँ, और अन्य श्वास समस्याओं

का कारण बन सकता है। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन से वायु प्रदूषण के अन्य तत्व, जैसे कि धूल और कण, भी बढ़ सकते हैं, जो श्वास तंत्र को प्रभावित करते हैं और विभिन्न स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बनते हैं।

जलवायु परिवर्तन के कारण जलवायु–संक्रमण रोगों की वृद्धि हो रही है। मच्छरों द्वारा फैलने वाली बीमारियाँ, जैसे कि डेंगू, मलेरिया, और चिकनगुनिया, उच्च तापमान और बदलते मौसम के कारण बढ़ रही हैं। मच्छरों के प्रजनन के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ बढ़ जाती हैं, जिससे ये रोग तेजी से फैलते हैं। इसी तरह, जलवायु परिवर्तन से तटीय क्षेत्रों में समुद्री जीवाणुओं की वृद्धि होती है, जो जल–संक्रमण रोगों, जैसे कि कॉलरा और हैपेटाइटिस, का कारण बनते हैं।

जलवायु परिवर्तन का जल की गुणवत्ता पर भी प्रभाव पड़ता है। अत्यधिक वर्षा, बाढ़, और सूखा जल स्रोतों को प्रभावित करते हैं, जिससे जल प्रदूषण और जलजनित बीमारियाँ बढ़ जाती हैं। बाढ़ के दौरान, सीवेज और अन्य अपशिष्ट जल स्रोतों में मिल जाते हैं, जिससे जल में विषाणुओं और बैक्टीरिया की मात्रा बढ़ जाती है। इसके परिणामस्वरूप, जल–संक्रमण रोग, जैसे कि दस्त और हैजा, की घटनाएँ बढ़ जाती हैं।

जलवायु परिवर्तन खाद्य सुरक्षा और पौष्टिकता को भी प्रभावित करता है। फसलों की उत्पादकता में कमी और भूमि की गुणवत्ता में गिरावट से पोषण संबंधी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। उच्च तापमान और बदलते मौसम के कारण फसलों में पोषक तत्वों की मात्रा में कमी हो सकती है, जिससे आहार की गुणवत्ता पर असर पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप, विटामिन और खनिजों की कमी से स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं, जैसे कि अनीमिया और विकलांगता।

जलवायु परिवर्तन मानसिक स्वास्थ्य पर भी प्रभाव डालता है। चरम मौसम की घटनाएँ, जैसे कि बाढ़, सूखा, और तूफान, लोगों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं। आपदाओं के बाद की स्थिति, जैसे कि अनिश्चितता, तनाव, और चिंता, मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं को बढ़ा सकती है। इसके अतिरिक्त, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति चिंता और तनाव के कारण मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

जलवायु परिवर्तन आवासीय स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है। उच्च तापमान और बदलते मौसम के कारण आवासीय संरचनाओं, जैसे कि घरों और इमारतों, पर असर पड़ता है। गर्मी के कारण आवासीय सुविधाओं की गुणवत्ता में कमी हो सकती है, जिससे असुविधा और स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसके अलावा, बाढ़ और अन्य जलवायु परिवर्तन से प्रभावित होने वाली आवासीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ बढ़ सकती हैं, जैसे कि संक्रमण और अन्य बीमारियाँ।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव विशेष रूप से संवेदनशील आबादी पर अधिक होता है। वृद्ध लोग, बच्चे, गरीब समुदाय, और उन क्षेत्रों में रहने वाले लोग जो प्राकृतिक आपदाओं के लिए अधिक संवेदनशील हैं, अधिक प्रभावित होते हैं। ये आबादी समूह स्वास्थ्य सेवाओं की कमी, आर्थिक समस्याओं, और अन्य सामाजिक चुनौतियों का सामना करते हैं, जिससे वे जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं।

जलवायु परिवर्तन का स्वास्थ्य पर प्रभाव व्यापक और जटिल है। गर्मी, वायु प्रदूषण, जलवायु–संक्रमण रोग, जल की गुणवत्ता, खाद्य सुरक्षा, मानसिक स्वास्थ्य, आवासीय स्वास्थ्य, और संवेदनशील आबादी पर इसके प्रभाव गंभीर हैं। इन स्वास्थ्य समस्याओं से निपटने के लिए आवश्यक है कि हम जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को समझें और प्रभावी नीतियाँ और कार्यक्रम अपनाएं जो सार्वजनिक स्वास्थ्य को सुरक्षित कर सकें। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने और स्वास्थ्य की रक्षा के लिए सामूहिक प्रयास, तकनीकी नवाचार, और उचित नीतियाँ आवश्यक हैं, ताकि सभी लोगों के लिए स्वस्थ और सुरक्षित जीवन सुनिश्चित किया जा सके।

जलवायु संकट ने औसत वैश्विक तापमान में वृद्धि की है और हीटवेव जैसी घटनाओं की बारम्बारता और तीव्रता में वृद्धि हुई है। उच्च तापमान में मृत्यु दर में वृद्धि, उत्पादकता में कमी और बुनियादी ढ़ाँचे से नुकसान हो रहा है। आबादी के सबसे सुमेद्ध वर्ग (बच्चों व बुजुर्गों) सबसे अधिक प्रभावित होंगे। उच्च तापमान से जलवायु क्षेत्रों के भौगोलिक वितरण में भी बदलाव की संभावना है। ये परिवर्तन कई पौधों और जानवरों की प्रजातियों के वितरण और उपलब्धता में बदलाव ला रहे है, जो पहले से ही प्रदूषण और आवाज क्षय के कारण संकट में है।

तेजी से पिघलना, उच्च नदी प्रवाह और सूखे के बढ़ने से मृदा के क्षरण में वृद्धि होगी। निर्वनीकरण और मृदा के अन्य गैर सम्पोशणीय उपयोग से मृदा के गुणवत्ता व क्षेत्र दोनों में कमी आयेगी। समुद्र के जलस्तर वृद्धि से

समुद्र के किनारे खारे पानी के घुसपैठ से तटीय क्षेत्रों की मृता का क्षारीय होगा।

5. समुद्री पर्यावरण का प्रभाव :–

जलवायु परिवर्तन का समुद्री जीवन पर प्रभाव एक महत्वपूर्ण और बहुपरकारी मुद्दा है, जो समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र, समुद्री प्रजातियों, और समुद्री संसाधनों को गहराई से प्रभावित करता है। वैश्विक तापमान में वृद्धि, समुद्र की सतह का तापमान बढ़ना, समुद्री अम्लीकरण, और समुद्री प्रवाह के पैटर्न में परिवर्तन जैसे जलवायु परिवर्तन के प्रभाव समुद्री जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित कर रहे हैं। इन प्रभावों को समझना और उनके नकारात्मक प्रभावों को कम करना समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र और मानव जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्र की सतह का तापमान लगातार बढ़ रहा है, जो समुद्री जीवन पर व्यापक प्रभाव डालता है। उच्च तापमान से समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र में असंतुलन उत्पन्न होता है। उच्च तापमान से समुद्री जीवों की जीवन प्रक्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है, जैसे कि प्रजनन, वृद्धि, और खाद्य श्रृंखला में उनकी भूमिका। उदाहरण के लिए, गर्मी के कारण कोरल रीफ्स में 'कोरल ब्लिचिंग' की समस्या उत्पन्न होती है, जिसमें कोरल अपनी रंगत खो देते हैं और अंततः मर सकते हैं। इस प्रकार, कोरल रीफ्स परिपक्व समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होते हैं, और उनकी क्षति समुद्री जीवन के अन्य घटकों को प्रभावित करती है।

समुद्री अम्लीकरण एक अन्य गंभीर प्रभाव है, जो जलवायु परिवर्तन के कारण CO_2 के बढ़ते स्तर से उत्पन्न होता है। जब CO_2 वायुमंडल में बढ़ता है, तो समुद्र इसे अवशोषित करता है, जिससे समुद्र का स्तर घट जाता है और समुद्री जल अधिक अम्लीय हो जाता है। अम्लीकरण का प्रभाव विशेष रूप से शेलफिश, जैसे कि मोलस्क और शाक्र, और अन्य कैल्शियम–निर्भर समुद्री जीवों पर पड़ता है, जिनके कंकाल और खोल कैल्शियम कार्बोनेट से बने होते हैं। अम्लीकरण से उनके खोल और कंकाल कमजोर हो सकते हैं, जिससे उनकी वृद्धि और जीवन चक्र पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त, अम्लीकरण समुद्री खाद्य श्रृंखला को प्रभावित करता है, क्योंकि कैल्शियम–निर्भर जीव अन्य समुद्री जीवों के लिए महत्वपूर्ण भोजन स्रोत होते हैं।

जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्री प्रवाह और मौसम पैटर्न में परिवर्तन हो रहा है, जो समुद्री जीवन पर व्यापक प्रभाव डालता है। समुद्री प्रवाह वैश्विक जलवायु प्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, और इसके पैटर्न में परिवर्तन समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित कर सकता है। उदाहरण के लिए, समुद्री प्रवाह के बदलाव से समुद्री जीवन की प्रवास संबंधी आदतों में परिवर्तन हो सकता है, जैसे कि मछलियाँ और अन्य समुद्री प्रजातियाँ नए क्षेत्रों में जाने लगती हैं या उनके पारंपरिक प्रवास मार्ग बदल सकते हैं। इसके अलावा, समुद्री जलवायु में बदलाव समुद्री तूफानों और तूफानी घटनाओं की आवृत्ति और तीव्रता को बढ़ा सकता है, जो समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र को नुकसान पहुँचा सकते हैं।

समुद्री गर्मी की लहरें, जो समुद्र की सतह पर असामान्य रूप से उच्च तापमान की अवधि होती हैं, जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ रही हैं। ये गर्मी की लहरें समुद्री जीवन के लिए गंभीर खतरा पैदा करती हैं। उच्च तापमान से समुद्री जीवों का जीवन चक्र प्रभावित हो सकता है, जिससे उनकी प्रजनन क्षमता, वृद्धि, और शिकार की आदतें बदल सकती हैं। गर्मी की लहरें कोरल रीफ्स और अन्य समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र को भी नुकसान पहुँचाती हैं, जिससे समुद्री जीवन की विविधता और स्थिरता में कमी आती है।

जलवायु परिवर्तन समुद्री जीवन की विविधता पर भी प्रभाव डालता है। तापमान वृद्धि, अम्लीकरण, और अन्य पर्यावरणीय परिवर्तन समुद्री प्रजातियों की विविधता और वितरण को प्रभावित करते हैं। कुछ प्रजातियाँ, जो विशेष तापमान और पर्यावरणीय परिस्थितियों के लिए अनुकूलित हैं, अपने निवास स्थान में बदलाव के कारण संकटग्रस्त हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, आर्कटिक और अंटार्कटिक क्षेत्रों में तापमान में वृद्धि के कारण वहाँ की विशेष प्रजातियाँ अपने निवास स्थान में बदलाव का सामना कर रही हैं। इसके परिणामस्वरूप, कई प्रजातियाँ या तो नए क्षेत्रों में चली जाती हैं या वे विलुप्त हो जाती हैं, जिससे समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र की विविधता में कमी आती है।

समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव खाद्य श्रृंखला और पारिस्थितिक तंत्र पर गहरा असर डालते हैं। जब समुद्री जीवन की प्रजातियाँ प्रभावित होती हैं, तो इसका प्रभाव पूरी खाद्य श्रृंखला पर पड़ता है। उदाहरण के लिए, यदि प्लांकटन की प्रजातियाँ बदलती हैं या कम हो जाती हैं, तो इससे शैवाल और अन्य छोटे समुद्री जीवों की आपूर्ति प्रभावित हो सकती है, जो कि बड़े समुद्री जीवों के लिए भोजन का स्रोत होते हैं। इस प्रकार, खाद्य श्रृंखला में असंतुलन उत्पन्न होता है, जो समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता को प्रभावित करता है।

जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्री जीवों के शारीरिक और व्यवहारिक बदलाव भी देखे जा सकते हैं। उच्च तापमान और बदलते पर्यावरणीय परिस्थितियाँ समुद्री जीवों की शारीरिक विशेषताओं, जैसे कि आकार, रंग, और कंकाल की संरचना को प्रभावित कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त, समुद्री जीवों के व्यवहार में भी परिवर्तन हो सकता है, जैसे कि भोजन की आदतें, प्रवास पैटर्न, और प्रजनन की प्रक्रिया में बदलाव। इन बदलावों से समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना और कार्यप्रणाली प्रभावित हो सकती है।

समुद्री जीवन पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का आर्थिक और सामाजिक प्रभाव भी महत्वपूर्ण है। कई तटीय समुदाय और देशों की अर्थव्यवस्था समुद्री संसाधनों, जैसे कि मछली, शेलफिश, और अन्य समुद्री उत्पादों पर निर्भर करती है। जब समुद्री जीवन प्रभावित होता है, तो इससे खाद्य सुरक्षा, रोजगार, और आजीविका पर प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा, समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र की क्षति से तटीय क्षेत्रों में पर्यटन उद्योग भी प्रभावित हो सकता है, जो स्थानीय अर्थव्यवस्था के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए अनुकूलन और संरक्षण के उपाय आवश्यक हैं। समुद्री जीवन और पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा के लिए विभिन्न उपायों को अपनाना चाहिए, जैसे कि समुद्री संरक्षित क्षेत्र बनाना, कोरल रीफ्स और अन्य महत्वपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा करना, और प्रदूषण को कम करने के लिए प्रभावी नीतियाँ लागू करना। इसके अतिरिक्त, समुद्री जीवन की निगरानी और अनुसंधान को बढ़ावा देना चाहिए ताकि जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को समझा जा सके और समय पर उपाय किए जा सकें।

जलवायु परिवर्तन का समुद्री जीवन पर प्रभाव व्यापक और गहरा है, जो समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र, प्रजातियों की विविधता, और समुद्री संसाधनों को प्रभावित करता है। समुद्र की सतह का तापमान, अम्लीकरण, समुद्री प्रवाह और मौसम पैटर्न में परिवर्तन, गर्मी की लहरें, और अन्य पर्यावरणीय बदलाव समुद्री जीवन को विभिन्न तरीकों से प्रभावित करते हैं। इन प्रभावों से निपटने के लिए प्रभावी अनुकूलन और संरक्षण उपायों को अपनाना आवश्यक है, ताकि समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा की जा सके और समुद्री जीवन के स्थायित्व को सुनिश्चित किया जा सके। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को समझना और उनकी रोकथाम के लिए उचित कदम उठाना सभी के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती है, जिससे समुद्री जीवन और पारिस्थितिकी तंत्र को सुरक्षित रखा जा सके।

15.6 निष्कष :–

जलवायु परिवर्तन एक गंभीर एवं व्यापक चुनौती है, जो पृथ्वी के पर्यावरण, समाज और अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव डाल रहा है। इसका मुख्य कारण मानव गतिविधि से उत्पन्न ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन है। तापमान में वृद्धि, समुद्र स्तर का बढ़ना और मौसम प्रतिरूप में बदलाव जैसे प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहे है। जलवायु परिवर्तन के परिणाम स्वरूप पारिस्थितिक तंत्र, कृषि, मानव स्वास्थ्य और अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

इस समस्या के समाधान के लिए तत्काल और संयुक्त प्रयासों की आवश्यकता है। ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित करने, नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग बढ़ाने ओर सतत विकास की दिशा में कदम बढ़ाने से हम जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम कर सकते हैं। इस चुनौती को हल करने के लिए हमें समग्र और समन्वित दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। यह केवल वैज्ञानिक और तकनीकी समाधान प्रदान करने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर भी गहन सुधार की मांग करता है। हमें ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग बढ़ाने और सतत विकास की दशा में कदम उठाने की आवश्यकता है।

15.7 परीक्षा उपयोगी प्रश्न :–

1.दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. जलवायु परिवर्तन की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए इसके मुख्य घटकों का वर्णन करें।
2. जलवायु परिवर्तन का क्या अर्थ है? और यह कैसे वैश्विक पर्यावरणीय सन्तुलन को प्रभावित करता है।
3. जलवायु परिवर्तन के प्रमुख प्राकृतिक और मानव निर्मित कारकों की ब्याख्या कीजिए।

4. जलवायु परिवर्तन की संकल्पना को समझाने के लिए उपयोग किए जाने वाले विभिन्न मापदण्डों और संकेतको की व्याख्या कीजिए। ये मापदण्ड कैसे जलवायु परिवर्तन की निगरानी और विश्लेषण में सहायक है।
5. जलवायु परिवर्तन का मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण कीजिए। हीट बेव, जलजनित रोगों और वायु गुणवत्ता में गिरावट के कारण उत्पन्न होने वाली स्वास्थ्य समस्याओं पर प्रकाश डालिए।
6. जलवायु परिवर्तन का कृषि और खाद्य सुरक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है? फसल उत्पादन, जल संसाधनों और खाद्य आपूर्ति श्रृंखला पर जलवायु परिवर्तन के परिणामों की व्याख्या कीजिए।

2.लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. जलवायु परिवर्तन के प्रमुख प्राकृतिक और मानव निर्मित कारक कौन–कौन से है?
2. जलवायु परिवर्तन का वैश्वित और स्थानीय स्तर पर पर्यावरणीय, आर्थिक और सामाजिक प्रभाव क्या है?
3. जलवायु परिवर्तन के कारण पर्यावरणीय और पारिस्थिति तंत्रों पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन करें।
4. जलवायु परिवर्तन के ऐतिहासिक सन्दर्भ और इसके विकास को संक्षेप में समझाइए।
5. जलीय परिवर्तन के कारण जलीय निकायों पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन करें।

3.बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1.जलवायु परिवर्तन का प्रमुख प्रभाव क्या हो सकता है?

(A) समुद्रों में विस्तार (B) धरती के तापमान में वृद्धि

(C) वन्यजीवों का अंतर्राष्ट्रीय प्रवास (D) उपरोक्त सभी

2.क्योटो प्रोटोकाल कब हुआ था?

(A) 1992 (B) 1995 (C) 1997 (D) 2002

3.सतत विकास लक्ष्य में कुल कितने लक्ष्य है?

(A) 15 (B) 15 (C) 17 (D) 20

4.ग्लोबल वार्मिक का मुख्य कारण है?

(A) उच्च कार्बन उत्सर्जन (B) जल प्रदूषण

(C) जल और भूमि का संरक्षण (D) सभी विकल्प

15.8 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

1.डी एस. लाल – जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज

2 प्रो0 सविद्र सिंह – जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स प्रयागराज

3. डॉ. वाई. आई. सिंह – जलवायु विज्ञान, एशियन ह्यूमेनटिस प्रेस (AHP)

4.डॉ. चतुर्भुज मामोरिया – डा. एम. एस. सिसोदिया – जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, साहित्य भवन कानपुर

इकाई–16

व्यावहारिक जलवायु विज्ञान कृषि, मानव व्यवहार, जीवमण्डल

16.3 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 व्यावहारिक जलवायु विज्ञान

16.44 जलवायु एवं कृषि

16.5 जलवायु एवं मानव स्वास्थ्य

16.6 जलवायु एवं जीवमण्डल

16.7 जलवायु एवं मानव व्यवहार

16.8 जलवायु एवं मिट्‌टी

16.9 जलवाय एवं मृदाअपरदन

16.10 जलवायु एवं वनस्पति

16.11 जलवायु एवं पारिस्थिकीय उत्पादकता एवं ऊर्जा प्रवाह

16.12 परीक्षा उपयोगी प्रश्न

16.13 संदर्भ पुस्तकें

16.1 प्रस्तावना :–

इस इकाई में व्यावहारिक जलवायु विज्ञान की अवधारणा और उसके विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट किया है। इसमें जलवायु की परिभाषा और उसके प्रभावों की गहराई से समीक्षा की जाएगी, विशेष रूप से कृषि, मानव स्वास्थ्य, और जीवमंडल पर इसके प्रभावों के संदर्भ में जलवायु और कृषि के संदर्भ में, इस अध्याय में यह बताया जाएगा कि विभिन्न जलवायु परिस्थितियाँ फसल उत्पादन, कृषि पद्धतियों और खाद्य सुरक्षा को कैसे प्रभावित करती हैं। इसके अतिरिक्त, जलवायु और मानव स्वास्थ्य के बीच संबंध पर चर्चा की जाएगी, जिसमें गर्मी की लहरें, बीमारियों की पैठ, और जलवायु परिवर्तन के स्वास्थ्य पर दीर्घकालिक प्रभाव शामिल होंगे।आखिरकार, जलवायु और जीवमंडल के बीच संबंध की विवेचना की जाएगी, जिसमें यह समझा जाएगा कि जलवायु परिवर्तन जीवमंडल की विविधता, पारिस्थितिक तंत्रों और जैव विविधता को कैसे प्रभावित करता है। जलवायु विज्ञान की व्यावहारिकताओं को समझने और इन समस्याओं के समाधान के लिए प्रभावी उपायों को अपनाने के लिए प्रेरित करना है।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य विभिन्न व्यावहारिक जलवायु विज्ञान

और उनके पक्षों की गहन समझ प्रदान करना है। इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी

1. व्यावहारिक जलवायु विज्ञान की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे।

2 जलवायु एवं कृषि , मानव स्वास्थ्य, जीवमण्डल, मानव व्यवहार,पारिस्थिकीय उत्पादकता एवं ऊर्जा प्रवाह की शिक्षार्थी ब्याख्या कर सकेंगे।

16.3 व्यावहारिक जलवायु विज्ञान

सामान्य रूप में सभी जीव एवं जन्तु समुदायों तथा मानव समाज का मौसम एवं जलवायु की विभिन्न संघटकों का पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन को व्यावहारिक जलवायु विज्ञान कहते हैं। पर्यावरण में ती प्रकार के संघटक पाये जाते है – जैविक संघटक, अजैविक संघटक तथा ऊर्जा संघटक। अजैविक संघटक के तीन प्रमुख

उपसंघटक होते है। स्थल, जल तथा वायु, जिन्हें क्रमशः स्थलमण्डल, जलमण्डल तथा वायुमण्डल के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार मौसम तथा जलवायु वायुमण्डलीय निकाय के प्रमुख संघटक है।

व्यावहारिक जलवायु विज्ञान मौसम तथा जलवायु का मनुष्य के सामाजिक एवं आर्थिक पक्षों का तथा जीवमण्डल के अन्य जीवों पर पड़ने वाले प्रभावों से सम्बन्धित है। व्यावहारिक जलवायु विज्ञान की निम्न परिभाषाएं इस विज्ञान की निम्न परिभाषाएं इस विज्ञान के स्वरूप तथा विषयक्षेत्र पर प्रभाव डालते हैं।

1. किसी भी संक्रियात्मक उद्देश्य के लिए उपयोगी प्रयोजन के सन्दर्भ में जलवायु के आंकड़ों को वैज्ञानिक विश्लेषण को व्यावहारिक जलवायु विज्ञान कहते हैं।

   यच0 लैण्ड्सवर्ग एवं डब्लू0सी0 जैकत्स 1951 ।

2. व्यावहारिक जलवायु विज्ञान, जलवायु विज्ञान की चार प्रमुख शाखाओं (भौतिक जलवायु विज्ञान, गतिक जलवायु विज्ञान, व्यावहारिक जलवायु विज्ञान) में से एक शाखा है।

   जे0ई0 हॉप्स 1980 ।

3. व्यावहारिक जलवायु विज्ञान मुख्य समस्यायें के निदान के लिए जलवायु के आंकड़ों एवं सैद्धान्तिक नियमों के वैज्ञानिक उपयोग से जी0ए0 मोरोत्स 1989 ।

4. एच0ए0 चंगनन (1995) में व्यावहारिक जलवायु विज्ञान के विषय क्षेत्र को प्रदर्शित करने के लिए मॉडल प्रस्तुत किया। जिसमें तीन मण्डल होते हैं। ये मण्डल आन्तरिक रूट आंतरिक मेखला तथा वृद्ध बाह्य वृत्त है।

व्यावहारिक जलवायु विज्ञान की शाखा का उद्गम 1940–1950 के दशक में हुआ था। जलवायु विज्ञान को महत्वपूर्ण एवं उपयोगी कार्यों से प्रभावित होकर लोगों ने जलवायु के आंकड़ों एवं उनकी व्याख्या पर जोर दिया। जिससे इस शाखा में तेजी से विस्तार एवं संवर्द्धन हुआ। वर्तमान समय में जलवायु एवं मौसम से सम्बन्धित आंकड़ों को मापन संग्रह, विभिन्न गणितीय एवं सांख्यिकी विधियों के आधार पर इन आंकड़ों के विश्लेषण द्वारा मौसम पूर्वानुमान, जलवायु परिवर्तन आदि की व्याख्या की जा सकती है।

16.4 जलवायु एवं कृषि

मनुष्य के स्थायी जीवन प्रारम्भ करने से ही कृषि एक महत्वपूर्ण व्यवसाय रहा है। जवलायु के तत्वों जैसे– आर्द्रता, तापमान एवं वर्षा ने फसलों के प्रकार, वितरण, प्रतिरूप, कृषि विधियां का निर्धारण किया। आधुनिक समय में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तीव्र वृद्धि से कृषि एवं पशुपालन प्रभाववित एवं नियंत्रित करने वाले कारकों की संख्या में वृद्धि हुई है।

कृषि को नियंत्रित करने वाले मौसम के प्रमुख कारक :–

कृषि के विभिन्न पक्षों को नियंत्रित एवं प्रभावित करने वाले प्रमुख चरों के अन्तर्गत तापमान, आर्द्रता, वर्षा, सूर्य प्रकाश को अवधि एवं मात्रा कुहरा, पाला, मेघाच्छादन आदि को सम्मिलित किया जाता है। मनुष्य द्वारा विकसित आधुनिक प्रौद्योगिकी द्वारा मौसम की दशाओं में परिवर्तन करके कृषि फसलों को उगाये जाने के बावजूद आर्द्रता, मृदा की नमी तथा तापमान आज भी कृषि कार्य को नियंत्रित एवं प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक है। जलवायु एवं मौसम की दशाएं फसलों के प्रतिरूप विस्तार तथा उत्पादकता का निर्धारण करते है। ऐसी फसले जिन्हें जलवायु द्वारा निर्धारण सीमाओं के बाहर उत्पादन किया जाता है वे आर्थिक दृष्टि से उपयोगी नहीं होती है क्योंकि ऐसी फसलों की उत्पादकता कम एवं आर्थिक लागत अधिक होती है। इसके बावजूद मनुष्य ने वैज्ञानिक तकनीक एवं प्रौद्योगिकी के द्वारा जलवायु एवं मौसम की दशाओं में परिवर्तन करके कतिपय फसलों की सीमाओं में विस्तार करने में सफलता प्राप्त की है। उदाहरण स्वरूप गेहूँ की खेती उत्तरी यूरोप एवं कनाडा में जाने लगी है। भारत में पहले पंजाब व हरियाणा राज्य में धान की खेती नहीं होती थी, परन्तु अभी तकनीकी उपयोग द्वारा धान की कम समय में तैयार होने वाली उन्नतशील किस्मों की उपलब्धता है।

तापमान :–

फसलों में वृद्धि को प्रभावित करने वाला तापमान एक प्रमुख कारक है। फसलों की बुआई, बीजों के अंकुरण,

पौधों का वर्धन, पुष्पन, कल्लों का विकास, परिपक्वता में तापमान एक प्रमुख कारक है। यद्यपि कि कई फसलें कम तापमान होने पर उगती तो है, परन्तु उसमें फल या दाने नहीं आते है। उदाहरण स्वरूप शीतकालीन गंगा मैदान में मक्का की फसल उगती है। पौधों में वृद्धि भी होती है, परन्तु दाने नहीं होते है।

उल्लेखनीय है कि उच्च तापमान एवं निम्न तापमान दोनों फसलों के लिए हानिकारक है। उच्च तापमान को सिंचाई द्वारा अतिरिक्त जल की आपूर्ति करके मृदा की नमी को बढ़ाया जा सकता है। कुछ फसलों के लिए रात्रिकालीन तापमान सीमाकारी होते है।

पाला :–

पाला तापीय प्रतिलोमन को उस स्थिति में पड़ता है, जब संघनन की क्रिया हिमांक के नीचे होती है। कुछ फसलों के लिए अभिवहनीय विकिरण, कोहरा अत्यधिक हानिकारक होता है। कभी – कभी महाद्वीपीय भागों में असामयिक कोहरे से रेसेदार फसलों तथा फलों की कृषि नष्ट हो जाती है। उच्च पर्वतीय भागों की निचली घाटी में तापीय प्रतिलोमन जनित कोहरे से प्रचण्ड पाला पड़ता है तथा फलों की फसल नष्ट हो जाती है।

पाला प्रकोप प्रबन्धन के लिए निम्न उपाय है :–

- पाला सहन और पाला से कम प्रभावित फसलों का चयन खेती।
- पाला से शीघ्र प्रभावित होने वाली फसलों को पाला प्रभावित क्षेत्रों में नहीं उगाना चाहिए।
- पौधों की फेनोलॉजिकल क्रियाओं को मन्दित करना।
- पाले की रोकथाम के लिए लकड़ी, कोयला आदि जलाकर तापमान में वृद्धि करना तथा तापीय प्रतिलोमन की परत को समाप्त करना।
- पंखे से जनित तेज वायु हेलीकाप्टर हवाई जहाज के द्वारा सतह पर स्थित तथा ऊपर स्थित मार्ग हवा के प्रभाव का मिश्रित करना जिससे तापीय प्रतिलोमन की परत को समाप्त किया जा सकता है। फसलों वाले खेतों की गहन सिंचाई करना।

आर्द्रता :–

वायुमण्डल में उपस्थित जलवाष्प को आर्द्रता कहा जाता है। वायु की आर्द्रता दोनों फसलों के लिए आवश्यक है। मृदा की आर्द्रता का प्रमुख स्रोत वर्षा जल है। जो विभिन्न माध्यमों से मिट्टियों में पहुंचता है फसल की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। पौधे अपनी जड़ो द्वारा परासरण क्रिया से मिट्टी के पोषण तत्वों को घोल के रूप में प्राप्त करते है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि जल की मात्रा तथा तापमान की दशाएं पौधों की वांछित वृद्धि और विकास के लिए आवश्यक है। उल्लेखनीय है कि हरित क्रान्ति में विभिन्न फसलों को जल संचयन की क्षमता को बढ़ा दिया।

सूखा :–

ऐसी स्थिति जब वर्षा से अधिक वाष्पीकरण हो जाता है तो उसे सूखा कहते है सूखा कृषि फसलों को बड़े पैमाने पर क्षति पहुंचाता है। कभी–कभी कई वर्षों तक लगातार सूखे से अकाल की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिससे लोग सामूहिक रूप से पलायन कर जाते है। ज्ञातव्य है कि वर्षा की मात्रा शुष्क दशा एवं आर्द्र दशा के लिए उतनी आवश्यक नही है जितनी कि उसकी नियमितता या अनियमितता सामान्य तौर पर सूखे 3 भागों में विभाजित किया जाता है।

1. **स्थायी सूखा :–**

   वह सूखा जो शुष्क जलवायु में पड़ता है स्थायी सूखा कहलाता है।

2. **मौसमी सूखा :–**

   वह सूखा जो विशेष मौसम में पड़ता है मौसमी सूखा कहलाता है।

3. आकस्मिक सूखा :–

सामान्य वर्षा से विचलन तथा वर्षा के विषमता के कारण उत्पन्न सूखे को आकस्मिक सूखा कहते है।

भारत में आर्द्रतम शुष्क ऋतुओं वाले मानसूनी जलवायु के कारण मौसमी एवं आकस्मिक सूखे से प्रभावित रहता है।

सूखे की प्रचण्डता कम करने के लिए एवं उसकी समाधान के लिए निम्न व्यावहार प्रयोग में लाना।

- वनरोपण एवं वृक्षारोपण द्वारा वायु की आर्द्रता में वृद्धि करना।
- वर्षा के जल का संचयन करना।
- बागवानी एवं चारागाहों के संवर्द्धन एवं विकास।
- जल वर्षा पर आधारित कृषि की निर्भरता का कम करना।
- छोटी नदियों पर बांधों का निर्माण करना।

इस तरह स्पष्ट है कि तापमान, सूर्य प्रकाश तथा वायु की नमी विभिन्न पौधों की वृद्धि को नियंत्रित करती है। कृषि जलवायु कारकों यथा जलवर्षा, सूर्य प्रकाश, तापमान, सतही एवं भूमिगत जल के आधार पर देश को 15 प्रमुख कृषि जलवायु एवं 69 उपकृषि जलवायु प्रदेशों में विभाजित किया गया है।

1. पश्चिमी हिमाचल प्रदेश **2.** पूर्वी हिमाचल प्रदेश **3.** निलचा गंगा मैदान प्रदेश **4.** ऊपरी गंगा मैदान प्रदेश **5.** मध्य गंगा प्रदेश **6.** ट्रांस गंगा प्रदेश **7.** पूर्वी पठारी प्रदेश **8.** मध्य पठारी प्रदेश **9.** पश्चिमी पठारी प्रदेश **10.** दक्षिणी पठारी प्रदेश **11.** पूर्वी तटीय प्रदेश **12.** पश्चिमी तटीय प्रदेश **13.** गुजरात प्रदेश **14.** पश्चिमी शुष्क भूमि प्रदेश **15.** द्वितीय प्रदेश

यह संभव है कि भविष्य में भूमण्डलीय उष्मन के कारण कई फसलों को प्रकार प्रतिरूप, क्षेत्र, उत्पादन व उत्पादकता में परिवर्तन हो जायेगा। इस संभावना को ध्यान में रखते हुए हमें अपने महत्वपूर्ण जैविकीय संशाधनों यथा जल, वायु, मृदा, वनस्पति तथा नदियों का संरक्षण आवश्यक है जिससे हम सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करते हुए अपने ग्रह एवं अपनी सभ्यता को एक संतुलित भविश्य दे सके। जलवायु विज्ञान में एक ज्ञान की शाखा के रूप में कृषि को एक नया आयाम दे रहा है।

16.5 जलवायु एवं मानव स्वास्थ्य :–

जैविकीय दृष्टि से मनुष्य का शरीर कुछ निश्चित भौतिक एवं भौगोलिक दशाओं में सुचारू रूप से कार्य कर सकता है। इन दशाओं के अन्तर्गत उष्मा, आक्सीजन, प्रकाश, आर्द्रता, वर्षा, बादल, कोहरा को सम्मिलित किया जाता है। जलवायु मनुष्य के जैव भौतिक एवं आचार परख अनुक्रियाओं को विभिनन तरीको से प्रभावित करती है। जलवायु एवं मौसम मनुष्य के स्वास्थ्य कल्याण, तापीय आराम, अस्वस्थता, अनुकूलन एवं दशानुकूलन के प्रति मनुष्य की क्षमता, माना ऊर्जा संतुलन, शरीर क्रियात्मक अनक्रिया आदि को प्रभावित एवं नियंत्रित करती है।

जैव भौतिक सीमाएं :–

मनुष्य का शरीर कुछ निश्चित दशाओं में अनुकूल रहता है तथा शरीर की उत्तर जीविका भी इन्हीं अनुकूल दशाओं पर निर्भर रहती है। अत्यधिक आर्द्रता एवं उष्मा के कारण शरीर तथा मस्तिष्क का विकास अवरूद्ध हो जाता है। अधिक ऊँचाई पर ऑक्सीजन की कमी के कारण मनुष्य की उत्तरजीविता असंभव है। अधिक ऊँचाई पर कम तापमान के कारण मनुष्य के शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है। दूसरी तरफ मानव जीवन को पोषण पहुंचाने वाले खाद्यान्न की अनुउपलब्धता होती है। उष्ण एवं शुष्क रेगिस्तानों में अधिक तापमान एवं न्यून वर्षा के कारण फसलों का उगाया जाना असंभव होता है। इसी तरह टुण्ड्रा एवं आर्कटिक प्रदेशों में बीजों का अंकुरण नहीं हो पाता है।

जलवायु एवं शारीरिक तापमान :–

मानव शरीर को उपापचर्य क्रियाओं को प्रभावित करने में वायु तापमान आर्द्रता, धूप, पवन महत्वपूर्ण जलवायु

के तत्व है। मानव शरीर की तापीय संतुलन उसके वाह्य पर्यारवरण में उष्मा के क्षय तथा शरीर द्वारा उष्मा की प्राप्ति के बीच संतलुन द्वारा निर्धारित होता है। मानव शरीर से परिचालन, विकरण तथा वाष्पीकरण द्वारा उष्मा का क्षय होता है। जब शरीर की त्वचा से नमी का वाष्पीकरण होता है। तो उससे उष्मा खर्च होती है। जिससे शरीर का तापमान उसके समान तापमान (98.6°F) से कम हो जाता है।

जबकि शरीर द्वारा अवशोषित उष्मा से शरीर की क्षय उष्मा अधिक हो जाती है, तो मानव शरीर का तापमान बहुत कम हो जाता है। जिससे हाइपोथैलमिया या तुषार उपधातु हो जाता है।

मानव के स्वास्थ्य पर मौसम एवं जलवायु के प्रभाव के अध्ययन को चिकित्सा जलवायु विज्ञान कहते है। जलवायु के कारकों एवं कुछ रोगों के बीच सम्बन्धों की पुष्टि हुयी है। जैसे श्वसन से सम्बन्धित रोग– अस्थमा, टी0वी0, कार्डियोंवैसकुलर, उच्च रक्त चाप, सिर दर्द आदि है। मानव स्वास्थ्य का अत्यधिक शीत, अत्यधिक गर्मी का तत्काल प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए– हीमांक के नीचे के तापमान में मानव शरीर के अनावरण के कारण फास्त बाइट हो जाता है। जिससे हृदय की गति मन्द पड़ जाती है और पीड़ित व्यक्ति को सही समय पर उपचार न मिलने पर मृत्यु भी हो सकती है। इसी तरह कड़ाके की गर्मी में चिड़चिड़ाती धूप में मानव शरीर का अनावरण होने से त्वचा के रक्त कोशिकाओं का डाइलेशन हो जाता है और निर्जलीकृत हो जाता है। इसे ही सनस्कट्रूक, हिट्स्ट्रूक या हाइपोथैलमिया कहते है। मानव स्वास्थ्य को धूप बड़े पैमाने पर प्रभावित करती है। मानव शरीर को हल्की धूप खासकर प्रातःकाल एवं संध्याकाल के समय में त्वचा को विटामिन डी की प्राप्ति होती है, परन्तु पैराबैंगनी विकिरण एवं कड़ी धूप में शरीर के लम्बे समय पर अनावरण से सनबर्न या त्वचा कैंसर हो जाता है। यद्यपि मानव को कई रोग एवं व्याधियों विभिन्न कारकों से होती है। मानव शरीर में तापमान परिवर्तन जब तक एक निश्चित सीमा तक होता है। तब उसे सहनीय सीमा कहा जाता है।

जलवायु एवं सुख :–

सामान्य तौर पर मनुष्य का व्यक्तिक सुख उसके शरीर के तापमान तथा वाह्य पर्यावरणीय दशाओं पर निर्भर करता है। जब शरीर का तापमान बिना उपापचय क्रियाओं के 98.6°F रहता है। तो उसे समान तापमान कहा जाता है। मनुष्य का शरीरिक सुख तथा शरीरिक कष्ट जलवायु तथा मानव के जनित विभिन्न कारकों पर निर्भर करता है। जलवायु जनित कारक जैसे वायु तापमान सौर्विक विकिरण वायु आर्द्रता आदि है तथा मानव जनित कारक परिधान, निवास, गृह, यन्त्रीकरण है।

सुख सूचकांकः–

सुख सूचकांक जिसे सामान्यतः जिसे भौतिक जलवायु सूचकांक के नाम से जाना जाता है। इसके परिकलन के विभिन्न प्रयास किये गए है। यथा – 1. प्रभावी तापमान, 2. उष्मा सूचकांक तनाव, 3. मानक प्रभावी तापमान, 4. आभासी तापमान, 5. उश्मा सूचकांक, 6. डिजाइन सुख, 7. परिधान सूचकांक। जैसे– कुपोषण, मलेरिया, डेंगू, निमोनिया, अस्थमा, पीलिया आदि रोग जलवायु से सम्बन्धित होते है।

ग्रीष्मकाल एवं शीतकाल के संक्रमक के बीच मलेरिया तथा डेंगू ज्वर का प्रकोप बढ़ जाता है। यह समय मच्छरों के प्रजनन एवं तीव्र वृद्धि के लिए अनुकूल होता है। ताजी हवा तथा धूप की कमी से तपेदिक जैसी जानलेवा संक्रमक बिमारियां हो जाती है।

प्रदूषित वायु से उत्पन्न बोमारियां निम्न है :–

1. वायु में कार्बन मोनो आक्साइड के अधिक सान्द्रण से रक्त के ऑक्सीजन परिवहन की क्षमता घट जाती है एवं श्वास अवरोध होने लगता है।
2. ओजोन परत के सान्द्रण में कमी होने से चर्म कैंसर होने की आशंका रहती है।
3. वायु में सल्फर डाई आक्साइड के प्रदूषण से गला, आँख एवं फेफड़े का रोग हो जाता है।
4. अम्ल वर्षा के कारण धरातलीय सतह पर स्थित नदियों एवं झीलों का जल प्रदूषित हो जाता है।
5. वायु में नाइट्रिक ऑक्साइड के सान्द्रण से सांस लेने में कठिनाई होने लगती है। मसूड़ों में सूजन आ जाती है तथा शरीर के अन्दर रक्त स्त्राव होने लगता है।

6. स्वचलित वाहनो एवं कारखानों से उत्सर्जित कणिकीय पदार्थ यथा एस्बेस्टस सीसा, ताँबा, जस्ता के कारण मानव शरीर में कई प्राण घातक रोग हो जाते है। भोपाल गैस त्रासदीं में अचानक जहरीले रसायनों के स्त्राव से हजारों लोगों की मृत्यु हो गयी।

दशानुकूलन :–

कृत्रिम पर्यावरणीय दशाएं सृजित करके नई पर्यावरणीय तथा जलवायु दशाओं के अनुसार अपने आप को अनुकूलित करने की क्रिया को दशानुकूलन कहते हैं। मनोवैज्ञानिक व्यवहार शरीर का उपापचयन, दृष्टिकोण में परिवर्तन एवं परिधान जैसे कुछ उपायों के द्वारा दशानुकूलन किया जाता है। जलवायिक दशानुकूलन के अन्तर्गत आन्तरिक पर्यावरणीय दशाओं जैसे– शीत ऋतु में हीटर एवं गर्मियों में एअरकंडीशनर द्वारा अनुकूलित करते है, परन्तु यह परिवर्तन तीव्रगति से नहीं किया जाता है। उदाहरण स्वरूप यदि कोई व्यक्ति गर्मियों में एअरकंडीशनर से निकल कर तुरन्त चिलचिलाती धूप में जाता है, तो वह बीमार हो जाता है क्योंकि मानव शरीर तीव्र तापीय प्रवणता के साथ समायोजन नहीं कर पाता है। इसी तरह नई पर्यावरीय दशाओं में व्यक्ति का समायोजन मन्द गति से होता है। इस तरह के समायोजन को क्रमशः अनुकूलन या दशानुकूलन कहते है।

अनुकूलन या दशानुकूलन में वृद्धि करके उश्मन शीतलन तथा विशिश्ट प्रकार के डिजाइन किये गये परिधानों को पहनकर जलवायु एवं मौसम की विषम दशाओं को कुछ हद तक कम किया जा सकता है।

16.6 जलवायु एवं जीवमण्डल :–

जीवमण्डल सभी प्रकार के जैविक संघटक, अजैविक संघटक एवं ऊर्जा संघटक से मिलकर बना है। जीवमण्डल पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए है। जिसके अन्तर्गत पादक समुदाय एवं मानव सहित जन्तु समुदाय आते है। परिस्थितिक तंत्रों जैविक एवं अजैविक संघटक के मध्य लगातार अन्तर क्रिया होती रहती है। जीवमण्डल में भू–रासायनिक चक्र द्वारा पदार्थों का संचरण चक्रीय रूप में होता है। वायुमण्डलीय प्रक्रियाओं जैसे–वर्षा, सौर ऊर्जा एवं वायुमण्डलीय गैसे भू–रासायनिक चक्र के क्रियान्वयन में सहायक होते है। जीवमण्डल में ऊर्जा का प्रमुख स्रोत सूर्य है। यह ऊर्जा का प्रवाह एकदिशीय होता है। जलवायु एवं जीवमण्डल के विभिन्न संघटकों के बीच सम्बन्धों का विस्तारण एवं विवेचन समीचीन होगा यथा –

16.7 जलवायु एवं मानव व्यवहार :–

जलवायु मनुष्य की दृष्टिकोण, विचारधारा, सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक विचार एवं व्यवहार को प्रभावित एवं निर्धारण करता है। मानवीय व्यवहार, सभ्यता, संस्कृति, परम्परा, सामाजिक स्तर, सामाजिक प्रक्रियाएं एवं धर्म का प्रतिफल होता है, परन्तु मानव व्यवहार को बनाने में जलवायु एवं मौसम महत्वपूर्ण कारक होते है। वायुमण्डलीय घटनाओं यथा मेघगर्जन, अकाशीय बिजली आकस्मिक एवं नियमित बाढ़, ताप एवं शीत लहर वायुमण्डलीय तूफान के आवृत्ति तथा परिमाण मनुष्य के बोध व्यवहार तथा प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करते है। उदाहरण स्वरूप बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में रहने वाले लोग मानसून के आगमन से ही बाढ़ से भयाक्रान्त हो जाता है। ज्ञातव्य है कि अत्यधिक ठण्ड या अत्यधिक गर्मी लोगों में भय का माहौल पैदा कर देती है। जिस कारण उन्हें उनके मानसिक दशा असंतुलित हो जाती है और उनमें चिड़चिड़ापन आ जाता है। सारांश रूप में यह कहा जाता है कि जलवायु एवं मानव स्वास्थ्य तथा व्यवहार में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

16.8 जलवायु एवं मिट्‌टी :–

जीवमण्डल में मिट्‌टी, पोषक तत्वों के उत्पादन अनुरक्षण का कार्य करती हैं। जीवमण्डल में ऊर्जा के स्थानान्तरण, पोषण तत्वों के दमन, चक्रण एवं संचरण के लिए मृदा तंत्र आवश्यक है। मृदामण्डल को एक जैविक कारखाना कहा जाता है एवं इसकी निम्न विशेषताएं है।

1. मृदामण्डल के द्वारा ही पौधों को आवश्यकपोषक तत्व सुलभ होते है।
2. मृदामण्डल में जीवमण्डल में ऊर्जा तथा पदार्थों के स्थानान्तरण के लिए माध्यम का कार्य करता है तथा पोषक तत्वों के चक्रण एवं पुर्नचक्रण में सहायक होता है। मृदामण्डल विभिन्न जैविक जीवों के लिए अनुकूल आदर्श दशाएं एवं आवास प्रदान करता है।

3. मृदामण्डल में मृदामण्डल ऊपर से रिसकर आया वर्षा जल को संचित करके भूमिगत जल भण्डार का निर्माण करता है।

4. मृदा का निर्माण मुख्यतः जलवायु का प्रतिफल होता है क्योंकि मृदा के निर्माण के लिए वियोजन एवं विघटन आर्द्रता, तापमान, आक्सीकरण तथा कार्बोनेशन आदि के विभिन्न संयमों पर निर्भर करता है। मृदा तंत्र ऊपर वाले भाग से लेकर निचले भाग तक सभी संस्तरों को सम्मिलित रूप से मृदा संघटक होते है।

   1. वनस्पति एवं जन्तु समूह प्रथम अंकित जैविक पदार्थ।
   2. अजैविक एवं आकार्बनिक खनिज।
   3. मृदा घोल।
   4. मृदा वायुमण्डल।

जलवायु का मिट्टियों क निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मिट्टियों के निर्माण में 5 कारक अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

1. जलवायु
2. जैविक कारक या जीव
3. उच्चावच या धरातलीय कारक
4. आधार शैल तथा भूपदार्थ
5. समय

मिट्टियां जलवायु, जीवों, उच्चावचों एवं पदार्थ और समय का प्रतिफल होते है।

S = F (cl, o, r, p, t)

जबकि S = मृदा (Soil)

F = प्रतिफल है।

Cl = जलवायु

O = जीव

जलवायु मृदा की अपरदनात्मक तथा अपरदनशीलता को नियंत्रित करते है स्थिर पर्यावरणीय दशा में मिट्टियों को अपरदित करने के लिए अपरदन कारकों की क्षमता को मृदा अपरदनात्मकता कहते है। मृदा की अपरदन के प्रति प्रतिशोधकता को अपरदनशीलता कहते है।

E = F (C.T.R.V.S.) ………..(2)

जबकि E = मृदा अपरदन

F = प्रतिफल

C = जलवायु (वर्षा के कारक – वर्षा की मात्रा, तीव्रता, ऊर्जा तथा वितरण)

T = धरातल (ढाल की तीव्रता तथा लम्बाई)

R = शैल प्रकार

V = वनस्पति (संरचना तथा घनत्व)

S = मृदा के गुण (भौतिक एवं रासायनिक गुण, मृदा की अपरदनात्मकता तथा मृदा अपरदनशीलता)

r = उच्चावच्च

p = आधारशैल के पदार्थ

t = समय कारक

जलवायु मृदा में स्थित तापमान एवं नमी की मात्रा की निर्धारित करता है, मृदा के तापमान में वृद्धि होने से रासायनिक क्रियाएं उपयोजक जीवों द्वारा जैविक पदार्थों की वियोजन की गति तीव्र हो जाती है। जलवायु मृदा के प्रकारों एवं विश्व विवरण प्रतिरूपों को निर्धारित करता है। जलवायु दशाओं विशेषकर आर्द्रता एवं तापमान में स्थानिक विभिन्नता होने से मृदा निर्माण प्रक्रम में प्रादेशिक भिन्नता होती है।

16.9 जलवायु एवं मृदाअपरदन :–

जलवायु के विभिन्न कारकों द्वारा होने वाले गैर मानविकीय क्रिया कलापों के अपरदन को जलवायु जनित अपरदन कहा जाता है। इस कार्य में भूमिगत, जल, बहता जल, पवन, सागरीय तरंग, उन्नत आदि सहयोग करते हैं। मृदा द्वारा वाहित जल के माध्यम से अपरदन को 2 भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. परिवहन प्रभावित अपरदन
2. विलगाव प्रभावित अपरदन

किसी भी वनस्पति समुदाय की किसी प्रदेश की जलवायु दशाओं के अनुरूप अनुकूलन करना होता है। डार्विन के सिद्धान्त के अनुसार जन्तुओं में अपने उत्तरजीविता के लिए संघर्ष पाया जाता है। इसी प्रकार वनस्पतियों में अधिक स्थान, सूर्य का प्रकाश व पोषण प्राप्त करने के लिए संघर्ष पाया जाता है जैसे – भूमध्यरेखीय क्षेत्र में सूर्यतप को प्राप्त करने के लिए पौधों की लम्बाई अधिक हो जाती है।

उल्लेखनीय है कि जलवायु एवं वनस्पतियां परस्पर एक दूसरे पर निर्भर होती है क्योंकि किसी प्रदेश की वनस्पति वहां की जलवायु का प्रतिफल होता है तो वनस्पति भी वहां की जलवायु को परिवर्तित एवं परिवर्धित करती है प्रारम्भ में विश्व की जलवायु का वर्गीकरण, तापमान, आर्द्रता, वर्षा, वायुदाब द्वारा किया जाता था, परन्तु वनस्पति किसी जलवायु का प्रतिफल होता है यह ज्ञात होने से आज के समय में जलवायु का वर्गीकरण किया जाता है। सूर्य प्रकाश, तापमान, मृदा की आर्द्रता, वायुमण्डलीय आर्द्रता आदि जलवायु के ऐसे कारक है जो वनस्पतियों के अनुक्रमित विकास में सहायक होते है। वाहित जल तथा मृदा अपरदन करने वाले मुख्य कारकों में तापमान जलवर्षा तथा हवा को सम्मिलित किया जाता है। जल वर्षा की मात्रा तीव्रता एवं वितरण महत्वपूर्ण संघटक है। जो मृदा अपरदन के दर एवं स्वरूप को नियंत्रित करते है, अन्य स्थितियों के समान रहने पर लम्बी अवधि एवं उच्च तीव्रता वाली वर्षा द्वारा अधिकतम मृदा अपरदन होता है। वर्षा जल अपरदन वर्षा की तीव्रता, घोल की रिसाव दर व शैल की संरचना पर निर्भर करता है।

16.10 जलवायु एवं वनस्पति :–

जीवमण्डल में हरे पौधे का महत्व सर्वाधिक होता है क्योंकि पोषण स्तर में उत्पादन का कार्य हरे पौधे ही करते है। जीवमण्डल में उपस्थित सभी जीवों एवं जन्तुओं को ऊर्जा की प्राप्ति हरे पौधे के माध्यम से होती है और ये पौधे प्रत्यक्ष रूप से जलवायु के तत्वों वायुमण्डलीय आर्द्रता उष्मा, सूर्यातप वाष्पीकरण तथा पवन वेग पर निर्भर रहती है। हरे पौधे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा अपने भोजन का निर्माण करते है और यह ऊर्जा पोषण स्तर के अन्य जीवों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्राप्त होते है।

भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर तथा सागर तल से ऊँचाई के अनुसार वनस्पति में विविधता पाई जाती है। वनस्पतियों को लम्बवत एवं क्षैतिज वितरण कई कारकों द्वारा प्रभावित एवं नियंत्रित होता है।

1. जलवायु कारक (सूर्य प्रकाश, मृदा में नमी वर्षा, वायु, वायुमण्डलीय आर्द्रता, तापमान आदि)।
2. मृदीय कारक – मृदा संरचना, मृदागति, मृदा कुपोषण तत्व, क्षारीयता, अम्लीयता मृदा परिच्छेदिका के प्रकृति एवं गुण।
3. जैविक कारक – पौधों की विभिन्न प्रजातियों एवं जन्तुओं के मध्य प्रतिक्रियाएं यथा प्राकृतिक चयन प्रतिस्पर्धा परिजीविता, सहोपकारिता।

4. भौतिक काल – धरातलीय ढाल एवं उच्चावच।

5. विवर्तनिक कारक – प्लेट संचलन, महाद्वीपीय विस्थापन एवं प्रवाह अन्तजीव दल, ज्वालामुखी, क्रिया व भूकम्पीय घटनाओं, पौधों की प्रजातियों एवं वनस्पति में क्षेत्रीय विसमताओं एवं जलवायु के विभिन्न संयोगों में स्थानिक विभिन्नताओं के कारक होते है।

16.11 जलवायु एवं पारिस्थिकीय उत्पादकता एवं ऊर्जा प्रवाह :–

जीवमण्डल में ऊर्जा का प्रमुख स्रोत सूर्य है। हरे पौधें प्रकाश संश्लेशण की क्रिया द्वारा प्रकाश ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में रूपान्तरित करते है ये पौधे प्राथमिक उत्पादक कहलाते है प्राथमिक उत्पादकों को दो श्रणियों में विभाजित किया जा सकता है।

1. प्रकाश पोषित प्राथमिक उत्पादक।
2. रासायनिक पोषित प्राथमिक उत्पादक।

वे हरे पौधे सौर्यिक ऊर्जा के प्रकाश संश्लेषण विधि से अपना आहार निर्मित करते है। प्रकाश पोशित प्राथमिक उत्पादक कहा जाता है तथा वे रसायन पोषित प्राथमिक उत्पादक कहा जाता है तथा वे रसायन पोषित बैक्टीरिया जो रासायनिक अभिक्रिया द्वारा अपना आहार निर्मित करते है। रसायन पोषित प्राथमिक उत्पादक कहलाते है। प्राथमिक उत्पादकों द्वारा प्रति इकाई क्षेत्र व प्रति इकाई समूह में सकल सिंचित ऊर्जा को पारिस्थितकी उत्पादकता कहते है। किसी परिस्थितिकी तंत्र में प्रति इकाई समय में प्रति इकाई क्षेत्र के पदार्थों के सकल शुष्क भार को बायोमास कहा जाता है। पारिस्थितिकी तंत्र के प्राथमिक उत्पादकता के 3 मुख्य प्रदेश पाये जाते है।

1. उच्च पारिस्थितिकी उत्पादक के प्रदेश जिसके अन्तर्गत आर्द्र वन प्रदेश जलोढ़ मैदान, छिछले स्थल स्थिति जलीय भागों को सम्मिलित किया जाता है।
2. निम्न परिस्थितिकी उत्पादकता का प्रदेश – इसके अन्तर्गत मरूस्थल, गहरें सागरीय भाग तथा हिममण्डित बंजर भूमि को सम्मिलित किया जाता है।
3. मध्यम पारिस्थिकी उत्पपादकता के प्रदेश इसके अन्तर्गत गहरी कृषि को छोड़कर कृषि भाग, घास के क्षेत्र एवं छिछली झीलों को सम्मिलित किया जाता हैं

विषुवत रेखीय वर्षा वनों की पारिस्थितिकीय उत्पादकता सर्वाधिक होती है तथा मरूस्थलीय प्रदेशों की पारिस्थितिकीय उत्पादक सबसे कम होती है। पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा का प्रवाह पोषण स्तरों के माध्यम से होता है और यह प्रवाह उष्मा गतिकीय नियमों से संचालित होता है ये नियम इस प्रकार है।

नियम :–

1. स्थिर द्रव्यमान वाले निकाय में ऊर्जा का न तो सृजन होता है और न ही विनाश होता है इसका एक रूप से दूसरे रूप में रूपान्तरण होता है। इस नियम को ऊर्जा संरक्षण का नियम भी कहते है।
2. ऊर्जा का जब एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तन होता है वो ऊर्जा के कुछ भाग का क्षय हो जाता है, जो कि पुनः सुलभ न ही हो पाती है।

पारिस्थितिकी तंत्र में एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर में ऊर्जा के प्रवाह के दौरान केवल 10 प्रतिशत ऊर्जा ही अगले पोषण स्तर को प्राप्त होता है। शेश ऊर्जा स्वशन एवं उपापचर्या क्रियाओं में नष्ट हो जाती है। इसी कारण से पोषण स्तर में ऊपर के जीवों को ऊर्जा प्राप्त करने के लिए अधिक संघर्श करना पड़ता है। जब पौधे तथा जीव की मृत्यु हो जाती है तो उनमें सिंचित ऊर्जा का वियोजन सूक्ष्म जीव द्वारा किया जाता है। स्मरणीय है कि ऊर्जा का यह प्रवाह जटिल एवं सतत प्रक्रिया सागरीय पारिस्थितिकीय तंत्र में भी पाई जाती है।

निष्कष :–

जलवायु का अध्ययन और उसकी समझ हमारे पर्यावरणीय और भविश्य की योजना के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जलवायु हमारे जीवन के कई पक्षों को प्रभावित करती है जैसे– कृषि, जल संसाधन, स्वास्थ और जैव विविधता। व्यावहारिक जलवायु विज्ञान के अध्ययन से ऊर्जा स्रोतों का उपयोग, ऊर्जा की बचत, वन संरक्षण और

ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने में मदद मिलेगी।

16.12 परीक्षा उपयोगी प्रश्न :–

1.दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. व्यावहारिक जलवायु विज्ञान क्या है? इसे समझने के लिए जलवायु के प्रमुख प्रकारों का उल्लेख करें और उनके प्रभावों का वर्णन कीजिए।
2. जलवायु और मानव स्वास्थ्य के बीच सम्बन्धों की व्याख्या करें। उष्ण कटिबन्धीय और शीतकटिबन्धीय जलवायु का मानव स्वास्थ्य पर प्रभावों का वर्णन करें।
3. जलवायु और जीवमण्डल के सम्बन्धों को स्पष्ट करें। विभिन्न जलवायु प्रकारों में वनस्पति, प्राणियों एवं प्रजातियों के लिए जलवायु के प्रभाव को विश्लेशित करें।
4. कृषि के लिए जलवायु क्यों महत्वपूर्ण है विभिन्न जलवायु प्रकारों में वृद्धि या कमी के प्रभावों को समझाते हुए कृषि पर उनके प्रभावों की व्याख्या करें।

2. बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1. व्यावहारिक जलवायु विज्ञान का मुख्य उद्देश्य क्या है?

   (A) जलवायु के प्रकारों की पहचान करना।

   (B) जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का अध्ययन करना।

   (C) जलवायु के प्रकारों को विश्लेशित करना।

   (D) वनस्पति व जीव–जन्तु के विकास का अध्ययन करना।

2. जलवायु वितरण में बदलाव के कारण कौन सी समस्या उत्पन्न हो सकती है?

   (A) वन्य जीवों में वृद्धि **(B)** भूजल स्तर में बढ़ोत्तरी

   (C) अच्छा मानसिक स्वास्थ्य **(D)** जीव–जन्तु जीवन की दुर्बलता

3. जलवायु परिवर्तन का मानव स्वास्थ्य पर सबसे अधिक प्रभाव किस जलवायु में होता है?

   (A) शुष्क जलवायु में **(B)** बर्फीली जलवायु में

   (C) सुखद जलवायु में **(D)** उष्ण कटिबन्धीय जलवायु में

16.13 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ

1. डी एस. लाल – जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज

2. प्रो0 सविंद्र सिंह – जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज

3. डॉ. वाई. आई. सिंह – जलवायु विज्ञान, एशियन ह्यूमेनटिस प्रेस (AHP)

4.डॉ. चतुर्भुज मामोरिया – डा. एम. एस. सिसोदिया – जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, साहित्य भवन कानपुर

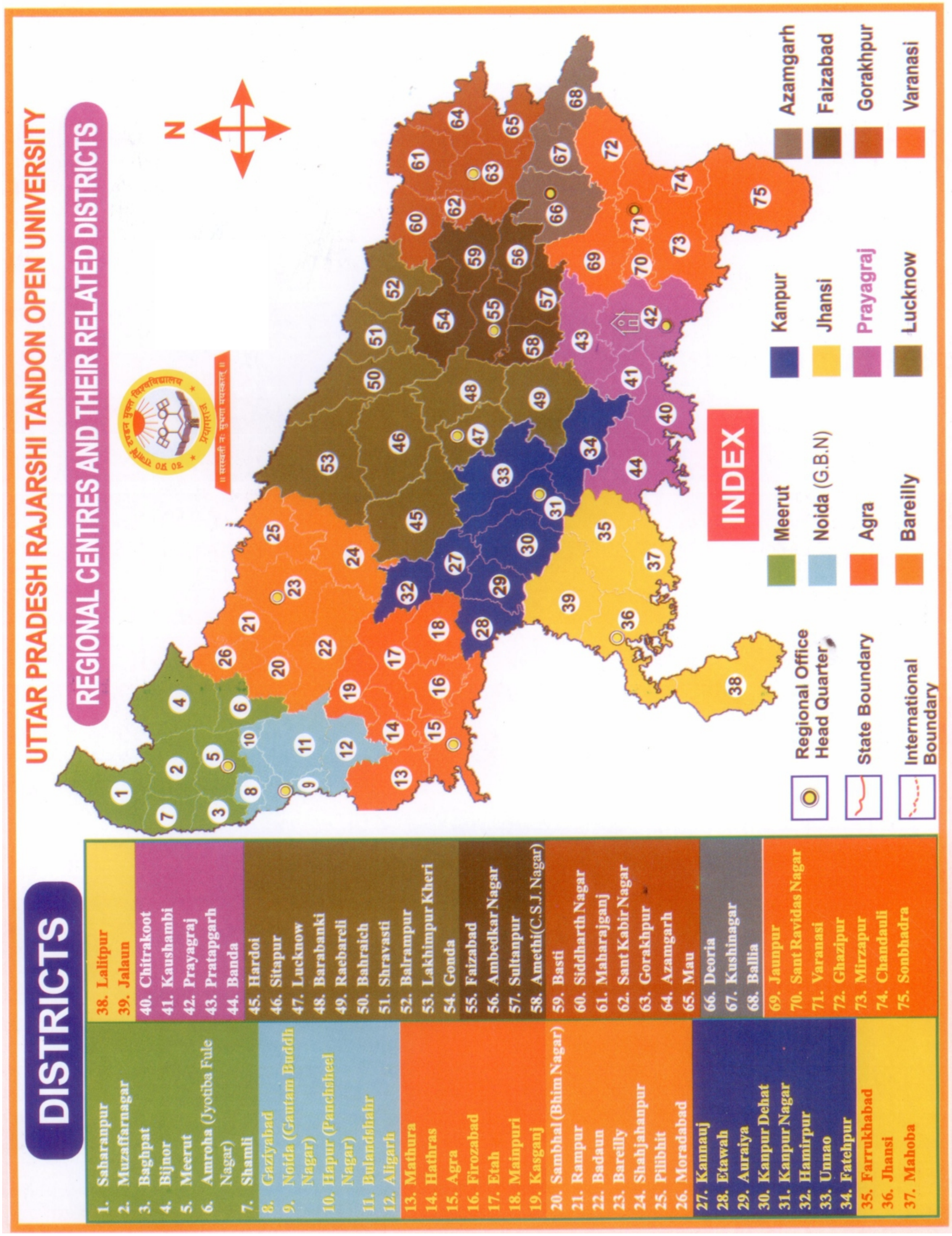

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज – 211013

"अपने भाइयों को मै सचेत करना चाहता हूँ कि मोम न बनें और आसानी से पिघल न जायें। छोटी-छोटी सी बातों के लिए ही हम अपनी भाषा को या संस्कृति को न बदलें।"

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

प्रयागराज

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333